नासिका विज्ञानीय स्तम्भ-

कर्ण विज्ञानीय स्तम्भ-

मुख विज्ञानीय स्तम्भ-

दन्त विज्ञानीय स्तम्भ-

जिह्वा विज्ञानीय स्तम्भ-

कण्ठ रोग विज्ञानीय स्तम्भ-

ऊर्ध्वजत्रुज रोग विज्ञानीय स्तम्भ—

चित्र सूची

प्राणाचार्य ऊर्ध्वजत्रुजरोगाँक के प्रधान सम्पादक

आयुर्वेदाचार्य—कविराज हरदयाल वैद्य वाचस्पति K.R.A.V.,M.A.S., स्वर्णपदक प्राप्त

भूतपूर्व प्रिंसीपल दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय लाहौर तथा अमृतसर, अध्यक्ष आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्स आफ मेडिसिन पंजाब राज्य, का

संक्षिप्त परिचय

आयुर्वेद के प्राङ्गण में आपकी सेवाओं का आरम्भ १९१७ में होता है जबकि आपको गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार की शाखा गुरुकुलमटीण्डू (रोहतक) में मुख्याधिष्ठाता गु० कांगड़ी द्वारा गुरुकुल चिकित्सक के रूप में नियुक्त किया गया। तदनु १९१८ में आपको गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद विभाग के मुख्याध्यापक के कार्यार्थ नियुक्त किया गया। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी हरिद्वार के आयुर्वेद विभाग के प्रारम्भिक संचालक आप ही हैं। तत्पश्चात् आपको बाबा काली कम्बली हृषीकेश वाली द्वारा प्रचालित और स्वनामधन्य स्व० श्री प्रतापसिंह रसायनाचार्य द्वारा संचालित आयुर्वेद विद्यालय हृषीकेश में आमन्त्रित किया गया। उक्त संस्थाओं के सफल अध्यापन एवं उत्कृष्ट औषधि निर्माण विज्ञान की योग्यता के आधार पर १९-४-२० को श्रीमद्दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय लाहौर में आपको रसतन्त्राध्यापक के पद पर आमन्त्रित किया गया। अध्यापन क्षमता प्रचुर अनुभव कार्य कुशलता निरंतर सप्रेम सेवा और प्रबन्ध चातुर्य आदि गुणों के आधार पर १९४४ में आपको संस्था के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया। तदनु १९५० में आप यथा नियम संस्था की सेवा से मुक्त हुए। इसी काल में आपके यशः सौरभ की रश्मियें आयुर्वेद जगत की परिधि से बाहर चतुर्दिक प्रसरित हुईं।

अपने कार्यकाल में आचार्य जी ने सैकड़ों लेख लिखे। आपके लेख सर्वदा भावपूर्ण, मार्गदर्शन, तुलनात्मक उपादेय और गवेषणापूर्ण रहे हैं। पाठक आपके लेखों को पूर्ण अभिरुचि से अपनाते हैं।

धन्वन्तरि के उदररोगाङ्क और राकेश के शिशुरोगाङ्क के आप प्रधान सम्पादक हैं। दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय के मुख पत्र "आयुर्वेद संदेश" का वर्षों आपने सफल सम्पादन किया है। समालोचना और सम्पादन कला के आप ख्यातिप्राप्त पण्डित हैं।

शार्ङ्गधर संहिता पर आपने रहस्यार्थ प्रकाशिका टीका की है। टीका वास्तव में अपने अर्थ को पूर्ण करती हुई सर्वप्रिय बन चुकी है। निःसन्देह अद्वितीय टीका है। कणादकृत नाड़ी विज्ञान और अनङ्ग रंग के टीकाकार हैं। भवज्वररत्नावली पर आपने सरलार्थ बोधिनी (अप्रकाशित) टीका की है। आरोग्य शास्त्र (प्रकाशित), आयुर्वेदिक फार्माकोपिया, रस प्रयोग विधि, आयुर्वेदीय चिकित्साक्रम (अप्रकाशित) के आप रचयिता हैं। रसशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान हैं। विशुद्ध आयुर्वेदिक सरणी के द्वारा चिकित्सा के आप उज्वल उदाहरण हैं। उदर एवं पचन संस्थानज रोगों के आप सिद्धहस्त प्रसिद्ध चिकित्सक हैं।

सहस्रों सुयोग्य शिष्य आपने संसार को दिए हैं। जिनके द्वारा आयुर्वेदीय सेवा का कार्य भली प्रकार सम्पन्न हो रहा है। अपनी आयु की उत्तरावस्था में भी आप आयुर्वेद सेवा कार्य में संलग्न हैं। आपके वंश में १८२४ विक्रमी सम्वत् से आयुर्वेदिक व्यवसाय का कार्य अविच्छिन्न रूप से चला आरहा है। आप अनेकों आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी तथा आयुर्वेदिक एण्ड तिब्बी कान्फ्रेंसों के प्रधान तथा अनेकों अभिनन्दन पत्र प्राप्त कर्ता हैं।

—सम्पादक

वैद्य बांकेलाल गुप्त "प्राणाचार्य"
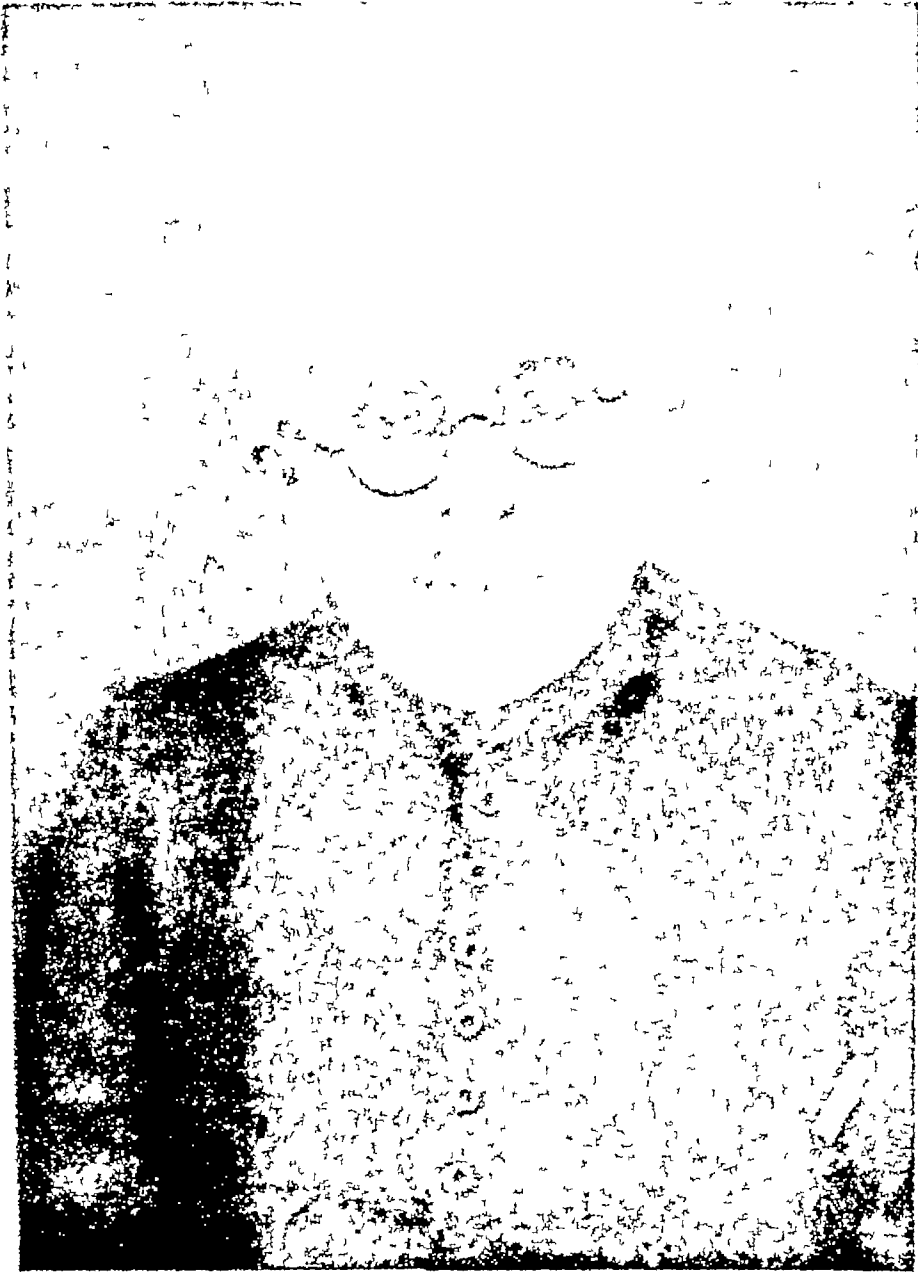
आयुर्वेदाचार्य कविराज श्री हरदयाल वैद्य वाचस्पति

[illegible] स्वर्ण पदक प्राप्त

भूतपूर्व प्रिंसिपल—श्रीमद्दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय लाहौर तथा अमृतसर

अध्यक्ष—बोर्ड आफ आयुर्वेदिक एण्ड यूनानी सिस्टम्स आफ मेडीसन पूर्वी पंजाब

भाग ४
अङ्क १-२

ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क

वार्षिक मूल्य
४।=)

ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क विशाल

पुण्य-पूत अमृत-घट लेकर,
मृतकों को दे जीवन-दान।
आयुर्वेद पताका लेकर,
किया चिकित्सा का उत्थान ॥
'प्राणाचार्य' अमोघ-योग भर,
सेवा-प्रण लेकर तत्काल।
आया भेंट-रूप में देने,
ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क विशाल ॥

❀ ❀ ❀

रचयिता
पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री जबलपुर

|| श्री धन्वन्तरिये नमः ||

प्राणाचार्य

स्वास्थ्योपदेशकुशलः सौख्यायुष्यप्रवर्द्धकः ।
आयुर्वेदप्रबोधार्थं प्राणाचार्यः प्रकाशितः ||

आयुर्वेद का भविष्य

बड़े-बड़े शासन क्षेत्रों के कुशल प्रबधको की यह दृढ़ धारणा है कि प्रत्येक विषय के भविष्य का जायजा लेने के लिये उसके वर्तमान पर विचार करना आवश्यक होता है ।

क्या मैं अपने वैद्य भाइयों से यह प्रश्न कर सकता हूं कि उन्होंने आयुर्वेद के भविष्य को भाँपने के लिये उसके वर्तमान पर विचार किया है ?

आयुर्वेद के भविष्य के सम्बन्ध में जिस भय व सङ्कट को मैं देख रहा हूं, मुझे विश्वास है कि आप सब भी उस भय और सङ्कट को नि.सन्देह देखते और अनुभव करते हैं । आयुर्वेद के विनाश की जो विचार धारा प्रचलित हो रही है उसकी रोक थाम के लिये पूरा-पूरा उद्योग नहीं हो रहा । इस समय आयुर्वेद पर चारों ओर से प्रहार हो रहे हैं । इन प्रहारों की विद्यमानता में आयुर्वेद के भविष्य का आशामय होना सम्भव प्रतीत नहीं होता । आयुर्वेद पर अनेक बार सङ्कट आए मगर वह अपनी सत्ता से उनका मुकाबिला करता है । इस बार सङ्कट कुछ विलक्षण प्रकार का है । भारत पर राज्य करने वाले विदेशी लोगों ने अपनी-अपनी चिकित्सा पद्धतिएं यहां फैलाई । अपनी चिकित्सा पद्धतियों के फैलाव में उनके मन की यह बात तो हम समझ सकते हैं कि उनके हृदय में अपनी चिकित्सा पद्धति को अपने साथ-साथ रखने और बढ़ाने का चाव था परन्तु भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद को समूल नष्ट करने का अभिप्राय नहीं था । समय के परिवर्तन का ही प्रभाव है कि भारतीय सरकार आज आयुर्वेद को समूल नष्ट करने पर कटिबद्ध हो रही है । यू तो भारत सरकार भारत की प्राचीन संस्कृति के ही पीछे पड़ी हुई है और विशेषकर आयुर्वेद विद्या के सम्बन्ध में विशेष यत्नशील है । इस समय तक की भारत सरकार की विचार धारा किसी भी आयुर्वेद प्रेमी से छुपी हुई नहीं है ।

इस दशा में मैं भारत सरकार को उतना दोषी नहीं समझता जितना इस सम्बन्ध में उसके परामर्शदाता हैं । सरकारी काम प्राय: उसके तद्विषय सम्भाषा विशेषज्ञों द्वारा सम्पन्न होते हैं । आयुर्वेद चूंकि एक चिकित्सा शास्त्र है और सरकार के विश्वासपात्र वह चिकित्सा विशेषज्ञ हैं जो आयुर्वेदिक चिकित्सा शास्त्र का "क" "ख" भी नहीं जानते । ऐसी दशा में न्याय और मानविक शिष्टाचार के आधार पर परामर्श दाताओं का कर्तव्य कर्म यह होना चाहिए कि जिस विषय को वह नहीं जानते, जिसका उन्हें परिचय नहीं, जो विषय उन्होने आद्यन्त पढ़ा नहीं, ऐसे विषयों में यदि सरकार उनकी सम्मति मांगती है तो उन्हें स्पष्ट कह देना चाहिए कि—"यह विषय हमारे ज्ञान से बाहिर का है—अत. इसी विषय के विशेषज्ञों से इसके सम्बन्ध में परामर्श लिया जाये"—किन्तु दुःख है लोकैषणा, स्वार्थ और अहम्मन्यता के चक्र में फसे हुए व्यक्ति, अत्यन्त निर्दयता से सचाई का गला काट रहे हैं । भारतीय एलोपैथ चिकित्सक गला फाड़-फाड़ कर आयुर्वेद को इसलिये अवैज्ञानिक कहता है कि उनका स्वार्थ इसमें छिपा है । स्वार्थी हृदय को कभी सत्यप्रकाश करने की इच्छा नहीं होती । आर्थिक स्पर्धा के वशीभूत होकर विरोधी प्रचार करना अपने लिये तो हितकर हो सकता है परन्तु देश के लिए नहीं । आज का भारत

स्वतन्त्र भारत है स्वतन्त्र देशों के मनुष्यों से देशोन्नति की भावना मुख्य रूप से जाग्रत होनी चाहिए।

यूरोप में भी ऐसे सज्जनों की कमी नहीं जो निर्भीकता से सत्य बोलते हैं। अनेक ऐसे डाक्टरों ने जिन्होंने आयुर्वेद का कुछ अध्ययन किया है आयुर्वेद के विज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इस पर भी भारत के एलोपेथ्स निरन्तर इसका विरोध करते ही रहते हैं। इन लोगों के विरोधी प्रचार और परामर्शों के आधार पर ही आज सरकार की विचार धारा आयुर्वेद के प्रतिकूल हुई है। अफसोस इस बात का है कि भारत सरकार के परामर्श दाताओं के विपरीत परामर्श देने के कारण ही कर्नल रामनाथ जी चोपड़ा की अध्यक्षता में प्रस्तुत की गई भारतीय चिकित्सा पर उत्तम रिपोर्ट को भी ओझल कर दिया गया है। कर्नल चोपड़ा महोदय की स्पष्ट सम्मति के रहते हुए भी भारत सरकार ने गत दिनों देहली में एक पण्डित कमेटी के नाम से विशेष कमेटी बैठाकर उससे जो परामर्श प्राप्त किए हैं उनके प्रकाश में आयुर्वेद को शीघ्रातिशीघ्र रसातल पहुँचाने के साधन जुटाये जा रहे हैं। वैद्यों को इस कुचक्र से सावधान रहने का समय आ रहा है। इस दशा में यदि वैद्यों ने स्वयं पूर्ण प्रयत्न से अपने और आयुर्वेद के उद्धार का मार्ग नहीं निकाला तो निःसन्देह आयुर्वेद और वैद्य दोनों खतरा में हैं। "इस नूतन" आपत्ति से बचाव के लिए आयुर्वेद महामण्डल देहली पूर्ण सतर्कता से काम कर रहा है। प्रत्येक चिकित्सक को अपना पूर्ण सहयोग महामण्डल को अर्पण करना चाहिए।

आयुर्वेद महामण्डल को भी इस ओर पर्याप्त कदम उठाने हैं। हमारे विचार में इस दशा में प्रथम पग यह होना चाहिए कि महामण्डल द्वारा योग्य एवं आमूलचूल आयुर्वेद में ओत प्रोत विद्वानों की छोटी-छोटी टुकड़ियां सङ्गठित करके छोटे-छोटे कस्बों और देहात में भेजनी चाहिए जो स्थानीय आयुर्वेद के चिकित्सकों को विशुद्ध आयुर्वेदीय औषध और औषध कल्पों के प्रयोग की ओर आकर्षण कर सकें एवं कस्बों और ग्रामों के चिकित्सकों में पेटेण्ट विदेशीय औषधों के अन्धाधुन्ध व्यवहार के प्रति घृणा पैदा कर सकें।

शताब्दियों से निरन्तर चले आ रहे आयुर्वेद के प्रेम को जनता में जाग्रत रूप से अगर हम देखते हैं और इन्हीं के प्रभाव से ही सरकारी रिपोर्ट में यह भी घोषणा पढ़ते हैं कि—९०% जनता आयुर्वेद से ही आरोग्य लाभ करती है—तो हमें आयुर्वेद के गौरव को वहन करने वाले ग्रामों और उपग्रामों के वैद्यों के इस नवागत दौर्बल्य को अवश्य दूर करना होगा जिसके प्रभाव से वे लोग केवल विज्ञापनों के आधार पर ही विदेशी औषधों का आश्रय लेकर आयुर्वेद के भविष्य को अन्धकार मग्न बनाने में अपना सर्व श्रेष्ठ लाभ समझ रहे हैं। आयुर्वेद क्षेत्र में प्रचलित पेटेण्ट औषधों की यह प्रथा दुधारी तलवार का काम कर रही है।

यथा—

(१) यदि किसी भी पेटेन्ट विदेशी औषधि के व्यवहार से रोगी को लाभ होता है तब चिकित्सक की धारणा उस ओर अधिक अग्रसर होती है। इस अवस्था में आयुर्वेद के प्रति उसकी प्रगाढ़ श्रद्धा में व्याघात होना स्वाभाविक हो जाता है।

(२) दुर्भाग्य से यदि रोगी को हानि होती है तो वैद्य स्वयं बदनाम होकर आयुर्वेद के गौरव को कलंकित करने का कारण बनता है। ऐसी अवस्था में वह सर्वथा किंकर्तव्यविमूढ़ होता है क्योंकि उसे उस विदेशी औषधि के दर्पनाशक द्रव्य वा उपाय का परिचय नहीं जिसे उस ने विज्ञापन के बल बूते पर प्रयोग किया है।

चिकित्सकों की इस मानसिक दुर्बलता का मनोविज्ञान शास्त्र के आधार पर अध्ययन करके आयुर्वेद महामण्डल को इस ओर शीघ्र गतिशील होना चाहिए। अन्यथा—ज्यों २ दवा की मरज बढ़ता ही गया—के शब्द स्वतः ही मुख से निकलेंगे।

आयुर्वेद महामण्डल के अनवरत ५०-६० वर्षों के परिश्रम से आयुर्वेद के सूर्य ने चतुर्दिक प्रकाश किरणें प्रसरित की हैं। इसी काल में भारत में अनेक आयुर्वेदीय

औषधियों को प्रस्तुत करने वाली निर्माण शालायें स्थापित हुई हैं। परन्तु वर्तमान में अधिकतर फार्मेसियों ने परोपकार और धर्म वृत्ति को छोडकर द्रव्योपार्जन की पद्धति पकड ली है। आयुर्वेदोन्नति के लिये यह प्रथा बडी घातक सिद्ध हो रही है। आश्चर्य इस प्रकरण पर है कि भिन्न २ फार्मेसियो के द्वारा निर्मित—च्यवनप्राश्य, आसव, अरिष्ट धातुभस्में, कूपीपक्व, वसतमालती, वसत कुसुमाकर आदि औषधियों को आप देखें किसी के साथ परस्पर वर्ण, गन्ध, स्वाद, गुण आदि का सन्तुलन नहीं होता। एक ही योग, एक ही शास्त्र, एक ही परिभाषा का समन्वय रहते हुए भी यदि वर्णादि की साम्यता उपलब्ध नहीं होती तो धर्म वृत्ति छोडने का इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है? यह अध.पतन यहीं समाप्त नहीं होता प्रत्युत इस बात के असंख्य उदाहरण विद्यमान हैं कि एकही फार्मेसी के द्वारा एक ही औषधि यदि वर्ष में ५ वार वनती है तो उसके पांचों वार के औषधि वर्ण में अन्तर मिला है।

इस प्रकार की वर्ण भिन्नता क्या आयुर्वेद और उसके निर्माताओं की वैज्ञानिकताओं को चार चाँद लगाने की प्रेरणा करेगी? रोगियों और जन समुदाय के इस कटु अनुभव की शिकायत औषधि निर्माण शालाओं की उपेक्षा वृत्ति के द्वारा क्या आयुर्वेद की निन्दा का कारण नहीं बन रही?

समय की माँग के अनुसार फार्मेसी सचालकों को अपनी रीति नीति में परिवर्तन करना चाहिए। अपनी फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत होने वाली प्रत्येक औषधि पर उनकी पूर्ण दृष्टि होनी चाहिए। सेव्यमान औषधें मृत्यु वा आरोग्य कल्प की क्षमता रखती हैं। अत मानवस्वास्थ के साथ इस खिलवाडपन को कोई भी सहन नहीं कर सकता। वैद्य समाज और इसके चिकित्स्य वैज्ञानिक युग में जीवन यापन कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में यदि यह लोग अपने कटु अनुभवों को व्यक्त करने में संलग्न हैं तो इनकी पुकार को श्रवण करना फार्मेसियों के सचालकों का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए।

औषधि निर्माण भी एक कला है। जब तक इस कला को पूर्णतया समझ और सीख नहीं लिया जाता, तब तक सर्वाङ्ग पूर्ण उत्तम औषधियों का तैयार करना असभव है। प्रत्येक बार वनी हुई औषधि की वर्ण भिन्नता का कारण क्या है? केवल यह कि औषधि निर्माता इस ज्ञान से सर्वथा वचित है कि किस योग में कौन द्रव्य पहिले डालना है और अन्त में किस द्रव्य को मिलाना है एव योगोक्त कौन द्रव्य किस द्रव्य के साथ मिलाना और उसे मिलाकर मर्दन करना है या प्रथक् २ मर्दन करके मिलाना है एव अमुक आर्द्र द्रव्य को किस पात्र विशेष में पेषण करना है तथा अमुक द्रव्य का क्वाथ किस योगार्थ धातु निर्मित्त पात्र में पकाना है और किसके लिए मृत्पात्र का प्रयोग करना है। समयातीत, हीन वीर्य और गले सडे द्रव्यो का प्रयोग भी प्रस्तुत औषधों के वर्णादि वर्ग के व्यत्यय में कारण होता है। नूतन और उपादेय द्रव्यों के सयोग से प्रस्तुत औषधि के एव समयातीत और निष्क्रिय एवं वर्ण हीन द्रव्यों से निर्मित भैषजकल्प नि सन्देह भिन्न दशा का परिचायक होगा।

इस मार्ग मे एक और अडचन भी उत्पन्न होती है वह यहां के भेषज कल्पों में जहा वर्णादि के सम्बन्ध में पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है वहां सब से अधिक ध्यान इस ओर भी रखने की आवश्यकता है कि औषधियों के गुण में भी हीनता उत्पन्न न हो।

उदाहरणार्थ यह कल्पना सारहीन न होगी कि यदि किसी पित्त प्रशामक वा रक्तपित्त नाशक योग में रजत-भस्म पडती हो तो वह रजत भस्म हरिताल मारित न होनी चाहिये। अगर ऐसे स्थलों पर भस्मो के गुण धर्म और उनके मारक एव शोधक सहायक द्रव्यों के गुणावगुण से यदि औषधि निर्माता पूर्ण परिचित नहीं हैं तो अर्थ और हितावह के स्थान पर निर्मित भैषज कल्प नि.सन्देह मारक और हानिकर प्रस्तुत होगा। सकेत मात्र एक दो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। वास्तव में आयुर्वेद विधि से निर्मित होने वाली प्रत्येक भैषज कल्पना में इसी प्रकार के सूक्ष्म रहस्य और ज्ञातव्य विषय विद्य-

मान हैं जिनके जाने विना कोई भी शास्त्रीय औषधि प्रस्तुत होने पर शास्त्रोक्त गुण करने की क्षमता नहीं रखती। सम्भव है इसीलिये आज वैद्यों और जनता का विश्वास आयुर्वेद के प्रति कुण्ठित हो रहा है। अन्यथा आयुर्वेद की निम्न घोषणा की उपेक्षा होने का कोई कारण नहीं।

१–'सराजिका पादमितो निहन्ति दुस्साध्यरोगान् द्रुतिवद्धनामा'
२–'देहे च लोहे च नियं जनीयः शिवाह्वनेकोऽस्यगुणान् प्रवक्ति'
३–'रसायनो भाविगदापहश्चसोपद्रवारिष्टगदान्निहन्ति'

फार्मेसियों द्वारा निर्मित बड़े-बड़े मूल्यवान रसो एवं धातु भस्मादि से भी शास्त्रीय गुणों को उपलब्धि नहीं हो रही। उदाहरणार्थ अभ्रक को लीजिये—

"हिन्याभ्र क्षयपाण्डुरुग् ग्रहणिकाशूलामकुष्ठाभयम्"
—रसरत्न समु०

अभ्रक भस्म का सर्व प्रथम गुण क्षय के लिए आता है। आज जो अभ्रक भस्म फार्मेसियों द्वारा प्राप्त हो रही है क्या उसमें यह गुण प्राप्त होता है? अगर नहीं होता तो क्यों? वैद्यों के सामने पुरानी रिसर्च है औषधों के गुण लिखे गए हैं और यह गुण अनुमान से ही नहीं लिखे गये। इनके गुणानुवाद में पूर्व महर्षियों ने इन्हें पूरी तरह जाच पड़ताल और अनुभव करके प्रत्यक्ष किया था। आश्चर्य है कि वह दृष्ट प्रत्यय आज उपहास्य और अवैज्ञानिकता का कारण बन रहा है। यह दोष तो फार्मेसियों के सञ्चालकों तथा वैद्यों का है परन्तु इस कलङ्क का लक्ष्य बन रहा है आयुर्वेद। फार्मेसी सञ्चालक स्वार्थत्याग से ही इस लाञ्छन से मुक्त हो सकते हैं।

प्रत्येक औषध के निर्माण के लिए उपर्युक्त सरणी के अनुसार यदि ज्ञातव्य विषय हस्तामलकवत् कर लिए गए हो तो यह कदापि सम्भव नहीं कि कभी भी औषधों में वर्ण भिन्नता उपस्थित हो। औषध निर्माण बड़ा विशाल कार्य है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। प्रत्येक प्रकार के औषध निर्माण सम्बन्धी सूक्ष्म और जानने योग्य विषय बड़े गहन और गम्भीर हैं। ऐसी उपादेय और ज्ञातव्य समस्त परिभाषाओं का जानकार ही उत्तम औषध निर्माता बनने का पूर्ण अधिकारी है।

प्रतीत होता है कि प्रायः बहुसंख्यक फार्मेसियों में उत्तम श्रेणी के औषधि निर्माता वैद्य नियुक्त नहीं हैं। फार्मेसी सञ्चालकों के ध्यान में स्वल्प वेतन भोगियों द्वारा ही अपना कार्य चलाने की प्रवृत्ति रहती है। जिसका परिणाम उन्हे भोगना पड़ता है। यदि फार्मेसी सञ्चालक पर्याप्त वेतन देकर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति का मार्ग अवलम्बन करें तो औषधि निर्माताओं की अभिरुचि भी इस ओर आकर्षित होगी और इस कला की पूर्ण उन्नति भी सम्भव होगी।

औषधि निर्माण और रसतन्त्र के अध्ययनाध्यापन के ४८ वर्ष के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हू कि उत्तम गुरुदीक्षा से दीक्षित अनुभवी औषधि निर्माता के लिए प्रत्येक निर्मित औषधि को देखते ही उसका पूर्व विवरण कह देना कोई कठिन कार्य नहीं है।

ऊपर के तृतीय उद्धरण में *'भाविगदापहश्च'* पाठ मिलता है। इसका अर्थ यह है भविष्य में होने वाले रोगों का नाश। यह पाठ रसशास्त्र के विकाश से पूर्व सुश्रुत में भी हम "अनागत रोग प्रतिषेध चिकित्सा" के प्रकरण को देखते हैं और चरक में भी इस विषय का वर्णन विद्यमान है। महर्षियों द्वारा इस आवश्यक भाग का ज्ञान दिया गया है परन्तु हमने अपने आलस्य के कारण बिलकुल ही छोड़ दिया है। शीतला, विशूचिका, टाईफाइड आदि रोगों की रोक थाम के लिये दूसरी पैथियों के विद्वानों ने आज भी अनेक सूचीवेध एतदर्थ प्रस्तुत कर दिये हैं। संसार की जिन आवश्यकताओं को दूसरी पैथियां पूर्ण कर रही हैं, कोई कारण नहीं कि स्वयं आयुर्वेद ही संसार की उन आवश्यकताओं को क्यों पूरा न करे। त्रुटियों को पूर्ण करके प्रचलित विज्ञान के समानान्तर पर आयुर्वेद को लाना आज के वैद्य समाज का प्रथम कर्तव्य है। आयुर्वेद को अन्तिम दशा तक पहुचाने वाली व्याधियां (परिस्थितियां) बढ़ रही हैं यदि वैद्य समाज ने इनके विपरीत सतर्कता से पूर्ण प्रयत्न न किया तो आयुर्वेद के लिये मृत्यु की घड़ियां समीप आ रही हैं।

वैद्यों द्वारा आयुर्वेद की उपेक्षा

इस तथ्य को भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता कि स्वयं वैद्य भी आयुर्वेद के गौरव को ह्रास करने का कारण बन रहे है।

कारण—

१—आयुर्वेद के चिकित्सक आयुर्वेद का स्वाध्याय नहीं करते। संस्थाओं से पठित एवं उत्तीर्ण होने के पश्चात् यह समझ लेते हैं कि उन्हें पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान है और इससे अधिक ज्ञान वृद्धि के लिये स्वाध्याय की आवश्यकता ही नहीं है। संस्थाओं के पाठ्यक्रम के अनुसार छात्रों को आयुर्वेद का प्रारम्भिक ज्ञान तो हो जाता है परन्तु उस ज्ञान को पुनः वृद्ध और उन्नत करना स्वाध्याय के ऊपर अवलम्बित है। गुरूपदेशों के अतिरिक्त शास्त्र के गूढ़तम रहस्यों को बोध कराने वाला एकमात्र साधन स्वाध्याय ही है। मनोयोग पूर्वक किये गए स्वाध्याय में स्वाध्यायी को प्रत्येक वार नया–नया ज्ञान और चमत्कार प्राप्त होता है। प्रत्येक विषय की गहनता को समझने के लिये बार-बार उसका मनन करना, प्रौढ़ पाण्डित्य और तद्गत रहस्यों को हस्तामलकवत् करने के लिये स्वाध्याय से बढ़कर अन्य दूसरा मार्ग ही नहीं है।

२—देश वा विदेश के जो प्रायः स्मरणीय सज्जन संसार को नये–नये आविष्कार प्रदान कर रहे हैं, इनकी मूलभित्ति दैनिक स्वाध्याय और निरन्तर कर्माभ्यास पर आश्रित है। M. B. के द्वारा प्रचलित ६६३ के आविष्कार से वैद्यों को भी शिक्षा लेनी चाहिए। नया आविष्कार करने वाले साधक को असफलता पथ भ्रष्ट नहीं कर सकती। इसका सीधा अर्थ है ६६३ के बनाने से प्रथम इसकी पूर्ति के लिए ६६२ प्रयोग असफल सिद्ध हुए और अन्त में ६६३ वा प्रयोग सफल हुआ और उसने पर्याप्त सिद्धि पाई है। इस उदाहरण से यहा केवल इतना ही सम्बन्ध है कि वैद्यों को भी अपने स्वाध्याय और कर्माभ्यास के मार्ग से आने वाली असफलताओं से घबराकर पीछे न हटना चाहिए।

यत्ने कृतेऽपि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।

के नियमानुसार प्रत्येक असफलता के पीछे उसके कारण का अन्वेषण करने से एक दिन आवेगा कि साधक की सफलता मे आयुर्वेद और जनता दोनों का कल्याण होगा।

३—आज यह दशा है कि प्रत्येक नई एलोपैथिक औषधि के बाजार में आते ही वैद्य और हकीम भाई बड़े चाव से लाते हैं और उसे सीधे वा उल्टे (वर्ण परिवर्तन करके) प्रयोग में लाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसा करने से कार्यकर्त्ता क्षणिक यश और किंचित् अर्थ लाभ प्राप्त कर लेते हैं परन्तु वे इस बात को भूल जाते है कि वे इस निन्द्य कर्म द्वारा आयुर्वेद को अध पतन करने के साथ-साथ अपनी आत्मा और जनता से धोखा कर रहे हैं।

एलोपैथिक औषधियों की निर्माण पद्धति एवं तद्गत द्रव्यों के गुण प्रभाव आदि को भी वे भली भांति नहीं जानते। केवल औषधियों के गुण परिचायक विज्ञापन को देखकर प्रयोग में अग्रसर होते हैं। ऐसी विज्ञान मूढ़ावस्था में भी वे निरन्तर विदेशीय औषधियों को अधिकाधिक प्रयोग करते है। ऐसी औषधियों के दर्पनाशक द्रव्यों का परिचय न होने से अनेक अवगुण भी प्राप्त करते हैं। इस पर भी स्वार्थ वश इस बुरे मार्ग को छोड़ते नहीं जब तक यह मार्ग नहीं छोड़ा जायगा तब तक आयुर्वेद में नए २ आविष्कार कैसे हो सकते हैं? आवश्यकता ही नए नए आविष्कारों की जननी है।

अवस्था यहा तक गिर चुकी है कि साइनबोर्डों पर वैद्य, हकीम वैद्यराज आदि आदि लिखा हुआ होता है परंतु औषधालयों में ८०% प्रतिशत औषधें एलोपैथी की होती हैं। क्या ऐसी दशा में अभ्यासानुसार प्रत्येक क्षण में ऐसे चिकित्सकों के मुख से एलोपैथी औषधियों के ही गुण गायन नहीं किये जाते?

दशा चिन्तनीय हो रही है। मेरे इन शब्दों के लिखने का अभिप्राय यह नहीं है कि मैं किसी एक वा अनेक पर कोई दोषारोपण कर रहा हूँ प्रत्युत उद्देश्य यह है कि वैद्यों को यदि जीवित रहना है और आयुर्वेद को समुन्नति करना है तब उन्हें अपने कार्य काल पर सतर्कता से ध्यान देना और अपना मार्ग बदलना होगा।

आंख मींचकर यह मान लेने को जी नहीं चाहता कि नई २ आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बिना विदेशी औषधियों के प्रयोग के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। आयुर्वेद कार्यकाल में उपस्थित नई २ आवश्यकताओं को पूरा करने की शक्ति रखता है। आवश्यकता केवल अन्वेषण की है। बिना अन्वेषण और कर्माभ्यास के अतिरिक्त इस जटिल समस्या को सुलझाना असंभव सा है। प्रतिदिन के नए २ आविष्कारों के मुकाबिला में अगर आयुर्वेद के महारथियों ने आवश्यक आविष्कार करके स्थान स्फूर्ति नहीं की तो आयुर्वेद के चिकित्सक और जनता दोनों ही निकट भविष्य में आयुर्वेद से पराङ् मुख हो जायगें।

सरकार की इस इच्छा की पूर्ति के लिए कि यदि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतिया वैज्ञानिक कसौटी पर ठीक उतरें तब ही जीवित रह सकती हैं—वैद्यों और हकीमों को मिलकर भरसक प्रयत्नों द्वारा इसे सिद्ध करने का समय उपस्थित है। भारतीय चिकित्सक यदि स्वार्थ और मोह को छोड़कर शुद्धान्त करण से इस ओर यत्न करें तो १ वर्ष के भीतर ही बीसियों रोगों के सिद्ध और आशुफल प्रद योग सरकार और संसार के सामने आ सकते हैं। भारतीय चिकित्सकों में से अधिकतर ने अपनी धनोपार्जन की लिप्सा और दुर्बलता के कारण-प्रत्येक रोगी को इंजेक्शनों का उपदेश वा क्रियात्मक आचरण द्वारा जनता के भावों को इंजेक्शनों का उपदेश वा क्रियात्मक आचरण द्वारा जनता के भावों को इंजेक्शनों की ओर प्रेरित करके खतरनाक नाटक खेला है।

इसमें संदेह नहीं कि इस नाटक को धनोपार्जन की दृष्टि से ही खेला जा रहा है कारण कि रोगी को ३-४ पुड़िया देकर चिकित्सक अधिक से अधिक ८-१० आना प्रति रोगी प्राप्त कर सकता है, लेकिन सूचीवेध करके वह प्रति रोगी से २, ३, ४ रु० प्राप्त कर लेता है। इस आर्थिक मोह ने सबकी वृत्ति बदल दी है। परिणाम यह हुआ कि जनता का ध्यान आयुर्वेद से हटकर इंजेक्शनों की ओर बढ़ रहा है। इधर डाक्टर लोग भी इस दशा से चिंतित हैं। वैद्य इंजेक्शनों द्वारा चिकित्सा करें तो उन्हें सरासर घाटा है। इस स्थिति को रोकने के लिए डाक्टर अपने प्रभाव का प्रयोग करके केन्द्रिय सरकार के विचारों को भारतीय चिकित्सा के विरुद्ध प्रोत्साहन दे रहे हैं।

धनोपार्जन के सिद्धहस्त खिलाड़ियो ने इन्जैक्शनों का बोलबाला देखकर आयुर्वेदिक औषधियो के सूचीवेध भी तैयार कर दिये। यद्यपि इनके निर्माण सिद्धांत, सरणी और साधनोपकरणादि भिन्न थे, तदपि इनसे बहुत अंशो में सूचीवेध को प्राथमिकता देने वाले आयुर्वेदीय चिकित्सको का कुछ समाधान हुआ था। हमने भी समझा था कि चलो आयुर्वेदीय सूचीवेध भी शनैः शनैः उन्नति करके यथा काल अपने मार्ग पर आ ही जाएगा। परंतु दुःख है कि विपक्षियों को आयुर्वेद के इस भाग की उन्नति से भी महान कष्ट हुआ है। इस ओर की गति को रोकने के लिये नए २ जालों की रचना हो रही है। आयुर्वेदीय इन्जैक्शन बनाने वालो को लाइसेंस के बंधनों से बाधने की तैयारियां हो रही हैं। लाइसेंस लेने के बाद समय समय पर नई २ आज्ञायें प्रसारित होंगी। आयुर्वेद की तरह इनकी भी निन्दा की जायगी। अवगुण बताये जायगे अन्त मे सरकार को परामर्श दिया जायगा कि इस प्रथा को बन्द कर दिया जाय।

ड्रगऐक्ट और उसकी धाराओं की भाषा निर्माण करने वाले दादा गुरुओ ने अपने एक ही हाथ मे आयुर्वेद को सर्वदा की नींद सुला दिया है।

इस ऐक्ट के वर्तमान रूप मे जीवित रहने से आयुर्वेद या ड्रग ऐक्ट दोनों में से एकही जीवित रह सकता

है। ड्रग ऐक्ट की धारा E और H की विद्यमानता में श्मशानोपलब्ध विभूति भी प्राप्त होनी कठिन है, जीवित रहने की आशा ही क्या।

सरकार, उसके परामर्शदाता, वैद्यों की उपेक्षा, समय की मांग और अन्य अनेक गतिविधियों के काल चक्र ने ऐसा समय उपस्थित कर दिया है जिसे हम वैद्यों और आयुर्वेद के लिये जीवन और मृत्यु का संग्राम समझते हैं। प्रत्येक वैद्य के हृदय में आयुर्वेद को सर्वोत्तम करने की प्रबल इच्छा और तदनुकूल क्रिया योग ही एकमात्र उपाय है।

ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क

प्राणाचार्य का इस वर्ष का विशेषाङ्क ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के नाम से प्रकाशित हुआ है और यह अङ्क पाठकों के हाथों में है। यह कैसा हुआ है ? इसका निर्णय पाठक महानुभाव स्वयं करेंगे। मुझे इसके सम्बन्ध में दो चार शब्द कहने हैं।

१—इस वर्ष के विशेषाङ्क के इस नाम को प्राणाचार्य के अधिकारियों ने मेरे सुझाव के आधार पर ही माना है एवं इसके सम्पादन का कार्यभार भी मुझे ही सौंपा गया। यद्यपि मैं इस कार्यभार को सहन करने योग्य न था, कारण कि मुझे अपने धन्धे, अपनी चिकित्सा एवं आयुर्वेदिक व यूनानी सिस्टम आफ मेडिसिन बोर्ड के अध्यक्ष के कार्य से ही समय नहीं मिलता। सुझाव देने के समय मुझे यह ज्ञान नहीं था कि—जो बोले वही सांकल खोले—का बर्ताव होगा। अस्तु !

यह सब कुछ होते हुए भी मैं अपने माननीय मित्र श्री वैद्य यांकेलाल जी सम्पादक प्राणाचार्य के मार्मिक अनुरोध को टाल नहीं सका। एक चिरपरिचित प्रिय बन्धु के आदेश को टालना किसी भी सच्चे मित्र का कार्य नहीं है। स्नेह के इस बन्धन को निभाते हुए मुझे अपने कई प्रिय मित्रों की रुष्टता प्राप्त हुई है।

धन्वन्तरि के सम्पादक महोदय जी की ओर से भी भैषज्य कल्पनाङ्क के प्रधान सम्पादकत्व का भार ग्रहण करने का सत्कारपूर्ण निमन्त्रण मिला था। इसके उत्तर में मैंने उन्हें अपनी कठिनाईयों से सूचित करने के साथ साथ यह निवेदन भी कर दिया था कि—इसके पूर्व प्राणाचार्य सम्पादक महोदय की ओर से ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के सम्पादन का निमन्त्रण आ चुका है। यह भी मैंने अत्यन्त विवशता से स्वीकार किया था। परन्तु फिर भी धन्वन्तरि के सम्पादक महोदय ने मेरी स्पष्टवादिता विवशता को मेरी ईमानदारी नहीं समझा और वे उसी दिन से रुष्ट हैं।

२—इस बार ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क को निकलने में आशा से अधिक विलम्ब हुआ है इसका प्रधान कारण देशव्यापी चुनाव रहे हैं। कारण कि प्रत्येक स्थान के लेखक महानुभाव चुनावों के कार्य में संलग्न थे। चुनावों से पूर्व से इस कार्य में भाग लेने के योग्य ही न थे। इसलिए लेखों की प्राप्ति में आशातीत विलम्ब रहा। बाद में भी अनेक लेखकों ने चुनावों से सम्बन्धित कार्यों में ही योगदान देना उचित समझा।

३—लेखों से सम्बन्धित चित्रों के ब्लाक बनाने में भी पर्याप्त समय व्यय हुआ। विलम्ब के इन दोनों कारणों के लिए हम पाठक महानुभावों से क्षमा प्रार्थी हैं।

४—ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क की पृष्ठ भूमि विशेष आकर्षक है। जब से आयुर्वेदीय पत्रों ने विशेषाङ्कों की प्रथा का आश्रय लिया है तब से ऊर्ध्वजत्रुज भाग को लक्ष्य रखकर किसी भी पत्र ने इस आवश्यक भाग को दृष्टि में नहीं रखा। जत्रु के ऊपरी भाग में होने वाले रोग कम नहीं हैं और ऐसा कोई रोगी भी नहीं जिसका इनके साथ मुकाबिला न पड़ा हो एवं ऐसा कोई चिकित्सक भी नहीं जिसके पास कण्ठ और उससे ऊपर के अङ्गों के रोगी न आते हों अर्थात यह एक ऐसा भाग है जो चिकित्सा में विशेष महत्त्व रखता है। चिकित्सकों को इस भाग के

रोगों से प्रतिदिन दो चार होना पड़ता है।

ऐसे आवश्यक अङ्ग और चिकित्सा क्षेत्र में चिकित्सकों को तत्काल सिद्धि और यश देने वाले भाग की उपेक्षा आयुर्वेद के गौरव को क्षति पहुँचा रही थी। इसलिये इस बार इस अङ्ग पर विशेष विज्ञान प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वजत्रुज भाग को लक्ष्य किया गया है।

अपने आलस्य से ही वैद्य समाज इस अङ्ग के प्रति परमुखापेक्षी बन रहा है। शल्य चिकित्सा के प्रति वैद्य समाज ने उदासीनता ग्रहण करके जो फल प्राप्त किया है वही फल इस ओर की उदासीनता का प्रत्यक्ष हो रहा है। जनता का आयुर्वेद प्रेम अभी लुप्त नहीं हुआ। सरकारी रिपोर्टों के अनुसार आज भी ६०% प्रतिशत जनता आयुर्वेदीय चिकित्सा से ही आरोग्य लाभ करती है। जनता के इस विश्वास को खो बैठना निकट भविष्य में वैद्यों और आयुर्वेद के प्रति भयङ्कर अनिष्टकारक सिद्ध होगा।

वर्तमान युग सरपट दौड़ का युग है। इसमें जो जाति, देश, सम्प्रदाय वा विज्ञान पिछड़ जायगा वह अपने अस्तित्व से हाथ धो बैठेगा। अपने अस्तित्व को बनाये रखने और उसे लोगों पर प्रभावोत्पादक बनाने के लिए देश के प्रत्येक चिकित्सक को समय उच्च कण्ठ-स्वर से आह्वाहन कर रहा है। समय के इस आमन्त्रण की ओर हमें सतर्कता से ध्यान देना है और अपनी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति आयुर्वेद के सैद्धान्तिक सूत्रों के आधार पर अपने बाहुबल से सम्पादन करनी है। इस दशा में यही एक मात्र उपाय है जिसको अपना कर हम ऋषि प्रणीत आयुर्वेद की रक्षा कर सकते हैं अन्यथा आलस्य और दीर्घ सूत्रियों की जो गाथाऐं लोग उदाहरणों में सुनाया करते हैं हम भी उनसे मुक्त नहीं हो सकते।

आयुर्वेद की विशेषताऐं

आयुर्वेद के भण्डार में अभी भी बहुत कुछ है। आयुर्वेद ने अपने यौवन काल में चिकित्सा विज्ञान के जिन महान् तत्वों को संसार को दिया है, नया विज्ञान अभी वहां तक नहीं पहुंचा। आपके दिग्दर्शनार्थ एक उदाहरण, उपस्थित करता हूं। आयुर्वेद ने भाविश्वास के जिन लक्षणों को पूर्व रूप के नाम से ग्रन्थित किया है वे इस प्रकार हैं—

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीड़ा शूलमाध्मानमेवच।
आनाहो वक्त्रवैरस्य शङ्ख निस्तोद एवच॥
—माधव निदान

आयुर्वेद से भिन्न जितने भी चिकित्सा शास्त्र हैं किसी ने भी इतनी सूक्ष्मता और दाक्षिण्य से रोग के व्यक्त होने के पूर्व की अवस्था को पूर्व रूप या किसी अन्य नाम विशेष से व्यक्त नहीं किया। पूर्व रूपावस्था को भली प्रकार समझ लेने पर रोग के व्यक्त होने से पूर्व ही उसके प्रतिषेध का चिकित्सा क्रम भी पूर्णतया वर्णित है।

पूर्ण निश्चय के साथ इस बात को कहा जा सकता है कि आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली से भिन्न प्रणालियों द्वारा चिकित्सा करने वाले बड़े-बड़े चिकित्सक भी उक्त लक्षणों के द्वारा मार्के की चोट से *रोगी को निकट भविष्य में श्वास रोग होगा* ऐसा अन्तिम निर्णय नहीं दे सकते। हृदय की यांत्रिक परीक्षा एव शिरोव्यथा के चक्र में पड़े रहने के लिए दो ही लक्षण उनके लिये पर्याप्त हैं।

वैद्य समाज यदि चाहे तो आज भी महर्षियों की इस देन के सहारे ससार को अपनी ओर आकर्षण कर सकता है, परन्तु दुःख इस बात का है कि अपने गृह रत्नों से अपरिचित और आलस्य ने इन्हें परमुखापेक्षी बना दिया है।

एवंविध आयुर्वेदोक्त अरिष्ट लक्षण (इन्द्रियोपक्रमणीय अध्याय में वर्णित) का विशाल ज्ञान भी एक चमत्कार की वस्तु है। इस ओर भी वैद्यों की पूर्ण उपेक्षा है।

आज ससार की कोई भी चिकित्सा पद्धति आयुर्वेदोक्त अरिष्ट विज्ञान का मुकाबिला नहीं कर सकती।

आयुर्वेदीय चिकित्सक का यदि अरिष्ट विज्ञान पर पूर्ण अधिकार हो तो वह रोगी और स्वस्थ मनुष्यों के विशेष विशेष चिह्नों को देखकर निःशङ्कतया साप्ताहिक, पाक्षिक, मासोत्तर, द्विमासोत्तर, त्रिमासोत्तर, षण्मासोत्तर एवं वर्ष या उसके पश्चात् होने वाली मृत्यु के सम्बन्ध में संसार को चकित करने वाला अन्तिम निर्णय दे सकता है।

यस्य गोमय चूर्णाभ चूर्णमूर्धनिजायते।
सस्नेह भ्रश्यते चैव मासान्तं तस्य जीवतम ॥
यस्याधरोष्ठ' पतित क्षिप्तश्चोर्ध्व तथोत्तरः।
उभौ वा जम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥

एवंविध शरीर और उसके अवयवों के परिवर्तित लक्षणों के आधार पर इन्द्रियोपक्रमणीय अध्यायों में वर्णित विज्ञान आज भी वैज्ञानिक संसार में हलचल उपस्थित कर सकता है। परन्तु वैद्यों की अभिरुचि इस ओर से कुण्ठित हो रही है।

वर्तमान युग में प्रत्येक देश ने अन्वेषण पद्धति को अपना कर नए-नए अनुसन्धान किये हैं और घोर परिश्रम से इस ओर पर्याप्त उन्नति की है। वैद्य बन्धु भी यदि इस ओर दृष्टिपात करें तो नया प्रकाश मिल सकता है।

परन्तु मेरी प्रार्थना तो वैद्य बन्धुओं से यह है कि अगर वह नये अनुसन्धान कार्य में भाग नहीं ले रहे तब अपने पुराने भण्डार में जो विषय मलाक्तदर्पण की कोटि में प्राप्त हैं उन्हीं पर से मलप्रोञ्छन का कार्य करके दर्पण को मलविहीन करने का यत्न तो करें। केवल यह निर्णय कर लेने से आयुर्वेदीय रस प्रयोग लाभ नहीं करता कार्य नहीं चलेगा और ना ही आयुर्वेद की उन्नति सम्भवनीय है।

रस शास्त्र की बड़ी २ खोज है।

पारद, पारदीय संस्कार एवं तज्जन्य औषधि समुदाय ने आयुर्वेद की विशेषताओं में एक महत्वपूर्ण और चमत्कारिक परिवर्तन किया है। पूर्ण अनुभव के पश्चात इसे वर्तमान रूप दिया गया है। कहीं कहीं आज भी पारद के चमत्कार देखने को मिल जाते हैं। रस चिकित्सा के भीतर अमूल्य और अद्वितीय रत्न भरे पड़े हैं परंतु हम अपनी कुम्भकर्णी निद्रा के कारण ऐसे व्यक्ति का उदाहरण बन रहे हैं जो अक्षय सम्पत्ति का स्वामी होते हुए भी भिखारी बना हुआ हो। वैद्य समुदाय घर की अक्षय धनराशि से बिलकुल बेखबर है।

"अल्प मात्रोपयोगीत्वा दरुचेरप्रसंगतः।
क्षिप्रमारोग्य दायित्वा दौषधेभ्योऽधिकोरसः"

वही चिकित्सा पद्धति श्रेष्ठतर मानी जा सकती है जिसकी व्यवहार्थ औषधों में उपर्युक्त तीन गुण विद्यमान हों।

१—जिसकी मात्रा अल्प हो।
२—रुचि पूर्वक जिसका सेवन हो।
३—तुरत प्रभावोत्पादक हो।

मात्राल्पता—"मराजिका पादमितो निहन्ति" १ राई भर मात्रा अल्प मात्रा का उचित उदाहरण है। अल्प मात्रोपयोगी तथा निस्वाद होने से रुचिपूर्वक सेवनार्ह है।

तुरंत प्रभाव—

"क्षिप्र प्रभावा वेगेन व्याधिजानातिशंकरः"

अर्थात् पारद से शरीर में शीघ्रता से होने वाली अलौकिक गुण व्याप्ति को शंकर भगवान ही भली प्रकार जानते हैं।

कौन पारद उपर्युक्त गुण युक्त होता है।

पारदीय योगों में उपर्युक्त गुण प्राप्त करने के लिए पारद को विशेष रीत्या संस्कृत करना पड़ता है।

"संस्कारोहि गुणान्तराधानमुच्यते"—

पारद को विशेष गुणोत्पादक बनाने के लिए विशेष विधियों का विस्तृत वर्णन रस ग्रन्थों में देखना चाहिए। संस्कार विहीन पारद किसी भी विशेष गुण को धारण नहीं करता। इस समय वैद्य समुदाय अधिक से अधिक अपने भेषज कल्पों के लिए हिंगुलोत्थ पारद व्यवहार में लाता है परन्तु पारद पर रिसर्च करने वालों के प्रयोगों

को अन्तिम निष्कर्ष निम्न लिखित है—

"अजारयन्त पविहेमगन्धं वाञ्छन्ति सूतात्फलमप्युदारम्
क्षेत्रादनुप्ता दपिसस्यजात कृपिवलास्ते भिषजश्चमन्दा:"
"रसबलिजारण विनाऽस्य न खलु रुजॉ हरण क्षमो रसेन्द्र.
"न जलदकलधौत पाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति
प्रतिज्ञा"
"घन रहित बीज जारण मसम्प्राप्त दलादि सिद्धिकृत-
कृत्या
कृपणा: प्राप्य समुद्र चराटिकालाभमन्तुष्टाः आ० प्र०

पारद से विशेष गुण प्राप्त करने के लिए यह नितांत अनिवार्य है कि पारद को विशेष रीत्या शुद्ध किया जाये और उसमें अभ्रक, स्वर्ण और गंधकादि बीजों का जारण किया जावे। बीज जारण रहित पारद विशिष्ट वा अलौकिक प्रभाव व्यक्त करने में सर्वथा असमर्थ है। अभ्रकादि बीज जारित पारद से बने योगो का प्रभाव ही संसार को बलात् अपनी ओर खींच सकता है।

बन्धुवर्ग यदि आप बीजादि जारित अष्ट संस्कृत पारद निर्मित योग प्रयोग करेंगे तो निश्चय ही आप विदेशी औषधों के प्रयोग को तिलाञ्जली दे सकते हैं।

पारद के आठों संस्कार करना असम्भव नहीं हैं। यत्नसाध्य अवश्य है। प्रक्रिया स्पष्ट उल्लिखित हैं केवल दृढ़ उद्यम और कटिबद्धता की कसर है। हमारे इस आलस्य ने आयुर्वेद के प्रभाव को कुण्ठित कर दिया है। अब पुनः दृढ़ परिश्रम द्वारा इसे पुनरुज्जीवित करने का समय उपस्थित है।

यदि आप शीतल मस्तिष्क से विचार करें तो आप अनुभव करेंगे कि लगभग १५० वर्षों से आयुर्वेद का एलोपैथी से शीत युद्ध चल रहा है।

इस युद्ध में आपको शल्य चिकित्सा के प्राङ्गण में पराजय मिल चुकी है। काय चिकित्सा के प्राङ्गण में भी आप लड़खड़ा रहे हैं। यदि आप इस मोर्चा को बचाना चाहते हैं तो प्राणों की बाजी लगाकर पारद की शरण लें मेरा विश्वास है कि अष्ट संस्कृत और बीजजारित पारद से निर्मित औषधीय शस्त्रों से ही आप इस शीत युद्ध को विजय कर सकेंगे।

ऊर्ध्वजत्रुज रोगो की चिकित्सा के क्षेत्र में भी वैद्य शनैः २ हथियार डाल रहे हैं। इस विशेष त्रुटि और दुःखद अवस्था को देखकर ही ऊर्ध्वजत्रुज रोगाङ्क के प्रकाशित व सकलन की चेष्टा की गई है। ऊर्धाङ्ग से वृहत् रोग भी पर्याप्त हैं परंतु जत्रूर्ध्व भाग में ऐसे भी असंख्य रोग हैं जिनसे वैद्यों को प्रतिदिन दो चार होना पड़ता है। इस मोर्चा के प्रति इससे अधिक ढील देने का अर्थ, इस क्षेत्र में भी पराजय होना। अतः आयुर्वेद को उन्नति के शिखर पर देखने वालों को अभी से सचेत और सतर्क होने का पर्याप्त समय है।

लेखकों की विचार धारा

ऊर्ध्वजत्रुज विशेषांक के प्रधान सम्पादक बनने से पूर्व अनेक पत्रों का प्रधान सम्पादकत्वेन सम्पादन करने का अवसर मुझे मिला है। परंतु इस बार इस विशेषांक के लिए जो निवेदन पत्र माननीय लेखक महानुभावों की सेवा में लेख प्राप्ति के लिए लिखे गए थे, उनके उत्तर के रूप में जो पत्र कतिपय मान्य लेखक महानुभावों की ओर से प्राप्त हुये हैं, उनके पढ़ने से कुछ नए विचार सामने आए हैं। इससे पूर्व इस प्रकार के विचार लेखक महानुभावों की ओर से किसी भी विशेषाङ्क सम्पादन काल में मुझे नहीं मिले।

इन विचारों के आधार पर निश्चयात्मक यह कहा जा सकता है कि लेखक महानुभावों और पत्र संचालक महोदयों के मध्य एक खाई विकराल रूप धारण कर रही है।

उन विचारों में से कुछ का सारांश यहां दिया जा रहा है जिससे लेखक महानुभावों के हृदय तल पर जिन विचारों ने अपने वाच्यीय रूप को व्यक्त करके वर्णात्मक पूर्व रूप लिया है वह पत्र सञ्चालकों तक पहुँचे और पत्र सञ्चालक समय की स्थिति के अनुसार अपनी

नीति में परिवर्तन करके परस्पर की बढ़ती हुई खाई के पार को सन्धित करने में अभिरुचि धारण करें।

वर्तमान में कर्तव्य और अधिकार का खुला सघर्ष हो रहा है। प्राचीन शिक्षा दीक्षा कर्तव्य परायणता को मुख्यता देती है। इसके विपरीत आज की शिक्षादीक्षा अधिकार को मुख्य स्थान दे रही है। यही दृष्टि कोण सर्वत्र प्रमुखता लिये हुए है। लेखक महानुभाव यदि लेखारम्भ में यह कल्पना करलें कि लेख लिखकर भेजने के बाद हमारा अधिकार क्या है तो यह चुभने वाली बात नहीं है। इस विचार की भित्ति में यह धारणा स्वाभाविक ही उत्पन्न हो जाती है कि लेख लिखने में यदि पत्र सचालक सीधे वा व्याज रूपेण लाभान्वित होते है तो लेखकों के लिए भी उसका लाभांश नियत होना चाहिए। इसी विचार धारा के वशवर्ती होकर लेखकों के कुछ प्रश्न मेरे तक पहुंचे हैं। यथा—

लेख लिखने से हमें क्या लाभ है? पत्र सचालक विशिष्ट व्यक्तियों के नामों की ख्याति से लेख लिखाकर विशेषाङ्क निकालते हैं और वर्षों तक विशेषाङ्कों के सस्करण छपते रहते है। लेखकों को न तो पारिश्रमिक ही दिया जाता है और नाही उन्हें विशेषाङ्क वा साधारण अङ्क ही दिये जाते हैं। आखिर उपादेय लेख लिखने के लिए मनोयोग पूर्वक स्वाध्याय करना पडता है तदनु उपादेय लेख लिखा जाता है जिस पर समय और परिश्रम दोनों का व्यय होता है। इस प्रकार उपादेय लेख तैयार करने पर भी यदि हमें पारिश्रमिक वा पत्र ना मिले तो हम क्यों लिख भेजें। इसके अतिरिक्त पत्र व्यवहार वा रजिष्ट्री आदि का व्यय पृथक् होता है। धनाढ्य पत्र संचालकों ने बड़ी दूर दर्शिता से इस पद्धति को चला कर खूब धन और ख्याति प्राप्त करने के साथ-साथ अपने-अपने औषधि विक्रय के व्यवसाय को पूर्ण उन्नत कर लिया है। पत्र संचालको का यह सम्पूर्ण वैभव लेखकों से गाढ़े परिश्रम का परिणाम है। इसमें लेखकों के पारिश्रमिक का भाग अवश्य होना चाहिए।

एक महानुभाव लिखते हैं कि आयुर्वेदय पत्र पत्रिकाओं में जो लेखक लेख लिखते हैं उनकी एक यूनियन (सघ) बना ली जानी चाहिए। यही संघ उत्कृष्ट कोटि के लेखों के लिये लेखकों का चयन और पारिश्रमकादि का निर्णय करे। कई लेखकों ने लेख भेजने से पूर्व ही पारिश्रमिक प्राप्त के लिए संकेत कर दिया है।

एक आवस्थिक प्रधान सम्पादक के लिये उपर्युक्त विचार धाराओं के लेखकों को तुष्टिप्रद उत्तर देना असम्भव सा है परन्तु मैं अपनी ओर से यहां प्रश्नकर्ताओं से यह नम्र निवेदन कर देना आवश्यक समझता हू कि इस समय आयुर्वेद एक पिछड़ा हुआ विज्ञान है। सघ शक्ति से ही इसे ऊपर उठाया जा सकता है। अभी इसको उन्नति का आरम्भिक काल है। इस अधारम्भ में ही यदि इस प्रकार की अड़चनें उपस्थित होने लग जाये तो इसका ऊचे स्तर पर आना अधिक कष्ट कर हो जायगा इस समय तो सम्पूर्ण आयुर्वेदज्ञो का पूर्ण सहयोग पत्र सचालको को मिलना चाहिए। और कर्तव्य परायणता के नाते मिलना चाहिए। अधिकार परायणता को मुख्यता देने का समय अभी दूर है सम्मिलित परिश्रम से उसे समीपतर लाकर ही इसका आश्रय लेना चाहिए।

इसमें सदेह नहीं कि लेखक महानुभावों को लेख लिखने में समय और परिश्रम पर्याप्त व्यय करना पडता है। इसके किंचित प्रत्युपकार में पत्र सचालको की ओर से यदि कोई ढील होती है तो दूसरी ओर आपके द्वारा दिये गये विद्यादान से जो वैद्य और रोगी लाभान्वित होते हैं उसका पुण्य भी आपको मिलता है। "क्वचिदर्थः क्वचिद्धर्मः" की युक्ति भूलने योग्य नहीं है "नार्थार्थं नापि कामार्थं अथ भूत दयांप्रति" के महत्व-पूर्ण उपदेश को विदेशीय चकाचौंध में भूल देना प्रशंसित मार्ग नहीं है।

इसी सम्बन्ध में पत्र सचालको से भी मै नम्र निवेदन कर देना चाहता हू लेखक महानुभावों की सतुष्टि मे ही पत्र सर्वप्रियत्व को प्राप्त होते हैं। यह सर्वप्रियता ही पत्र का जीवन होती है एवं पत्रकार की सफलता

इसी पर निर्भर है। विशिष्ट लेखकों के सम्मानार्थ उचित पारिश्रमिक सहित पत्र तथा साधारण लेखकों को पत्र अवश्य देना चाहिए। प्रत्येक लेखक के पास मासिक पत्र पहुँचने से अनेक पाठक उसका पाठ करते हैं इससे पत्र का ही प्रचार होता है। अनेक पाठकों में से ग्राहक भी कई बन जाते हैं एवं पत्र के साथ संलग्न औषधि सूची के भी द्वारा औषधियों के भी कई ग्राहक बन जाते हैं। अतः इस प्रचार युग में इस विधि को अपनाना किसी भी दृष्टि से घाटे का सौदा नहीं हैं। लेखकों की सतुष्टि और प्रचार का प्रचार "एक क्रिया द्वयर्थ करी प्रसिद्धा" की उक्ति चरितार्थ होती है।

मूल्यवान वस्तु मूल्य से ही क्रीत होती है। उच्चकोटि के लेखकों से लेख प्राप्त करने के लिये पत्रकारों द्वारा लेखकों को पुष्कल धनराशि देने की पद्धति प्रचलित है। आयुर्वेद के पत्रकार भी यदि इस मार्ग का अवलम्बन करें तो आयुर्वेद के साहित्य में तुरत वृद्धि की सम्भावना है।

मेरी कठिनता और विलम्ब का कारण

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक का कार्य भार तो स्वीकार कर लिया परन्तु समय की क्लिष्टता दूर करने का कोई साधन प्राप्त न कर सका। तदापि थोड़ा थोड़ा समय ही इस कार्य के लिये देना पड़ा। दूसरी कठिनता और विलम्ब का प्रधान कारण लेखक महानुभावों की समयाल्पता एवं देशव्यापी चुनावों में सलग्नता है। इस चुनावों के कारण २ मास का समय लेखकों को अधिक देना पड़ा समय के इस व्यतिरेक के कारण ही विशेषांक इतने विलम्ब से प्रकाशित हो रहा है।

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक

इस अङ्क के प्रकाशन का मुख्य उद्देश्य पाठक ऊपर पढ़ चुके हैं। ऊर्ध्वजत्रुज रोगों पर यह एक मात्र पहला उद्योग है। आयुर्वेदिक पद्धति शतशः रोगियों की चिकित्सा करने वाले सिद्ध कायिक चिकित्सा कभी इस दिशा में अधिक प्रगति शील नहीं वा परमुखापेक्षी हैं। साधारण वैद्य वा जिनके पास विरले ही रोगी आते हैं वह तो ऊर्ध्वजत्रुज नैतिक रोगों में एकाध औषधि से ही काम लेते हैं। ऐसी दशा में इस भाग की उन्नति में पर्याप्त उपेक्षा से काम लिया जा रहा है। इसके विपरीत ऐलोपैथी में नाक, कान, गला, नेत्र, मुख, जिह्वा और दन्त रोगों को निवारण करने के लिए बहुत बड़ा विशाल प्रबन्ध है। ऊर्ध्वाङ्ग के प्रत्येक अवयव के पृथक् पृथक् रोगों पर पृथक् २ पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं।

विचार यह था कि इस विशेषांक द्वारा वैद्य समाज को ठोस साहित्य भेंट किया जाए, जिससे आयुर्वेदीय पद्धति द्वारा ऊर्ध्वाङ्ग के रोगों की चिकित्सा विधि प्रचलित होती। इस तथ्य को मानने में मुझे संकोचन नहीं कि सप्रयत्न इच्छा रहते हुए भी वह साहित्य पाठकों की सेवा में उपस्थित नहीं हो सका जिसकी रूप रेखा संकल्प के रूप में थी।

इसका प्रधान कारण इस भाग के प्रति आरंभ से ही अपनाई गयी वैद्यों द्वारा उपेक्षा है। भिन्न भिन्न विषयों पर विशेषांकों का प्रचलन चिरकाल से चालू है। उन विषयों से चिकित्सक समुदाय तथा लेखक महोदय चिर परिचित हैं। इसलिए शिशुरोगांक, चिकित्सा अनुभवांक, अनुभूत योगांक प्रभृति विषय सीमित नहीं परन्तु ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक के लेख्य विषय एक दम नूतन और अनभ्यस्त होने के कारण लेखकों को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ा। सिद्ध हस्त लेखकों ने इस ओर की महती आवश्यकता को ध्यान में रखने की कृपा नहीं की। कई प्रकाण्ड लेखकों तथा आयुर्वेदीय पत्र पत्रिकाओं के सम्पादकों और विशेषांकों के प्रधान सम्पादकों ने अनेक पत्रों का उत्तर ही नहीं दिया। अगर किसी ने उत्तर देने की कृपा भी की तो समयाभाव के हेतु की दीवार के पीछे ही रहे।

प्रख्यातनामा लेखकों और सम्पादक महानुभावों के सम्बन्ध में यह मानना तो सर्वथा भूल होगी कि वे लिख नहीं सकते किंतु इस व्यवहार का कारण समझने

में अभी तक असमर्थ रहा हूं। स्थूल बुद्धि से यदि इसका कारण सरकारी मोहर लगे हुए कुछ कागज के टुकड़े हैं तो इससे अधिक चिंतनीय दशा नहीं हो सकती। कारण कि जो सम्पादक प्रतिवर्ष अपने विशेषांकों के लिए लेखकों से लेख की याचना करते हैं वह इस परिपाटी को स्वयं नष्ट करने का उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं।

पत्र सम्पादकों का समुदाय एक कुल माना जाता है और कुल परम्परा की शैली में उनका सहयोग अनिवार्य वस्तु होता है। यदि पत्र सम्पादक ही विशेषांकों के लिए लेखनी न उठायें तो अन्य लेखक स्वतः ही निर्दोष हो जाते हैं।

"नत्वहं कामयेराज्य न स्वर्गं न पुनर्भवम
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'
यही स्वर्णोपदेश कल्याण कर है।

श्रद्धाँजली

भगवान का कोटिश धन्यवाद है कि उसने समवेदना, सहानुभूति, प्रार्थना और समय की आवश्कता को अनुभव करने वाले सज्जन भी संसार में भेजे हुये हैं। ऐसे सज्जन और पर पीडा से प्लावित होने वाले महानुभाव लेखकों के प्रगाढ़ परिश्रम से लिखे गये तुलनात्मक पूर्ण विवेचना युक्त लेख इस अङ्क में दिये जा रहे हैं। जिनके द्वारा निस्सन्देह ऊर्ध्वजत्रुज रोग चिकित्सा की त्रुटि बहुत अंशों तक पूर्ण हुई है। ऊर्ध्वांग के प्रायः सभी रोगों पर अनेक विध विचार और मनन हुआ है, तुलनात्मक विवेचन शैली और चित्रादि के कारण विवेच्य विषय को पाठक हस्तामलकवत् अनुभव करेंगे। समयाभाव रहते हुये भी श्रद्धेय लेखकों ने ऋषि हृदय प्लावित होकर उपादेय लेख भेजकर उपकार का कार्य किया है। एतदर्थ मैं इस अङ्क के माननीय लेखकों को हार्दिक धन्यवाद अर्पण करता हूं।

मेरे जिन माननीय मित्रों और प्रिय शिष्यों ने मेरे निवेदन पर एकाधिक लेख लिखने का कष्ट किया है उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

उपसंहार

संक्षिप्त में सिंहावलोकन के पश्चात् अन्तिम निर्णय का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य मैं अपने माननीय और विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूं। परन्तु इस झांकी में मैं अपने आपको उस चिकित्सक या उस नेता की अवाञ्छनीय दशा में पाता हूं जिसके हृदय में अपने रोगी को कड़वी औषधि देने के अतिरिक्त कोई उपाय न सूझता हो वा इच्छा न रहते भी जिस नेता को जनता के प्रति अप्रिय और झुंझलाहट देने वाली वक्तृता करने पर विवश होना पड़े।

सम्भव है मेरे प्रवचनों में कुछ खरस्पर्श की मात्रा का अनुभव हो वस्तुतः स्थिति यह है कि इस कटुसत्य को मूर्त्त रूप में प्रकट करने के अतिरिक्त वैद्य समाज के उद्बोधन का और कोई मार्ग नहीं। आयुर्वेद की वर्तमान दशा उसके प्रति शासकों का व्यवहार एवं वैद्यों की अपनी प्रवृत्ति को जब तक नग्न रूप से उपस्थित न किया जाए सुधार की आशा नहीं। यथा स्थान मैंने अपनी त्रुटियों को व्यक्त करने और वैद्य बन्धुओं से करवट बदलने के लिये जिन शब्दों पर आश्रित वाक्यों का प्रयोग किया है, उनमें अपनी ओर से पूर्ण सतर्क रहने का यत्न किया है। इस पर भी यदि कटुत्व की गन्ध भासित हो तो उसे कटुसत्य के रूप में सुधार की इच्छा से, मानना मेरे प्रति न्याय धारणा होगी। मैंने किसी पर कोई कटाक्ष नहीं किया। वस्तुत स्थिति बन्धुओं के समक्ष रखने का यत्न अवश्य किया है। मैं पुनः इस अपनी दृढ धारणा को दोहराता हूं कि यदि वैद्य समाज ने समय की माँग के अनुसार परिवर्तन न किया तो आयुर्वेद को धराशायी बनाने वालों के प्रयत्न वैद्यों के अस्तित्व को मिटा देंगे। आयुर्वेद का आमूल चूल परिवर्तन चाहने वाली अपनी सरकार और उसके परामर्शदाता अपने गुप्त षड्यन्त्रों में अनन्यतोभावेन संलग्न हैं।

ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क

यह अङ्क कैसा हुआ है ? इसके सम्बन्ध में मैं इतना ही निवेदन उचित समझता हूं कि—

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"

इस अङ्क को उच्च कोटि का बनाने के लिए वैद्य समाज ने जो कुछ मुझे दिया है उसे भली प्रकार सुसज्जित और बोधगम्य एवं सुव्यवस्थित करके आपके करकमलों में अर्पण कर रहा हूँ। इस सम्बन्ध में अपनी ओर से जो भेंट मुझे आप तक पहुंचानी थी वह साथ में सुसज्जित है। मैं समझता हूं कि इस दिशा में यह प्रथम प्रयास होने के नाते उन्नति की ओर एक पग है एवं सग्रहणीय और उपादेय साहित्य आपकी भेंट किया जा रहा है।

वैद्य भास्कर श्री वैद्य बांकेलाल जी गुप्त

सम्पादक प्राणाचार्य

आप लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक है। आपके सम्पादन-कला चातुर्य को मासिक पत्र धन्वन्तरि के वैभव से आंका जा सकता है।

इस बार अनेक असुविधाओं और कठिनाइयों के रहते हुए भी जिस धैर्य और कार्य कुशलता का परिचय आपने दिया है वह आपके स्वभाव और अनुभव के अनुकूल ही है। इस बार विशेषांक के प्रकाशन में आशातीत विलम्ब हुआ है। विलम्ब होते हुए भी अङ्क को उपादेय बनाने की आपकी दृढ़ धारणा प्रशंसा के योग्य है। इसी धैर्य के कारण ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक सामयिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला प्रस्तुत हुआ है।

इस अंक के सम्पादनार्थ जो-जो सुविधायें और पत्र व्यवहार एवं लेखकों को प्रोत्साहन आदि के सम्बन्ध में जो सहायतायें मुझे आपकी ओर से प्राप्त हुई हैं उनके लिए आप धन्यवादार्ह हैं।

प्राप्त लेखों और सम्बन्धित सामिग्री को यथा भाग विभाजित करके मैंने सेवा में भेज दिया। इससे आगे अङ्क को सुन्दर और चित्ताकर्षक बनाने के लिए आपने पर्याप्त परिश्रम किया है।

अपने प्रांत में आयुर्वेद के प्रचार कार्य में अपने जीवन के उच्चतम भाग को व्यय करने वाले इस महारथी की सेवायें अतुलनीय और प्रशंसनीय हैं। प्राणाचार्य द्वारा जो प्रोत्साहन आयुर्वेद को मिल रहा है और भविष्य में प्राप्त होगा उसका श्रेय भी आपको ही है। कर्मठ होने के नाते भविष्य में भी सफलतायें आपको अभिवादन करती रहें। अन्त में हार्दिक धन्यवाद के साथ लेखनी को विश्राम देता हूं।

निवेदक—
आचार्य हरदयाल वैद्य
अमृतसर

यूनानी मत से

शिर पीड़ा (शिरोभिघात) का वर्णन

लेखक—कवि विनोद वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य आविष्कर्ता अमृतधारा, देहरादून

स्वनामधन्य माननीय प० ठाकुरदत्त जी शर्मा को भारत ही नहीं भारतेतर विश्व भी भली प्रकार जानता है। आपके द्वारा रचित आयुर्वेदिक तथा यूनानी साहित्य को पढकर चिकित्सा करने वालों की और देशीय चिकित्सा पद्धति की ओर आकर्षित होने वालों की सख्या कम नहीं हैं। आप अच्छे चिकित्सक अनुभवी लेखक और दानवीर हैं।

समयाभाव के रहते हुए भी आपने मेरे निवेदन पर ऊर्ध्वजत्रुजरोगाक के लिए यूनानी मत प्रदर्शित शिरो रोगों पर चिकित्सा सहित उत्तम रचना पाठकों को भेंट की है। आपका लेख आयुर्वेदीय चिकित्सकों के लिए अतिशय उपादेय है। कारण कि इसमें यूनान के चिकित्सकों की अन्वेषण का साङ्गोपाग पूर्ण वर्णन हुआ है। वैद्य भाइयों की ज्ञान वृद्धि के लिए किये गये इस विशाल कष्ट के लिए हम पण्डित जी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

आयुर्वेदिक मत से शिरोभिघात ११ प्रकार का है, परन्तु यूनानी हुकमा ने उसे १६ प्रकार का लिखा है और हर एक में दोष सम्मिलित करें तो सख्या और भी बढ जाती है। १६ भेद निम्न हैं—

(१) साज़ज—आन्तरिक दोषों के बिना होने वाली शिर पीढा।

(२) माद्दी—दोषज शिर पीढा

(३) रीही—वायु के बन्द होने से होने वाली शिर पीढा (वातज) यूनानी वात को दोष नहीं मानते।

(४) शकीक़ा व ऐसाबा—आधा सीसी (आधे सिर या भृकुटियों के एक ओर का दर्द)

(५) दूदी—शिर में कृमि उत्पन्न होजाने से शिरोवेदना।

(६) तज़ाजी—चक्कर पहुँचने से

(७) जरबी सकती—शिर में चोट लगने या टकराने से

(८) जोफे दिमागी—मस्तिष्क की दुर्बलता से

(९) कुव्वते हिस्से दिमागी—मस्तिष्क के संस्पर्श की अधिकता से

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
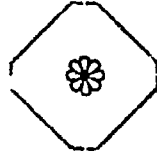
शिरो विज्ञानीय स्तम्भ

इसमें मस्तिष्क एवं सिर के रोगों का विशिष्ट
वर्णन एवं चिकित्सा दी है।

(१)

(१०) शिरकती (शिरकी)—किसी अन्य अवयव के रोगी होने से

(११) शमी—तेज वस्तु सूंघने से

(१२) बैजी—शिर को घेर लेने वाली पीड़ा

(१३) बोहरानी—बहरानों (रोग और प्रकृति के संघर्ष) के कारण

(१४) अक्ब नोमी—सोकर उठने के पश्चात् की पीड़ा

(१५) वरमी—सूजन या शोथ के कारण

(१६) शराबी—मदिरा पान से

(१७) जमायी—बहु मैथुन से

(१८) युबसी—मस्तिष्क के खाली या रुक्ष होने से

(१९) आरज़ी—ज्वरादि उपद्रव के कारण

यूनानी हुकमा 'माजज़' के दो भेद करते हैं। (१) जो बाहर की सर्दी गर्मी धूप इत्यादि के लगने से हो जाती है और (२) जो ठण्डे गरम पदार्थों के खाने से तत्काल हो जाती है, कोई दोष बनने के पूर्व ही। इस भेद को ध्यान में रख कर यदि हम विचारें तो शिर पीड़ा के जरबी, मकती, शमी और शराबी नामक प्रभेद 'माज़ज़' में समा जाते हैं। अब आप इनका थोड़ा थोड़ा वर्णन पढ़िये। इसमें उपर्युक्त क्रम कहीं कहीं आगे पीछे हो गया है—

१–साजज

साजज गरम खारजी—सूर्य, अग्नि आदि की गर्मी के लग जाने से हो।

साजज गरम दाखली—मेथी आदि गरम वस्तुओं और मदिरा, लहसन आदि मस्तिष्क को हानि पहुँचाने वाले पदार्थों के सेवन से हो।

साजज सर्द खारजी—ठण्डी वायु का लगना, बर्फ का संस्पर्श, सम्पर्क अथवा शीतल जल में डुबकी लगाने से हो।

साज़ज सर्द दाखली—अधिक शीतल जल अथवा अन्य शीतकारी पदार्थों के सेवन से हो।

२–माद्दी

दमवी	सफ़रावी	बलगमी	रीही	सौदावी
(रक्तज)	(पित्तज)	(कफज)	(वातज)	(जलदोषज)

३–ज़ौफ़ दिमागी

(मस्तिष्क की निर्बलता)

इसमें मस्तिष्क की क्रियायें अर्थात् चिंतन, विचार, स्मृति आदि और सांकल्पिक गतियां यथा चलना फिरना आदि (क्रियायें) ऐसे कार्य जिनको मनुष्य अपने संकल्प अथवा इच्छा से गतिमान करता है उनमें विकार उत्पन्न होना।

४–कुव्वते हिस्दिमागी

मस्तिष्क के संस्पर्शों का अति उत्तेजित हो जाना। जिससे मनुष्य थोड़ी बात को बहुत महसूस कर रहा है। मानसिक कार्यों के ठीक और सवेदन के तीव्र हो जाने पर छोटे छोटे कारण और तनिक सी बात का अधिक प्रभाव मानना।

५–युबसी

यह मस्तिष्क के खाली हो जाने से होता है। इसके लक्षण सशोधन के बाद पीड़ा का होना है यथा—नज़ला जुकाम, नकसीर, वमन, विरेचन, मूत्राधिक्य, वीर्यपात, रज स्राव इत्यादि। अथवा अन्य स्थान से रक्त का किसी कारण वश निकल जाना।

६–आरजी

जो किसी रोग में तापादि के कारण अनायास हो जाय, जैसे ज्वर के समय शिर पीड़ा आरम्भ हो जाय। ज्वर उतरने पर यह भी दूर हो जाती है।

७–जमायी

वह पीड़ा जो मैथुन के पश्चात प्रतीत हो। इसके ३ भेद हैं—(१) जो अधिक वीर्यपात से हो। (२) मैथुन क्रिया से ऐसी भाप उठे जो शिर पीड़ा को उत्पन्न करदे।

(३) मैथुन क्रिया मे पुट्ठों का विकृत होकर पीड़ा का कारण बनना।

८–शराबी

मुख्य लक्षण यह कि मदिरा पीने के पश्चात यह अनायास हो जाय। इसके २ प्रकार है—(१) जब मदिरा शेष कफ मे मिल जाय, (२) जब मदिरा शेष पित्त से मिल जाय।

९ जरबी, मकती

चोट आदि का पहले लगना इसका कारण है और इस शिरोभिघात का शिर में हानिप्रद प्रभाव होता है यह ६ प्रकार का होता है·—

१—केवल शोक या कष्ट के ही कारण हो।

२—ऐसी चोट का लगना जो शिर की ऊपर की हड्डी के साथ भीतर की ओर लगी हो।

३—जबकि वास्तविक मस्तिष्क या तत्सम्बन्धी परदे (कोष) में शोथ हो जाय।

४—जब किसी पर्दे में कोई फटाव हो जाय।

५—जब कोई हड्डी टूट जाय और उसी कारण से पर्दे खींचि जाय।

६—जब मस्तिष्क में कोई गति उत्पन्न हो जाय।

१०–बैजा

यह ऐसी पीड़ा है जो शिर के ऊपर वाले भाग में घेरा डाले हुए होती है। इसके ४ मुख्य लक्षण है—

१—अल्पकारण से शिर पीड़ा होना जैसे हिलने-डुलने, पान करने और गरम पदार्थों के खाने अथवा कठोर शब्द सुनने से।

२—रोगी का प्रकाश से घृणा करना।

३—यदि दोष आन्तरिक संस्थानों में हो तो नेत्रों के नीचे पीड़ा और खिचावट का होना।

४—शिर में पीड़ा के साथ-साथ खिचावट भी हो और सुरत की रङ्गत बदल जाय। यदि हाथ शिर पर रखा जाय तो एक प्रकार का कष्ट प्रतीत हो।

५—पीड़ा के समय शिर में मूर्छा सी प्रतीत हो।

११–बोहरानी

इसका बड़ा लक्षण यह है कि यह बुहरान के दिनो में मुख्यतया गर्म रोगो मे उत्पन्न हो। ऐसी दशा में कभी–कभी मूत्र श्वेत रग का भी होता है।

नोट—जिस दिन रोग और प्रकृति में सघर्ष होता है उसे भी बोहरान का दिन कहते है। यूनानी मत से ज्वर आदि में बोहरान के दिन भी नियत हैं।

१२-शमी

यह घ्राण शक्ति के बिगड़ जाने से होती है। यथा–मल मूत्र की दुर्गन्ध, चमड़ा धोने के स्थान की दुर्गन्ध, गरम पदार्थों के सूघने की गन्ध, कभी-कभी कस्तूरी इत्यादि तीव्र गन्ध वाले पदार्थों के सूघने से भी हो जाती है। भांग, चरस आदि की गन्ध भी कारण होती है।

१३–वरमी

(वरम (सूजन) या शोथ से उत्पन्न)

१४-दूदी

मस्तक मे कृमि पैदा हो जाते हैं। हर समय खाज और चुभने की सी पीड़ा रहती है। नाक से दुर्गन्ध, रक्त से पानी बहना और कभी–कभी कृमि निकलना।

१५–तजाजी

बहुत चक्कर आने से अर्थात् यह मस्तिष्क तन्तु के हिलने से उत्पन्न होती है।

१६-अक़ब नोमी

यह शिर पीड़ा निद्रा के पश्चात होती है यही इसका प्रधान लक्षण है।

१७–शक़ीक़ा

यह शिर पीड़ा जो शिर के किसी एक भाग में

अनायास हो जाय। 'शक़ीका' का ठीक अर्थ है भी यही।

१८ रीही

यह वातज पीड़ा है। रीह (वात) की यूनानी हुकमा दोषों में गणना नहीं करते हैं। इसी कारण दोषों के प्रकरण मे अर्थात् मादी में इसका उल्लेख नहीं किया गया।

इसका प्रधान लक्षण यह है कि यह पीड़ा कभी कहीं, कभी कहीं फिरती रहने वाली होती है। शिर में बोझ के बिना भी कभी कहीं खिचावट होती है और कानों में भन-भन शब्द होता है।

१९ शिरकी (शिरकती)

अर्थात् वह शिर पीड़ा जो अन्य अङ्ग के कारण उत्पन्न हो। वस्तुत. मस्तिष्क में तो पीड़ा का सीधा कारण न हो, पर अन्य अंग के रोग ग्रस्त हो जाने से मस्तिष्क के प्रधान अवयवों में ठेस पहुंचने से पीड़ा हो जाती है और यह उन अगो के सम्बन्ध से हो सकती है जिसका सम्बन्ध मस्तिष्क से अधिक रहता है यथा-आमाशय, गर्भाशय, वृक्क, यकृत, प्लीहा आदि।

तब यदि शिर की पीड़ा अनायास हो जाय तो उसके ये लक्षण हैं—

१—जब आमाशय में पित्त का सञ्चय हो।

२—जब श्लेष्मा सञ्चित हो।

३—जब सौदा की प्रधानता हो।

४—जब अधो वायु अधिकता से भरती हो।

५—आमाशय की निर्बलता। उसके लक्षण नम्बर वार निम्न प्रकार हैं—

१—आंखें पीली पड़ जाना, मुख का स्वाद कड़वा, आमाशय में पेच सी होना, प्यास की अधिकता, पित्तज वमन के पश्चात् सुख अनुभव करना।

२—आमाशय की गड़बड़, कभी-कभी पहले अपच होता है, मुख लार की अधिकता और कफज वमन से शान्ति मिलती है।

३—तृषाधिक्य, आमाशय में जलन। सौदावी वमन से सुख का अनुभव।

४—आमाशय में पहले या साथ-साथ पीड़ा होना, आमाशय की पीड़ा के पश्चात् शिर पीड़ा में स्थिरिता, पीड़ा का परिभ्रमण करना, शिर के अग्रिम भाग में ही यह पीड़ा होती है, बल्कि अन्य पीड़ायें भी जो आमाशय के दोष से हों सदैव शिर के आरम्भिक भाग में होती हुई दीखेंगी।

अन्य प्रधान लक्षण यह है कि खाली पेट और सोकर उठने के पश्चात् शिर में पीड़ा होने लगे और अन्य अंगों के सम्बन्ध से जो पीड़ा होती है वे न्यूनाधिक रूप में ये हैं—गर्भाशय, वृक्क, पिंडलियां, पैर, हाथ, प्लीहा, यकृत, इत्यादि।

सब के लक्षण

इसमें सबसे प्रधान लक्षण यह है कि पहले पहल उस अंग के जिसके कारण से पीड़ा उत्पन्न हुई है कोई रोग पाया जाय अथवा उसमें किसी न किसी प्रकार विकार हो। यही सबसे बड़ा चिह्न है। फिर भी हर एक के वास्ते भी कुछ थोड़ी-थोड़ी पहचान और सुन लीजिए—

१—जब मूल कारण गर्भाशय में हो तो शिर पीड़ा शिर के बीचों बीच अगली ओर झुकी हुई प्रतीत होगी।

२—यदि मूल कारण वृक्कों में हो तो पीड़ा शिर के अन्तिम भाग में होगी।

३—यदि मूल कारण प्लीहा में हो तो शिर के बायीं ओर होगी।

४—यदि मूल कारण यकृत में हो तो शिर के दायीं ओर पीड़ा होगी।

५—जब मूल कारण फुफ्फुस के निचले परदे में हो तो शिर के मध्य में पीड़ा होगी।

६—जब मूल कारण आमाशय के ऊपर के परदे में हो तो माथे के सन्निकट स्थान में पीड़ा होगी।

७—जब कारण रीढ़ में हो तो उसके कारण पश्चात् भाग में होगी।

रीढ़ और वृक्क में भेद ये करते हैं कि वृक्को का स्थान

पश्चात् भाग में झुकी हुई मध्य की ओर और पीठ की अवस्था में शिर के अन्तिम भाग की ओर झुकी हुई होती है और यदि कारण समस्त पिंडलियों या हाथों में हो तो रोगी ऐसा अनुभव करता है कि मानों इन अंगों की ओर से चींटी के समान कोई वस्तु शिर की ओर रेंगती हुई चली आरही है।

सब लक्षणों का वर्णन कर दिया है। अब आगे इसकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

यूनानी मत से शिरोभिघात की चिकित्सा

'साजज गरम खारजी'

(बाह्य सादा गरम पीडा की चिकित्सा)

इसकी चिकित्सा ठण्डी करें यथा—शीतल वायु पहुंचाई जाय—

१—चन्दन	कपूर
बनफ्सा	सेव
गुलाब	बेद मुश्क
धनियां	

—इनकी सुगन्धियो को सुघावें और रहने के घर में भी ऐसी ही वस्तुयें रखें।

२—रोगन गुल	रोगन बनफ्सा
रोगन नीलोफर	रोगन कद्दू

—को शिर पर मालिश करें।

आहार और पथ्य—इस रोग में निर्विवाद रूप से शीतल और स्निग्ध आहार दिया जाता है। लाभ यद्यपि जल्दी ही हो जाता है, तथापि शिर वेदना यदि देर तक रहे तो आहार को तदनुसार ही सेवन करें यथा—मूंग, कद्दू, पालक, साठी के चावल, जौ, गेहूँ, बादाम का दूध, धनियां की चटनी इत्यादि।

साजज गरम दाखिली

(अन्तरीय सादा गरम पीडा की चिकित्सा)

३—इसकी चिकित्सा भी पूर्ववत् है। खाने की औषधि के अतिरिक्त 'क़ुर्स अज्ज़रूत' का लगाना भी लाभ दायक है।

४—शर्बत बनफ्सा	शर्बत उन्नाब

—आदि में इमली का जल डालकर पीना बड़ा लाभदायक है।

५—कद्दू के बीजों का मगज	धनिया सूखा
तबाशीर (वंशलोचन)	काहू के बीज
तुरंजबीन	खुर्फा

—सबको बराबर बराबर तौल में लेकर, कूट पीसकर टिकिया बनालें और शर्बत बनफ्सा इत्यादि के साथ ४ माशे से १ तोले तक खावें।

मालिश—शिर पर मालिश करने के स्थान पर कद्दू आदि से पैरों पर भी मालिश की जाती है जिससे गर्मी शिर के नीचे उतर आवे। इसके करने से भी लाभ होता है।

पथ्य—वही है जो 'साजज गरम खारजी' नामक शिर वेदना में वर्णित हो चुका है।

जौ आश—गरम रोगों में यूनानी हुकमा प्रायः 'जौ आश' का सेवन कराते हैं। पथ्य और आहार भी इसी का दिया जाता है। अतः इसका वर्णन कर देना आवश्यक है। गर्म रोगों में 'जौ आश' अत्यन्त लाभकारी है।

उत्तम प्रकार के जौ (जो कि मोटे हों, पकने में फूल जांय, दुर्गन्ध युक्त न हों और उनमें से किञ्चित् लाल से रंग का पानी निकले) लेकर, छिलके दूर करके मीठे जल में मन्द मन्द आंच पर पकावें और जो झाग या मैल ऊपर आवे उसे उतारते रहे। जब पक जांय तो उसका जल साफ करके काम में लावें। पकने के लिए पानी के परिमाण पर कुछ मतभेद है। कुछ लोगों की सम्मति में १० गुणा और दूसरों की सम्मति में १४ गुणा होना चाहिए। १४ गुणा ठीक है।

गरम शिर पीडा का लेप—(दाखिली हो चाहे खारिजी)

६—गुल गुलाब	सफेद चन्दन

प्रत्येक १-१ तोला

कपूर १ माशा

—सबको गुलाब के अर्क में रगड़ कर माथे पर मलें। शिर वेदना अधिक हो तो सिरके में रगड़ कर माथे पर मालिश करे।

७—काहू के बीज ३ माशा

सफेद चन्दन ३ माशा

कपूर ४ रत्ती

—घिसकर माथे पर लगावें।

गरम शिर वेदना की सूंघनी—

८—गिले अरमनी १ तोला

सफेद चन्दन १ तोला

कपूर २ माशा

—पीसकर सूंघनी (नस्वार) बनालें और थोड़ी सी सूंघलें।

शोया या पग प्रक्षालन—

९—बेरी के पत्ते गेहूं की भूसी

ख़ाकसी (खूबकला) ख़तमी

गुल नीलोफर प्रत्येक ४-४ तोला

हरा खीरा काटा हुआ अथवा खीरे का मगज़ १० तोला

—सबको ६ सेर जल में उबाल लें और गर्मागर्म एक बालटी में डालकर उसके मध्य में पांवों को रखें और घुटनों के नीचे-नीचे ऊपर से नीचे की ओर धोवें। जल ठण्डा होने लगे तो उसमें से पगों को निकाल कर भली प्रकार पोंछ डालें और ऊपर कोई वस्त्र लपेट लें। इसमें रक्त की गति नीचे की ओर होकर शिर की गर्मी को जल के द्वारा बाहर निकाल देगी और शिर वेदना दूर हो जायगी।

'खारिजी' सर्द शिर वेदना

(बाह्य शीतल शिर पीड़ा की चिकित्सा)

इसमें शिर को गरम करने का प्रयत्न होना चाहिए। किसी टकोर, भपारे या उष्ण मार्जन के द्वारा एवं गर्म तैलों की शिर पर मालिश करें यथा—

१०—चमेली और सोसिन के किञ्चिदुष्ण तैलों में वस्त्र भिगोकर शिर पर रखें।

११—दाना कंगनी या बाजरा, गेहूं के आटे की छानन (चोकर), नमक को किसी वस्त्र के टुकड़े में बांध कर तवे पर गर्म करके शिर पर टकोर दें।

'दाखिली' सर्द शिर वेदना

(अन्तरीय शीतल पीड़ा की चिकित्सा)

इसकी चिकित्सा भी उपर्युक्त क्रम के अनुसार ही है।

शीतल शिर पीड़ा

(दाखिली तथा ख़ारिजी) का लेप

१२—जुन्द बेदुस्तर कुचला

कबाब चीनी कूठ

प्रत्येक २-२ माशा

—सदा गुलाब अथवा सुदाब के जल के पीस कर लेप करें।

नस्वार (सूंघनी)

१३—सोंठ पीपल

गुर्द प्रत्येक सम भाग

—लेकर पीसकर सूंघते रहें।

द्रव

१४—सोंठ मिश्री

केशर सम भाग

—लेकर उसमें थोड़ा सा गौ का घृत डालकर भली प्रकार मिलालो। खूब मिल जाने पर जल में भी भली प्रकार मिलाकर नाक में दो तीन बूंद डालने से चैन पड़ जाता है।

दाखिली औषधि की आवश्यकता पड़े तो—

१५—बनफशा — लिसोढ़ियां
अलसी के बीज — अलसी के बीज
अञ्जीर — प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ बनाकर उसमें तरञ्जबीन मिलाकर मल छान कर दें।

'माद्दी' तथा रीही

(दोषज तथा वातज शिरोभिघात की चिकित्सा)

यूनानी परिभाषा में 'माद्दा' से तात्पर्य 'दोष' है। उनके यहां दोष चार प्रकार के होते हैं—रक्त, सौदा, कफ और पित्त। चिकित्सा करते समय इनके लक्षणों और प्रकृतियों से ठीक ठीक परिचित हो जाना आवश्यक है। 'रक्त' की प्रकृति उष्ण तर 'पित्त' की उष्ण शुष्क; 'कफ' की शीत तर, और 'वात' की शीत शुष्क होती है। वात को पृथक् सौदा नहीं मानते इस वास्ते रीही पृथक लिखी है।

रक्त दोषज (माद्दी खूनी)

(शिर पीड़ा की चिकित्सा)

१६—उन्नाब — नीलोफ़र
आलू बुखारा — लिसोढ़ियां
इमली — बनफ़सा
शाहतरा — प्रत्येक सम भाग

—सबका क्वाथ बनाकर तुरञ्जबीन के साथ मिलाकर सेवन करें। रक्तोत्तेजना को शांत करने वाले शर्बत यथा उन्नाब, नीलोफर, आलू बुखारा इत्यादि को पिलावें।

१७—काहू — खर्फा तथा कद्दू के जल में
रोगन गुल — प्रत्येक समभाग

—मिलाकर बारबार नाक में टपकावें।

पित्त दोषज (माद्दी सुफरावी)

१८—पीली हर्रे — काबली हर्रे
आलू बुखारा — उन्नाब
मुलहठी — इमली
लिसोढ़ियां — प्रत्येक समभाग

—इनकी यथोचित मात्रा लेकर उबाल लें। तुरञ्जबीन अथवा शीर खिश्त, 'अमलतास का गूदा भी उस उबाल में मिलालें।

विरेचन की आवश्यकता हो तो निम्न लिखित 'हब्बे बनफसा' का सेवन करें।

१९—बनफ़सा — ७ माशा
त्रिवी — ३ माशा
खुर्यसूस — १॥ मा०
पोस्त हलीला ज़र्द — १॥ मा०
महमूदा शुद्ध (सकमूनिया) — ६ रत्ती
अनीसूं — ६ रत्ती

—सबको कूट छानकर पानी से ख़मीर करें और जंगली बेर के बराबर गोलियां बनाले।

मात्रा—१ से ४ गोली तक शर्बत बनफ़सा के साथ।

कफ दोषज (माद्दी बलगमी)

(शिर पीड़ा की चिकित्सा)

२०—एलवा — निसोत
आकाश बेल — मस्तगी
सक़मूनिया — सेंधव नमक
प्रत्येक समभाग

—लेकर कूटकर शहद से गोलियां बेर के बराबर बनालें। गर्म जल से १ गोली नित्य प्रति सेवन करें। इससे कफ (बलगम) निकलकर शिर वेदना बहुत शीघ्र दूर होती है।

२-नस्य सूंघनी—

२१—आक (मदार) के दूध से चावलों को खूब खरल करो और शुष्क हो जाने पर पुनः उस दूध से भिगो कर खरल करो। इसी प्रकार ३ बार पुनः शुष्क करके पीस कर रखलें। इसकी थोड़ी सी सूंघनी नाक में लेने से छींकें बहुत आती हैं। शिर हल्का होकर कफज शिर पीड़ा, कर्ण पीड़ा, दन्त पीड़ा इत्यादि दूर होती है।

३-नस्य—

२२—कनेर पुष्प कंडियारी के पुष्प
काश्मीरी पटठा नक छिकनी

—सबको बराबर बराबर लेकर और पीसकर सुंघनी बनालें। जब आवश्यकता हो सूंघलें। इससे कफज शिर वेदना के अतिरिक्त कान, दांत, दाढ इत्यादि की पीडायें भी शान्त हो जाती हैं।

४-क़हर नासा—

२३—केशर सोंठ
पीपल गुड़

प्रत्येक ३-३ माशा

—सबको पानी में रगड़ कर बारीक करके रखले और आवश्यकता पर नाक के नथुनों से दो चार बूंद टपकावें।

सौदा दोषज (माद्दी सौदावी)

(शिर पीड़ा की चिकित्सा)

सौदावी शिरोभिघात में भी अन्य दोषोत्पन्न शिर पीडाओं की भांति सबसे पहले दोष को पचाना चाहिए। पचाने वाली औषधियें ये हैं—

२४—बाद रजबुया गावजबान
बिस्फाइज अस्तु खद्दूस
शाहतरा बिसोढियां
कासनी जड़ सौंफ
मुलहठी अजीरज़र्द
तुख्म ख़तमी आकाश बेल

प्रत्येक ४-४ माशे

—लेकर जल में पकावें और मल, छानकर मिश्री अथवा गुलकन्द मिलाकर पिला दिया करें।

२-विरेचन—

दोष के पचजाने पर विरेचन कराना चाहिए जिससे सौदा (दोष) निकल जाय। 'तिब्बे अकबर' नामक यूनानी ग्रन्थ में वात दोष के विरेचन के लिए नीचे लिखी गोलियों का उल्लेख है.—

२५—आकाश बेल बिस्फाइज
गारीकून उस्तखद्दूस
अयारज फ़ीकरा त्रिवी

प्रत्येक समभाग

—लेकर सौंफ के जल में खरल करके गोलियां बनालें।

मात्रा—१ माशा से २ माशा तक आवश्यकतानुसार।

३-प्रधान औषधी "हुब्बे अयारज"

इसके सेवन से मस्तिष्क हल्का होता है और शरीर वात तथा कफ के दोषों से शुद्ध हो जाता है, अर्द्धाङ्ग, मृगी जलन आमाशयादि की पीडायें, वृक्क तथा यकृत के रोग हस्तिपद आन्त्र पीडा इत्यादि रोग भी शान्त होते हैं। औषधी नीचे लिखे अनुसार हैं.—

२६—त्रिवी सफेद छिली हुई	९ माशा
सोंठ	३ माशा
गारीकून मुसफ़्फ़ा	६ माशा
इश्क पेचा शुद्ध	६ माशा
गुल गुलाब	६ माशा
पोस्त हलीला जर्द	३ माशा
हलीला काबुली	३ माशा
हलीला स्याह	३ माशा
तुख्म हन्जल	६ माशा
बर्गबाद रजबुआ	६ माशा
उस्त खद्दूस	६ माशा
रोग़न बादाम	१ तो०

विधि—सब हलीलों और त्रिवी को बारीक पीस कर बादाम रोगन में घोटकर शेष औषधियों का चूर्ण मिलालें और सौंफ के अर्क के साथ खरल करके चने के बराबर गोलियां बनालें।

मात्रा—दो माशे से ६ माशे तक गरम जल अथवा सोंफ इत्यादि के अर्क के साथ खिलावें।

अब जबकि सौदावी शिर वेदना में मल शुद्धि हो चुकी हो तो निम्न लिखित चिकित्सा करें.—

२७—याबूना अक्लीलुलमलिक (नाखूना)

मर्ज़िञ्जोश　　　　प्रत्येक समभाग

—लेकर पीसलें और चमेली के तैल में घोटकर लेप करें, कस्तूरी, नर्गिस इत्यादि सुगन्धियों को भी सूंघा करें, गरम और तर तैलों की मालिश शिर पर करें जैसे चमेली का तैल, बाबूना का तेल, मर्ज़िञ्जोस का तैल।

रीही (वायु प्रधान)

(शिर दर्द की चिकित्सा)

१—क़हर नासा द्रव —

२८—एलुवा	नकछिकनी
केशर	सफेद मिर्च
कस्तूरी	मर्ज़िञ्जोस

प्रत्येक समभाग

—लेकर पीसले और थोड़े से पानी में घिसकर नथुनों से टपका दिया करें।

२—नस्य (सूंघनी)—

२९—काली मिर्च	जुन्दबेदस्तर

प्रत्येक समभाग

—लेकर पीस रखें और जब आवश्यकता हो इसकी सूंघनी सूघें।

मशारकी (शिर की)

(शिर वेदना की चिकित्सा)

यह वह शिर पीड़ा है जो शरीर के अन्य अंग के रोग ग्रस्त हो जाने से उत्पन्न हो जाती है। यह कई प्रकार की होती है जैसा कि इसके लक्षणों में पूर्व वर्णन हो चुका है। इनकी चिकित्सा पहले मूल रोग को दूर करना है इसलिये इस विषय को यहीं छोड़ कर हम आगे बढ़ते हैं।

मस्तिष्क-दौर्बल्य

(शिर पीड़ा की चिकित्सा)

यह शिर पीर पीड़ा आजकल सर्व साधारण में पायी जाती है। अल्पायु में विवाह, बाल्यावस्था की कुटेव, अश्लील विचार कुसङ्गति, मानसिक श्रम की अधिकता और इस पर असात्म्य आहार करना, कुर्सी पर दस दस घंटे बैठे रहना, मानसिक कार्य कर लेने पर केवल ४०) मासिक की प्राप्ति, आवश्यक आहार भी नियम में न होना, व्यायाम न करना अति मैथुन इत्यादि से मस्तिष्क कभी भी ठीक दशा में नहीं रह सकता। बाबू जी अपने कार्यालय से आये आते ही शिर वेदना ने धर दबाया मस्तिष्क थक चुका है। इसके दूर करने की औषधियाँ तो अनेक हैं किन्तु यहां केवल थोड़ी सी वर्णन करते हैं जो विशेष प्रभावी भी सिद्ध हुई हैं।

१-अत्रीफल हाफ़िज़ुल उम्र—

३०—पोस्त हर्ड़ पीली	पोस्त हर्ड़ काबुली
पोस्त आमला	पोस्त बहेटा
हर्ड़ काली	धनियां

प्रत्येक १४-१४ माशे

छोटी इलायची के दाने	१ तोला
मस्तगी रूमी	ऊद हिन्दी (अगर)
सफेद चन्दन का चूरा	पोस्त तुरञ्ज
तबाशीर	प्रत्येक १॥-१॥ तोला
गावजबान	गुल गावजबान
गुलाब के फूल (डोडी रहित)	अस्तुखुदद्दूस
बिस्फाइज	मिश्री सफेद
सनाय मकी	अफ्तीमून (आकाश बेल)

प्रत्येक ३–३ तोला

बादाम का तैल	१ तोला
कद्दू का तैल	१ तोला

—प्रत्येक को पृथक् पृथक् कूट छानकर और फिर तौल कर मिलावें किंतु तीनों हरड़ों को मिलाने के पूर्व तैलों में मसल लें। फिर नीचे लिखी औषधियों को दो सेर जल में डाल कर चौथाई रहने तक पकावें और मल छान कर गुलाब का अर्क आधा सेर शुद्ध शहद आधा सेर और मिश्री एक सेर मिलाकर चाशनी को पकावें और ऊपर की सारी औषधिया डाल दे और २-३ सप्ताह तक किसी अमृतबान में डालकर जौ (अन्न) की ढेरी में गाढ़ दें।

मात्रा—दूध के साथ प्रतिदिन १ तोला है। इसमें यदि कुश्ता मिर्जान मूंगा भस्म २ तोला, कुश्ता कलई (वंग-भस्म) २ तोला भी मिलालें तो विशेष गुणकारी है। क्वाथ की औषधियां ये हैं:—

३१—गुल बनफ्शा	गुल नीलोफर
शाहतरा	तुख्म मकोय
आमला	मुनक्का

प्रत्येक १॥—१॥ तोला

उन्नाव	४० दाने
आलु बुखारे	४० दाने
तुख्म कासनी	३ तोला
धनियां	३ तोला

यह महौषधी हृदय तथा मस्तिष्क को बल प्रदान करती है और मस्तिष्क को कम जोर कर देने वाली शिर पीड़ा को शान्त करती है।

२ जवाहर मोहरा—

३२—ज़हर मोहरा खताई	अक़ीक़ सुर्ख
संगे यशब सब्ज	मूंगा

प्रत्येक २-२ तोला

असली निर्बिसी	हरियाली नारियल
तबासीर	प्रत्येक १-१ तोला

—प्रथम जहर मोहरा को केवड़े के अर्क में दिन भर खरल करें और अक़ीक़, संगे यशब सब्ज और मूंगा को पृथक् गुलाब के अर्क में एक दिन खरल करें। फिर सबको एकत्र करलें और तबासीर मिलाकर एक पहर तक केवड़े के अर्क में खरल करके एक गोला बनालें और साफ चौड़े पत्थर अथवा शीशे पर रख कर चौड़ा करलें तथा सोने या चांदी के वर्क लगा-कर सुखाकर रखलें।

मात्रा—आधा माशा से १ माशा तक केवड़े के अर्क अथवा दूध के साथ सेवन करें। यह हृदय तथा मस्तिष्क के लिये बलवर्धक है तथा उन्माद और भय का नाश करता है। इसमें यदि जहर मोहरा, अक़ीक़, संगे यशब और मूंगा की उत्तम भस्में डाली जांय तो फिर क्या ही कहने, अत्यन्त गुण-कारी औषधि बन जाती है।

'युवसी' शिर पीड़ा की चिकित्सा

युवसी शिर पीड़ा वह है जिस में शिर खाली प्रतीत होता है। इसको ख़िफ़्फ़त का शिर दर्द भी कहा जाता है। ख़िफ़्फ़त का अर्थ भी हलकापन है। यह पीड़ा बहुधा स्त्रियों को होती है। इस लिए कभी रजोदर्शन और कभी गर्भ-स्थिति के पश्चात् जब रक्त अधिक निकल जाता है तो अधिक शोधन के कारण इस प्रकार की शिर पीड़ा होने लगती है। वमन, रेचन, नज़ला, ज़ुकाम, मैथुन इत्यादि की अतिशयता के बाद पुरुषों को भी यह शिर पीड़ा होने लगती है।

हरीरा (दोधी)

३३—बादाम के मगज़ छीलकर	मग़ज़ फ़िन्दक़

प्रत्येक २० दाने

नशास्ता	२ तोला

—तीनों को दूध में भली प्रकार घोटकर दूध निकाल कर और ४ तोला घी को पतीली में डालकर मन्द अग्नि पर पकावें। जब पक जावे तो आवश्यकतानु-सार मिश्री डालदें और—

३४—सालब मिश्री	सफ़ेद बहमन
शक़ाक़िल	प्रत्येक २—२ माशा

—लेकर पीसकर उसमें मिलादें और नीचे उतार कर दूध के समान गरम-गरम पीकर सो रहें। रात्रि को इसका सेवन करना हितकारी होता है।

'अरज़ी' शिर वेदना की चिकित्सा

'अरज़ी' नामक शिर पीड़ा अन्य रोग के अधीन और उसके सम्बन्ध से होती है। अतः यह न तो प्रधान शिर पीड़ा है और न इसकी पृथक् चिकित्सा करने की आवश्यकता है। यह अन्य रोग के लक्षण के रूप में प्रकट होती है। मूल रोग की चिकित्सा हो जाने पर यह स्वतः चली जाती है। वातज ज्वर में शिर दर्द का

होना आवश्यक है। ज्वर के दूर होते ही पीड़ा भी शान्त हो जायगी। पित्तज ज्वर में होने वाली शिर पीड़ा में उसी लेप का सेवन करें जो 'माज़ज मफ़रावी की शिर पीड़ा की चिकित्सा' के वर्णन में पीछे लिख आये हैं।

'अरजी' तथा 'शिरकी' शिर पीडाओं में अन्तर

'अरजी' शिर पीड़ा और 'शिरकी' शिर पीड़ा में यह भेद है कि 'अरजी' शिर पीड़ा एक प्रकार से 'शिरकी' शिर पीड़ा का ही प्रकार है। 'शिरकी' शिर पीड़ा किसी अन्य अङ्ग के रोग के मेल से होती है परन्तु 'अरज़ी' शिर पीड़ा ज्वरों के अधीन होती है।

पाशो या पग-प्रक्षालन

३५—बेरी के पत्ता	५ तोला
गेहूँ की भूसी	५ तोला
बाबूकना	५ तोला
गुलखतमी	५ तोला
गुल नीलोफ़र	५ तोला
खीरा काटा हुआ	१० तोला

—सबको ६ सेर पानी में औटावें और इस गरम जल को एक टब (नांद) में डाल कर पांव रक्खें और ऊपर से नीचे की ओर धोवें। उसकी भाप से नाक और मुख को बचावें। फिर किसी स्वच्छ वस्त्र से पोंछ कर सुखा डालें और वायु न लगने दें। इससे पित्तज ज्वर और तज्जनित शिर पीड़ा दूर हो जाते हैं।

जमाई (मैथुनी) शिर पीड़ा की चिकित्सा

अधिक रमण और मैथुन करने के बाद निर्बलता के कारण यह शिर वेदना हो जाती है। इसकी प्रधान चिकित्सा तो यह है कि मैथुन अथवा रमणी-स्मरण का त्याग उस काल तक करें जब तक कि स्नायुओं (पट्ठों) की दुर्बलता दूर होकर वीर्य भी गाढ़ा और पुष्ट न हो जाय और फिर कभी अति मैथुन न किया करें।

'शराबी' शिर पीड़ा की चिकित्सा

यह शराब अर्थात् मदिरा के अधिक पीने से होती है। इसकी भाप (बुख़ारात) शिर की ओर चढ़ते हैं तो उसे ख़ुमार कहते हैं और यह ख़ुमार ही 'शराबी' शिर पीड़ा को उत्पन्न करता है। इसकी चिकित्सा आगे के लिए यही है कि मदिरा-पान का सर्वथा त्याग कर दिया जाय और (२) आमाशय में से मदिरा का भ्रष्ट अवशेष (फ़ुज़ला) निकाल दिया जाय। इसके लिए वमन कराना चाहिए—

३६—राई का क्वाथ शिकञ्जबीन में मिलाकर पिलावें। इसके पश्चात एक दो रेचन रोगी की प्रकृति के अनुसार करावें। माद्दे के निकल जाने पर आमाशय को सबल बनाने के हेतु अनार का शर्बत सेब का शर्बत, बिही का शर्बत इत्यादि दें। इसके पश्चात नीचे लिखी औषधियों के उष्ण जल से पैरों को धोवें।

३७—बाबूना बनफ़्शा

प्रत्येक २-२ तोला

नमक ६ माशा

—तीनों को पानी में औटावें और उतार कर किञ्चिदुष्ण से पग मार्जन करें।

'जरबी' 'सकती'—शिर पीड़ा की चिकित्सा

'ज़रबी' के अर्थ चोट लगना और 'सकता' के अर्थ गिर पड़ना अथवा फिसलना है। अत इसको चोट की शिर वेदना कह सकते हैं। इसकी चिकित्सा घर में करने के स्थान पर तुरन्त ही किसी निपुण वैद्य या डाक्टर को दिखाना चाहिए और यदि हड्डी टूट जाय अथवा घाव गहरा हो जाय तो किसी योग्य शल्य चिकित्सक (सर्जन) को दिखाना चाहिए और सौभाग्य से हड्डी आदि न टूटी हो तो शिर की पुष्टि और सुधार के लिये नीचे लिखे हुये लेप की मालिश करें—

३८—जौ का आटा गुल अरमनी

दामीशा	मसूर का आटा
रसौत	अक़ाकिया (बबूल सार)
चन्दन	बार तंग का पानी
रोगन गुल	समभाग

—मिलाकर मालिश करें। रोगन गुल से सिरका मिलाकर लेप करें तो भी अच्छा है। किन्तु तीव्र शिर पीड़ा हो तो सिरका न बर्तें।

'बैज़ो' शिर पीड़ा की चिकित्सा

यह पुराने शिर दर्द का ठहरा हुआ रूप है। किसी तुच्छ कारण से भी प्रगट हो जाने पर यह असह्य हो जाता है किसी व्यक्ति का बोल भी नहीं भाता। यह बैज़ा (अण्डा) के समान सारे शिर को घेर लेता है इसी से इसका नाम 'बैज़ो' सिर दर्द है। इसकी चिकित्सा करने के लिये पहले यह देखना चाहिए कि कौन सा दोष आया हुआ है। उसी के अनुसार चिकित्सा करे। यह तीव्र प्रकार की दोषज शिर वेदना है और इसे स्थायी शिर पीड़ा भी कह सकते हैं।

बोहरानी शिर पीड़ा की चिकित्सा

'बैज़ो' शिर पीड़ा के समान यह भी कोई पृथक् स्वतन्त्र रोग नहीं है। ज्वरादि में जब 'बहरान' का दिन हो तो ज्वर के उपद्रवरात के मस्तिष्क की ओर ऊपर चढ़ने से यह होती है। इसकी प्रधान चिकित्सा है प्रकृति को नरम, हलका और शान्त करना। देखना यह है कि जिस दोष के कारण यह शिर पीड़ा हुई हो उसके विपरीत प्रकृति वाली औषधियां सेवन करें जैसे-शिर पीड़ा के साथ मतली और चक्कर आवें (जैसा कि कफज और पित्तज दोष में होता है) तो शिकञ्जबीन और गरम जल से अथवा मुलेठी, मेरा खियार और चुकन्दर के क्वाथ से वमन करावें और यदि छाती से जलन, बेचैनी इत्यादि हो तो—

३९—आलू बुख़ारा	उन्नाव
लिसोढ़िया	इमली
मुनक्का	प्रत्येक ४-४ माशा

—क्वाथ से प्रकृति को नरम करें। शर्बत गुलाब अथवा इमली तथा आलू बुख़ारे के शर्बत शीतल जल के साथ पिलावें। यदि नेत्रों के आगे लाल-लाल स्फुलिंग से दीख पड़ें तो नकसीर नाक से निकालना चाहिए। रोगी को यदि पीठ की पसलियों में बोझ मालूम हो (जो कि मूत्र रुक जाने का लक्षण है) तो तुख्म खयार, तुख्म ख़रबूज़ा का शीरा शिकञ्जबीन अथवा शर्बत बनफशा के साथ पिलादें।

'सुम्मी' शिर पीड़ा की चिकित्सा

इसकी चिकित्सा 'साज़ज' शिर पीड़ा की चिकित्सा के समान है। गरम सुगन्धि या दुर्गन्ध के सूंघने से शिर पीड़ा हो गई हो तो उसकी विरोधी सुगन्ध को सूंघें यथा—

४०—कपूर, बनफ़शा, नीलोफ़र। किन्तु यदि सुगन्ध या दुर्गन्ध गरम होने के अतिरिक्त शुष्क भी हो तो कपूर इत्यादि में मक्खन अथवा घृत मिलाकर सूंघें। गन्ध यदि तर हो तो कपूर और चन्दन सूंघें।

४१—कपूर	१ तोला
गौ का घी	१ तोला
कद्दू का तैल	१ तोला

—घी को कद्दू के तैल के साथ अग्नि पर गरम करके उतार लें और किञ्चित ठण्डा हो जाने पर (फिर भी कुछ-कुछ गरम हो) कपूर को पीस कर मिलादें और किसी शीशी में डाल कर रखलें। इसका सूंघना, शिर पर मलना अति गुणकारी है।

'दूदी' (कृमीय) शिर पीड़ा की चिकित्सा

पहले हुक्के को जल से ताजा करें और तम्बाकू का दम लगाने के स्थान पर—

४२—मंदार की जड़ का छिलका	१० तोला
दाल चीनी क़लमी	२ माशा
मुर्दार संग	३ माशा
सिंगरफ	६ माशा
प्रत्येक समभाग	

—लेकर इसकी १४ टिकिया बनालें चतुर्थांश चिलम में रख कर पिलावें। किन्तु यह ध्यान रहे कि यह क्रिया घर के सब द्वार और छिद्र बन्द करके वायु शून्य घर के भीतर होवे, रोगी के नेत्रों पर पट्टी बांध कर ऊपर से लिहाफ़ उढादें और जोर-जोर से घूंट (सूंटे) भरवावें। इसे करते हुए मुख तथा नाक से पानी गिरेगा। ४ तोला घृत को गरम करके पिलादें और आँखे खोल दें। प्रात, साय दोनों समय एक सप्ताह तक करें और सेवन करने के समय लेटे ही रहें।

(२) सूंघनी

कई वर्ष पुराने जूते का तला लाकर कोयलों की आग जलाकर राख बनालें। इसकी चुटकी भर नस्य (सूंघनी) नाक में सुंघावें। कीड़े झड़कर भूमि पर आ गिरेंगे।

पथ्य—केवल गेहूं का आटा चने की अलूनी और घी में चुपड़ी रोटी खिलावें।

'तजाज़ी' तथा 'अक़्म नोमी'

(शिर की पीड़ाओं की चिकित्सा)

'तजाज़ी' शिर पीडा मस्तिष्क के हिलने से होती है और मस्तिष्क का हिलना किसी गहरी चोट के लग जाने और मैथुन क्रिया के समय तीव्र रसोद्रेक उत्पन्न हो जाने से हो सकता है। इसकी चिकित्सा अनुकूल अवस्था के अनुसार की जाती है।

'उक़्व नोमी'-शिर पीडा नींद के पश्चात् दुर्बल मस्तिष्क वालों को हुआ करती है। इसकी चिकित्सा मादी शिर दर्द के समान—जिस प्रकार का दोष हो उसके अनुसार —होती है। फिर भी उपले या अञ्जीर की लकड़ियों की राख को सिरके के साथ माथे और कनपटियों पर मलना लाभकारी है।

'शकीकी' शिर पीडा की चिकित्सा

४३—बादाम गिरी छीली हुई आधी गिरी
सफेद मिर्च २ दान

—पीस कर दोनों ओर नस्य दें।

४४—गरम दोषों मे नीलोफर, बनफ़्शा, कद्दू, बर्ग ख़तमी, गुल सुर्ख़ जलाय और पीडा स्थान पर गिरावें। यदि दोष उग्र हों तो बाबूना गोया को पोदीना के पानी में औटाकर शिर पर डालें और जल तथा नमक के साथ मिलाकर मेंहदी गिरावें और साफ़िया (जगली सुदाब का गोंद), पोस्त बीज ख़िरा, प्याज, फर्फ्यून रोग़न को शराब मे मिला कर लेप करावें और अफीम की काग़ज़ी पपंटी लगावें जिससे शिराय धड़कने से रुक जांय।

४५—सूरज चढ़ने से पूर्व प्रात दूध में गौ का घृत डाल कर पीना लाभदायक है।

नोट—यह भी अनुभव सिद्ध है कि अमृत धारा के लगाने, खाने और नाक में डालने से पर्याप्त लाभ होता है।

प्रधान शिर वेदनाओं की यूनानी मतानुसार चिकित्साओं का वर्णन यहा समाप्त होता है। इनके अतिरिक्त कतिपय यूनानी ग्रन्थों में शिर की कुछ अन्य उप-पीडाओं और उनकी चिकित्साओं का भी उल्लेख पाया जाता है जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

नजली शिर पीडा और उसकी चिकित्सा

यह 'नजला' से उत्पन्न होती है।

चिकित्सा—

१—राई के क्वाथ से पैरों को धोवें।

१-नज़ला दूर करने वाली औषधियाँ सेवन करें।

'सुद्दो' शिर पीड़ा और उसकी चिकित्सा

यह शरीर और वस्त्रों के स्वच्छ न रहने, स्नान न करने और नियमित रूप से पाख़ाना न जाने तथा गरिष्ट भोजन करने और फिर व्यायाम न करने से जो भ्रष्ट अवशेष "सुद्दा" के नाम से शरीर में रह जाते हैं उनसे उत्पन्न होती है। इसकी चिकित्सा दोषज शिर पीडाओं

की चिकित्सा के समान है। जिस जिस दोष की प्रधानता पायी जाय उसी के निवारणार्थ चिकित्सा करें।

जकाई शिर पीड़ा और उसकी चिकित्सा

यह पूर्व वर्णित 'माजंज' शिर पीड़ा का ही एक भेद है। दुर्बल मस्तिष्क वालों को तीव्र सुगन्ध या दुर्गन्ध के सूंघने से यह शिर पीड़ा होती है।

चिकित्सा—

४६–शीरा काहू ४ माशा
खशखाश ४ माशा
—शर्बत खशखाश १ तोला के साथ पिलावें।

४७—तरबूज का पानी खशखाश के शर्बत के साथ मिलाकर पिलावें।

४८—खशखाश के तेल की मालिश शिर पर करें।

ज़हरी शिर पीड़ा की चिकित्सा

विषैले जानवरों के काटने से यह होती है। चिकित्सार्थ दूध घी अथवा मग़ज़ बिनौले घोटकर पिलावें। पपीता और निर्विषी भी लाभदायक हैं।

ऐसाबा शिर पीड़ा की चिकित्सा

यह पीड़ा भृकुटियों के एक ओर होती है। इसकी बेचैन टीसों से रोगी घबरा उठता है। इसकी गणना पहले तो 'शकीका' (आधा शीशी) में होती थी किन्तु अब इसका वर्णन पृथक् ही किया जाता है।

चिकित्सा—

४९—अफ़ीम कपूर
ज़ीत सौंफ
केशर समग़ अरबी (गोंद कीकर)
प्रत्येक समभाग
—लेकर बारीक पीसलें और पीड़ा के स्थान पर लगावें।

५०—तबासीर केशर
अफ़ीम घी दुग्ध
रोगन गुल रीठे के बीज
—की नस्वार (सूंघनी) सुघावे।

५१—सूर्योदय के पूर्व १ माशा से २ माशा तक नौसादर को पानी में मिलाकर पिलावें।

बैज़ा, नायबा, खोदह शिर पीड़ा की चिकित्सा

समस्त शिर की पुरानी पीड़ा को 'बैजा' अथवा 'बैज़ी' कहते है (वर्णन पीछे हो चुका है)। जो पीड़ा रुक रुक कर कुछ काल के अनन्तर हो और अङ्ग के एक ओर होवे, उसको 'नायबा' कहते हैं और जो शिर पीड़ा शिरको चारों ओर से घेरे हुए हो वह 'खोदह' कहलाती है। इसके लक्षण इस प्रकार हैं.—

मुख और नेत्रों का लाल हो जाना, मुख का रङ्ग काला सा पड जाना, हृदय तथा गर्दन की शिराओं का फूल जाना, मुख से दुर्गन्ध आना, पित्ताधिक्य से शरीर में सुइयां-सी चुभना, दाह, कफ तथा श्लेष्म की अधिकता, नींद अधिक आना, नथुनों में रतूबत रहना, वाताधिक्य हो तो चिन्ता और परेशानी करने वाले स्वप्न देखना इत्यादि।

चिकित्सा—

जिस दोष की प्रधानता हो पूर्व वर्णन के अनुसार उसके निवारणार्थ करें।

शिरोरोग विवेचन

लेखक--डा० प्यारेलाल गुप्त रस शास्त्री, वैद्य विशारद, भिषक्मणि, मुंगेली (विलासपुर)

वैद्यवर श्री डाक्टर प्यारेलाल जी गुप्त रस-शास्त्री मुंगेली (विलासपुर) के गएय मारय चिकित्सकों में से हैं। आप उमेदकुंवर धर्मार्थ डिस्पेन्सरी के सचालक होने के कारण अपने प्रान्त में अच्छे लोकप्रिय हैं। आपने अपने लेख में शिरोरोगों पर अच्छा प्रकाश डाला है। उभयतः विवेचन से लेख अधिक महत्वपूर्ण हो गया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

लेखक

विशेषाक के निकालने मे श्रीमान कविराज हरदयाल जी ने श्रीमान वैद्य बांकेलाल जी गुप्त की जो भीष्म पितामह से तुलना की है यह सत्य ही है क्योंकि वैद्य जी ने अभी तक जो भी विशेषाङ्क निकाला है उसने चिकित्सक समाज से एक बडी भारी पूर्ति कर दी है और अभी तक वैद्य जी ने विशेषाङ्क निकालने की धारणा को अटल रखा है। प्रति वर्ष की भांति इस वर्ष भी ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के नाम से भारत के यशस्वी विद्वान प्रिंसिपल श्री हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति के सम्पादकत्व मे निकल रहा है, अत्यन्त प्रसन्नता की बात है। अस्तु श्री वैद्य बांकेलाल जी गुप्त ने मुझसे उक्त विशेषाङ्क के लिये लेख भेजने का आग्रह किया परन्तु समयाभाव और अयोग्यता का अनुभव करते हुए भी मैंने हरदयाल वैद्य वाचस्पति जी को अपनी विवशता का पत्र लिख दिया। क्योंकि उन जैसे विद्वान के पास अपना लेख लिख भेजने की योग्यता नहीं पाता परन्तु फिर भी वैद्य

वाचस्पति जी ने मेरी विवशता को स्वीकार करते हुए लेख लिख भेजने का जो आदेश दिया उसे शिरोधार्य करना ही पड़ा और उन्हीं के कथानरूप पर यह लेख लिखने का साहस कर रहा हूं संभव है कुछ त्रुटियां हों जिसे पाठक क्षमा करेंगे।

भेद

आयुर्वेद में ११ प्रकार के शिर रोग हैं—१-वातज २-पैत्तिक ३-कफज ४-सन्निपातज (त्रिदोषज) ५-रक्तज (रुधिर से) ६-क्षयज ७-कृमिज ८-सूर्यावर्त ९-अनन्तवात १०-अर्धावभेदक और ११-शंखक।

शिर दर्द स्वत. कोई रोग नहीं है बल्कि किसी रोग का कारण है इसलिये शिर रोग की चिकित्सा करने से प्रथम रोग का कारण देख कर मूल रोग की चिकित्सा करने से शिर दर्द दूर हो जाता है।

१—वातज शिर दर्द

(Neuralgicor Nervous Headache)

अधिक शीत या अधिक गर्मी लगने से यह दर्द अकस्मात उत्पन्न होता है जो कि दिन को कम और रात्रि को अधिक होता है तथा बाधने एव सेकने से दर्द मे शांतता मिलती है। मस्तिष्क की त्वचा और मास में दर्द होता है, माथा और भौं की त्वचा को हिलाने से अधिक दर्द मालूम होता है। शारीरिक निर्बलता, नाजुक प्रकृति, उपदंश, गठिया रोग इत्यादि कारणों से रक्त दूषित होने पर हो जाया करता है।

२-पैत्तिक शिर दर्द (Billiaus Headache)

यह दर्द दो प्रकार का होता है जो कि यकृत के दूषित होने पर होता है—जब दर्द बराबर होता है तब आमाशय की निर्बलता से और यदि दर्द होकर थोड़ी देर बन्द होजाता है तब भोजन की गड़बड़ी से होता है। यह रोग, बदहजमी, गरम पदार्थों के अधिक सेवन इत्यादि कारणों से यकृत दूषित होकर पित्तज शिर दर्द होता है। जब पित्त आमाशय में गिरता है तब शिर दर्द हो जाता है, जी मिचलाना, वमन होना, मुख का स्वाद कड़ुवा मालूम होना, प्यास अधिक लगना, कनपटी की नसों का फड़कना, मस्तिष्क का अङ्गार की तरह गरम रहना, नाक एवं आंखों मे दाह रहना आदि लक्षण होते हैं। पित्त की वमन अथवा दस्त हो जाने से दर्द में आराम हो जाता है।

३-कफज शिर दर्द

यह सर्दी के कारण से पैदा होता है, शिर भरा हुआ सा मालूम होता है। यह जुकाम, इन्फ्यूएन्जा, सन्निपात आदि से में ही होता है, मस्तिष्क के श्लैष्मिक में ठण्डक पहुंचने से ही यह दर्द होता है, यह दर्द मन्द-मन्द एवं भरा हुआ सा होता है।

४-सन्निपातज शिर दर्द

वात, पित्त, कफ तीनों दोषों के कुपित हो जाने से इन्हीं दोषों के लक्षणों के युक्त यह दर्द होता है। यह दर्द बहुधा सन्निपात, निमोनिया आदि रोगों में हुआ करता है।

५-रक्तज शिर दर्द

यह कई प्रकार का होता है जैसे—

(Congestive Headache)

रक्त सचय से शिर दर्द होना

इस रोग में मस्तिष्क की नसो में रक्त भर जाता है पहला – धमनी (Artery) में रक्त संचय होने से होता है। इसका कारण हृदय के बांये कोष्ठ का मोटा होना, फुफ्फुस और हृदय का रोग, व्यायाम न करना, मद्य का सेवन, कब्ज का रहना आदि है। इसमें प्रदाह युक्त शिर दर्द होता है। दूसरा – शिरा (Vein) में रक्त संचय होने से होता है। इसका कारण स्त्रियों में मासिक धर्म की अनियमितता, प्रदर, शारीरिक निर्बलता, रक्त विकार, भोजन की गड़बड़ी है। इसमें शिर भरा हुआ थोड़ी बहुत पीड़ा, चेहरा मुरझाया हुआ, आँखें लाल और नाड़ी की गति तीव्र होती है। यही पीड़ा पतले रक्त वाले निर्बल पुरुष को होवे तो हृदय मे धड़कन, कनपटी की नाड़ियों में फड़कन होती है, चेहरा

पीला, ओष्ठ फीका एव हाथ पैर ठण्डे होते हैं। नाजुक प्रकृति के वह मनुष्य जो शोक और परिश्रम मे लिप्त हैं, उनके कानों मे भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द सुनाई देना एव आखो के सामने चिनगारियाँ उडते हुए सा दिखाई देना इत्यादि लक्षण होते हैं।

(Cerebral hyperaemia)

मस्तिष्क में रक्त की अधिकता

इस रोग का कारण अधिक मद्य सेवन, लू लगना वात आदि होते हैं। इसमें हर समय शिर मे दर्द कानों मे साँय-साय शब्द का सुनाई देना, चिडचिडा स्वभाव, बुद्धि का विकृत हो जाना, चेहरा लाल, शिर गरम, शिर भारी, अनिद्रा, हाथ पांव ठण्डे, परिश्रम में कष्ट होना, चक्कर आना, कब्ज का रहना इत्यादि लक्षण होते हैं। चन्दिया के पीछे भी थोडा-थोडा दर्द रहता है। इस रोग में मस्तिष्क का भीतरी आवरण मोटा और गदा हो जाता है, मस्तिष्क के भूरे रङ्ग का हिस्सा जिसे कि (Cortex) कहते हैं लाल हो जाता है और उसका उभार दबकर सिकुड जाता है, यह रोग अधिकतर रक्त प्रकृति वालो में देखा जाता है।

इस रोग के बढ़ जाने पर सकता (Apoplexy) भी हो जाया करता है।

(Cerebral Anaemia)

मस्तिष्क में रक्त की कमी

इस रोग में रक्त की कमी, हृदय की निर्बलता, गले की धमनी, नाडियों (Carotid artery & Nerves) पर किसी गूमड या बतौडी आदि के दबाव से मस्तिष्क में रक्त का रुक-रुक कर पहुँचना, यानी इस रोग मे में पूरे मस्तिष्क अथवा उसके किसी हिस्से मे रक्त का कम पहुंचना ही कारण है। रोग होने के पूर्व शिर में दर्द, शिर घूमता हुआ सा मालूम होना, कानो में बाजा जैसे शब्द सुनाई देना आंखो में धुंधलापन मालूम होता है। जब मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है तब बेहोशी हो जाती है, हाथ पांवों में ऐंठन होने लगती है, नेत्रों की पुतलियां फैल जाती हैं, मुंह का रंग फीका तथा सफेद हो जाता है।

६—क्षयज शिर रोग

मस्तिष्क के अन्दर की वसा, रक्त, वायु और कफ का क्षय होने से भयङ्कर शिर दर्द होता है, जिसमें छींके अधिक आती हैं, शिर गरम रहता है। इस रोग में नस्य पसीना निकालना, वमन कराना, धूम्रपान अथवा रक्त का निकालना हानिकारक है।

७—कृमिज शिर रोग

मस्तिष्क मे कृमि उत्पन्न नहीं होते बल्कि नाक की हड्डी के समीप होते हैं कोई मस्तिष्क और शिर के परदे के समीप कीडे की उत्पत्ति स्थान बतलाते हैं। उस स्थान पर जब मल सञ्चित हो जाता है तब उसमे पूय पैदा होकर कृमि हो जाया करते हैं जिससे मस्तिष्क मे खुजली, काटने की तरह दर्द तथा टोचने, फडकने की तरह दर्द, नाक से गंध या रुधिर का आना आदि। यह रोग छत्तीसगढ की छोटी जातियो में बहुतायत से देखने में आता है जिससे यह सन्देह किया करते हैं कि कान के अन्दर बगडे (बधडे, कुकरौंठी जो कि कुत्तों के कान या शरीर मे रहते हैं) घुस गई और वही कीडा शिर मे चला गया और वहाँ बच्चे पैदा कर डाले किंवदन्ति की कई तरह की बातें करते हैं परन्तु विश्वसनीय नहीं है क्योंकि कान के अन्दर वह कीडा घुस कर जिन्दा नहीं रह सकता क्यों वहां कीड़े को हवा नहीं मिल सकती।

८—सूर्यावर्त

यह एक विचित्र प्रकार का दर्द है जो प्रात काल सूर्योदय के समय दर्द प्रारम्भ होता है और ज्यों-ज्यो समय बढता है दर्द भी बढता जाता है, मध्यान काल १२ बजे तो दर्द बहुत जोरों का हो जाता है और मध्यान के बाद मे दर्द भी कम होता जाता है और सायं काल को दर्द बिल्कुल बन्द हो जाता है।

६ वर्ष के बच्चे के स्थाई दाँतों का निकास
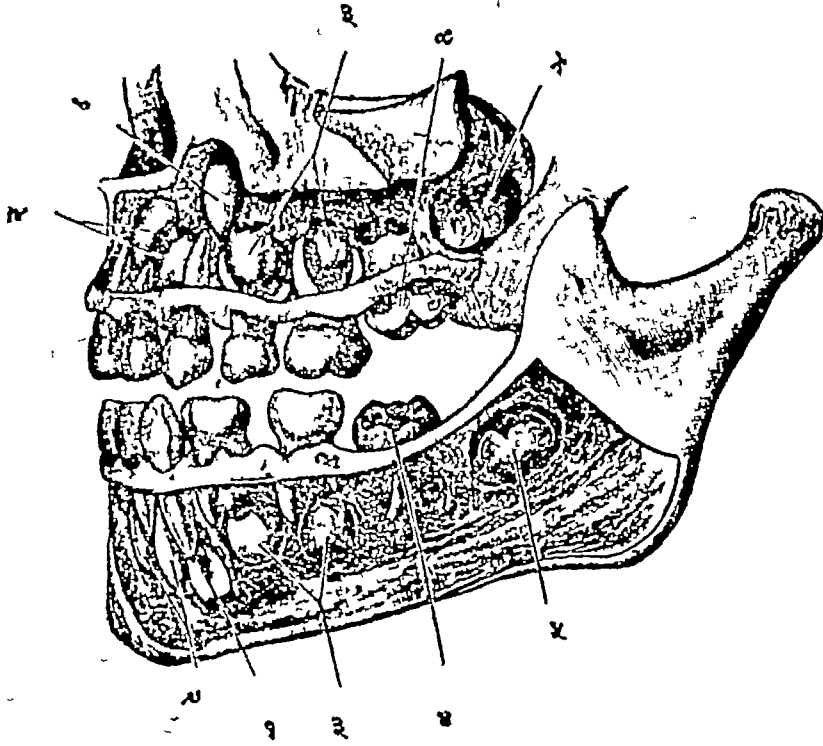
१—भेदक दन्त

२—कर्त्तन दन्त

३—अग्र चर्वणक

४—प्रथम पश्चिम चर्वणक

५—द्वितीय ,,

९—अनन्तवात

यह बड़ा दुष्ट रोग है, वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को कुपित करके मन्दा नाड़ी को पीड़ित कर भौंहें, कनपटो, नेत्र इनमें तीव्र वेदना उत्पन्न कर देता है। गण्ड स्थान के समीप कपकपी होने लगती है, ठोढ़ी जकड़ जाती है, आँख, भृकुटी और शङ्ख प्रदेशमें भी तीव्र वेदना होती है।

१० अर्धावभेदक (आधा शीशी)

(Sick Headache)

यह रोग अति मैथुन, रूक्ष एवं वादी भोजन मल, मूत्रादि के वेगों को रोकने, अनिद्रा, रात्रि जागरण, रक्त की खराबी, अत्यन्त परिश्रम करना, अधिक धूप का सेवन करना, स्त्रियों में अनियमित मासिक धर्म का होना, गुल्म इत्यादि कारण से पैदा होता है। दर्द होने के प्रथम तबियत सुस्त, आँखों के सामने चिनगारियां उड़ते हुए मालूम होना, शिर का घूमना आदि होता है, फिर दर्द शुरू हो जाता है। प्रथम भौं और कनपटी में धीरे-धीरे पीड़ा होती है फिर धीरे-धीरे दर्द बढ़ जाता है यहां तक कि शिर भन्ना जाता है, रोशनी और आवाज सहन नहीं होती, कानों में बाजे जैसे शब्द सुनाई देते हैं। चेहरा फीका पड़ जाता है, जी मचलाता है, उबकाइयां आती हैं, यह दर्द शिर के आधे भाग में ही रहता है। यह दर्द जब बढ़ जाता है तब किसी-किसी में आंख कमजोर हो जाती है एव कान भी बहिरे हो जाते हैं। यह दर्द दो तीन घंटे से लेकर चौबीस घण्टे तक रहता है फिर बन्द हो जाया करता है।

११-शङ्खक शिरोरोग

सम्पूर्ण शिरोरोगों से यह भयङ्कर और असाध्य रोग है। दुष्ट हुये वायु, रक्त और पित्त बढ़कर नेत्रों में सूजन करते हैं, पीड़ा और प्रदाह युक्त नेत्र लाल हो जाते हैं और विष के वेग के समान बढ़कर गले को रोक देता है। इस रोग से रोगी तीन दिन में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस अवधि के बीच यदि योग्य चिकित्सक के द्वारा चिकित्सा की गई तो रोगी के बचने की आशा की जा सकती है।

यूनानी मत से शिर रोग के २१ भेद माने हैं। हम पहले ही लिख चुके हैं कि शिर रोग स्वतन्त्र नहीं है बल्कि अन्य रोग का कारण है अथवा अनुचित आहार विहार करने से दर्द तो जाया करता है। यूनानी वाले तथा एलोपैथी आदि पैथी वालों ने जो भी शिर रोग का भेद बतलाया है वह सब आयुर्वेद के अन्तरगत आ गया है फिर भी जानकारी प्राप्त होने के लिए यूनानी और एलोपैथिक का भी लक्षण लिखा जा रहा है।

यूनानी नाम—

१—साज़िज (दोष रहित), २-माद्दी ३-मुशार ४-औकै ५-कुव्वत ६-आर्जी ७-युवसी ८-वर्मी ९-जिमआई १०-हम्मामी ११-मयपाई १२-सकती १३-जर्बी १४-वैजी १५-बोहरानी १६-शम्सी १७-सुदूटी १८-दुर्दी १९-औजाई २०-अद्वे २१-शक़ीक़ो

(१) *साजिज*—यह एक साधारण शिर रोग है जो बिना किसी दोष के ही प्रकृति में कुछ अन्तर आ जाने से हो जाया करता है धूप या आग की गर्मी से शिर में दर्द हो जाता है।

(२) *माद्दी*—आयुर्वेद वालों ने वात, पित्त, कफ तीन दोष माने हैं और यूनानी वाले वात, पित्त, कफ और रक्त ऐसे ४ दोष मानते हैं अतएव इन्हीं में से किसी दोष का कुपित होकर जो शिर दर्द होता है उसे माद्दी का शिर दर्द कहते हैं जिसका अलग अलग लक्षण लिखा जा चुका है।

(३) *मुशार*—यह दूसरे अङ्गों के संयोग से होता है। जैसे गुदा, पिंडली, आमाशय, पैर, कलाई, एड़ी, हथेली, पीठ, कलेजा, बाजू, गर्भस्थान, तिल्ली, दिल और आमाशय के बीच, पेट की ऊपरी झिल्ली, पीठ अथवा पर्दे के संयोग से इस तरह १४ प्रकार के

सयोगक शिर दर्द होते हैं।

(४) जौफे—दिमाकी अथवा दिमाग के कमजोर हो जाने से जैसे ध्यानादिक, स्मरण शक्ति, विचार, मस्तिष्क सम्बन्धी कार्यों में तथा चलने फिरने में उपद्रव या कष्ट हो, दिमाग की निर्बलता—थोड़े ही कारण से यथा दुर्गन्ध या खुसबू की तीव्रता अथवा सूंघने से, बुरे शब्द से, भोजन पचते समय भाप के परमाणु चलने से इत्यादि।

(५) कुव्वत—हिस्से दिमागी अर्थात् दिमाग की ज्ञान शक्ति के बलवान हो जाने के किंचित कारण के प्रभाव से। यह प्रभाव ज्ञान शक्ति के बलवान होने से होता है।

(६) आर्जी—किसी दूसरे रोग के कष्ट आदि से जैसे ज्वर।

(७) युवसी—दिमाग की खुश्की से यह रोग देह का मल अधिक निकल जाने के पीछे होता है। जैसे—अर्श पेचिश, स्त्रियों का आर्तव, उपवास, नकसीर, नजला, दस्त, वमन, फस्द खोलना इत्यादि कारणों से शरीर में शुष्कता आने पर दिमाग की खुश्की हो जाने से शिर में दर्द होता है।

(८) वमी—शिर के किसी भाग के सूज जाने से—इसे सरशाम कहते हैं।

(९) जिमआई—संभोग की अधिकता से जो शिर दर्द होता है।

(१०) हम्मामी—अधिक देर तक स्नान करने अथवा शिर पर पानी की तेज धार डालने से होता है।

(११) मद्यपाई—नशीली चीजों का सेवन करने पर उत्पन्न शिर दर्द।

(१२) सकती—गिर पड़ने की धमक से।

(१३) जर्बी—शिर में चोट लगने से।

(१४) वैजी—यह दर्द टोप की तरह याने शिरके संपूर्ण भाग को घेरे रहता है। यह दर्द रुककर नहीं होता बहुत दिनों तक लगातार समान रहता है। यह दर्द किंचित कारण से भी बढ़ता और उभरता है। शब्द, प्रकाश, लोगों का मिलना जुलना बहुत बुरा लगता है। किंतु अंधेरे में अकेले बैठे रहने से कुछ विश्राम मालूम होता है। यह दर्द हथौड़े से फोड़ने, खींचने सरीखा होता है।

(१५) वोहरानी—दूसरे रोगों के दौड़ा से।

(१६) शम्मी—तीव्र खुशबू या तीव्र बदबू के सूंघने से उत्पन्न होने वाले शिर दर्द को कहते हैं।

(१७) सुद्दी—दिमाग के किसी हिस्से में गांठ पड़ जाने से होता है जैसे कि उन रोगों में जिनमें रक्त दौड़ना है या उन पर्दों की रुधिर वाहिनी और शक्ति दाहिनी रगों में जो शिर की खोपड़ी के भीतर है कोई दोष गाढा एवं सगीन होकर रुक रहता है और गांठ पैदा कर देता है इससे जो शिर दर्द होता है उसे सुद्दी कहते हैं।

(१८) दुही—दिमाग में कीड़ा उत्पन्न हो जाने से यह कृमिज शिरो रोग है।

(१९) जौजई—बहुत चलने, फिरने, मजाक इत्यादि से उत्पन्न शिर दर्द को कहते हैं।

(२०) अदवे नोदी—यह दर्द सोकर उठने के पश्चात होता है।

(२१) शकीकी—आधा शीशी आगे लिखा जा चुका है।

नोट—यूनानी पुस्तकों में उक्त २१ प्रकार के शिरो रोगों का विशद वर्णन किया गया है और प्रत्येक का इलाज भी लिखा गया है। उन सबों का पूर्ण वर्णन लिखना संभव नहीं फिर भी प्रकरण में यथा शक्ति प्रकाश डाला जायगा। यदि बुद्धिमता से रोग के कारण को जानते हुए चिकित्सा की जाय तो सफलता मिलना कोई कठिन काम नहीं है। अब यहां कुछ एलोपैथिक मतानुसार खास खास शिरो रोगों का वर्णन किया जा रहा है। किसी भी रोग की आयुर्वेद में पूर्ण विवेचना (कुछ खास नवीन रोग विदेश से आये हुये के अतिरिक्त)

न हो यह बात नही हैं परंतु अन्य पैथी वालों से भी यदि अच्छी बातें मालूम होती हैं तो ग्रहण करने योग्य हैं। दूसरी बात आयुर्वेद का पूर्ण रहस्य संस्कृत साहित्य में हैं जिसे कि संस्कृत के विद्वान ही समझ सकते हैं अतएव अन्य पैथियों का भी सहयोग लेकर ज्ञान वृद्धि करना उत्तम है।

शिर पीड़ा (Headache)

यह क्षुधा, मदिरा पान, मस्तिष्क मे अधिक कार्य करना, शोक चिन्ता, इत्यादि से ग्रसित, ज्वरादि रोग, रक्त विकार, दांत दर्द, नेत्र रोग, कर्ण रोग, आमाशय, गर्भाशय, शिर पर अधिक बोझ लेने, पगड़ी बांधने, बाल अधिक बढ जाने इत्यादि कारणों से शिर पीड़ा हुआ करती है।

मस्तिष्क का हिलजाना
(Concussion of the Brain)

यह रोग मस्तिष्क के रक्त संचालन में विकार होकर उसके कार्य में भेद पड जाता है। जिसमे फुफ्फुस और हृदय निर्बल पड जाता है। कारण शिर में चोट लगना या धक्का लगना इत्यादि है। शिर मे अधिक चोट या धक्का लग जाने से शिर भन्ना जाता है, कुछ बेहोशी आ जाती है किसी किसी को जी मचलना एव कंप होती है, जब यही चोट या धक्का बहुत जोरों से लगता है तब आदमी मृतक के तुल्य हो जाता है शरीर ठण्डा पड़ जाता है, पसीना निकलता है, श्वासावरोध आदि हो जाता है। हल्की चोट लगने पर कुछ देर के लिए शिर चकरा जाता है। कुछ दर्द भी होता है और थोडी देर मे अच्छा भी हो जाता है।

मस्तिष्क का दब जाना
(Compression of the Brain)

इस रोग का कारण मस्तिष्क के भीतर पानी या पूय का जमा हो जाना अथवा रक्त का निकलना, बतौड़ी या गूमड का होना, शिर में चोट लगने से किसी हड्डी का दब कर मस्तिष्क पर दबाव पडना अथवा विषैली वस्तु का मस्तिष्क में पहुंचना इत्यादि कारणों से होता है।

शिर घूमना या चक्कर आना
(Vertigo or giddiness)

इसमें सब चीजें घूमती हुई दिखती हैं, चक्कर आता है, खड़े होने पर आंखों के सामने अंधेरा मालूम होता है और अपने को सभाल नहीं सकता बल्कि किसी सहारे से बैठ जाता है यदि न बैठे तो गिर जाय। इस रोग का कारण रक्त की खराबी, अधिक मद्यपान, अनपच, शारीरिक निर्बलता, बहुमैथुन, मिरगी, सकता, हृदय, यकृत, वृक्क के रोग स्त्रियों में अनियमित मासिक धर्म का होना आदि है।

मस्तिष्क में पानी भर जाना
(Hydrocephobus chronic)

मस्तिष्क के आवरणों के जीर्ण प्रदाह से मस्तिष्क के भीतरी भाग में रक्त से एक प्रकार का तरल पदार्थ जमा हो जाता है जिससे रोगी का मस्तिष्क बड़ा हो जाता है। यह रोग उपदंश, अधिक मद्यपान एवं ग्रन्थी रोग के बच्चों को अधिकता से होते देखा गया है। विशेष कर गर्भ स्थिति बालक एव चार मास के बच्चों को होता है, युवा अवस्था में बहुत ही कम होता है। यह रोग जब गर्भ स्थिति बालक को होता है तब बच्चा जनने में कष्ट होता है। कई प्रकार के बारम्बार मस्तिष्क रोग होने के बाद भी यह रोग हो जाया करता है।

लक्षण—बच्चा उत्पन्न होने के बाद रोगी अच्छा भोजन मिलने पर भी प्रतिदिन निर्बल होता जाता है, मस्तिष्क बड़ा रहता है, माथा और गुद्दी उभरी हुई होती है, मस्तिष्क की चांदिया की हड्डी का जोड़ खुल जाता है और तालू उभरा हुआ होता है जिससे कोई चीज हिलती हुई मालूम होती है, मस्तिष्क की त्वचा पतली तनी हुई होती है उसमें नसें हिलती है, चेहरा तिकौना, माथा चोड़ा और ठुड्डी पतली होती है, मस्तिष्क में पीड़ा और घुमनी मालूम होती है, नींद नहीं आती, रोगी ऊंघता रहता है, आखें अध खुली रहती है और पुतली का संचा-

लने कम होता है, रोगी चिड़चिड़ा हो जाता है, कै, दस्त अथवा कब्ज की शिकायत रहती है, रोगी नाक, कान ओंठ को नोचता है, ऐंठन होती है अत में बेहोश होकर ऐंठन की दशा से ही मृत्यु हो जाती है।

मस्तिष्क के आवरण का प्रदाह

(Simple Meningitis)

इस रोग का कारण अत्यन्त गर्मी, उपदंश, घाव, गठिया, चेचक तथा त्वचा रोग के विष का मस्तिष्क की ओर चले जाना, धूप की गर्मी, चोट, कान, नाक के प्रदाह का मस्तिष्क तक चले जाना, मदिरा पान इत्यादि हैं।

रोग होने के पूर्व सुस्ती, चिड़चिड़ा पन, शिर में दर्द और घुमनी होती है फिर युवकों के सर्दी लगकर और बच्चों में ऐंठन के साथ ज्वर हो जाता है, जिससे बेचैनी रहती है, चेहरा चिंता युक्त; नींद न आना, होता है। पीड़ा और ऐंठन से रोगी निढाल होकर चिल्लाने लगता है, मांस पेशियां फड़कने लगती हैं, सन्निपात के कारण रोगी प्रलाप करता है, दांत पीसता है, आंखें लाल एवं आँसुओं से भरी हुई होती हैं, टकटकी लग जाती है हाथ पांव में ऐंठन होती है, कब्ज रहता है, अनजान में मल मूत्र निकल जाता है, मांस-पेशियां लकवे के कारण ढीली पड़ जाती हैं, अन्त में रोगी बेहोश हो जाता है जो कि मृत्यु की निशानी है।

क्षयी युक्त मस्तिष्क के आवरण का प्रदाह

(Tubercular Meningitis)

इस रोग का असली कारण क्षय है जिसमें मस्तिष्क के आवरणों में प्रदाह हो जाया करता है। खनाज़ीरी प्रकृति के बच्चे जिनकी कि ग्रन्थियाँ सूज जाया करती हैं उन बच्चों की आयु बहुधा एक से पांच साल तक की होती है एवं नवयुवक भी इस रोग से ग्रसित हो जाया करते हैं। मस्तिष्क में चोट लगना, अचानक डर जाना तथा बच्चों में कष्ट के साथ दांत का निकलना आदि भी इस रोग के कारण हैं।

यह रोग तीन भागों में विभक्त है—

१—रोग के पूर्व एक माह तक बच्चा निर्बल, शिर चकराना, ज्वर, हाथ पांव में पीड़ा, चलते समय पांव घसीट कर चलना और अचानक सोते में चिल्लाकर जाग उठना। लघ्वय-ज्वर, चिड़चिड़ा स्वभाव, कभी खेलते २ मा की गोद में जा छिपना यदि दुध मुंहा हुआ तो अपनी माँ की छाती में चिपट जाता है, यदि कुछ बड़ा हुआ तो शिर दर्द बतलाता है। घुमनी के कारण इधर-उधर टेक कर रोने लगता है, चलते समय कभीपांव घसीट कर चलना है। हरे रंग की कै होती है, पाचन शक्ति निर्बल, कब्ज रहना, बच्चा बेचैन औंघता रहता है, नींद न आना, किंचित आहट से जग जाना, प्रकाश सहन नहीं होना आदि होना है इसके एक सप्ताह बाद दूसरा दर्जा शुरू हो जाता है।

२—इसमें तेवरी चढाये चुपचाप पड़े रहना, शिर व्यथित रहना, शब्द सहन नहीं करना, आंखों के सामने चिनगारी उड़ते हुए दिखाई देना, ऐंठन होना, कानों से शब्द सुनाई देना, और बारम्बार चिल्लाना, रोगी बड़ा हो तो शिर दर्द बतलाता है ऐंठन, होती है, स्थानीय लकवा या सन्निपात से लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था के एक दो सप्ताह बाद तीसरा दर्जा शुरू हो जाता है।

३—इसमें रोगी बेहोश पड़ा रहता है, शरीर की मांस पेशियां ढीली पड़ जाती हैं, इसकी अवधि एक से तीन सप्ताह तक होती है। कभी २ एका-एक ऐंठन होकर प्राणान्त कर देता है और कभी झूठा लाभ मालूम होकर कुछ दिन बाद पीछे से अचानक श्वासवरोध होकर मृत्यु हो जाती है।

मस्तिष्क का प्रदाह (Cerebritis)

इस रोग मे मस्तिष्क और उसके तीनों आवरण प्रदाह युक्त हो जाया करते हैं जो कारण आवरण के प्रदाह में बतलाये गये हैं उनके अतिरिक्त खोपड़ी की हड्डियों का मुरदा पड़ जाना, नाक, कान की हड्डियों के रोगों का मस्तिष्क की ओर फैल जाना, रक्त का विषैला

हो जाना, फुफ्फुस प्रदाह, मल मूत्र का बन्द हो जाना. इत्यादि कारण हैं। मस्तिष्क के आवरणों के प्रदाह के कारण मस्तिष्क मे प्रदाह हुआ हो तो शिर दर्द बातचीत मे अधिक बढ जाता है, कै, औंघाई, एंठन, हाथ पांव ठण्डा होना, आरम्भ में आंखों की पुतलियां सिकुडी हुई और बाद में फैली हुई होती हैं, श्वास गहरी ठण्डी और ठीक नहीं चलती, कब्ज, मूत्रावरोध, १०२ डिग्री तक ज्वर, सुस्ती इत्यादि लक्षण होते हैं यह लक्षण किसी रोगी में एक किसी में दो तीन तक होते हैं। इन लक्षणों के एक दो दिन बाद हाथ पांव का ठण्डा हो जाना, बोल नहीं सकता, रोगी चुपचाप पडा रहता है। मांस पेशियों में फड़कन होती है, कर्मेन्द्रिय में फर्क पड जाता है। आरम्भ में जी मिचलाना और कै होने से मस्तिष्क प्रदाह और यदि बारम्बार एंठन हो तो मस्तिष्क के आवरण का प्रदाह समझे। इस रोग का परिणाम अच्छा नहीं होता ९०, ९५ सैकड़ा मृत्यु हो जाती है। इसकी अवधि एक से ४ सप्ताह तक होती है। कभी २ यह रोग क्षय या उन्माद रोग में बदल जाया करता है।

मस्तिष्क का नरम पड़ जाना

(Softing of the Brain)

यह रोग अधिकतर वृद्ध और निर्बलों को हुआ करता है। युवकों में इसका कारण मस्तिष्क में गाठ का पड जाना अथवा मानसिक परिश्रम है।

लक्षण—शिर मे थोडा दर्द, आखों के सामने अंधेरा, बुद्धि में अन्तर आजाना, चिडचिडा स्वभाव, थोडे कष्ट से रोना, हाथ पाव में चींटी रेंगते हुए प्रतीत होना, कभी कड़ापन मालूम होना, कभी सुन्न हो जाना और भोजन के उपरान्त ऊंघते रहना इत्यादि।

मूर्छा (Comma)

इस रोग में मस्तिष्क की नाडियों में रक्त भर जाना है जिससे मस्तिष्क मे दबाव पड कर रोगी बेहोश हो जाता है, इसमें सकता, मृगी, वायुगोला, मस्तिष्क का हिल जाना, दब जाना, प्रदाह, बतौड़ी, पानी या रक्त का सञ्चय हो जाना, लू लगना, बिजली का धक्का लगना, रक्त का विषैलापन इत्यादि कारण हैं। इसमें रोगी मूर्छित पडा रहता है, हाथ पांव नहीं हिलता, आंखें और चेहरा लाल हो जाता है, जगाने से नहीं जागता।

सक्ता (Apoplexy)

इस रोग में मस्तिष्क के अन्दर किसी स्थान का थोडा बहुत रक्त निकल कर बेहोशी सी हो जाती है जिससे रोगी मृतक के समान अपने शरीर को हिला-डुला नहीं सकता, केवल हृदय और श्वास की गति का सञ्चालन होता है। मस्तिष्क की नाड़ियाँ रक्त से भरकर फट जाती हैं और कभी उसमें से रक्त-तरल निकल कर रोग का कारण हो जाता है। यह रोग चालीस वर्ष अथवा उसके बाद की आयु वालों को बहुधा होता है।

इस रोग का कारण—अधिक मैथुन करना, व्यायाम न करना, मस्तिष्क में अधिक रक्त का सञ्चय हो जाना, मद्य अथवा अफीम का अधिक सेवन करना, वृक्क या गठिया रोग के विकृत रक्त से दिल धड़कना, जोर से गाना बजाना, जोर से खांसना, छींकना, शौच के समय अधिक जोर लगाना इत्यादि है।

पूर्वरूप—बारम्बार शिर दर्द, कानो में अनेक प्रकार के शब्द सुनाई देना, दोहरी वस्तु दिखाई देना, नकसीर फूटना, जी मिचलाना, शिर का घूमना, सोने में डर जाना, स्पष्ट शब्द न बोल सकना, आधे चेहरे का लकवा आदि।

लक्षण—रोग उत्पन्न होने के बाद पांच मिनट से सत्ता-इस घण्टे तक रहता है। जिससे रोगी बिलकुल बेहोश मुर्दे की तरह हो जाता है, खुर्राटे से श्वास लेता है, मुंह से फेन निकलता है। आँखों की पुतलियां फैली हुई होती हैं। दांत बन्द हो जाते हैं, निगलने की शक्ति नहीं रहती, मलमूत्र अनजान मे निकल जाता है अथवा अवरोध हो जाता है, हाथ पांव ठण्डे हो जाते हैं। कभी होश में आकर

लकवा रोग से ग्रसित हो जाता है अथवा बुद्धि का भ्रम हो जाता है, कभी-कभी उक्त अवस्था में ही मृत्यु तक हो जाती है।

इसरोग की पहिचान मूत्र विष (Uraemia) मिरगी (Epilepsy) मूर्छा, अफीम या मदिरा की बेहोशी से करते हैं जैसे—मूत्र विष मे रोगी का मूत्र बन्द हो जाता है श्वास में मूत्र की गन्ध आती है और हाथ पाँव में ऐंठन होती है। मद्य की मूर्छा मे मुख से मद्य की बास आती है और दोनो आंखों की पुतलियां एकसी होती हैं याने एक की फैली और एक की सिकुडी नहीं होती और जगाने पर हां हूं करता है। मिरगी की बेहोशी में हाथ पाव मे ऐंठन होती है, मुख से झाग निकलता है परन्तु सक्ता के समान खर्राटे की तरह श्वास नहीं लेता। अफीम विष की बेहोशी में रोगी जोर-जोर से खर्राटे से श्वास लेता है, दोनों नेत्रों की पुतलिया सिकुड़ी हुई होती हैं और जगाने मे जाग पडता है। स्त्रियों के हिस्टोरिया में मुख से झाग नहीं निकलता और थोडी देर में होश में आ जाती है।

चिकित्सा

शिरो रोग पर पूर्ण विवेचन और उसके अनुसार चिकित्सा तो शिरोरोग पर विशेषांक निकले तब ही लिखी जा सकती है क्योंकि विषय बहुत बडा है, स्वतन्त्र रूप से एक ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है। फिर भी साधारण शिर रोग (शिर दर्द) पर प्रयोग लिखा जा रहा है इसके प्रथम एक आसन का प्रयोग लिख, रहा हू जो कि मेरे स्वत पर अनुभावित है—

बहुत वर्ष पूर्व की बात है कि मैंने मनोविज्ञान की साधना की उसके साथ लिखने पढ़ने का कार्य भी अधिक करता रहा, रात्रि का जागरण भी होता था थोड़े दिनों के बाद मेरे शिर में दर्द उठा यह दर्द दौरे के साथ हुआ करता था, बहुत कुछ चिकित्सा की परन्तु लाभ नहीं हुआ दर्द के समय तो ऐसा मालूम होता था कि क्या करूं कभी-कभी तो जीवन से भी निराश हो जाना पड़ता था। मनोविज्ञान से भी इस दर्द को दूर करना चाहा परन्तु असफल रहा इसी बीच में आसन सम्बन्धी विषय पर एक महात्मा का भाषण सुनने को मिला। आसन सम्बन्धी पुस्तक मगाकर अध्ययन किया। मालूम हुआ कि शिर दर्द को दूर करने के लिए शीर्षासन मे अपूर्व गुण है, इसके अतिरिक्त यदि नियम पूर्वक शीर्षासन किया जाय तो शरीर के सम्पूर्ण अवयव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं। शीर्षासन पर विवेचना पूर्ण लेख आगामी के किसी अन्य अङ्क में लिख भेजूंगा। बस मेरे शीर्षासन करने के द्वारा थोडे ही दिनों में मेर शिर दर्द दूर हो गया जो कि आज पच्चीस वर्ष के लगभग होगये हैं फिर नहीं उठा। अब यहा मेरे अनुभव मे आये हुए योगों को लिखना जिससे सफलता मिलने की पूर्ण आशा है।

षटविन्दु तैल

४२—तिल तैल १ प्रस्थ
बकरी का दूध १ प्रस्थ
भाँगरे का रस ४ प्रस्थ
एरण्ड मूल तगर
सोंये जीवन्ती
रास्ना सेंधा नमक
दालचीनी वायविडंग
मुलहठी सोंठ

प्रत्येक ४-४ पल

—इन्हें अधकुट करके जल से क्वाथ बना कर ६४ पल पानी में पकावे जब अष्टमांश शेष रहे तब उतार कर छानले। तैल, दूध और भांगरे के रस में मिला कर पकावे जब तैल मात्र शेष रहे तब छानकर नाक में ६-६ बूंद डालें। इससे सम्पूर्ण शिरोरोग दूर होता है एवं दांत, केश दृष्टि में भी लाभप्रद है। कई बार जो ऐसा देखने मे आया है कि शिर दर्द से रोगी रोते आया है और इस दवा के प्रभाव मे हसते गया है।

गुञ्जा तैल

५३—तिल तैल	४ तोला
काँजी	४ तोला
भांगरे का रस	४ तोला
गुञ्जा	१ तोला

—गुञ्जा को २६ तोला पानी में पकावें जब २ तोला शेष रहे तब छानकर उक्त दवाइयों में मिलाकर मन्द अग्नि से पकावें तैल मात्र शेष रहने पर छान कर नस्य लेने से, आधाशीशी, शङ्खक, भौंह आदि शिरोरोग में अच्छा लाभ होते देखा गया है।

महा लक्ष्मी विलास रस

५४—अभ्रक भस्म सहस्र पुटी लोह भस्म पाचसौ पुटी शुद्ध मीठा तेलिया शुद्ध कृष्ण धतूरा बीज शुद्ध भांग का बीज त्रिफला त्रिकुटा विधारा बीज नागर मोथा छोटा गोखरू पीपरामूल गाठ वाली उत्तम प्रत्येक समभाग

—लेकर धतूरे के रस (हम तो पानी से ही खरल करते हैं) की भावना देकर १-२ रत्ती की गोलियां बनालें। यह शिर रोग को दूर करने में अद्वितीय है।

गुप्तांजन पेनबाम

५६—श्वेत कच्चा तिल तैल	६ तोला
श्वेत मोम	१ तोला

—दोनों को गरम करे जब मोम पिघल जाय तब छान लें और उसमें—

कपूर	१ तोला
यूकेलिप्टस आयल	६० बूंद
दालचीनी तैल	१६० बूंद
आयल सैंथापिप	१२० बूंद

—मिला दें। इसकी मालिश से शिर दर्द और अन्य स्थानों के दर्द में भी आश्चर्यजनक लाभ होता है।

तथा—

५७—१ रत्ती कपूर को १ तोला खोआ में मिलाकर खाने से आधाशीशी, सूर्यावर्त आदि रोगों में लाभ करता है।

शिरोरोग पर यूनानी चिकित्सा

१—साजिज—

यह साधारण शिर दर्द है, गुप्तांजन लेप लगाने से भी दूर हो जाता है—

५८—लाल चन्दन	मामीसा
नीलोफर	कपूर
रसौत	प्रत्येक समभाग

—लेकर ताजी धनियां की पत्ती के रस के अभाव में सूखे धनिया के क्वाथ से पीसकर गुल रोगन मिलाकर शिर में मालिश करें। तथा—

५९—खुर्फा बीज	धनियां
वंशलोचन	ककड़ी बीज
काहू	प्रत्येक समभाग

—लेकर शर्बत बनफसा के साथ पीना लाभप्रद है।

२—माद्दी—

यह वात, पित्त, कफ, रक्तज, (दोषज) शिरो रोग हैं आयुर्वेद मतानुसार निम्न चिकित्सा करें—

६०—*वातज*—एरण्ड मूल	कूठ

—दोनों को कांजी से पीसकर लेप करे।

पित्तज—६१—नीलोत्पल	खस
लाल चन्दन	बला
मुलहठी	नखी
प्रत्येक समभाग	

—लेकर दूध से चन्दन की तरह पीस लेप करना।

६२—*कफज*—मोथा	कुष्ट
पीपर	सोया बीज

नीलोत्पल सोंठ

प्रत्येक समभाग

—लेकर जल से पीस कर लेप करें ।

६३–रक्तज—आलू बालू पित्तपापडा
लिहसोढा उन्नाव
बनफ्सा इमली

प्रत्येक समभाग

—लेकर इनका क्वाथ बना तुरञ्ज बीज डाल कर पीवें ।

३–मुशार—

आमाशय के बिगडने से शिर दर्द होता है ।

—मृदु रेचन देवे तथा हाजमे का चूर्ण खिलावें जुलाव लेना भी हितकर है । अथवा—

६४—अनार का पानी या खजूर का पानी या गोल सिमाक के पानी के साथ आटा सान कर रोटी बना प्रात. काल १-४ ग्रास खावे ।

गर्भ के सयोग से दर्द होने पर रात्रि को सोते समय गुलकन्द का सेवन करे और शिर में गुलरोगन की मालिश करे ।

तिल्ली, यकृत, गुरदा, पीठ, पिंडली, हाथ, पाव, पेट के ऊपर की झिल्ली इत्यादि के सयोग से शिर दर्द होता है तब उसके प्रधान रोग की चिकित्सा करने से शिर दर्द दूर हो जाता है, अतएव सयोगिक शिर दर्द पर यूनानी मत एवं आयुर्वेद में भी प्रधान कारण को दूर करना लिखा है ।

४–जोफे दिमागी—

६६—अर्क वेदमुश्क पिलावें, आवले का या ब्राह्मी के तैल की मालिश करें । तैल का प्रयोग आगे लिखा गया है ।

५ कुव्वतहिस्से दिमागी—लेप

६७—खसखास का छिलका काहू
भांग की पत्ती खुरासानी अजवाइन
अफीम प्रत्येक समभाग

—इनको सौंफ के क्वाथ से चिकना पीसकर शिर पर लेप करे अथवा फलूनियां माजून खिलावे—

६८—जुन्दवेदस्तर २½ माशा
कफूर ६ रत्ती
दरूनज अकरबी कचूर
अनविध मोती कस्तूरी

प्रत्येक १॥-१॥ माशा

गिले अरमूम अफीम

प्रत्येक ३५—३५ माशा

बालछड फरफयून
अकरकरा प्रत्येक ७-७ माशा
सफेद मिर्च अजवाइन

प्रत्येक ७०–७० माशा

—इन सब को कूट पीस कर कपडछन कर बराबर शहद मिलाकर एक वर्तन में रखकर छ महीने बाद कार्य में लावे । इस पर मेरा अनुभव है कि यदि जमीन के अन्दर गढा खोद कर अथवा धान की भूसी मे केवल एक महीने रख कर कार्य मे लावे तो अच्छा बनता है और लाभ भी उत्तम करता है ।

मात्रा—१ से ३ माशा तक है ।

६–अर्जी—

यह ज्वरादि रोगों के कारण से होता है जब तक ज्वर दूर नहीं होगा शिर दर्द भी दूर नहीं होता । शिर के दवाने तथा शिर या कनपटी पर—

६७—तिल तैल ५ तोला
युक्यूलिप्टस आयल २॥ तोला
आयल सिनामोनी (दालचीनी तैल) १। तोला

—मिलाकर मालिश करने से दूर हो जाता है ।

७–युवसी—

६८—इसमें मस्तिष्क को बल पहुंचाने वाली औषधि देवे और बादाम रोगन की मालिश करे । षट्‌बिन्दु तैल नाक में डालना लाभदायक है ।

८-वर्मी—

६९—खतमी बीज खुब्बाज़ी
मकोय गुलबनफसा
सनाय इन्द्रायन का गूदा
एरण्ड का तैल अमलतास का गूदा

प्रत्येक समभाग

-लेकर हुकना करें। तथा—मूंग की रोटी बनाकर एक तरफ सेके जिस तरफ सिकी नहीं है उस तरफ गुलरोगन लगा कर शिर में बाँधे। तथा—

७०—रसौत यव का आटा
केशर मुर्गी के अण्डे की सफेदी

—मिलाकर लेप करे।

९-जिमअ्ाई—

अच्छी तरह नींद लेना, दूध पीना, शरीर एवं शिर में तैल की मालिश करना और सभोग की अधिकता को बन्द करना।

१०-हम्मासी—

थोड़ी देर विश्राम करने से स्वत. शान्त हो जाता है।

११-मद्यपान —

७१—सिकञ्जबीन सोये के क्वाथ में मिलाकर वमन करावे वमन कराने से मद्यपान का शिर दर्द दूर होता है।

१२-सकती (गिर पड़ने की धमक)—

१३-जर्बी (चोट लगने से)—

यदि शिर में चोट लगने से अन्दर भेजे में न लगा हो अथवा वहा की झिल्ली न फटी हो तब यदि शिर में दर्द होवे तो निम्न इलाज करे अन्यथा रोग एक प्रकार का असाध्य हो जाता है और फिर इसके लिये विशेष इलाज की जरूरत रहती है।

७२—सूरद की पत्ती टहनी सहित यव
मसूर का आटा गिले इरमनी
मामासा रसौत
कीकर का रस चन्दन

प्रत्येक समभाग

—लेकर वारतङ्ग के पानी से पीसकर गुलरोगन मिला कर लेप करे अथवा गुलरोगन में सिरका मिलाकर मालिश करे।

१४-बेजी—

७३—शिर का बाल बनाकर केशर, जावित्री, जायफल, इन्हें नमक के पानी से पीस गुनगुना लेप करे अथवा-अदरक का मुरब्बा खाना हितकर है।

१५-बोहरानी—

इसमें यह देखना जरूरी है कि किस रोग के दौरे से शिर दर्द होता है, प्रधान रोग के दूर करने का उपाय करे। साधारणतः—

७४—उन्नाव लिसोढ़ा
आलू बुखारा मुनक्का
बेदाना इमली

प्रत्येक समभाग

—लेकर शीरेखिश्त को भिगाकर इसका जल पिलावे या आलू बुखारा का शर्बत पिलावे। अथवा—

७५—उन्नाव लिसोढ़ा
आलू चुकन्दर के पत्ते
जौ का घाट नीलोफर
बनफसा प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ बना बस्ति देवे।

१६-शम्मी—

७६—अधिक तेज बदबू या खुशबू के सूंघने से दर्द होता है। बदबू के कारण दर्द हुआ है तो खुशबूदार इत्र कपूर इत्यादि सूंघने से दूर हो जाता है और यदि रोज खुशबू जैसे कस्तूरी अम्बर आदि सूंघने से दर्द हो गया है तो शिर को तरावट पहुँचाने वाली चीजों का उपचार करें जैसे—शिर में गुलरोगन में कपूर मिलाकर मालिश करे या शिर में ठण्डे पानी का भटेड़ा देवे, निद्रा लेने से भी दर्द शान्त हो जाता है।

१७-सुदी—

७७—जूफा अफतीमून
हाश विस्फायज
प्रत्येक समभाग

—लेकर काढ़ा मे गुलकन्द डालकर पिलाना। बाद में ८-१० दिन के हुब्बे शवियार की गोली रात को सोते समय देवे—

७८—निशोथ लाहौरी नमक
एलुवा गारीकून
रूमी मस्तगी प्रत्येक समभाग—

लेकर पीसकर शहद से चने प्रमाण गोली बनावे। १ या २ गोली पानी से सेवन करे।

१८-दुदी—

७९—प्रथम हुब्बे शवियार की गोली खिलावे बाद ४-६ दिन के शफ़तालू के पत्ते के रस मे एलुआ मिला कर नाक में डाले अथवा—मुलीम और अफसंतीन महीन पीस कर नास लेवे।

१९-जौजई—

८०—वासलीकया और सरेरू की फस्द खोले अथवा—अमलताश और कासनी का शीरा मिलाकर हुकना करे। अथवा—

८१—सुपारी गिले अरमनी
जौ बाकले का आटा
जरावन्द चदन काही
प्रत्येक समभाग

—लेकर इनको पानी में पीसकर शिर में लेप करें। अथवा—

८२—गुलरोगन बनफसा का तेल
—स्त्री के दूध में मिलाकर उसमें थोड़ा रसौत मिलाकर कान और नाक में डालें।

२०-अदवे नौमी—

८३—अजीर की लकड़ी की राख सिरका मे मिलाकर लगावें।

२०-शकीकी—

८४—कागज और कुत्ते की हड्डी जलाकर नासिका द्वा धुआं दें। अथवा—

८५—अफीम केशर
बबूल का गोंद मुर्गे के अडे की सफेदी
प्रत्येक समभाग

—मिलाकर कागज पर लेप करके जिस तरफ दर्द हो तरफ के कनपटी से लगाना। अथवा—

८६—तिल चिरौंजी
बादाम की मिगी छुहारा
घीया के बीज की मिगी गेहूँ की भूसी का शीरा
प्रत्येक समभाग

—लेकर गाय के दूध के साथ शक्कर मिलाकर खाना। अब यहां नुस्से लिखे जा रहे हैं—

अयारज

८७—इन्द्रायन का गूदा गारीकून
एलुआ ५-५ भाग
अनीसू तज
गूगल काली मिर्च
सोंठ उस्तुखुद्दूस
गुलाब फूल बादरञ्ज बोया
आकाश बेल ३-३ भाग
पोदीना बिजौरे का छिलका
गावजवां २-२ भाग

—इनको पीस कपड़छान कर इसे शहद मिलाकर दिन रखा रहने दे बाद काम में लावें।

खुराक—४ माशे १ तोले तक।

गुण—वातज, पित्तज, कफज, शिर दर्द दूर होता है, के मवाद को दूर करता है, कर्ण पीड़ा, अर्द्धाङ्ग कपन वात' लकवा आदि को दूर करता है।

इतरीफल उस्त खद्दूसी

८८—त्रिफला मिलित ३ भाग
उस्तखुद्दूस गुलबनफसा
प्रत्येक दो-दो भाग
अमरबेल अनीसूं
बादरज बोया चीता
प्रत्येक अर्द्ध भाग ।

—लेकर चूर्ण करके तिगुना शहद की चाशनी में मिलावे ।

मात्रा—१ से २ तोले तक ।

गुण—इससे मस्तिष्क रोग दूर होता है और चर्म रोग भी दूर होता है ।

हब्बशबयार

८९—काली हरड़ सनायमकी
बहेड़ा ३—३ भाग
गूगल १ भाग
गुलाबफूल कालादाना
एलुवा प्रत्येक ४—४
उस्मारह रेवन्द मस्तंगी
प्रत्येक २—२ भाग

—इन्हें पीस शहद से १ माशे की गोलियां बनावें ।

मात्रा—रात्रि को सोते समय १ से ४ गोली तक खावें ।

गुण—मस्तिष्क सबन्धी सब रोग दूर होते हैं और मस्तिष्क के मवाद को शुद्ध करती है ।

आमले का तैल

९०—हरे आवले का रस ४ सेर
शुद्ध कच्चा सफेद तिल तैल १ सेर

—लेकर इनको पकावें जब तैल मात्र शेष रहे तब छानले और तैल में

फूल प्रियंगू, अगर
नागर मोथा कचूर
जटामासी पुन्डरीक
श्वेत चन्दन खस
सुगंधवाला पाँढरी (पांचफूल)
केवड़ा की पत्ती १—१ तोला

—लेकर अधकुट करके तैल में डाल कर एक पात्र में रखदे और पात्र का मुख वन्द करके १५ दिन नित्य प्रति धूप में रखे । पात्र को १—२ बार दिन में हिला दिया करे फिर तैल को मोटे वस्त्र में छान ले और उस तैल में—

हिको चन्दा हिको ह्वाइट रोज़
हिको गुलशन लेवेण्डर
प्रत्येक ½—½ औंस

—लेकर आयल मैंन्थापिय १ औंस मिलादे और बोतल में भर के बोतल में मजबूत कार्क लगा कर पन्द्रह दिन पड़ा रहने दे दिन में १-२ बार हिला दिया करें । बस उत्तम सुगन्धित तैल तैयार हो गया यदि रङ्ग दार बनाना हो तो हरा रङ्ग डाल दो । यह तैल जब मैं रायपुर में था मेरा पेटेण्ट था । बाजारू आंवले के तैल से यह लाभदायक और गुण शाली है । शिर रोग, नेत्र रोग इत्यादि में लाभप्रद तो है ही साथ ही स्मरण शक्ति को भी बढ़ाने वाला है ।

ब्राह्मी का तैल

९१—ब्राह्मी का क्वाथ १ सेर
हरे ब्राह्मी का रस मिल सके तो ८ छटांक
तिल तैल १ सेर
आंवले का स्वरस या क्वाथ ८ छटांक

—लेकर इसे पकाना जब तैल मात्र शेष रहे तब छान कर उसमें—

कपूर यूक्येलिप्टस
आवला प्रत्येक १-१ तोला

—लेकर डालदे और—

नागर मोथा कचूर

(शेषांश पृष्ठ ४७ पर देखें)

प्रसूता के शिरदर्द पर अनुभवपूर्ण चिकित्सा

लेखक—न्यायायुर्वेदाचार्य वैद्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, लाखाभवन, जबलपुर सी० पी०

लेखक

माननीय श्री प० चन्द्रशेखर जी शास्त्री प्रधान चिकित्सक जैन धर्मार्थ चिकित्सालय लाखाभवन के सफल चिकित्सक हैं। आप आयुर्वेद के योग्य विद्वान् हैं।

आपने अपने लेख को नूतन आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है। आपके विवेच्य विषय जनता के नैतिक सम्पर्क से ओतप्रोत हैं। दैनिक चिकित्सा कार्य में चिकित्सकों को आपके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने से पूर्ण लाभ होने की आशा है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

बहुत अरसे की बात नहीं नवम्बर १६५१ की बात है। जवाहर गञ्ज मे एक जैन परिवार की प्रथम-प्रसूता महिला के सिर में, प्रसव के दो–सप्ताह उपरांत बडा जोर का दर्द उठा। प्रारम्भ में आयुर्वेदिक चिकित्सा शुरू की गई। फिर डाक्टरों की चिकित्सा कराना शुभ समझा गया। एक डाक्टर ने जांच करने के बाद बताया टी० बी० का शक है। डाक्टर नाथ के यहां जाकर खून की जाच कराओ। तत्काल २०) खर्च करना, जरा ऐसा हो लगा। दूसरे डाक्टर की सलाह ली गई। उन्होंने वेदनाहर प्रयोग करके मात्र थोडे समय के लिए दर्द कम होने मे सहायता दी।

दवा का असर जितनी देर रहता था, रुग्णा को दर्द महसूस नहीं होता था, किंतु एक प्रकार की अशक्ति आ घेरती थी। बच्चे के लिए दूध भी नहीं होता था। फलत फिर वैद्य की चिकित्सा हुई। वहां भी कोई लाभ न हुआ तो रुग्णा के घर वालों की हिम्मत टूटने लगी। उन्होंने पहिले डाक्टर की सलाह के अनुसार खून की जांच कराना ही उचित समझा।

खून की जांच हुई। डाक्टर ने बताया कि अभी कुछ नहीं कह सकते। स्टूल और यूरिन (टट्टी और पेशाब) की जांच और होनी चाहिये। खून लेने के तीसरे दिन उस की जाँच रिपोर्ट मिली थी। इतने दिन रुग्णा सिर दर्द से तड़फड़ाती रही। अब और देर लगाना ठीक प्रतीत न होता था। किंतु टी० बी० का भय लगा हुआ था। बेचारे घबड़ाये हुये थे।

अन्त में उसी दिन तत्काल धर्मार्थ औषधालय में आकर उन्होंने रोगी का पूरा पूरा समाचार बताया। अपनी परेशानी की स्थिति भी मेरे सामने रखी मैंने कहा कि मुझे रोगी को दिखाना आवश्यक है। मैंने जाकर रोगी को देखा समझ में आगया कि यह दर्द प्रसूत के कारण था और अन्धाधुन्ध चिकित्सा से ठीक न हुआ।

रुग्णा को कब्ज रहता था। प्रथम दिन मैंने निम्नलिखित व्यवस्था की।

६२—प्रतापलंकेश्वर	१ रत्ती
मौक्तिक भस्म	१ चावल
स्वर्ण वसन्त मालती	१ चावल
कपर्द भस्म	१ रत्ती
प्रवाल भस्म	आधी रत्ती

यह एक मात्रा है, ऐसी ३ मात्रायें, ६-६ घन्टे बाद देने को बताई गई। अनुपान गुलकंद था। प्रत्येक पुडिया के साथ गुलकंद १ तोला दिया जाता था। ऊपर से थोड़ा दूध भी दिया जाता था।

सिर पर मलने के लिये बढ़िया गुल-रोगन की व्यवस्था की गई। दिनमें तीन से चार बार तक सिर और माथे पर गुलाब का असली तैल मला जाता था।

दूसरे दिन रिपोर्ट मिली। दर्द कम है दस्त भी साफ हुआ। हरारत वैसी ही है, जैसी पहले रहा करती थी। मासिक स्राव पाच दिनसे चालू है। कभी कभी बेचैनी बढ़ जाती है।

इस रिपोर्ट पर औषधि यही रखी गई। मात्र दुपहर की पुडियों मे 'रक्तवल्लभ रसायन, और मिलादी गई। (रक्तवल्लभ रसायन प्राणाचार्य भवन, विजयगढ से मिलती है, इसका प्रयोग अत्यार्तव में किया जाता है) अनुपान अनार का एक तोला रस गुनगुना करके बताया गया। इस बार दो दिन की औषधि व्यवस्था की गई।

बाद से रुग्णा के पति ने बताया कि तबियत ठीक है कुछ हरारत ही विशेष बढ़ जाती है। सिर दर्द थोड़ा है। बेचैनी भी कम है। किंतु भूख की इच्छा बिलकुल भी नहीं है। आज रात को यकायक दो मिनट के लिये जोर से सिर दर्द हो गया था।

परिचारक की इस शिकायत पर मैंने गभीरता से विचार किया। अन्त मे एक भूली हुई बात याद आगई उसे ही मैंने काम में लाना ठीक समझा।

मैंने परिचारक से बताया कि तुम फला तेल वाले (इत्रवाले) के यहां से निम्नलिखित तैल लाओ और उन को मिला सिर पर मल वाओ।

६३—काहू का तैल	कद्दू का तैल
बादाम का तैल	गुलाब का तैल

प्रत्येक १-१ तोला

—लेकर शिर पर मालिश कराई गई। औषधि प्रयोग स्थिरता पूर्वक पूर्वोक्त ही चलाया गया। खाने के लिये फलाहार और पीने के लिये गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी दिया जाता था।

इस प्रकार यदि आपको कभी प्रसूता के सिर दर्द से उलझना पड़े तो खाने-लगाने में इन दोनों प्रयोगों की सहायता लेने मे प्रमाद न करें।

प्रतापलकेश्वर और स्वर्णवसन्तमालती का मिश्रण प्रसूता सिर दर्द पर सत्वर एव स्थायी लाभ करता है। काहू-रोगन, कद्दूरोगन, बादाम रोगन और गुलरोगन तात्कालिक लाभ प्रदर्शनार्थ उत्तम है, किंतु इनमे स्थायी लाभ नहीं होता। कब्ज हो तो औषधि प्रयोग गुलकद मे करें, ऊपर से गरम दूध पिलावें।

स्मरण रहे कि प्रसूता की चिकित्सा में अन्धाधुन्ध ठंडे उपचार प्रारंभ न कर देवें। अन्यथा लेने के देने पड जायगे। विवेक पूर्वक यथायोग्य ठंडे उपचार भी

करने चाहिये। प्रारंभिक ४२ दिन तक मादिल उपचार करें। चिकित्सा पद्धति के अनुसार प्रसूता की चिकित्सा में गरम उपचार ही किये जाते हैं। यह है— *प्रसूता के सिर दर्द मिटाने का शर्तिया उपाय।*

संभोगांत में होने वाले शिरदर्द की सफल चिकित्सा

अनेकों व्यक्तियों के, यहा पर पुरुष-व्यक्तियों से मतलब है. मैथुन करने के पश्चात् वीर्य क्षरण होते ही, सिर में भी दर्द शुरू हो जाता है। इसका मूल कारण यह है कि उनमें वीर्य का भण्डार नाम मात्र होता है इसलिए ऐसी नौबत आजाती है। वीर्य निकल जाने से दिमाग कमजोर हो जाता हैं, फलत. दर्द होने लगता है। ऐसी स्थिति में हम अपनी हजारों वार की अत्यधिक सरल अनुभूत चिकित्सा विधि पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं—सभी पाठक उससे अवश्य लाभ उठावें।

कतिपय आवश्यक हिदायतें—

१—प्रति दिन मैथुन मत करिये। अधिक से अधिक सप्ताह में एक वार, यदि किसी तरह न रहा जाय तो दो वार से अधिक मैथुन कदापि न करिये।

२—वाजीकरण औषधियां व उत्तेजक औषधें विल्कुल न खाइये। इन से एक वार तो शीघ्र लाभ प्रतीत होता हैं किन्तु असर दूर होते ही वेहद कमजोरी आ पकडती है। विषैली चीजें ऐसी अवस्था में बडी खतरनाक होती हैं, उनसे बचते रहिये।

३—पौष्टिक भोजन करिये, किन्तु ठूंस-ठांस नहीं। अपनी पाचन शक्ति देखकर योग्य मात्रा में लेते रहिए। वीर्य वर्धक और पोषक उपाय करते रहें। इसके लिये प्राणाचार्य भवन, विजयगढ (अलीगढ) से 'वाजीकरणांक' मँगाइये। अथवा वहां से प्राप्त होने वाली 'सौ रोगों का सफल इलाज' पुस्तक मगाइये और उसमें २० पृष्ट वाला वह प्रकरण देखिये कि 'अब आप निर्बल क्यों रहें ?'

शक्ति वर्धक पौष्टिक एवं सिर दर्द नाशक योग—

शक्ति वर्धक होने पर भी यह प्रयोग अत्यन्त स्वादिष्ट एवं निरापद है। मैं इसका बड़े लम्बे अरसे से प्रयोग कर रहा हू। सफलता हरदम सामने रहती है।

प्रयोग इस प्रकार है—

६३—बढ़िया गाय का दूध यदि पाचन शक्ति पर्याप्त अच्छी हो तो भैंस का दूध लेकर रखिये। स्मरण रखिये कि दूध शाम का दुहा हुआ होना चाहिए। अनुभव एव आयुर्वेद शास्त्र के अध्ययन से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि प्रात काल के दुहे हुए दूध से शाम का दुहा हुआ दूध उत्तम है। आयुर्वेद मे इसका कारण बताया है कि—

व्यायामानिल सेवनात्

अर्थात् गाय भैंसें दिन भर चलती फिरती रहती हैं, उनका व्यायाम होता रहता है और साथ ही साथ जगल की पवित्र ताजी वायु प्राप्त होती रहती है, अत. सायकाल का दुहा हुआ दूध, प्रात काल की अपेक्षा अधिक उत्तम है। अनुभव द्वारा भी यही बात ठीक प्रमाणित हुई है।

यदि दूध आधा सेर हो तो उसमें ५ या ६ पिण्ड-खजूर लें क्योंकि जाडो के दिनो मे ये सर्वत्र सुलभ हैं। जब अन्य ऋतु हो तो ये ताजे पिण्ड खजूर न मिल सकें तब वढ़िया बिना घुने छुहारे (खारक) काम में ले। इनको दूध मे डाल दें। धीमी-धीमी आग से दूध को उबालें। दूध में उफान न आयगा पिण्ड खजूर धीरे-धीरे उबलते रहेंगे। आध घण्टे उवालें और फिर रख छोड़ें।

आप देखेंगे कि दूध के ऊपर घी तैरने लगा है। वह रबड़ी जैसा गाढ़ा एव अत्यधिक स्वादिष्ट हो गया है। मिठास प्रायः इतनी हो जाता है कि शक्कर मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं होती। बस आपका प्रयोग तैयार है।

चाहे आप मैथुनोत्तर सिर दर्द से परेशान हों या न हों, यह प्रयोग सबके लिये एक-सा लाभप्रद है। मैथुन के बाद शरीर की गर्मी शान्त होने पर, एक चम्मच से पिंड खजूर को फोड़िये और उसकी गुठली निकाल कर

बाहर फेंक दीजिये। इस आधे पिंड खजूर को चम्मच में थोड़े दूध के साथ लेकर खा-जाइये। इसी प्रकार सारे पिंडखजूर धीरे धीरे भली भाति चवाते हुए खावें। अन्त में चम्मच से थोडा थोड़ा दूध लेते जाय। वहां पर जो पिंडखजूर के छिलके हैं, उन्हे अलग कर दीजिये। उनके साथ दूध की मलाई लिपटी हो तो उसे भी खा-जाइये। बाद मे चारों ओर दूध की मलाई जमी हुई होगी, इसे चम्मच से खुरचकर खाइये। बड़ा आनन्द आयगा। वैसे इसके सारे भागों से ही आनन्द आता है। किंतु तूफान-मेल की रफ्तार से खा--डालना ठीक नहीं। धीरे-धीरे चबाकर खाइये।

इससे गई हुई शक्ति तत्काल प्राप्त होती है। हजारों रोगियों का अनुभव है। अपनी औषधि की बिक्री मद्दे नजर रखते हुए जाड़ो में कोई पाक आदि और दे दिया जाता है ताकि रोगी उसे खाकर और अधिक उत्साहित हो। गरमी के दिनों मे पुड़ियों के साथ उसे दिला देते हैं। सभी रोगी उससे सतुष्ट होते हैं।

यदि और भी अधिक शक्ति प्राप्त करनी हो तो निम्न-लिखित-मिश्रण के साथ इसका प्रयोग कीजिये। मैथुनो-त्तर होने वाला सिर दर्द अवश्य न होगा।

मिश्रण इस प्रकार है—

६४—स्वर्ण वङ्ग	आधी रत्ती
नाग भस्म	आधी रत्ती
कामसुधा मौक्तिक	आधी रत्ती
प्रवाल भस्म (चन्द्र पुटी)	१ रत्ती
जायफल	दो रत्ती
गिलोय सत्व	१ रत्ती

—मिलाकर एक पुडिया बनालें। मैथुनोत्तर इसे मलाई में चाटकर ऊपर से पिण्डखजूरों का दूध पीजिये। लासानी प्रयोग है।

(पृष्ठ ४३ का शेषांश)

सुगन्ध वाला पावडरी	बालछड़
छोटी इलायची	प्रत्येक २-२ तोला

—को लेकर अधकुट करके तैल में डाल दे और पात्र का मुख बन्द कर पन्द्रह दिन पड़ा रहने दे प्रति दिन १-२ बार वर्तन को हिला दिया करें बाद में छान कर—

आयल औरेञ्ज	हिको लिली
हिको नरगिस	एक-एक तोला

—मिलाकर शीशी में रख कर पन्द्रह दिन रखने के बाद कार्य में लावे। यह तैल मस्तिष्क के सम्पूर्ण रोगों को दूर करता है। स्मरण शक्ति के बढ़ाने में यह अच्छी चीज है अतएव विद्यार्थी, वकील आदि मान-सिक परिश्रम करने वालों को सेवन करना चाहिए। इस तैल को रात्रि में सोते समय शिर में धीरे-धीरे मालिश करें तो अच्छा लाभ होता है।

युवकों की शुक्रक्षयजन्य शिरपीड़ा

लेखक- वैद्य रामस्वरूप शर्मा आयुर्वेदाचार्य उखलाना (अलीगढ)

आयुर्वेदाचार्य श्री प० रामस्वरूप जी शर्मा वैद्य गोपाल आयुर्वेद भवन उखलाना के अधिपति हैं। आपने ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के मौलिक विषय को लक्ष्य कर के "युवकों की शुक्र क्षय जन्य शिर पीडा" के शीर्षक के आधीन समय की सम्प्रतिक वेदना को अनुभव करते हुए उपकार पूर्ण कार्य किया है। निःसन्देह वर्तमान में युवक और युवतिया वहु सख्या में शिर पीड़ा से ग्रसित हैं। अपने विवेच्य विषय को आपने सुन्दर रीत्या प्रतिपादित करते हुए साहित्यिक रुचि का प्रभाव पाठकों के हृदय पर अङ्कित करने का सफल प्रयत्न किया है। आप अनुभवी और योग्य चिकित्सक हैं।

प्रिंसीपल, हरदयाल वैद्य

ऐसी किवदन्ती है कि एक समय यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक से सैक्रोटीज़ (सुकरात) से किसी ने प्रश्न किया कि मनुष्य को स्त्री सभोग कितने समय के पश्चात् करना चाहिए-उसने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण आयु में केवल एक वार ही स्त्री सम्भोग करना चाहिए, उस प्रश्न कर्ता ने फिर दुवारा प्रश्न किया कि कोई मनुष्य इतना कठिन सयम न रख सके तब क्या किया जावे? सैक्रोटीज ने उत्तर दिया कि तब सारे जीवन में केवल तीन बार भोग करे। फिर वही प्रश्न, प्रश्न कर्ता ने पुनः किया तब उस ने उत्तर दिया कि दस वर्ष के पश्चात् भोग करे किंतु प्रश्न कर्ता बराबर यही प्रश्न करता गया कि इतने समय संयम न रख सके तब अन्त को सैक्रोटीज ने उत्तर दिया कि एक मास के पश्चात् ही विषय भोग करे किंतु प्रश्न कर्ता ने फिर वही प्रश्न किया कि इतना संयम न रख सके तब सेक्रोटीज़ ने झुंझलाकर उत्तर दिया कि यदि इतने समय भी वह संयम से न रह सके तब उसको हर समय शिर मे कफन बाधे रहना चाहिए कि उसकी न मालूम किस समय मृत्यु हो जावे।

पाठक विचार करें कि सेक्रोटीज़ के कथनानुसार आज कल का युवक वर्ग क्या मृत्यु मुख में जाने के लिये तैयार नहीं बैठा है, जिसका स्त्री सभोग का कोई समय निश्चित ही नहीं है।

डा० ऐसकिन महोदय एक स्थान पर लिखते हैं कि मैंने पुलिस के द्वारा प्राप्त कई लाशो की परीक्षा की है जो वैश्याओं के यहा से प्राप्त हुई उनमें विषादि अथवा अन्य कोई मृत्यु कारक चिन्ह नहीं पाया गया केवल अत्यधिक विषय भोग से वीर्य क्षय होने के कारण वात नाडी की क्रिया बन्द होने से ही उनकी मृत्यु होना निश्चय हुआ।

एक अन्य डा० महाशय ने एक रोगी की मृत्यु का वर्णन करते हुये लिखा है जिसको पढ़कर रोमाञ्च हो आते हैं। वह लिखते हैं कि एक पुरुष को युवावस्था के प्रारम्भ में ही हस्तमैथुन की बुरी लत्त पड़ गई थी और इस कारण उसने अधिक अवस्था होने पर भी विवाह नहीं किया था। वह अपने इस दुष्कर्म से बहुत निर्बल हो चुका था, वृद्धावस्था में उसे संतति की इच्छा हुई और उसने एक स्त्री से विवाह कर लिया, ज्यों ही स्त्री सम्भोग करने लगा, उसे अपने शिर में दर्द सा मालूम होने लगा और श्वास खींचना प्रारम्भ हो गया। २-३ बार के विषय भोग में उसकी ऐसी दशा हुई, डा० साहब लिखते हैं कि वह फिर हमारे पास आया और हमने बहुत कुछ समझाया कि स्त्री संभोग करना नितांत त्याग दे किन्तु हमारी बात पर उसने कुछ भी ध्यान न दिया और विषय भोग करते हुए स्त्री की गोद में ही मृत्यु की गोद प्राप्त की।

हमारे पूर्वाचार्यों ने भी—

"मरणं विंदु पातेन जीवनं विंदु धारणात्।

का उपदेश प्रत्येक व्यक्ति को दिया। न्यून से न्यून २५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का आदेश हमारे प्रत्येक ग्रन्थ में मिलता है क्योंकि मनुष्य शरीर की सब धातुयें २५ वर्ष में ही पूर्ण होती हैं इस से पूर्व नहीं होती और मैथुन काल के लिए न्यून से न्यून काल मर्यादा एक मास की ही निश्चय होने के कारण ही "ऋतु कालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतः सदा" का उपदेश मानव धर्म शास्त्र ने कहा है—

शरीर क्रिया विज्ञान और जीव विज्ञान के आचार्यों ने निर्णय करके बतलाया है कि जिस प्राणी का शरीर जितने समय में पूर्ण होता है उससे उसकी प्राकृतिक आयु पांच गुनी होती है। मनुष्य के अङ्ग प्रत्यङ्ग और धातुयें २५ वर्ष में ही पूर्ण होती हैं, इससे उसकी प्राकृतिक आयु न्यून से न्यून २५×५=१२५ वर्ष की आयु होनी चाहिए, किन्तु जहां आदित्य नाम के ब्रह्मचारी हों जिसमें ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है तब उनकी आयु ४८×५=२४० वर्ष तक की हो तो क्या आश्चर्य। योगियों की आयु के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। विषय भोग से मानव जाति और पशुवर्ग की ही आयु क्षीण नहीं होती किन्तु उद्भिद् (वनस्पति) वर्ग की भी आयु क्षीण होती है। आपने देखा होगा कि जो पौधे और वृक्ष अधिक फूल और फल देते हैं वे थोड़े समय में ही मुरझा जाते हैं।

शुक्र का मस्तिष्क के नाड़ी मण्डल के साथ विशेष सम्बन्ध है इसलिये क्षीण वीर्य पुरुष को विशेष संभोग करने से शिर पीड़ा भ्रमादि कष्ट होने लगते हैं क्योंकि शुक्रवाही शिराओं का मनुष्य के मस्तिष्क, नाड़ी मण्डल पर विशेष प्रभाव पड़ता है क्योंकि सारे शरीर में शिर ही मनुष्य का मुख्य अङ्ग है भगवान आत्रेय कहते हैं कि—

प्राणा प्राणभृता यत्राश्रित सर्वेन्द्रियाणिच ।
यदुत्तमाङ्ग मङ्गाना शिरस्तदभिधीयते ॥
(च० सू० अ० १७)

आचार्य वाग्भट जी ने कहा है—

सर्वेन्द्रियाणि ये नास्मिन्प्राणा येनच संश्रिताः।
तेनतस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामाहतो भवेत ॥
(अष्टाङ्ग हृदयम्)

इसी कारण योगी लोग ऊर्ध्व रेतस होकर शिर-स्थ नाड़ी मंडल में शुक्र वृद्धि कर उसे बलवान बनाते थे जिससे मस्तिष्क शक्ति का विकास होकर शरीर की सारी शक्तियों का प्रादुर्भाव होता था जिस प्रकार विद्युत् का सचालन विद्युत् केन्द्रालय (पावर हाउस) से ही होता है उसी प्रकार सारे शरीर की विद्युत् शक्ति (वात नाड़ी) का केन्द्र हमारा मस्तिष्क है। इसी कारण मस्तिष्क गत धातुओं का यदि क्षय होने लगे तब सारे ही शरीर की शक्ति का क्षय होने लगता है और अन्त में शारीरिक क्रिया का सचालन बन्द होकर मृत्यु हो जाती है।

कुछ समय हुए मेरे पास एक नवयुवक उन्माद रोगी चिकित्सा के लिये आया जो हस्त मैथुन की कुटेव से निर्बल बन कर उन्माद रोगी बन गया था और कुछ

काल इसी रोग मे रह कर अन्त मे मृत्यु का ग्रास बन गया।

पाठकों को विदित हो गया होगा कि आजकल अधिकतर युवकों को जो शिर पीडा होती है उसका मुख्य कारण शुक्र क्षय ही है भगवान धन्वन्तरि क्षय जन्य शिर पीडा के लिये लिखते हैं कि—

> वसाबलासक्षत सभवाना शिरोगतानामिह संक्षयेन।
> क्षयप्रवृत्तःशिरसोऽभितापः कष्टोभवेदु-
> ग्ररुजोऽतिमात्रम्॥
> सस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षै श्चविवृद्धिमेति॥
> (सुश्रुत)

अर्थात शिर और मस्तिष्क गत वसा, धातु, कफ और किसी प्रकार शिर मे क्षत होने के कारण रक्त निर्गम होने से रक्त क्षय के कारण शिर क्षय जन्य शिर पीड़ा होती है जिसमे रोगी अधिक कष्ट का अनुभव करता है और यह पीड़ा शिर के स्वेदन, वमन, धूम, नस्य और रक्त मोक्षण से अधिक बढ़ती है। यहां पर वसा शब्द मेद मज्जा और शुक्रादि स्नेहन धातुओं का वाचक है जैसा कि आचार्य डल्हण कहते हैं कि—

> वसा शब्द उपलक्षणार्थः तेन देह स्नेह मस्तिष्क मेदो मज्जा शुक्राणि गृह्यन्ते॥

माधवाचार्य ने "वसाबलासक्षत सभवानाम्" के स्थान पर "असृग्वसाश्लेम समीरणानाम्" ऐसा पाठ प्रयुक्त किया है यह भी बिलकुल उपयुक्त है किन्तु मधुकोष व्याख्याकार आचार्य विजयरक्षित और कण्ठ दत्त ने "समीरणानाम्" इस पाठ को असगत बतलाया है और उसके लिये यह युक्ति भी दी है—

> वातक्षये कफ वृद्धौ कफजः शिरो रोग स्यात्,
> 'वृद्धिर्वाऽपि विरोधिनाम, (च० सू० अ० १८)
> इति वचनात्।
> किंचतस्य चिकित्सा या मुक्तं, "पाने नस्ये चसर्पि.—
> स्याद्वातघ्नमधुरैः शृतम्' इति
> ततश्च मर्मारण पाठो न संगतः,
> नहि क्षीणेवायौशमनमुक्तं, अपितर्हिवर्धन-
> विधि, यदुक्त "क्षीणा वर्धयितव्या,
> (सु० चि० अ० ३३) इति।

यद्यपि यह युक्ति बिलकुल ठीक सी ही प्रतीत होती है किन्तु उपरोक्त पाठ से जो "समीरणानाम्" पाठ है वह शिरस्थ नाड़ी मण्डल के लिये है जिसको आजकल पाश्चात्य वैज्ञानिक (नर्वस् सिष्टम) कहते हैं, उनमें शक्ति वृद्धि शुक्र से ही होती है और शुक्र क्षय से उसकी शक्ति का क्षय होता है जिसका वर्णन हम ऊपर कर चुके हैं कि शुक्र और शिरस्थ नाडी मण्डल का घना सम्बन्ध है यही शिरस्थ वात नाडी की शक्ति का क्षय "समीरणाना क्षय" के लिये माधवाचार्य ने प्रयुक्त किया है और चरक संहिता के उपर्युक्त श्लोक में उसी वात नाडी को प्राण शब्द से सूचित किया है क्योंकि नाडी मण्डल की क्रिया बन्द होते ही मनुष्य की जीवन लीला समाप्त हो जाती है। यूनानी चिकित्सको मे शुक्र क्षय जन्य शिरःशूल को *सुदाअजमाई* अथवा जौफ़ दिमागी कहते हैं जिसका भावार्थ मस्तिष्क निर्बलता है और आधुनिक नव्य वैज्ञानिक चिकित्सकों के विचार से (नर्वस हेडेक) नाम का जो नाडी जन्य शिरःशूल है वह भी वात सस्थान की क्षीणता के ही कारण होता है और क्षय जन्य शिरःशूल से इसकी समानता है।

कालिजो में पढने वाले विद्यार्थी जो अज्ञानता के कारण अपनी कुटेवो से भिन्न भिन्न प्रकार शुक्र क्षय किया करते हैं अथवा अपने विचारो को शुद्ध नहीं रख सकते (क्योंकि आजकल विद्यार्थियों में धार्मिक शिक्षा का नितात अभाव सा ही है) जिसके कारण स्वप्नमेहादि रोग होने के कारण शुक्र क्षय होता है जिससे उनका चित्त स्वाध्याय में नहीं जमता और थोडा बहुत स्वाध्याय करने पर ही शिरः पीड़ा, शिरोभ्रम और कभी-कभी नेत्र विस्फारित होकर मूर्छित हो जाते हैं उस दशा को आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सक हिस्टेरिया रोग कहते हैं। हमारे यहा आचार्य विदेह ने शुक्र क्षय जन्य शिरःशूल के लिये जो लक्षण कहे हैं वे इस दशा मे बिलकुल मिलते

हैं। आचार्य विदेह कहते हैं—

भ्रमति तुधते शून्य शिरोविभ्रांतनेत्रन
मूर्च्छा गात्रावसादुश्च शिरोरोगेक्षयात्मके ।।

अर्थात् क्षय जन्य शिरोरोग में शिर मे चक्कर आते हैं, नेत्र फटे हुए होते हैं, शिर खाली सा प्रतीत होता है, पश्चात् को शरीर शिथिल होकर बेहोशी हो जाती है। यदि शुक्रक्षय जन्य शिरः शूल होने पर भी यदि रोगी अपनी नासमझी से विषय भोग से उपराम न ले तब यह क्षयज शिरोभिताप बढ़कर कष्ट साध्य हो जाता है। आचार्य चक्षुष ने क्या ही सुन्दर शब्दों मे सागर को गागर में भर दिया है यथा.—

स्त्री प्रसङ्गादभिघातादथवा देह कर्मणा ।
क्षिप्र सजायते कृच्छ्रः शिरोरोग क्षयात्मकः ।।
वातपित्तात्मकं लिङ्ग व्याधिश्च तत्र लक्षयेत् ।

यह रोग आजकल उन मनुष्यों को भी विशेष पाया जाता है जो कि फिरङ्गोपदश से आक्रात हो चुके हों अथवा उनके माता पिता को फिरङ्गोपदश हुआ है। ऐसे मनुष्यो को बहुधा यह शिरः शूल रात्रि को विशेष कष्ट-दायक होता है अर्थात् किसी प्रकार मनुष्य का शुक्र दूषित हो चुका हो तभी यह रोग होता है।

फिरङ्गोपदश से होने वाले शिर शूल के लिये *माजून चोपचीनी* का निम्नांकित प्रयोग विशेष लाभकारी होता है।

६५—चोपचीनी का चूर्ण	६२॥ तोला
माही जहरद	७ माशा
सुरञ्जान मीठा	१॥ तोला
बोजीदा	कन्नेर की जड का वक्कल
चीता मूल	प्रत्येक ७-७ मा०
बड़ी हरड़ का वक्कल	८ तोला
अजवाइन	५ माशा
सौंफ	५ माशा
मिर्च सफेद	३॥ माशा
सौंफ रूमी	गुलाब के फूल
सोंठ	लौंग

प्रत्येक १०॥ माशा

निशोथ का वक्कल	२ तोला
मस्तंगी रूमी	३ तोला
केशर असली	१॥ तो०
रोगन बादाम मीठा	३ तो०
शहद असली	सब दवाओं से तिगुना

—सब औषधियो को पीस छानकर बादाम रोगन से चिकनाकर शहद मिलाकर रखलें।

मात्रा—४ माशा से बढ़ाकर १ तोला तक अर्क चोपचीनी ५/- से प्रातः सायं सेवन करें।

अथवा अन्य प्रयोग भी जो फिरङ्गोपदंश नाशक और बृंहण हैं उन्हें सोच समझ कर चिकित्सक प्रयोग करें।

क्योंकि आयुर्वेदाचार्यों ने क्षय जन्य शिरोभिताप के लिये यह चिकित्सा सूत्र कहा है—

क्षयजे क्षयनाशार्थं कर्तव्यो बृंहणो विधिः ।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ।।
योजयेत्सगुणा सर्पिर्घृतपूराश्च भक्षयेत् ।
नावनं क्षीर सर्पिःभ्या पान च क्षीर सर्पिषोः ।
क्षीर पिष्टैस्तिलैःस्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ।।

अर्थात क्षय जन्य शूल के लिये जिस धातु का क्षय हुआ हो उसी को बृंहण करने के लिये चिकित्सा करनी चाहिऐ अर्थात् शुक्र क्षय जन्य शूल के लिये शुक्र बृंहण औषधि देनी चाहिए और पान में नस्य में ऐसे घृत जो वातघ्न मधुरादि गणों से सिद्ध किये गये हों अत्यधिक लाभ दायक होंगे। चरकोक्त *महामायूरादि घृत* का प्रयोग फिरङ्गोपदंश मे हुए अथवा अन्य शुक्र क्षय जन्य शिर. शूल के लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ है और भोजन में गुड़ घी माल पूआ आदि बृंहण पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए।

हमने ऐसे रोगियों को बृहद् मूसल्यादि पाक और बादाम पाक प्रयोग कराकर अधिक लाभकारी सिद्ध पाया है। इस रोग का अनुपशय स्वयं धन्वन्तरि भगवान् ने "संस्वेदनच्छर्दन धूमनस्यैरसृग्वियमोक्षैश्च विवृद्धिमेति"

इस वाक्य में कर्षण चिकित्सा से रोग वृद्धि को प्राप्त होता है ऐसा संकेत किया है अर्थात् इस रोग के लिये वृंहण चिकित्सा ही उपादेय है क्योंकि संस्वेदन, छर्दन, धूमनस्य, इनसे कफ का क्षय होता है और शुण्ठी आदि के तीव्र धूम से वसादि का क्षय होता है। रक्त विमोक्षण मे रक्त का क्षय होने से रोग के कारणों की ही वृद्धि होती है इसलिए इस रोग के लिए कर्षण चिकित्सा के विरुद्ध वृंहण चिकित्सा का ही विधान है जो शुक्र वृंहण हों। अब हम पाठकों के हित के लिए अपने कुछ उन अनुभूत प्रयोगों के लिये लिखते हैं जिनका हम अपनी चिकित्सा में प्रयोग करके समय-समय पर लाभ उठाते रहे हैं।

१—वृहत् मूसल्यादि पाक—

९६—सफेद मूसली का चूर्ण	१ सेर
दूध	८ सेर

—में औटावे और धीमी-धीमी अग्नि से उसका खोवा बनावे और अच्छी प्रकार देखे कि खोवा बना या नहीं क्योंकि मूसली फूल जाती है। यदि ठीक प्रकार से खोवा न बना तो वह सड़ जायगा। फिर उसको घी १ सेर में धीमी-धीमी अग्नि से भूने फिर मिश्री ४ सेर की चाशनी बनाकर उसमें उपरोक्त खोवा और निम्नांकित औषधियों का चूर्ण और बादाम, पिस्ता, गोला आदि मिलावे। औषधियां ये हैं—

९७—सोंठ	मिर्च स्याह
छोटी इलाइची के दाने	दालचीनी
तेजपात	हाऊ बेर
सोंफ	गितावर
जीरा सफेद	अजमोद
चित्रक	गज पीपर
पिप्पली मूल	अजवाइन
आंवला	कचूर
गोखुरू काबुली	असगन्ध नागौरी
धनिया	बड़ी हरड़ का वक्कल
नागर मोंथा	समुद्र शोख
जायफल दखिनी	लौंग
जावित्री	नाग केशर
ताल मखाना	बला
नागबला	अतिबला
कौंच के बीज	मुलहठी
सेमर का मूसला	सिंघाड़ा गूदा
कमल गट्टा की मींग	वंशलोचन
सुगन्धबाला	कंकोल मिर्च
अकरकरा गुजराती	भीमसेनी कपूर

प्रत्येक औषधि १-१ तोला

धोये हुये तिल	ऽ॥
सिद्ध चन्द्रोदय	२ तोला
निश्चन्द्र अभ्रक भस्म	२ तोला

—इन सबको मिलाकर कतरी अथवा मोदक बनालें।

मात्रा—२ तोला से ४ तोला तक प्रात. सायं गौ दुग्ध से से खावें। यह पाक शुक्रक्षय जन्य सब ही रोगों को दूर करता है। यह शीत काल में विशेष लाभदायक होता है।

२-बादाम पाक—

९८—बादाम छिले हुओं की मींग	१० तोला
पिस्ता	अखरोट
चिरोंजी	चिलगोजा
काजू	छुहारे का वक्कल
खस खस	प्रत्येक २-२ तोला

—इन सबको गाय दूध ऽ२ सेर में पीसले फिर इस पिष्टि को घी ऽ। में भून लें। मिश्री ऽ२ सेर की चाशनी बनाकर उसे उतार कर पिष्टि मिलाकर पश्चात् को निम्नांकित औषधियों का चूर्ण मिलाकर बर्फी अथवा मोदक बनावें। औषधियां ये हैं—

९९—केसर असली	जावित्री
तज	जायफल दखिनी

मुक्ता पिष्टी गुलाब जल से निर्मित

प्रत्येक ३-३ माशे

काली मिर्च	पीपर छोटी
छोटी इलायची के दाने	चांदी भस्म
प्रवाल चन्द्रपुटी	प्रत्येक ६-६ माशा
वंशलोचन नीलीभाई	१ तोला
चाँदी वर्क	२० नग
स्वर्ण वर्क	११ नग

—इन सबको भली प्रकार मिलालो।

मात्रा—२ तोला से ४ तोला तक। अनुपान गाय का औटाया हुआ दूध। इसका प्रातः सायं सेवन हर प्रकार की मस्तिष्क गत निर्बलता, शारीरिक निर्बलता, शिरः शूल और दृष्टिगत निर्बलता और मस्तिष्क की सनसनाहट जो कि शुक्रक्षय से होती है, दूर होती है।

शीत ऋतु के लिये एक और हरीरा जिसे हम अपने रोगियों को सेवन कराकर लाभ पहुंचाते रहते हैं वह यह है—

१००—मीठे बादाम की मींग	५ नग
खसखस सफेद	४ माशा
धनिया सूखा	४ माशा
तुख्म काहू कुचले हुये	४ माशा
मीठे कद्दू की मींग	४ माशा

—इन सब औषधियों को पानी में खूब बारीक पीसकर छानकर रखलें। गाय का घी ३ तोला कढ़ाई में डालकर गर्म होने पर इसको डालदें फिर मिश्री ४ तो० मिलाकर निशास्ता बनाले। इसमें १ वर्क सोना मिलाकर प्रातः काल प्रतिदिन सेवन करें। इससे किसी भी प्रकार की निर्बलता से शिर शूल हो दूर होता है। परम श्रद्धेय गुरुणां गुरु स्वर्गीय कविवरकृष्णभट्ट जी का यह छोटा सा प्रयोग सामान्य लोगों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है जो इस प्रकार हैः—

१०१—मज्जानो हविषि दशाङ्गुलस्य किंचित्संमृष्टाः पुनरूषिता रमे सिताय।
पीयूषादपि रूचिमद्भुता दधाना, मस्तिष्कं मपदि विशिष्य वृंहयन्ति॥

—अर्थात् खीरे के बीजों की मींग खूब बारीक पीसकर धीमी आंच से घी से भूनकर मिश्री की चासनी बनाकर उसमें डाल दें। यह मस्तिष्क को वृंहण करने के लिये अपूर्व औषधि है।

जवाहर मोहरा जो धनी पुरुषों के लिये प्रयोग कराने योग्य है।

१०२—जहर मोहरा खताई पिष्टि	२ तोला
माणिक सुर्ख भस्म या पिष्टि	अकीक भस्म
मुक्ता पिष्टि गुलाबजल से पिसी हुई	
प्रवाल चन्द्रपुटी	संग यशब भस्म
तृणकान्त मणि पिष्टी	१-१ तोला
वंशलोचन	६ माशा
रजत भस्म	६ माशा
स्वर्ण भस्म	३ माशा

—इन सबको बढ़िया खरल में अर्क केवड़ा, अर्क गुलाब में ३-३ दिन खरल करें।

मात्रा—२-२ रत्ती की वटी बनाले। प्रातः सायं १ गोली से २ गोली तक धारोष्ण दूध से सेवन करें।

एक और *माजून* जिसको हम अपने रोगियों को सेवन कराते हैं और लाभदायक पाते हैं इस प्रकार हैः—

१०३—सौंफ के चावल	धनिका के चावल
१०-१० तोला	
वंशलोचन	छोटी इलायची के दाने
मूसली सफेद	बहमन सुर्ख
बहमन सफेद	प्रत्येक २-२ तोला
पाँचों मगज	१० तोला
बादाम की मींग	१० तोला
खस खस सफेद बिना पिसी हुई	५ तोला
गुल बनफसा	५ तोला
शकर तिगाल	१ तोला
गोंद कतीर	२ तोला
गोंद बबूल घी में भुना हुआ	१० तोला
गोंद ममीरी घी में भुना हुआ	२ तोला

—इन सब को बारीक पीस लें

बिहीदाना	२ तोला
पानी	२० तोला

—लेकर लुआब बनावे।

खस खस सफेद	३ तोला
पानी	२० तोला

—में पीस लें।

चन्दन चूरा सफेद	४ तोला
पानी	२० तोला

—लेकर पीस छानलें।

अर्क केवडा	२० तोला

—इन चारो द्रवों को कढाई में डालकर मिश्री २ सेर की चाशनी बनाले फिर नीचे उतार कर उपरोक्त औषधियों को मिलावें। यदि हो सके तो उसमें—

प्रवाल पिष्टी	६ माशा
रजत भस्म	६ माशा
भीमसेनी कपूर	३ माशा
मुक्तापिष्टी	३ माशा
कस्तूरी	१॥ माशा
वर्क सोना	१॥ माशा

—मिलाकर रखलें।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक दूध मे सेवन करे।

हमारे चिकित्सालय में "महा लक्ष्मी विलास रस" जिसका प्रयोग निम्नाङ्कित है, क्षय जन्य शिर पीड़ा के लिये अत्यन्त लाभदायक पाया है। इसकी १-१ वटी प्रातः सायं गाय के धारोष्ण दूध के साथ प्रयोग कराते हैं—

१०४—पल वज्राभ्र चूर्णस्य तदर्द्धं गन्ध पारदौ।
तदर्द्धं वङ्ग भस्मापि तदर्द्धं तारकं तथा॥
तत्सम यशदञ्चैव तदर्द्धं ताम्र भस्मकम्।
रस तुल्यञ्च कर्पूरञ्जातीकोष फले तथा॥
वृद्धदारक बीजञ्च बीजं स्वर्णफलस्यच।
प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृत स्वर्णं द्विशाणकम्॥
निष्पिष्य वाटिका कार्या द्विगुञ्जा फल मानतः।

अर्थात—

—अभ्रकनिश्चन्द्र भस्म शतपुटी	४ तोले
गंधक आँवलासार शुद्ध	२ तोला
पारा शुद्ध	२ तोला
वङ्गभस्म तालयोगेनपुटित (शार्ङ्गधरीय)	१ तोला
चाँदी भस्म	६ माशे
यशद भस्म	६ माशे
ताम्र भस्म	३ माशे
भीमसेनी कपूर	४ तोला
जावित्री	४ तोला
जायफल	४ तोला

विधारे के बीज शुद्ध, शुद्ध किये धतूरे के बीज प्रत्येक १-१ तोला

स्वर्ण भस्म	६ माशे

विधि—उपरोक्त औषधियों को खूब खरल कर जल के साथ घोट कर २ रत्ती की गोली बनालें।

रजतावलेह का प्रयोग (यूनानी) भी इस रोग में बडा लाभकारी पाया है—

१०५—चांदी भस्म	६ माशे
कस्तूरी असली	३ माशे
अम्बर	२ माशे

तृणकान्तमणि पिष्टी सङ्गयसब पिष्टी या भस्म प्रत्येक १-१ तोला

मोती गुलाब जल में खरल किये	३ माशे
वंशलोचन	१ तोला

—इन सबको पहिले गुलाब जल में खरल करें, अबरेशम कच्चे को अलग पीस छान कर १ तोला लें और इसी में घोट दें फिर मिश्री सब औषधियों से तिगुनी लेकर—

अर्क गुलाब मीठे सेब का रस
गाजर का रस प्रत्येक २०-२० तोला

(शेषांश पृष्ठ ५८ पर देखिये)

अर्धावभेदक (Hemi-crenia)

लेखक—श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B. A. आयुर्वेदाचार्य

बहुमानास्पद पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद जगत् के लब्धप्रतिष्ठ एवं माने हुए आयुर्वेद मर्मज्ञों की श्रेणी के रत्न हैं। आप आयुर्वेद सरणी के प्रवीण चिकित्सक और सिद्ध हस्त लेखक हैं। यथा समय सर्वदा ही आपने मेरे निवेदनों को सत्कार दिया है। इस ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के लिए आपके एकाधिक लेखों की आशा थी परन्तु आपके स्वास्थ्य ने इस बार इच्छा रहते हुए भी इस दिशा में आशापूर्णता में बाधा उपस्थित की है। इस दैवी कारण के रहते भी आपने **अर्धावभेद** पर मार्मिक और तुलनात्मक निबध में स्पष्ट और निर्भीकता पूर्ण भावों को प्रदर्शित करके विदेशीय प्रकाश से भ्रमित और पथभ्रष्ट चिकित्सकों को प्रिय शब्दों द्वारा सिंहावलोकन के साथ साथ ऋषि शरणी को अपनाने का सुन्दर उपदेश देकर बहु कल्याण किया है।

आचार्य हरदयाल वैद्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक के लिये मुझे भी कुछ लिख भेजने के लिये संपादक प्रवर की ओर से आदेश मिला। तदनुसार आदेश पालनार्थ, समयाभाव से संक्षेप में ही उक्त विषय पर अपने विचार एवं अनुभव को पाठकों के समक्ष रखता हूं।

यह आधाशीशी नामक शिरः शूल, रोगी और वैद्य दोनो के लिए बड़ा ही त्रासदायक है। इस रोग से प्रायः सब ही परिचित हैं। किंतु निश्चित आयुर्वेदीय शूलघ्न औषधि उपलब्ध न होने से बड़े बड़े वैद्य भी संकट एवं द्विविधा में पड़ जाते हैं। वे अन्त में एस्परिन, अन्टिपायरिन, फिनिस्टीन, क्लोरल हायड्रेट, ब्रोमाइड आदि क्षणिक शामक एवं हानिकर विदेशी औषधियों की शरण लेते हैं। कोडोपायरिन, सेडिनाल, हेरेमान आदि क्षणिक प्रभावी औषधियों की योजना कर बैठते हैं। यह बड़ी ही दुःख की बात है। यह शोचनीय परावलम्बिनी दशा शीघ्रातिशीघ्र नष्ट होना, आयुर्वेद की उन्नति के लिए परमावश्यक है।

अर्धावभेदक के कारण और संप्राप्ति के सम्बन्ध में आधुनिक विद्वानों में एक मत नहीं है। आधुनिक कई वैद्य या डाक्टर इसमें आनुवंशिक प्रवृत्ति को कारण मानने लगे हैं, तथा नेत्र रोग, नासारोग, दंत रोग इसके प्रतिक्षिप्त प्रवर्तक कारण हैं ऐसा माना जाता है अर्थात् अर्धावभेदक की चिकित्सा में इन कारणों का विचार आवश्यकीय ही है। कई लोग विशिष्ट प्रोटीन्स द्रव्यों के अतिसेवन को

इसका कारण मानते हैं। कोई कोई आँत्र विष को इसका प्रभावी कारण बतलाते हैं और कुछ विद्वानों की सम्मति में यह एक केवल मानसिक रोग है, तथा कोई मस्तिष्क ग्रन्थि जैसे अवयव की विकृति को इसका प्रधान कारण मानते हैं।

किंतु आयुर्वेद के रहस्य को जानने वाला वैद्य अष्टांग' 'सग्रहके आधार पर स्पष्ट घोषित करता है कि-धूल, धूप, जल क्रीडा, अतिनिद्रा, अति जागरण, अत्यम्बुपान, मद्यपान, वेग धारण, द्वेष, असात्म्यगन्ध, रोदन इत्यादि इसके कारण हैं। बस इनमें से पता लगा लीजिये, और तदनुसार सफल चिकित्सा कीजिये। इन कारणों में बाह्य और आभ्यन्तर दोनों प्रकार के कारणों का समावेश हो गया है। 'असात्म्यगंध' यह आधुनिक 'अलर्जी' का ही एक दूसरा रूप है। उक्त कारणों से शिरोगत वातप्रकोप होकर अर्धावभेदक या शिरः शूल की उत्पत्ति होती है।

अर्धावभेदक का शूल प्रायः प्रातः काल में प्रारम्भ होता है, इसमें उक्त भेद, मितली और भ्रम आदि वात के लक्षण हो सकते हैं। किंतु वात दोष के साथ जिस अन्य दोष का अनुबध हो उसके अनुरूप भी लक्षण हो सकते हैं और मुख्य दृष्टव्य यह है, कि यह शूल अति तीव्र स्वरूप का होता है। शूल की दशा में रोगी प्रकाश और आवाज को भी सहन नहीं करता। किंतु वह मर्दन, स्नेहन, स्वेदन और बंधन से कम होता है। इस उपशय से इस रोग में वात दोष की प्रधानता स्पष्ट सिद्ध होती है।

चिकित्सा—इस रोग की चिकित्सा के शूलहर और प्रतिबंधक ऐसे मुख्य दो प्रकार हैं। जिस रोगी को यह रोग बारबार (पक्षात् कुप्यतिमासाद्वा) पछाड़ता है, उसके मूल कारण या कारणों का शोध कर, तदनुसार कारणानुरोध से प्रयत्न पूर्वक चिकित्सा करने से बराबर सफलता प्राप्त हो सकती है।

मज्जागत वात ही इस शूल की प्रधान सम्प्राप्ति है, इस बात को ध्यान में रखते हुये वाग्भट चिकित्सा स्थान अध्याय १६ में कहे गये 'तिलादिमोदक' (जिसमें तिल, एरण्ड, शुद्ध भिलावा और गुड़ की योजना है) का प्रयोग उत्तम कार्य करता है। 'स्निग्धोष्णं वातशमन' इस सूत्र रूप नियमानुसार इस प्रयोग के द्वारा मज्जागत वात अवश्यमेव शमन हो जाता है। 'ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु स्वप्नकाले प्रशस्यते'' इस सूत्रानुसार इस प्रयोग का सेवन रात्रि के समय शयन के पूर्व करावें, और प्रातः उठते ही तदात्वशमन रूप में महावातविध्वंस और सूतशेखर २-२ रत्ती का मिश्रण घृत के साथ सेवन करावें।

यदि वात का अनुबध हो, तो उक्त सूतशेखर की योजना करें अथवा प्रातः उठते ही उत्तम केशर को जरा घी में भून कर समभाग खांड मिला बकरी के दूध के साथ पिलावें। अथवा—

१०७—गोरखमुंडी के स्वरस को गरम कर उसमें काली मिर्च का चूर्ण मिला सेवन करावें। अथवा—

१०८—त्रिफला हल्दी
गिलोय चिरायता
नीम की छाल समभाग

सब को जो कूटकर २ तोला मिश्रण को आधसेर (४० तो०) जल में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर पिलावें।

यदि पित्त का अनुबंध हो, तो—

१०९—त्रिफला नीम की छाल
अडूसा कड़वा पटोल
१—१ भाग

—लेकर जो कूटकर चार गुने जल में पकावें। चौथा भाग शेष रहने पर छानकर उसमें ६ भाग शुद्ध गूगल मिला पुनः पकावें। गाढ़ा हो जाने पर गलिया २-२ माशे की बनालें। १ या २ गोली उष्ण जल के साथ सेवन करावें।

रोगी को पथ्य में—उष्ण और स्निग्ध पदार्थ ही विशेष होनी चाहिए।

कवि० कृष्णमूर्ति वत्स वैद्य वाचस्पति
आजाद हिन्द कैमीकल्स, कांगड़ा

गौरीशङ्कर श्रीवास्तव साहित्य महोपाध्याय
बीना इटावा (सागर)

शिरः शूल (Headache)

श्री क० कृष्णमूर्ति वत्स वैद्य वाचस्पति इन्चार्ज आजाद हिन्द कैमिकल्ज कांगड़ा

प्रिय कविराज कृष्ण मूर्ति वैद्य वाचस्पति आजाद हिन्द कैमिकलज कागडा के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष हैं। आपके आधीन संस्था सुचारु रूपेण आयुर्वेद प्रचार कार्य में सलग्न हैं। आप कुशाग्रबुद्धि एव प्रवीण चिकित्सक हैं। वंशागत चिकित्सा क्रम के रत्न हैं। आपकी विवेचन शैली सुन्दर, भावपूर्ण एव पूर्ण तुलनात्मक है। आपने प्रस्तुत लेख में उभयज्ञता का पूर्ण परिचय दिया है। आशा है आप अपने उन्नत विचारों से भविष्य में आयुर्वेद के प्रति रुचि रखने वालों का पथ प्रदर्शन करेंगे। योग्य एव विनय सम्पन्न शिष्य के नाते मुझे भविष्य में आयुर्वेदोन्नति परक आपसे बड़ी बड़ी आशाएं हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

"आधुनिक युग में हमने मान खोया अपमान पाया, शांति खोई युद्ध पाया, ज्ञान खोया विज्ञान पाया, धर्म खोया तर्क पाया, शरीर खोया मस्तिष्क पाया आदि आदि" ऐसा १९४९ में होने वाले सास्कृतिक सम्मेलन में श्री एच० सी० मुकर्जी ने देहली में भाषण देते हुए कहा था। यदि इसमें स्वास्थ्य खोया और रोग पाया भी जोड़ दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

प्राचीन काल में जहाँ हम हृष्ट-पुष्ट होते थे वहां आजकल दुबले-पतले और आक्रान्त होते जा रहे हैं। कोई घर ऐसा नहीं जिसमें कोई न कोई रोग अपना डेरा न जमाए हुए हो। यदि और कुछ न होता होगा तो शिरः शूल तो अवश्य होगा। बच्चा, बूढ़ा, स्त्री, पुरुष, युवक, युवती सभी लगभग इसकी शिकायत करते मिलते हैं।

परिचय

शिरः शूल कोई रोग नहीं अपितु कतिपय रोगों का प्रधान लक्षण है। यह एक प्रकार की अरति (dis-comfort) है जो कि शिर में होती है। यह आवश्यक नहीं कि पीड़ा ही हो परन्तु इसकी विद्यमानता मनुष्य को कर्मण्यशील नहीं रहने देती है। क्योंकि न तो आक्रान्त को प्रकाश अच्छा लगता है न वह एकाग्र मन हो सकता है और न ही उसे शोर आदि अच्छे लगते हैं।

कारण

१—जो लोग अपने स्वास्थ्य का ध्यान न रख कर खूब शराब और कबाब पीते और खाते हैं उनको शिरःशूल होता है।

२—जो लोग गन्दी और तङ्ग गलियों में रहते हैं

चिंतित जीवन व्यतीत करते हैं या चिड़-चिड़े स्वभाव वाले होते हैं। सोच विचार का काम करने वालों को भी यह रोग हो जाता है और अधिकतर वही इससे पीड़ित होते हैं। डाक्टर मेविल लिखते हैं कि Anxiety is probably the most important cause of coutinued headaches.)।

कुछ विद्वानों का विचार है कि शिरःशूल का कारण केवल विबन्ध (Constipation) और नेत्रों से अधिक कार्य लेना (Eye Strain) ही है। इस के अतिरिक्त बहुत से रोग यथा तीव्र ज्वर, आमवात, फिरङ्ग रोग (Syphils) आदि, तथा सर पर भारी पगड़ी आदि बान्धना भी इसके कारण हैं।

भेद (Kinds)

आयुर्वेद में शिरोरोग के निम्न भेद किये हैं—

१—वातज् शिरो रोग, २—पैत्तिक शिरो रोग, ३—कफज शिरो रोग, ४—सन्निपातज शिरो रोग, ५—कृमिज शिरो रोग, ६—क्षयज शिरो रोग, ७—अनन्तवात, ८—सूर्यावर्त, ९—अर्धावभेदक, १०—शङ्खक, ११—रक्तज शिरो रोग, । शार्ङ्गधराचार्य ने शिर कम्प नामक एक अन्य भेद भी माना है।

परन्तु सुगमता के लिये यदि निम्न तीन भेद कर लिये जांय तो अच्छा रहेगा। इन सब का उनमें अंतर्भाव हो जाता है।

१—स्थानिक तथा वातिक संस्थान सम्बन्धि कारण। (Local and neuralogical causes)

२—सार्वाङ्गिक कारण (General causes)।

३—प्रत्यावर्तित कारण (Reflex causes)।

स्थानिक तथा वातिक संस्थान सम्बन्धि कारण

इसके आठ भेद हैं—

१—चिन्ता आदि के द्वारा पैदा होने वाला शिरःशूल (Anxiety Headache)।

२—अर्धावभेदक या आधे शिर की पीड़ा (Migraine)।

३—वात नाड़ी का शूल (Neuralgia)।

४—वायुकोटर जन्य शिरःशूल (Sinus Headache)

५—शीर्षावरण शोथ जन्य शिरःशूल (Meningial Headache)

६—उपदंश जन्य शिरःशूल (Syphitic Headache)।

७—आघातज शिरःशूल (Traumatic Headache)

८—अन्तःशीर्ष दबाव के कम हो जाने या बढ़ जाने से। यथा शिर में अर्बुद आदि का होना।

चिंता जन्य शिरःशूल(Anxiety Headache)

वास्तव में तो इस अवस्था को शिरःशूल नहीं कह

(पृष्ठ ५४ का शेषांश)

—सबको अवलेह विधि से अवलेह बनालें।

मात्रा—३ माशे से ६ माशे तक गाय के दूध से प्रात साय खावें। यह इस रोग के सिवाय हृदय निर्बलता आदि वात पित्त जन्य अन्य विकारों को भी दूर करता है।

अन्त को अपना एक अनुभूत प्रयोग जो हमारे चिकित्सालय में शतशोऽनुभूत सिद्ध हुआ है। उस गुप्त प्रयोग को "प्राणाचार्य" के पाठकों को लिखकर लेख समाप्त कर रहे हैं हमारे यहां इस प्रयोग का नाम 'माणिक पञ्चामृत' है। इसको हम क्षय जन्य शिरो रोग के सिवाय प्रत्येक प्रकार के क्षय पर प्रयोग करते हैं और लाभ पाते हैं। शरीर के किसी भी अंग की दुर्बलता इससे दूर होती है।

१०६—माणिक पिष्टी अथवा भस्म — त्रिवङ्ग भस्म
निश्चन्द्र अभ्रकभस्म शतपुटी, — स्वर्ण भस्म
रजत भस्म — प्रत्येक समभाग

—लेकर ब्राह्मी स्वरस छने हुए में ७ दिन तक बढ़िया खरल में घोट कर रखलें।

मात्रा—इसमें से १-१ रत्ती प्रात साय मक्खन अथवा शहद से चाटें और चिकित्सक इसको प्रयोग कर इसका फल देखें।

(सर्वेसन्तु निरामया)

सकते हैं परन्तु इसका कष्ट इतना असहनीय होता है कि शिरःशूल का भी नहीं होता है। रोगी अपने सिर को भारी अथवा घुटा-घुटा सा अनुभव करता है। उसे थकावट, बेचैनी, अन्यमनस्कता, निद्रानाश, निराशावादियों की सी बातें करना, तथा शरीर का क्षीण होना आदि भयङ्कर लक्षण अनुभव होते हैं। क्षयज शिरः शूल में भी लगभग यही लक्षण होते हैं।

चिकित्सा (Treatment)

१०६—स्थानिक उपचारों के अतिरिक्त रोगी को प्रायः रसायन सेवन कराना पड़ता है और अधुना इसी प्रकार के रोगी अधिक मिलते हैं। वातव्याधि चिकित्सा में वर्णित योग इसमें अपूर्व लाभ करता है। साथ में च्यवनप्राश, द्राक्षासव, दशमूलारिष्ट देना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य स्वर्णयोग यथा वृ० लक्ष्मीविलास रस, वृ०वातगजाङ्कुश अश्वगन्धारिष्ट भी अपूर्व लाभ करते हैं। कदाचित् केवल चन्द्रप्रभावटी तथा त्रिफला चूर्ण में सौंफ तथा धान्यक मिलाकर देने से तो बहुत ही लाभ होता है। पाश्चात्य शास्त्र में इसके लिये Parendrine का सूचीवेध तथा Calcium Calciferol अथवा Adexoline अथवा Cod liver oil देते हैं। चिकित्सा सिद्धांत लगभग एक ही है।

२—अर्धावभेदक (Migraine)

पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में इसे Hemicrania तथा यूनानी में सुदा-निस्फी या शक़ीका कहते हैं। Hemi=आधा Semi का अपभ्रंश है, Crania खोपड़ी अर्थात आधी खोपड़ी दोनों शब्द Latin इटली की भाषा के हैं।

इसका परिचय इसके नाम से ही चल जाता है। अर्थात् ऐसी पीड़ा जो आधे शिर में होती है।

कारण (Etiology)

यह रोग बहुधा सहज होता है। कदाचित् बाल्यकाल में और बहुधा किशोरावस्था में होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होता है यह भी रजोनिवृत्ति Menopause के बाद।

विप्रकृष्ट कारण—नेत्रों से अधिक काम करना, भोजन की अव्यवस्था, मासिक धर्म का आना, ठण्ड का लग जाना आदि २ कारणों का बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

रूक्षाशनात्यध्यशन- प्राग्वातावश्यगमनैः ।
वेग संधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥
केवल सकफोवाऽर्ध गृहीत्वा शिरसो बली ।
मन्याभ्रू शङ्ख कर्णाक्षिललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥
शस्त्रारणि निभा कुर्यातीवा सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं वाऽथवाश्रोत्रमति वृद्धो विनाशयेत् ॥

अर्थात्—रूक्ष भोजन—अध्यशन—पूर्वदिशा की वायु का सेवन, अत्यन्त मैथुन करना, वेगों का धारण करना, साहस करना अर्थात् अपने बल से अधिक कार्य करना, व्यायाम आदि कारणों से प्रकुपित वायु केवल अथवा कफ सहित आधे शिर को जकड़ लेता है और मन्या-भ्रू-शङ्ख कर्ण, आँखें और मस्तक आधे में तीव्र वेदना करता है। जिस पीड़ा में शस्त्र अथवा अरणि के काटने की सी पीड़ा हो उसे अर्धावभेदक कहते हैं। यह यदि बहुत बढ़ जावे तो कान अथवा आंख का नाश कर देता है।

लक्षण (Symptoms)

आयुर्वेद में वर्णित लक्षणों का सूत्र रूप में वर्णन ऊपर कर दिया गया है। उनका विस्तार तथा क्रम जो कि दैनिक चिकित्सा में मिलता है निम्न है।

रोगी को इस शिरः शूल के वेग आते हैं और तीव्र पीड़ा होती है उसको हृल्लास होता है और कभी कभी वमन भी होने लगता है।

वेग आने से एक दिन पूर्व रोगी अपने आपको सुस्त तथा आर्त सा अनुभव करता है और उसे पीड़ा की सूचना हो जाती है। दौरे का प्रारम्भ निम्न प्रकार से होता है।

१—आंखों के आगे काला सा धब्बा दिखाई देता है। कदाचित आंखों के आगे फुलझड़ियों सी चलती दीखती हैं।

२—शनैः २ रोगी के एक हाथ में झनझनाहट होती है जो कि धीमे २ बाजू, ओष्ठ—जिह्वा—तथा नीचे टांग को चली जाती है। यह झनझनाहट बहुत धीमी तथा मृदु होती है। यह अवस्था अधिक से अधिक दस बीस मिनट तक रहती है। तदनु शिरःशूल आरम्भ हो जाता है।

३—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यह पीड़ा एक ही ओर तथा बहुधा कनपटी में होती है। यह प्रातः काल ही आरम्भ हो जाती है और बड़ी तीव्र होती है। नेत्र को घुमाने से बढ़ जाती है तथा प्रकाश असह्य होता है। जब यही अवस्था सूर्य से सम्बन्धित होती है अर्थात ज्यों २ सूर्य चढ़ता जाता है पीड़ा बढ़ती है, यहां तक कि दो पहर को तो असह्य वेदना होती है तथा जैसे जैसे सूर्य डूबता जाता है पीड़ा कम हो जाती है। सायं काल को रोगी पूर्ववत स्वस्थ होता है। इस अवस्था को सूर्यावर्त कहते हैं। परन्तु इसमें पीड़ा एक ओर न हो कर दोनों ओर होती है। चरक ने एक इसका विपर्यय 'सूर्यावर्तविपर्यय' के नाम से भी वर्णन किया है।

४—हृल्लास और कभी कभी वमन भी होता है तथा पेट में पीड़ा भी हो जाती है।

यह आक्रमण दो घंटे रहता है परन्तु कभी कभी रोगी को सारा दिन कष्ट देता है। अगले दिन रोगी थका हुआ सा प्रतीत होता है। यह आक्रमण तीव्रावस्था में सप्ताह में एक दो बार हो जाता है वैसे तो महीने में एक आध बार होता है।

जब यही पीड़ा नेत्र की ओर चलकर नेत्र को ग्रसित कर देती है तो यह नेत्र नहीं खुलता है। इस अवस्था को आम बोल चाल में 'मेल पड़ना, Ciliary migraine कहते हैं। इस अवस्था में रोगी को जातिफलादि चूर्ण ग्रहणी रोग वाला तीन माशे, प्रवाल भस्म दो रत्ती, मिलाकर गर्म २ दूध से ऐसी तीन मात्राएं दिन में देने से अपूर्व लाभ होता है।

अर्धावभेदक का निदान करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि रोगी जीर्ण वृक्क शोथ जन्य मूत्राघात से पीड़ित तो नहीं है।

चिकित्सा Treatment

११०—पाश्चात्य वालों के पास इस रोग का कोई उपचार नहीं है वह तो केवल वेग के समय कोई पीड़ा शामक औषध Asprine अथवा उस का कोई यौगिक दे देते हैं। रोगी को कह देते हैं कि यह रोग असाध्य है केवल तुम्हारे दो दौरों के बीच का समय कम किया जा सकता है। परन्तु हमारे आयुर्वेद में लिखा है कि रोगी को प्रातः काल दूध तथा घी की नस्य देवें। नासिका द्वारा दूध या नारियल जल पीने को देवें आदि। मैं तो केवल रोगी को दूध और घी की नस्य दिलवा कर बाद में महालक्ष्मीविलास रस और श्रीपुष्पात चूर्ण तथा शङ्ख भस्म मिलाकर देता हूं बहुत लाभ होता है।

यदि सूर्यावर्त हो तो रोगी को प्रातः काल ही दूध जलेबियां अथवा बेसन का हलवा बना कर देना चाहिए। यदि यह हलवा मीठा तेल (तिल) में गुड़ डालकर बनाया जाय तो और भी लाभ करता है। बाद में रोगी को नस्य आदि देकर उपर्युक्त योग देना चाहिए।

३-वातनाड़ी शूल (Neuralgic Headache)

यूनानी वाले इसे सुदा रीही या असबी कहते हैं। इसके अन्तर्गत वास्तव में वातिक शिरोरोग व पैत्तिक शिरोरोग आजाते हैं।

कारण (Etiology)

१—अधिक शीत लग जाना—जैसे ठण्डी वायु में चलना या शीत काल में वर्षा में भीगना या शीतल वस्तुयें खाना आदि कारणों से (वातिक शिरोरोग)

२—ज्यादा ताप में तप्त होने से यथा धूप में चलने से भट्टियों पर काम करने से (पैत्तिक शिरोरोग)

३—शोर आदि करने से (वात्तिक)

४—गर्म पदार्थ खाने से यथा तीव्र मसालों वाला मांस मत्स्य आदि खाने से (पैत्तिक)

५—वातिक प्रकृति तथा कोमल स्वभाव।

६—शारीरिक दुर्बलता से।

७—आमवात–उपदंश आदि के कारण यह शिर. शूल होता है।

लक्षण Symptoms

शिर की त्वचा तथा मांस में पीडा होती है। त्वचा को हिलाने से और भी बढ जाती है। पाश्चात्य मतवाले इसका कारण Supra-orbital Nerve का आघात अथवा शोथ मानते हैं।

चिकित्सा

१११—यदि शीत लगकर पीड़ा हो गई हो तो शिर पर दालचीनी या शुंठी का लेप करें। शिर को गर्म रखें। चाय, कहवा, आदि पीने को दें या गुड़ का हलवा बनाकर शिर पर बांधे, परन्तु बने तिल तेल में।

गर्मी के कारण हो तो शिर पर ठण्डे जल की धारा फेंकें या बर्फ रखें और सर पर चन्दन का लेप करें। सिर पर यूडोकोलोन Eudecolone या शैम्पु Shampu लगावें। यदि रोग में उपद्रव हो तो रोग की चिकित्सा करें। पाश्चात्य वाले Hypodermic syringe and needle से (ऐसी पिचकारी जिससे अधस्त्वक् सूचीवेध लगाया जाता है) Supra-orbital nerve में Alcohal (मद्यसार) का सूचीवेध लगा देते हैं।

४–वायुकोटर जन्य शिरः शूल

(Sinus Headache)

नासागुहाओं के रोग यथा नासास्थि के बढ जाने, से या पाकमय हो जाने से यह पीड़ा होती है। यह पीडा गुहाओं से दाँत की ओर, मस्तक की ओर या कनपटियों की ओर चलती है। कदाचित् इससे अर्धावभेदक या सूर्यावर्त भी हो जाते हैं। शङ्खक इसी के अन्तर्गत आता है। नासा द्वारा थोडी सी पूय स्राव हो जाने से पीड़ा शान्त हो जाती है। कृमि जन्य शिरोरोग भी इसी के अन्तर्गत आ जाता है। क्योंकि यदि पूय न निकाली जाय तो अस्थिगल कर उसमें कृमि पड़ जाते हैं। जिस वायुकोटर में यह पीडा होती है, वह पारदर्शक Transilluminated नहीं रहता है। यदि पाक हो तो नासासेतु Nasal bridge पर नेत्रों के पीछे या कनपटियों पर पीडा होती है।

चिकित्सा Treatment

११२—रोगी को शय्यारूढ़ करवादें। शिर तथा चेहरे पर सेंक कर वाएं। षडबिन्दु तैल नासिका में डालें या नस्य देवें। तीव्र विरेचन देवें यथा सुधानिधि १½ से २ रत्ती तक। महालक्ष्मीविलास रस, कफकेतु रस, सितोफलादि चूर्ण में मिला कर देवें। जल को गर्म करके उसमें oil pepperment (पुदीना का तैल) डाल कर वाष्प दें। यदि इससे भी लाभ न हो और पूय पड गई हो तो एक तेज धार वाला probe (एषणी) लेकर नासास्थि को छेद दें। नासा द्वारा सारा पूय और रक्त स्राव होकर दोष निकल जावेगा। बाद में पिचकारी से Permangnate of Potash (कूएं में डालने वाली लाल दवाई) का मृदु विलयन नासिका के अन्दर छोड़ा जाता है। कई वार यदि कृमि पड़ गये हो तो वह बाहर निकल जाते हैं अन्यथा पूय भली प्रकार साफ हो जाती है। बाद में सतपुदीना १०% मद्यसार में घोलकर Spray pump द्वारा अन्दर छिडक देना चाहिए।

५–शीर्षावरणशोथजन्य शिरः शूल

(Meningeal Headache)

यह पीडा शिर की पिछली ओर तथा सुषुम्ना में होती है। इसके साथ २ ग्रीवा के पाश्चात्य भाग की मांस

पेशियां और सुषुम्ना अकड जाती (rigid) है। तीव्रावस्था मे रोगी को चिडचिडाहट, ऊंघना (Drowsiness) आदि होती है जो कि बाद में सन्यासावस्था मे परिवर्तित हो जाते हैं।

इसका निदान करने के वास्ते बहुधा (सुषुम्नाछेदन) Spinal Puncture करना पडता है। यह शिर. शूल प्राय· (शीर्षवरण शोथ) Meningitis, मस्तिष्क के अधो भाग में पूय अथवा रक्त का चू जाना (Leakage of the pus or blood in the Subarechnoid space) या खोपडी के अधोभाग या चतुर्थ कोष्ट (Fourth ventricle) या लघुमस्तिष्क में होने वाले अर्बुदो के कारण होता है और उन २ रोगों के उपचार से शांत हो जाता है।

६–उपदंश जन्य शिरः शूल

(Syphlitic Headache)

वस्तुत. यह शूल भी शीर्षावरण शोथ जन्य होता है परन्तु इसमें भेद यह है कि शीर्षावरण की शोथ का कारण उपदश होता है। इससे विशेषता यह होती है कि पीडा रात्री को बढ जाती है तथा बहुत तीव्र हो जाती है। इसका निश्चय सुषुम्ना स्राव की वासरमैन परीक्षा (wasserman test) देखने पर होता है।

७–आघात जन्यः शिर शूल

(Traumatic Headache)

यदि शिर पर आघात लग जाय और अन्दर से मस्तिष्क पिचित (Contused) हो तो —

१—स्थानिक शिर शूल होता है जो थकावट, शोर अथवा करवट आदि बदलने मे बढ़ जाता है।

२—चक्कर आते हैं।

३—मनुष्य एकाग्र चित्त नहीं हो सकता है।

४—उस स्थान पर स्पर्श वेदना होती है और चेहरे पर थोड़ा सा परिवर्तन होता है।

५—नेत्रो की पुतलियों की गति विचलित हो जाती हैं तथा प्रत्यावर्तित क्रियाओं में परिवर्तन हो जाता है। उपर्युक्त सब लक्षणों का कारण शिरः शोथ होना है। यदि स्थानिक आघात न भी हो अर्थात यदि बाह्य चिन्ह कोई भी न हो तो भी उस रोगी को चार छै सप्ताह तक बिस्तर मे रखना चाहिए और शारीरिक तथा मानसिक क्षोभ से बचाना चाहिए। थकावट भी ठीक नहीं है। यदि स्थानिक आघात हो तो रोगी को उस अवस्था में लिटाना चाहिए जिसमें वह आराम अनुभव करे और निद्राजनक औषधि देनी चाहिए यथा सर्पगन्धा चूर्ण स्वर्ण माक्षिक भस्म।

यदि आघात के पश्चात् मस्तिष्क के बाह्यावरण (Duramatter) के नीचे रक्त सचय हो जाय तो भी शिरः शूल हो जाता है।

८–अन्तः शीर्ष दबाव के कारण होने वाला शिरः शूल

Intracranial pressure causing headache

यदि बृहत मस्तिष्क में अर्बुद हो विद्रधि हो या बाह्यावरण के नीचे जीर्ण रक्त सचय हो तो इस पीडा के दौरे पडते हैं जो कि खडे होने से बढ जाते हैं तथा लेटने से कम हो जाते हैं। खासने से, वमन करने आदि से पीड़ा बढ जाती है। कभी २ शिर शूल के साथ २ वमन तथा अधस्त्वक शोथ भी हो जाती है। पाश्चात्य भाग के अर्बुदों में जब रोगी सर घुमाता है तो पीडा होती है। ऐसी पीडाओ के ठीक कारण का पता नहीं चल सका है। परन्तु ख्याल है कि बाह्यावरण के ऊपर दबाव या रक्त वाहिनियो पर दबाव या मस्तिष्क पर ही सीधा दबाव इसका कारण है। यदि मस्तिष्क में अर्बुद आदि की सम्भावना हो तो शिर अथवा खोपडी को स्पर्श कर के देख लेना चाहिए कि कहीं स्पर्श वेदना तो नहीं है। यदि पिट्यूटरी (Pituitary) का अर्बुद हो तो दोनो कनपटियो मे वेदना होती है और आंखों के पाश्चात्य भाग में ऐसा

दबाव पड़ता प्रतीत होता है जैसे आँखें फट जायगी। सुषुम्ना नाड़ी भेदन से होने वाला शिर शूल सुषुम्नान्तर्गत लवण जल का सूचीवेध करने से ठीक हो जाता है।

शिरः शूल के सार्वांगिक कारण

General causes of Headache

१–यूरिमिया (Uremia)--जब वृक्कों में शोथ हो जाती है तो वह मूत्र नहीं बना सकते हैं फलतः वह विष जो मूत्र द्वारा बाहर निकलना था रक्त में ही रह जाता है और शिर. शूल का कारण बन जाता है। इसके निम्न कारण हैं।

१–मूत्र क्रिया तथा मूत्र का स्वस्थ न होना।

२–रात्रि के समय मूत्र का अधिक आना।

३–सार्वाङ्गिक शोथ।

४–रक्तभाराधिक्य (High blood pressure) जिसमे ऊर्ध्वग रक्तपित्त हो।

५–नेत्र के कृष्णमण्डल के तीसरे पटल मे रक्त स्राव होना।

६—धमनी काठिन्य (Arterio Sclerosis) रक्तभाराधिक्य सहित।

७—जीर्ण सोसक विषमयता।

८—तीव्र ज्वरों (High fevers) में विषों (Toxemias) के कारण।

९—मलेरिया ज्वर

१०—वात रक्त (Gout)

११—मधुमेह

१२—मदात्यय

१३—विबन्ध

१४–रक्त न्यूनता

शिरः शूल के प्रत्यावर्तित कारण

१—नेत्र रोग.—बहुत से नेत्र रोगों के कारण शिरः शूल हो जाता है यथा तिमिर Glucoma आदि। नेत्रों द्वारा लगातार देखना यथा चल चित्रों का देखना television पर काम करना। कढ़ाई का काम करना।

२—कान–नाक अथवा दन्त के किसी भी रोग से शिरः शूल हो जाता है।

३—डिम्बग्रन्थि, गर्भाशय, आमाशय तथा हृदय की व्याधियों में भी शिरःशूल आवश्यक चिह्न है। यथा-डिम्बग्रन्थि शोथ (Ovaritis), गर्भाशय शोथ (Uteritis), श्वेत प्रदर (Leucorrhoea) अर्बुद आदि, आमाशय शोथ, विस्तृत, अर्बुद आदि, हार्दिक दौर्बल्य, तीव्र गति आदि रोग में।

४—शिर पर भारी पगड़ी अथवा तग टोपी पहनने से भी शिरःशूल हो जाता है।

बच्चों का शिरःशूल (Headache in children)

छोटे-छोटे बच्चों में शिरःशूल पाचन संस्थान की विकृति अथवा आमवात के कारण होता है। मल क्रिया के सम्बन्ध में जानकारी ले लेना आवश्यक है और यथा सम्भव मल का निरीक्षण भी कर लेना चाहिए। शरीर में दर्दों का होना, कण्ठ शालूक (Tonsillitis), शरीर पर गांठो का प्रतीत होना, आमवात के प्रमाण हैं। स्कूल जाने वाले बच्चों क शिरःशूल का कारण आँख पर दबाव है। जरा बड़ी अवस्था के बच्चों में शिरःशूल का कारण मूत्र संस्थान का संक्रमण है।

एक विशेष व्याधि जिसे Cyclic vomiting कहते हैं भी कारण है। इसमें रोगी को शिर.शूल और वमन होते हैं और तब तक दूर नहीं होते हैं जब तक कि रोगी के भोजन में से स्नेह पदार्थ बन्द नहीं कर दिये जाते हैं और क्षारीय पदार्थ तथा द्राक्षौज (Glucose) नहीं दिये जाते हैं। किन्हीं मोटे बच्चों में अर्बुद आदि की विद्यमानता के बिना ही शिर.शूल पाया जाता है।

जो बालक हर बात को बुरी तरह अनुभव करते हैं (Higly sting children) को चिन्ता जन्य शिर.शूल होता है। इसका कारण उन के घर तथा स्कूल का वातावरण है।

शिरो रोग विज्ञान

ले०—कविराज पं० नन्दकिशोर जोशी 'किशोर' भिषगाचार्य रेलमगरा (राजस्थान)

माननीय प० नन्दकिशोर जी जोशी भिषगाचार्य महोदय ने पुस्तकीय शिरोरोग विज्ञान को सुन्दर और सरल भाषा में चिकित्सा सहित भली प्रकार वर्णन किया है। आयुर्वेदोक्त शिरो रोगों के पृथक् २ नामों का यदि आधुनिक पाश्चात्य नामों के साथ-साथ तुलनात्मक नाम करण भी हो जाता तो लेखकी सौष्ठुवता और भी बढ जाती। आज के वैद्य समाज को तुलनात्मक विवेचन की परम आवश्यकता है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

शिरोरोग साधारण रोगों में होने पर भी कभी २ यह महान रूप ले लेता है इसके कारण मानव अधिक पीड़ित होता है और उसे मरणान्त कष्ट होता है। कई बार शिर.शूल से पीड़ित मानव अपने शिर को हथौड़े से पीटते तक देखा गया है फिर भी उसको सान्त्वना नहीं मिलती। इस व्याधि का विस्तार साधारण नहीं है। इस व्याधि को हम दो भागों में विभक्त करते हैं।

१—आंतरिक शिरोरोग। २—बाह्य शिरोरोग।

१—आंतरिक शिरोरोग के ११ भेद होते हैं।

१-वात जन्य, २-पित्त जन्य, ३-कफ जन्य, ४-सन्निपातज ५-रक्तज, ६-क्षयज, ७—सूर्यावर्त, ८—कृमिज, ९—अनन्तवात, १०-शङ्खक, ११-अर्धावभेदक।

बाह्य शिरोरोग के ४ भेद होते हैं

१-इन्द्रलुप्त, २-दारुणक, ३—अरुंषिका ४ पलित,

शिरोरोग होने के खास कारण इस प्रकार हैं-विबंध, काम, अजीर्ण, क्षय, रक्त मोक्षण, स्नायविक दौर्बल्यता, नेत्र रोग, कर्ण रोग, प्रमेह, उपदंश, प्रदर, चिंता, शोक, कठोर तकिया लगाना, प्रतिश्याय, किसी प्रकार की शिर से चोट आदि लगना, रात्रि जागरण, दिवाशयन आदि होने के कारण ही शिरोरोग होता है।

वात जन्य शिर शूल

वातादि पदार्थों के विशेष सेवन करने से, चिंता विशेष करने से तथा रात्रि में जागरण करने से, विशेष रूक्ष पदार्थों के सेवन करने से, कहीं आघात लगने से अचानक शिर में शूल होने लगे और यह शूल रात्रि में विशेष बढ जाय तथा कस कर बाधने से तथा उत्ताप (सेक) तैल मर्दनादि करने से कुछ लाभ सा प्रतीत हो तो इस प्रकार के शिरशूल को वात जन्य शिर.शूल जानना चाहिए।

पित्त जन्य शिरशूल के लक्षण

पित्त बर्धक पदार्थों के विशेष सेवन करने से तथा क्रोधादि करने से, अधिक धूप सेवन से, लू लगने से, शिर गरम लपे सा जलने लगे। मध्यान में पीड़ा तीव्र रूप धारण करले तथा नासिका और नेत्र से गरम जल युक्त भाप सी निकलती है। अर्थात् नाक से गरम जल निकलता है और अनुभव यह होता है कि नासिका धूम से पूरित है। शिर के आन्तरिक भाग मे जलन होती है। इस शिरशूल वाले रोगी को ठण्डे पदार्थों से तथा रात्रि में शीतलता के कारण कुछ सान्त्वना मिले तो पित्त जन्य शिरशूल जानना चाहिए।

कफ जन्य शिरशूल के लक्षण

कफ बर्धक पदार्थों के सेवन करने से तथा दिन के शयन करने से कफ प्रकुपित हो कर शिर को भारी करदे,

शिर कफ से लिप्त सा प्रतीत हो, जकड़ा हुआ अचलसा अनुभव हो, यदि शिर को स्पर्श किया जाय तो शीतल लगे। नेत्रों के निचले भाग में शोथ हो जाय, आलस्य का विशेष अनुभव हो तथा मन्द शूल होता रहे। तो इसे कफ जन्य शिरशूल कहेंगे।

सन्निपातज शिरः शूल के लक्षण

जब उपरोक्त किन्हीं कारणों से तीनों दोष कुपित हो जाते हैं। तब उपरोक्त वातादि तीनों दोषों के लक्षण पाये जायेंगे। कभी शिर उष्णता से कपेगा, कभी भारी पन लिये हुए जकड़ जायगा और स्पर्श में शीतलता लिये रहेगा। कभी सूचीवेध सा तीव्र शूल होगा साथ ही कम्प, दाह, मद, तृष्णा, तन्द्रा आलस्यादि लक्षण प्रकट होते रहेंगे। इस प्रकार के लक्षण होने पर शिर शूल को सन्निपात जन्य शिर शूल कहेंगे।

रक्तज शिरः शूल के लक्षण

रक्त जन्य शिर शूल प्रायः पित्त जन्य शिर शूल के कारणों से होता है अर्थात् पित्त ही को कुपित करने वाले दूषित दोष रक्त को दूषित करके रक्त जन्य शिरशूल कर देते हैं। इसमें सभी पित्तज शिरशूल के कारण होते हैं फिर भी इस शिरशूल में पित्तज शिरशूल के सभी लक्षण लक्षित होते हुए भी इसमें विशेषता यह अनुभव होती है कि रक्त जन्य शिर शूल के रोगी को शिर पर किसी प्रकार का आघात या स्पर्श भी विशेष असह्य तथा दुखप्रद हो जाता है। इसमें भी पित्त वत शीतल चंदन कर्पूरादि लेप सुखप्रद होते हैं।

क्षयज शिरः शूल के लक्षण

शारीरिक क्षीणता तथा अत्यन्त मैथुनादि तथा अधिक मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य विशेष करने से, चोट आदि लगने से अथवा शिरा मोक्षणादि कराने से अथवा धूम्र पान, नस्य तथा रक्त मोक्षण से क्षय जन्य शिरशूल बढ़ जाता है। इस व्याधि को क्षय जन्य शिरशूल कहते हैं।

कृमिज शिरः शूल के लक्षण

जिस मनुष्य के शिर के आन्तरिक भाग में काटने सा अनुभव हो तथा सुई चुभने की सी पीड़ा हो अथवा कपालास्थि के भीतरी भाग में स्फुरण सा प्रतीत हो, नासिका से दुर्गंध युक्त जल, रक्त पूय मिश्रित तरल निकलता है। कभी-कभी तो दुर्गन्ध इतनी बढ़ जाती है कि रोगी के समीप बैठना दुसबार हो जाता है। छींक नहीं आती, अगर छींक लाने वाली औषधि का नस्य प्रयोग किया जाय तो छींक के साथ कभी-कभी कृमि भी निकल पड़ते हैं।

सूर्यावर्त शिरः शूल के लक्षण

सूर्यावर्त जन्य शिर. शूल विशेषकर सन्निपात जन्य होते हुए भी वात पित्तोल्वण होता है। प्रातःकाल से जब सूर्योदय होने लगता है उसके साथ-साथ धीरे-धीरे शिर नेत्र और भृकुटी भाग भारी अनुभव होता है और शिर की पीड़ा को बढ़ा देती हैं तथा यह पीड़ा सूर्य के साथ ही साथ बढ़ती चली जाती है जिस तरह धीरे धीरे सूर्य ढलता है पीड़ा भी कम होती जाती है और सूर्य अस्त तक पीड़ा बिलकुल शान्त हो जाती है। इस व्याधि को सूर्यावर्त कहते हैं।

अनन्तवात शिरः शूल के लक्षण

उपरोक्त कारणों से युक्त पित्त वातादिदोष ग्रीवा में स्थित होकर मन्यादि शिराओं को अपना शिकार बनाकर ग्रीवा के पिछले भाग में भीषण वेदना कर देती है। इसके कारण नेत्र, भ्रू तथा शंख प्रदेश में पीड़ा होती है तथा कभी कभी कपोल के एक तरफ कम्प, हनुग्रह तथा नेत्र रोगादि भी उत्पन्न हो जाते हैं इस व्याधि को अनन्तवात कहते हैं।

शंखक शिरः शूल के लक्षण

रक्त पित्त और वायु दूषित होकर शङ्ख प्रदेश में आ जाती है। जिससे वहां उग्र वेदना हो जाती है। दाह तथा राग सहित दारुण शोथ को उत्पन्न करती है। इससे जो शोथ होती है वह तीव्र वेग के साथ विषवत् सिर में व्याप्त होकर शीघ्र ही गले को रोक लेती है।

इसकी असाध्यावस्था से तृष्णा, मूर्छा, ज्वरादि हो जाती है। इसका परिणाम इतना भयङ्कर होता है कि यदि तीन दिन के अन्तर ही में रोगी की चिकित्सा करने में जरा भी असावधानी रही तो निश्चय ही रोगी गत प्राय हो जाता है। इस व्याधि को शङ्खक शिरः शूल कहते हैं।

अर्धावभेदक शिरः शूल के लक्षण

रूक्ष अन्नादि सेवन, दिवा स्वप्न, प्रातः कालीय अधिक शीतल वायु, अति मैथुन तथा किसी भी प्रकार के वेगों को रोकना, आयास तथा व्यायामादि से कुपित वायु स्वयं तथा कफ को अनुगत करके आधे शिर को जकड़ कर मन्या, भ्रू, शङ्ख प्रदेश, कर्ण, नेत्र और ललाट के अर्धभाग को तीव्र वेदना युक्त बना देता है जिससे शस्त्र से काटने के बराबर तथा प्रचण्ड अग्निदाह वत पीड़ा होती है। कभी कभी इसके कारण नेत्र, कान आदि तक नष्ट हो जाते हैं। जब यह व्याधि उग्र रूप धारण करती है तो यह पन्द्रह या दश दिन तथा कभी सप्ताह में ही दौरे के रूप में अकस्मात् तोद अर्थात् सुई चुभने की सी पीड़ा के साथ भ्रम, मोह, शूल, मूर्छा तक बढ़ जाता है। इस व्याधि को अर्धावभेदक शिरः शूल कहते हैं।

इन्द्रलुप्त के लक्षण

इन्द्रलुप्त को हिन्दी में गञ्ज, टाटखल्ली रूसा, आदि नामो से पुकारते हैं। यूनानी वाले अरबी में इन्तसार उलशऊर कहते हैं। पाश्चात् चिकित्सा विशेषज्ञ इस व्याधि को Falling of hair baldness कहते है। आयुर्वेदिक चिकित्सकों का कहना है कि यह व्याधि वायु के सहयोग से पित्त को कुपित कर रोम कूपानुगत दोषों को कुपित कर देता है। इसके कारण रक्त के साथ मिला हुआ श्लेष्मा रोम कूपों को रोक कर वहा के स्थान को दूषित कर देता है। इससे दूसरे रोमो की उत्पत्ति रुक जाती जाती है तथा शिर की त्वचा बड़ी कठिन, रूक्ष तथा देखने में बहुत ही खराब हो जाती है। फिर शिर पर छोटे २ क्षत से होकर उनमें से एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता है इसके साथ ही उसमें खाज चलने लगती है और यह तरल सूख कर जम जाता है फिर खाज चलते रहने में उस तरल का शुष्क भाग उखड़ता रहता है और नीचे घाव निकल आता है। यह व्याधि स्त्रियों में कम पाई जाती है। क्योंकि उनको मासिक स्राव होता रहता है इससे दोषों का निःसरण होता रहता है कभी कभी स्राव के न होने से अथवा दोषों के विशेष कुपित होने से यह व्याधि स्त्रियो में भी पाई जाती है।

दारुणक रोग के लक्षण

यह व्याधि शिर पर होती है इसमे वायु, कफ के प्रकोप के कारण शिर गत दोष कुपित होकर कण्डू उत्पन्न करते हैं इसीमे रूक्षता बढ़ जाती है। इससे पित्त और रक्त का अनुबन्ध हो जाता है जिससे शिर पीड़ा युक्त कठिन त्वचा वाला पाटल वर्ण युक्त हो जाता है। इसमें वायु से तोद, कफ से कण्डू और भारीपन तथा पित्त और रक्त से पिपासा तथा दाह हो जाता है। इस व्याधि को रूसी के नाम से भी पुकारते हैं।

अरुंषिका रोग के लक्षण

यह व्याधि शिर पर होती है। इस व्याधि में कफ, रक्त तथा कृमियों के प्रकोप के कारण प्राय शिर में क्लेद युक्त तथा बहुत से मुख वाली जो पिटिकायें उत्पन्न होती है उसी को अरुंषिका कहते हैं तथा इन्हीं दोषों के विशेष होने के कारण बड़े बड़े व्रण भी हो जाते हैं और कभी कभी असावधानी के कारण वह नाड़ी व्रण का भी रूप ले लेते हैं।

पलित रोग के लक्षण

क्रोध, शोक और श्रम के कारण उत्पन्न देहाग्नि और पित्त शिर में जाकर केशो को पका देता है। बाजारू साधारण मसाले के तैल तथा अधिक सुगन्धित जो पदार्थ वाइट ऑयल मे मिले हुये हो उनको लगाने से, अधिक चिन्ता आदि करने से पित्तादि बर्धक पदार्थों के सेवन से केशों का रंग श्वेत हो जाता है। इस व्याधि को पलित रोग कहते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेदिक विशेषज्ञों ने शिर के रोग का विषद विवेचन किया है। इन रोगों के बारे में पाश्चात्य चिकित्सकों के मत अर्थात् उनके लक्षणादि पाश्चात्य मतानुसार आगे लिखे जा रहे हैं। प्राय. उनके मतानुसार संक्षेप में शिर शूल के सभी कारण व लक्षण आदि बनाने की चेष्टा की गई है।

(Headache) शिरःशूल

पाश्चात्य चिकित्सा विशेषज्ञ शिरशूल को मुख्यतया तीन भागों में विभक्त करते हैं।

१—Neurological and local causes अर्थात् ज्ञान तन्तु सम्बन्धी व स्थानिक रोगों के कारण होने वाला शिरशूल।

२—General causes अर्थात साधारण माने जाने वाले कारण से होने वाला शिरशूल।

३—Reflex causes अर्थात् किसी अन्य स्थानीय रोगों के द्वारा होने वाला शिरशूल।

१—Neurological and local causes इसको आठ भागों में विभक्त करते हैं।

१-Anxiety headache अर्थात चिन्ता द्वारा होता है। इसमें शिर का भारीपन, असह्य पीड़ा होना, शिर पर बोझा सा प्रतीत होना, थकान, एकाग्रता का अभाव अर्थात् मानसिक अस्थिरता, निद्रा का अभाव, अरुचि, शारीरिक और मानसिक दौर्बल्यता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

२—Migrain अर्थात् अर्द्धावभेदक-इसमे शिरशूल तीव्र होता है और जी मचलाता है, वमन के साथ हरा पीला रङ्ग का पित्त निकलता है। जब इसका दौरा होता है तो उसके एक दिन पूर्व शिथिलता प्रतीत होती है और उससे यह अनुमान किया जाता है कि अब शिरशूल का दौरा होगा।

(A) उसकी आँखों के सामने अजीब तसवीरें आती हैं जैसे—काला सा दाग व कुछ भिन्न-भिन्न सक्लें और उसको यह अनुभव होता है कि मेरे हाथ से लेकर सारे शरीर में सनसनी फैल रही है।

(B) शरीर में चींटियां सी चढ़ती हुई सी प्रतीत होती हैं। भुजाओं मे तथा जंघाओ में शिथिलता अनुभव होती है और कभी कभी बोलना बन्द हो जाता है। यह चिन्ह दौरे के दस या बीस मिनट पूर्व ही अनुभव होते हैं।

(C) दर्द एक तरफ होता है अर्थात् सिर के आधे भाग में होता है और मुख्यतया दर्द का केन्द्र शङ्खास्थि ही है फिर कभी—कभी दोनो ओर भी दर्द आरम्भ हो जाता है।

(D) जी मचलाना, कभी-कभी वमन होना, कभी उदर में शूल होने लगता है। यह शूल २–३ घण्टे रहता है कभी सारे दिन होता रहता है। सारे दिन दौर्बल्यता प्रतीत होती है। अधिक से अधिक इस व्याधि का दौरा सप्ताह में दो बार होता है अन्यथा महीने में या दो महीने मे केवल एक बार होता है।

३—Neuralgia अर्थात् किसी ज्ञान तन्तु का निरन्तर दुखना जैसे भृकुटी भाग व नासिका के दोनो तरफ वाले भागों में तथा सिर के पीछे की ओर के ज्ञान तन्तु का निरन्तर दुखते रहना।

४—Sinus headaehe अर्थात् नाडी व्रण जन्य शिरशूल। यह शिरशूल प्राय प्रतिश्याय के बिगड़ जाने पर होता है। जबकि हड्डियों के पोले भाग में पूय अथवा कफ भर जाता है तथा नाक के बहने से उक्त पूय तथा कफ के नि.सरण होने के पश्चात् शिरशूल मिट जाता है क्योंकि इसके साथ ही सभी दोषों की शुद्धी हो जाती है। यदि यह पूयादि पदार्थ बाहर न निकले तो इससे ज्यादह खराबी होने की आशङ्का रहती है और व्याधि बढ़ जाती है। इसकी जांच करने के लिए बीमार को किसी अंधेरे कमरे मे लेजाकर सुला दिया जाय फिर उसके मु ह मे छोटी बैटरी डालकर यदि जलाया जाय तो आंतरिक भाग से बाहर लाली दिखाई देती है किन्तु यदि

व्याधि अधिक हो या पूयादि संचित हो तो वह लाली नहीं दिखाई देगी बल्कि कालिमा या अंधकार दिखाई देगा। स्वस्थ आदमी में कालिमा दिखाई नहीं देगी।

५—Maningial headache अर्थात् मस्तिष्क के पर्दे में बीमारियों के कारण होने वाला शिर शूल। जैसे मस्तिष्कावरण शोथ (Maningitis) इसमें गर्दन और रीढ़ की हड्डी का जकड़ जाना, बेचैनी होना, उत्तेजना होना, तन्द्रा आना, बेहोशी होना आदि बातें, गर्दन तोड़ बुखार में तथा तीव्र ज्वर में पाये जाते हैं।

६—Syphplitic headache अर्थात् उपदंश जन्य शिरशूल। यह व्याधि उपदंश रोगी को होती है। इसका विशेष प्रभाव शीत काल में अर्थात् रात्रि को अधिक होता है। रक्त में परीक्षणादि के द्वारा उपदंश के कीटाणु दृष्टि गत होते हैं।

७—Traumatic headache अर्थात् आघात-जन्य शिर शूल। इसमें मस्तिष्क मे आघात लगने के कारण खून बहता है अथवा शोथ हो जाता है तो उससे स्थानीय पीड़ा होती है। जिसके कारण शिर में चक्कर आते हैं, एकाग्रता भंग होती है, आंख की पुतलियों की सिकुड़न में शिथिलता आ जाती है।

८—Increasing Intracranial pressure अर्थात् मस्तकीय तरल की वृद्धि से होने वाला शिर शूल।

A—मस्तकीय तरल की वृद्धि के कारण मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है और उसके ही कारण शिर शूल होता है।

B—किसी मस्तिष्क के आंतरिक भाग में अर्बुद हो जाने के कारण मस्तिष्क पर दबाव पड़ता है। उससे शिर शूल होता है।

२—General causes of headache-इसको दश भागों में विभक्त किया गया है।

१—Uremia अर्थात् गुर्दों के द्वारा विषैले पदार्थों के न निकलने से तथा उनके रक्त में मिश्रण होने के कारण विष जन्य प्रभाव होने से उत्पन्न होने वाला शिर शूल।

२—Arterio sclerosis अर्थात् धमनियों की दिवारों का लचकीलापन नष्ट होने तथा उनके कठोर हो जाने के कारण हृदय को अधिक परिश्रम करना पड़ता है जिससे होने वाला शिर शूल।

३—Chronic led poisoning अर्थात् शीशा के कारखानों में कार्य करने वालों को होने वाली बीमारी से होने वाला शिर शूल।

४—तीव्र ज्वर मे भी शिर शूल होता है।

५—Malaria अर्थात् विषम ज्वर में भी शिर शूल पाया जाता है।

६—Gout अर्थात् गठिया, आमवात मे भी शिर शूल होता है।

७—Diabetis अर्थात् मधुमेह मे भी शिर शूल होता है।

८—Alcoholism अर्थात् अधिक मद्यपान करने पर भी शिर शूल होता है।

९—Constipation अर्थात् विबन्ध होने के कारण भी शिर शूल होता है।

१०—Anaemia अर्थात् रक्ताल्पता के कारण भी शिर शूल होता है।

३—Reflex causes of headache—किसी अन्यस्थान के कष्ट के कारण शिरः शूल होना। जैसे आंख की बीमारी (ग्लोकोमा) Glucoma, Long sight, Sort sight। नाक, कान, दांत की बीमारी के कारण होने वाला शिर शूल। गर्भाशय, डिम्बाशय, आमाशय और हृदय की बीमारियों से होने वाला शिर शूल। शिर पर तंग टोपी या पाग को कसकर बांधने से होने वाला शिर शूल।

शिर शूल की चिकित्सा

सभी प्रकार के शिरः शूल की चिकित्सा करने के लिये पहले कारण को मिटाना अनिवार्य है फिर दोषानुसार योग व्यवस्था करनी चाहिये।

वात जन्य शिरः शूल की चिकित्सा

११३—वात जन्य शिर शूल मे स्नेहन स्वेदन तथा नस्य आदि देना हितकर है। वातनाशक तैल का मर्दन करना चाहिए। महावातविध्वंस, अगस्त्यसूतराज, वृहद योगराज गुग्गल देना श्रेयकर है। षडगुणतैल की नस्य देवें।

गाय का घृत	१० तोला
मिश्री	११ तोला
गाय का दूध	२ तोला
केशर	॥ माशा

—इनमें से केशर और मिश्री को दूध मे घोट लेवे फिर घृत के साथ घोटे, फिर केवल घृत निकाल कर उसका नस्य देवे और बचा हुआ दूध पिलादें, इससे अच्छा लाभ होगा। श्वासकुठार की नस्य देवें। आनन्द भैरव रस की २ गोली प्रातः २ गोली सायं दूध के साथ सेवन करावें। अमृत धारा जो समान मात्रा से बनी हो उसकी तीन चार बूंद रूमाल पर डालकर सुंघाना चाहिए तथा पानी या बतासे में ४-५ बूंद डाल कर पिलाने से शिर शूल नष्ट होता है।

पित्त जन्य शिरः शूल की चिकित्सा

११४—पित्त जन्य शिर शूल में स्नेह न कराकर विरेचन कराना चाहिए। शीतल जल से शिर प्रक्षालन कराकर कपूर मिश्रित शतधौत घृत की मालिश करावें। श्वेत चन्दन में भीमसेनी कपूर गुलाब जल में घिसकर लेप कराना चाहिए अथवा कमल केशर नीलोफर, आंवलो, श्वेत चंदन सभी को पीसकर लेप कराना चाहिए। पांव में कांसी के बर्तन से शतधौत घृत का मर्दन करावें।

गिलोय सत्व	१ माशा
प्रवाल पिष्टी	४ रत्ती
कामसुधारस	२ रत्ती
सितोफलादि चूर्ण	१ माशा

—को दिनमें तीन बार लौंग के पानी के साथ देना चाहिए।

सूतशेखर रस	२ रत्ती
गिलोग सत्व	४ रत्ती
दती भस्म	२ रत्ती
चन्दनादि चूर्ण	१ माशा

—को चन्दनादि शर्बत के साथ देना चाहिये।

स्वर्णमाक्षिक भस्म	२ रत्ती
शुक्ति भस्म	२ रत्ती
गिलोय सत्व	४ रत्ती
चन्दनादि चूर्ण	१ माशा

—लवङ्ग के पानी के साथ दिन में तीन बार देना चाहिए।

कफ जन्य शिरः शूल की चिकित्सा

कफ जन्य शिरशूल वाले रोगी को लंघन करावें, उष्ण पदार्थों द्वारा पाचन करावें, स्वेदन करावें, तीक्ष्ण नस्य धूम देना चाहिए। नमक तथा त्रिकटुवादि क्वाथ का कवल धारण कराना चाहिए। सोंठ के कल्क से मिश्रित दूध का नस्य और कवल धारण कराना विशेष हितकर है।

११५—अफीम	लौंग
केशर	प्रत्येक समान भाग

—लेकर अच्छी तरह घोटे फिर शिर में लेप करने से अच्छा लाभ होता है। अथवा—

अद्रक का रस	१ माशा
तुलसी के पत्तों का रस	१ माशा
अडूसे के पत्तों का रस	१ माशा
काली मिर्च	४ रत्ती

—को पीस कर नस्य देना चाहिए, अच्छा लाभ होगा।

नोट—कफ जन्य शिरशूल में तैल मर्दन वर्जनीय है।

सन्निपातज शिरः शूल की चिकित्सा

सन्निपात जन्य शिरशूल में स्नेह न देकर विरेचन देवे। स्वेदन नस्य आदि देना चाहिए। पुराना घृत पिलाना भी हितकर है। कमल, देवदारु, कूठ, मुलहठी, इलायची, नीलोफर अथवा तगर, रोहिस, पद्माख और भटेड को घी में मिला कर लेप कराना चाहिए।

११६—शिरशूल वज्र रस — २ रत्ती
वातविध्वंस रस — २ रत्ती
सूतशेखर रस — २ रत्ती
चन्दनादि चूर्ण — ४ रत्ती

—में मिलाकर पुराने घृत के साथ देना चाहिए। पुराने घृत की नस्य देना भी हितकर है। षटबिन्दु तैल की नस्य देना चाहिए, अतिरिक्त उपद्रव शान्त के लिये दोषनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

रक्तज शिरः शूल की चिकित्सा

११७—रक्त जन्य शिरशूल मे पित्त जन्य शिरशूल की तरह चिकित्सा करना चाहिए। यदि इतने पर भी शान्ति न हो तो शीत उष्ण बदल कर रक्त मोक्षण करना चाहिए।

क्षयज शिरः शूल की चिकित्सा

क्षय जन्य शिरशूल के लिये बृंहण विधि करनी चाहिए तथा अष्टवर्ग से सिद्ध घृत को पान व नस्य के लिये देना चाहिए।

११८—वसन्त कुसमाकर रस — २ रत्ती
च्यवनप्राश्य — २ तोला

—के साथ देकर ऊपर से दूध भी पिलाना चाहिए। बृहद जीवकाद्य तैल या घृत का नस्य करना तथा पान कराना हितकर है। कर्ण के द्वारा मुर्गी के अण्डे की जरदी को मस्तिष्क में पहुंचाने से भी अच्छा लाभ होता बताते हैं।

अभ्रक भस्म — २ रत्ती
स्वर्ण मालती — २ रत्ती
सूत शेखर रस — ४ रत्ती
कामसुधा रस — २ रत्ती

—लेकर इनको दिन मे दो बार च्यवनप्राश्य के साथ देना चाहिए अथवा आंमले के मुरब्बे के साथ देना चाहिए।

कृमिज शिरः शूल की चिकित्सा

११९—कृमि जन्य शिरोरोग के रोगी को शय्या पर सुला कर उसकी नाक में नीलगिरी तैल की ४-५ बूंद डालना चाहिए फिर श्वास कुठार, त्रिकटु, करज इनको समान लेकर चूर्ण कर तीव्र नस्य देवे जिमसे कृमि निकल कर बाहर गिर पड़ेगे। फिर षटबिन्दु तैल डालना चाहिए। बायविडंग के द्वारा धूम्रपान कराना चाहिए। त्रिकटु, करज, सहजने के बीज कम्पीला इन की नस्य देना चाहिए। पलाश, विडंग, त्रिकुट हल्दी इनका नस्य देना चाहिए। तृणकान्त मणि पिष्टी २ रत्ती स्वर्ण माक्षिक भस्म २ रत्ती सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ देवें।

सूर्यावर्त शिरः शूल चिकित्सा

१२०—सूर्यावर्त जन्य शिरशूल में नस्य देना चाहिए। भांगरे का रस बकरी का दूध समान लेकर धूप में रख कर गरम कर नस्य देवे। गुड़ और घी मिला कर पिलाना चाहिए। घी दूध का नस्य देना चाहिए, घी दूध शक्कर मिलाकर पिलाना चाहिए, साथ ही मृदु विरेचन देना चाहिए। दूध में पिसे तिल के द्वारा स्वेदन कराना चाहिए। जीवनीय गण युक्त औषधियां सेवन कराना चाहिए। घृत दूध मिश्री केशर का नस्य देना चाहिए। अमलतास के पत्तो का रस, अपामार्ग के कल्क के साथ पकाया मक्खन का नस्य सूर्यावर्त को नष्ट करता है। दशमूल क्वाथ, घृत, सेंधा नमक मिलाकर नस्य देना चाहिए।

नोसादर — १ तोला

बिना बुझा हुआ चूना	१ तोला
कपूर	३ माशा

—मिलाकर उसमें थोड़ा पानी डाल कर हिला कर नस्य देना चाहिए।

अर्धावभेदक शिरः शूल चिकित्सा

अर्धावभेदक जन्य शिर शूल में स्नेहन स्वेदन देने के पश्चात् उष्ण भोजनादि देना चाहिए। उक्त चिकित्सा के अनुसार ही दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

१२१—देशी कपूर डली का	१ माशा
मिश्री	२ तोला
मेवा	४ तोला

—के साथ मिलाकर सूर्योदय से समय शौचादि से निवृत होकर आने पर देवें। इस प्रकार तीन दिन तक दे। इससे से अच्छा लाभ होता है। सारिवा, नीलोफर, कूठ, मुलहठी इनको कांजी में पीस कर घृत मिलाकर लेप करना चाहिए। इस प्रकार के उपचार से अर्धावभेदक अच्छा होता है।

अनंतवात शिरः शूल की चिकित्सा

१२२—अनन्तवात जन्य शिरशूल मे सूर्यावर्त जन्य चिकित्सा हितकर है। विशेष बात यह है कि अनत वात में शिरा वेधन द्वारा रक्त मोक्षण कराना हितकर है। वात पित्त शामक आहारादि हितकर हैं। मधु तथा दही का तोड, दलिया आदि देना चाहिए।

शङ्खक शिरः शूल की चिकित्सा

शङ्खक शिरशूल में स्वेदन कर्म भूल कर भी नहीं करना चाहिए। रोगी को महामायूर घृत की नस्य देना तथा पान कराना हितकर हैं। घी दूध पिलाना चाहिए। और—

१२३—भीमसेनी कपूर	४ रत्ती
इलायची छोटी के दाने	४ रत्ती
लोंग	४ रत्ती

—इनको चन्दन और गुलाब जल द्वारा पीस कर शिर पर लगाने से अच्छा लाभ करता है।

लोंग तैल	इलायची तैल
पिपरमेण्ट	अजवाइन सत्व
भीमसेनी कपूर	प्रत्येक समभाग

—तैलों को लेकर फिर अजवाइन, पिपरमेण्ट, भीमसेनी कपूर को मिला कर कुछ देर धूप में रखें। इनके घुलने पर शिर में मालिश करनी चाहिए।

अभ्रम भस्म	२ रत्ती
स्वर्ण बसन्त मालती	२ रत्ती
सूत शेखर रस	२ रत्ती
कामसुधा रस	४ रत्ती

—लेकर च्यवनप्राश्य में अथवा आंवला के मुरब्बे के साथ देना चाहिए। पांवों से बकरी का घी और दूध मलना चाहिए। नागर बेल के पत्ते पर घी चुपड़ कर कुछ गरम कर शङ्ख प्रदेश में बाँधना चाहिए। केशर, लोंग, जायफल, गुलाब जल में पीस कर शिर पर लेप करना चाहिए। इससे शङ्खक शिरशूल नष्ट होता है।

प्रसूत ज्वर जन्य शिरः शूल की चिकित्सा

कभी प्रसूता अवस्था में भी भयङ्कर शिरशूल होता है। तब उस अवस्था में—

१२४—चन्द्रामृत रस	२ रत्ती
प्रताप लकेश्वर रस	२ रत्ती
सितोपलादि चूर्ण	१ माशा

—इस प्रकार की तीन मात्रा दशमूल क्वाथ के साथ दिन में तीन बार देना चाहिए।

बाह्य शिरोरोग जन्य चिकित्सा

इन्द्र लुप्त चिकित्सा—

इन्द्र लुप्त से पीड़ित रोगी के शिर को पहले नीम की पत्तियों के सहित उबाले हुए पानी से धोना चाहिए। फिर उसको कारबोलिक साबुन से धोकर साफ करना चाहिए।

१२५—नीम की सिंगी चिरोंजी
मुलहठी कूठ
उड़द सेंधा नमक
प्रत्येक समभाग

—लेकर कांजी में पीस कर उसमें शहद मिला कर शिर पर लगाना चाहिए अथवा उक्त चूर्ण को आम के अचार में डाले हुए पुराने तैल में मिला कर लगाना चाहिए, अच्छा लाभ करता है।

आम की गुठली	१ तोला
छोटी हरड़	१ तोला
तुत्थ भस्म	३ माशा
गन्धक	६ माशा
चूना	६ माशा
मुर्दासन	६ माशा

—लेकर पीस कर चूर्ण करे फिर गाय के घी में मिला कर लेप करें। अच्छा लाभ होगा।

गाय के दूध में पोस्त के दानों को पीस कर उसमें तुत्थ भस्म मिलाकर रखलें। फिर सिर को धोकर उस पर लेप करे अच्छा लाभ होगा।

तिल तैल	ऽ॥।
छोटी कटेरी के पचांङ्ग का रस	ऽ॥
गुड़हल के फूलों का रस	ऽ।
सत्यानासी के पचांङ्ग का रस	ऽ॥
भांगरे का रस	ऽ॥

—इनमें

चिरमटी	२ तोला
त्रिफला	६ तोला
अनंतमूल	१ तोला
कबीला	१ तोला

—इनको मिला कर तैल सिद्ध करे। इसके लगाने से गंज मिटता है।

दारुणक रोग नाशक चिकित्सा

१२६—तुत्थ भस्म	कबीला
सफेद कत्था	सोना गेरू
शोरा	प्रत्येक १–१ तोला
मुर्दाशन	काली मिर्च
मेहदी	प्रत्येक २–२ तोला
सरसों का तैल	१८ तोला
मोम देशी	२ तोला
राल	२ तोला

—लेवे। पहले तैल में मेहदी के पत्ते डाल कर जलावे फिर नीचे उतार कर मोम डालें, ठण्डा होने पर सब वस्तुओं का चूर्ण डाल कर घोटे और मरहम बना कर लेप करे। दारुणक रोग मिटता है, इन्द्रलुप्त भी नष्ट होता है। अरुंषिका आदि भी मिटते हैं। भृङ्गराज तैल भी अच्छा लाभ करता है।

अरुंषिका चिकित्सा

यह व्याधि शिर से होती है। इस व्याधि के लिये शिर के बाल जो अरुंषिका के आस पास हो उनको साफ कर के फिर निम्ब जल से धो डाले।

१२७—कबीला	३ तोला
कपूर	१॥ तोला
चौकिया सुहागा	१॥ तोला

—इनका चूर्ण कर रखले। इसमें से थोड़ा सा लेकर लाल चंदन की लकड़ी से मिलाकर घिसे फिर साफ की हुई जगह पर लगावे तो अच्छा लाभ होता है।

कज्जली	२ तोला
कबीला	२ तोला
काली मिर्च	२ तोला
सिन्दूर	२ तोला
तुत्थ भस्म	१ तोला

—इनको पीस कर शतधौत गाय के घी में घोट कर लगाना चाहिए, इससे अच्छा लाभ रहेगा। कभी कभी अरुंषिका और दारुणक रोग में असावधानी रहने पर यह व्याधि उग्र रूप धारण कर लेती है

इसके कारण कभी कभी भयङ्कर पीड़ा हो जाती है तथा घावों में कृमि पड़ जाते हैं। जिसमें से दुर्गन्ध अधिक आती है और रोगी को भी विशेष कष्ट होता है। ऐसी स्थिति में रोगी के व्रणों पर टरपन टाईन तैल या नीलगिरी तैल या नीम का तैल या करञ्ज का तैल डाल कर ऊपर फोहा रख देना चाहिए। फिर थोड़ीदेर के बाद पोटास-पर-मेगनेट से युक्त जल से या नीम के पत्तो से उबाले हुए पानी से धोना चाहिए। जिससे कृमि निकल जाय और फिर उपरोक्त उपचार मरहम आदि लगाना चाहिए अथवा बोरिक पाउडर का मरहम लगाना चाहिए।

पलित रोग की चिकित्सा

१२८—पलित रोग में मेथी कल्प या भल्ला-तक कल्प करना चाहिए। सिर में चन्दनादि तैल का मर्दन करना चाहिए। प्रात. सायं नारसिंह चूर्ण, पूर्ण चन्द्रोदय रस, वसंत कुसमाकर रस तथा च्यवनप्राश्य का सेवन करना चाहिए। भोजनोत्तर भृङ्गराजासव का सेवन कराना चाहिए। भृङ्गराज तैल का मर्दन करना हितकर है। जिस स्थान पर शिर के सभी बाल उड कर त्वचा निकल आवे तो वहां हाथी दांत की निधूम कृष्ण भस्म बना कर उसमें समान रसौत मिला बकरी के दूध में प्रति दिन लेप किया जाय तो अच्छा लाभ होगा। वहा पुनः केश जम जांयगे।

शिरोरोग

लेखक—वैद्य नान्नूलाल गुप्ता आयु. वि. बालाघाट, (म० प्र०)

> ले० वैद्य नान्नूलाल गुप्ता आयु० वि० महोदय ने अपने लेख में पुस्तकीय क्रम को भली प्रकार अपनाया है एव सरल और सुबोध भाषा में अपने विषय को अनुभव सहित पाठकों की भेंट किया है, लेख सुन्दर और उपादेय है। चिकित्सा क्रम रुचिर है।
>
> —हरदयाल वैद्य

परमात्मा ने प्रकृति के द्वारा संसार के जीवों के शरीर की रचना में सबसे कठिन उत्तम रचना मनुष्य शरीर की, की है। मनुष्य शरीर के जितने अङ्ग हैं, उन सबमें श्रेष्ठ अङ्ग 'शिर' है। इस शिर के अन्दर बृहत् और लघु दो मस्तिष्क (भेजे) शिर के अगले और पिछले भाग में रखकर प्रकृति ने अपनी करामात पराकाष्टा तक पहुचादी है। प्रकृति ने अपनी अन्तिम शक्ति यहीं खर्च की है।

मनुष्य ने अपने इस अत्युत्तम अङ्ग पर दुर्लक्ष करके उसमें नाना प्रकार के रोगों का आविष्कार कर दिया है। इन्हीं रोगों का नाम शिरोरोग है। यह रोग वातादि दोषों के विकारों के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। दोषों और अङ्गों के अनुकूल ही इनका नामकरण किया गया है।

इसको सस्कृत में शिर. शूल, हिन्दी में सिर दर्द या मस्तक पीड़ा और अग्रेजी में हैडेक कहते हैं अथवा डिजीज आफ ब्रेन कहते हैं।

यह बात सब वैद्य जानते हैं कि रोगों में वायु के रोग अधिक हुआ करते हैं। इसी तरह शिरोरोगों में भी वायु की प्रधानता रहती है।

वातज शिरोरोग के अन्तर्गत, सन्निपातज, क्षयज, अर्धावभेदक, शङ्खक और अनन्तवात शिरोरोग सम्मिलित हैं। शुद्ध वातज शिरोरोग के सिवाय अन्य शिरोरोगों में अन्य दोष भी विकारी होकर शामिल हो जाते हैं, परन्तु उनमें उल्बनत्व वायु का ही होता है।

पित्तज शिरोरोग के अन्तर्गत रक्तज और सूर्यावर्त शिरोरोग शामिल हैं। क्योंकि ये सूर्य की गर्मी से अधिक बढते और रात के समय शात हो जाते हैं।

कफज शिरोरोग में प्रतिश्याय जनित (जुकाम-सर्दी) शिरोरोग शामिल हैं।

इनके अतिरिक्त कृमिज, ज्वरज, अजीर्णज, स्नायु दुर्बलता जनित, नेत्रादि रोग जनित, मस्तिष्क रोग जनित, और गर्भाशय रोग जनित शिरोरोग भी होते हैं।

अब इनमें से प्रत्येक के लक्षण और शांत करने के उपाय सूक्ष्म में दर्शाने का प्रयत्न करते हैं।

जब वायु विकारी होकर शिर के भीतर असह्य पीडा उत्पन्न करती है। तब वह दर्द रात्रि के समय बढता और दिन के समय कम हो जाता है। यह दर्द लेप करने और वायुनाशक तेल लगाने तथा सेकने से कम हो जाता है। इसे वातज शिरोरोग कहते हैं।

इस रोग को हटाने के लिये निम्न लिखित उपायों का प्रयोग करना चाहिए।

१२९—सोंठ को पत्थर पर पानी डालकर घिसो जब वह चन्दन के समान हो जाय तब उसे कटोरी में लेकर गरम करो और कुनकुना माथे पर लेप करो।

१३०—सोंठ और दालचीनी का उपरोक्त रीति से लेप तैयार करके मस्तक पर लगाओ।

१३१—सोंठ, दालचीनी और अफीम का लेप तैयार कर के लगाओ।

१३२—सोंठ, केशर तथा अफीम का लेप तैयार करके लगाओ।

१३३—ककोड़े का कद शहद में पत्थर पर घिसकर माथे पर लेप करो।

१३४—कूठ, एरंड की जड़ और सोंठ जल में पीस कर गरम करके कपाल पर लेप करें।

१३५—श्वासकुठार की नस्य देने से शिर का दर्द दूर हो जाता है।

१३६—षटबिन्दु घृत की नस्य देने से भी वातज शिर दर्द नष्ट होता है।

१३७—शिरोवज्र रस और शिरः शूलान्तक रस भी शहद, पानी या दूध के साथ खाने से वातज सिर दर्द अच्छा हो जाता है।

१३८—वात नाशक तैल जैसे, नारायण, महानारायण तैल की मालिश करके सेंकने से भी वातज शिरोरोग में आराम होता है। इन तैलों की नस्य और शिरो बस्ती का प्रयोग करने से भी वातज शिरोरोग नष्ट होते हैं।

१३९—शिर शूलान्तक नस्य भी इस रोग को दूर करता है।

सन्निपातज शिरोरोग—इसमें वात, पित्त और कफ तीनों के लक्षण मिलते हैं। शिर में दर्द, शिर गर्म और कफ युक्त जान पड़े, तब सन्निपातज शिरोरोग समझना चाहिए। इसमें शिर का दर्द हमेशा एक सा बना रहता है, इस रोग में वायु की उल्बणता अधिक रहती है। इसलिए पित्त और कफ को शांत करने वाले योगों के साथ वायुनाशक औषधियों का समावेश करके प्रयोगों का उपयोग करना चाहिये।

नीचे लिखे प्रयोग इसमें अधिक सफल होते हैं:—

१४०—सोंठ का चूर्ण	२ माशे
दूध	८ तोले

—मिलाकर नस्य देने से त्रिदोषज शिर दर्द नष्ट हो जाता है।

१४१—दसमूल को दूध में औटाकर नस्य देने से त्रिदोषज शिरोरोग नष्ट हो जाता है।

१४२—बेल की गिरी और सोंठ को दूध में औटाकर दूध की नस्य देने से त्रिदोषज शिर दर्द शांत हो जाता है।

१४३—षड्बिन्दु तेल की नस्य देने से भी सन्निपातज शिर दर्द अच्छा हो जाता है।

क्षयज शिर रोग—शिर की चर्बी, कफ और रक्त के शुष्क हो जाने से शिर में जो दर्द उत्पन्न होता है, उससे सिर में सुई टोंचने की सी पीड़ा होती है। इससे मूर्छा भी आजाती है। यह क्षयज शिरोरोग है। यह योग इस में अधिक लाभकारी सिद्ध हुये हैं।

१४४—षड्बिन्दु घृत का नस्य दो। अवश्य लाभ होता है।

१४५—मुलहठी	बायबिडङ्ग
भाँगरा	सोंठ

प्रत्येक २॥-२॥ तोला

—सबको पानी में पीसकर लुगदी बनालो।

गाय का घी	आध सेर
बकरी का दूध	२ सेर

—इनमें लुगदी मिलाकर आग पर पकाओ।

जब घी रह जाय छानकर रखलो। यह षड्बिन्दु घृत है। इसकी नस्य देने से क्षयज शिर दर्द में अवश्य लाभ होता है।

१४६—क्षयज शिर दर्द में बकरी के घी में कपूर मिला-कर नस्य देने से लाभ होता है।

अर्धावभेदक शिरोरोग—कफ का सहारा लेकर, वायु

कुपित हो, गर्दन, भों, कनपटी, आख, कान और अर्धकपाल में तीव्र वेदना उत्पन्न करती है। इस असह्य दर्द को अर्द्धावभेदक, आधा सीसी वा अर्धकपारी भी कहते हैं।

इस रोग को दूर करने के लिए निम्न योगों का उपयोग करना चाहिए।

१४७—केशर को घी में भून और मिश्री मिलाकर नस्य दो।

१४८—घी में सेंधानमक पीस कर नस्य दो।

१४९—तिल के तैल में नमक मिलाकर गरम करो और नस्य दो।

इन उपायों का उपयोग कम से कम तीन दिन करने से अवश्य लाभ होता है।

शखक शिरो रोग—वायु, पित्त, रुधिर और कफ के दूषित होने के कारण शख स्थान अर्थात् कनपटी में तीव्र पीड़ा, दाह और सूजन होती है। इसी को शखक शिरोरोग करते हैं। इसमें रोगी के लिए निम्न योगों का उपयोग करना चाहिए।

१५०—शतावर	काले तिल
मुलहठी	नील कमल
दूब	पुनर्नवा
बच	समभाग

—इनको पीसलो और इन्हें पानी में पकाकर छानलो। फिर नस्य दो। इससे शंखक रोग का नाश होता है।

१५१—मजीठ	हल्दी
दारू हल्दी	पद्माख
नीम के पत्ते	खश

प्रत्येक समभाग

—इनको पानी में पीसकर कनपटी में लेप करने से आराम हो जाता है।

अनन्तवात शिरो रोग—यह रोग वातादि; तीनों दोषों के कुपित होने से मन्या नाडी में पीड़ा उत्पन्न होकर कनपटी, भों नेत्रादि में फैल जाती है। उसे अनन्तवात कहते हैं। इस रोग में नीचे लिखी औषधियों का उपयोग करना चाहिये।

१५२—सिरके मे सीप घिसकर लेप करो।

१५३—अडे के पीले भाग में बिना बुझा चूना मिलाकर पीड़ित स्थान पर लेप किया जाय।

१५४—सफेद फिटकरी और आमा हल्दी की गांठ एक मृतिका पात्र पानी मे घिसकर कनपटी और भ्रू पर लेप करदो। यदि आंख मे दर्द हो तो आख खोलकर उसमें भी लगादो।

पित्तज शिरो रोग—पित्त के कुपित होने पर दिन के समय शिर मे दर्द हो और रात के समय शांत हो जाय उसे पित्तज शिरोरोग कहते हैं। उसे निम्न उपायों से शात करना चाहिए।

१५५—सौवार धोया घृत कपूर मिलाकर मस्तक पर लगाओ।

१५६—धनिया	चन्दन
पुष्प गुलाब	समभाग

—लेकर इसबगोल के लुआब में पीसकर सिर पर लेप करो।

१५७—चन्दन में कपूर मिलाकर माथे पर लेप करो।

रक्तज शिरो रोग—सिर में इतनी पीड़ा हो कि वह किसी चीज का स्पर्श न सह सके। इसे ही रक्तज शिरोरोग कहते हैं। यह रोग रक्त मोक्षण से शीघ्र अच्छा हो जाता है। पित्तज शिरोरोग की औषधियों से भी इस रोग में लाभ पहुँचता है।

सूर्यावर्त शिरो रोग—यह रोग सूर्य के उदय होते ही आरभ होता है और जैसे जैसे सूर्य चढ़ता जाता है वैसे २ शिर दर्द भी बढ़ता जाता है। दोपहर के समय बारह बजे दिनको दर्द बहुत ज्यादा हो जाता है, और जैसे जैसे सूर्य उतरता है दर्द भी कम हो जाता है तथा रात्रि के समय शांत हो जाता है। इसे सूर्यावर्त रोग कहते हैं। इसे नष्ट करने के लिये नीचे लिखे उपायों का उपयोग करना चाहिए—

१५८—भागरे का स्वरस और बकरी का दूध समान लेकर धूप में गरम करके नस्य दो।

१५९—तिली को गौ के दूध में पीस कपड़े में रख निचोड़ लें और नस्य दें।

कफज शिरो रोग—जब शिर बजनदार मालूम हो (अर्थात् भारी भारी लगे) जकड़ा हुआ सा अनुभव हो, कफ भरा हुआ जाना जाय तथा मस्तक में धीमा धीमा दर्द हो, तब इसे कफज शिरोरोग कहते हैं। इसे शात करने के कुछ योग नीचे लिखे जाते हैं.—

१६०—कायफल पीपल
सोंठ तमाखू
नागरमोथा समभाग
—लेकर इनकी नस्य बनाकर सुंघावें।

१६१—बृहत पञ्चमूल के काढ़े में कफ कुठार सेवन करावें।

१६२—पीपल मोथा
सोंठ चीता
हल्दी समभाग
—लेकर पानी में पीस कर गरम करके माथे पर लेप करें।

प्रतिश्यायज शिरो रोग—यह शिरो रोग सर्दी जुकाम होने से उत्पन्न होता है। इससे शिर भारी होकर नाक से तरल पदार्थ बहने लगता है। इसे ठीक करने के लिये निम्न योगों का प्रयोग करना चाहिए:—

१६३—सोंठ पीपल
पीपला मूल हल्दी
—का चूर्ण गुड़ के सीरे में मिलाकर चटावे।

१६४—काली मिर्च पीपल
लोंग समभाग
—इनको पीसकर नस्य देवें।

१६५—कडुवा जीरा गौ मूत्र में पीसकर गरम गरम लेप करने से यह शिर दर्द अच्छा हो जाता है।

१६६—कुलजन का चूर्ण, कपड़छन किया हुआ सूंघने से शिर का दर्द मिट जाता है।

कृमिज शिरोरोग—यह रोग शिर में कृमि उत्पन्न होने से होता है। जब कीड़े भेजे को काटते हैं तब शिर के भीतर सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है। शिर भीतर से कटकटाने लगता है। नासिका से राध मिला खून बहता है। इस रोग को दुरुस्त करने के लिये नीचे लिखे योगों का प्रयोग करना चाहिए।

१६७—करेले के पत्तों का स्वरस निकालकर नस्य देने से कृमि नासिका की राह बाहर निकलने लगते हैं और रोग अच्छा हो जाता है।

१६८—सीताफल के बीजों या पत्रों के क्वाथ की नस्य देने से मनुष्य रोग मुक्त हो जाता है।

१६९—रीठे को पानी में घिसकर दो चार बूंद नाक में टपकाने से कीड़े मर जाते हैं और नाक की राह निकलने लगते जिससे रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

ज्वरज शिरो रोग—विषमज्वर (मलेरिया) और द्वन्द्वज ज्वरों में सिर का दर्द बहुत बढ़ जाता है। लेकिन जैसे जैसे ज्वर उतरने लगता है, दर्द भी कम होता जाता है। इस दर्द में रोगी को शांति मिले इसके लिए, बाम, दालचीनी का तेल तथा अजवायन सत्व, पीपरमेंन्ट और कपूर से बना हुआ अर्क का उपयोग करना चाहिए।

ज्वर नष्ट होने पर सिर का दर्द स्वयं दूर हो जाता है। इनके सिवाय अन्यान्य रोगों के कारण भी अन्यान्य शिरोरोग उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे स्नायुविक दुर्बलता, नेत्र रोग, यकृत दोष और गर्भाशय विकारों के कारण भी यह रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मूल रोगों की चिकित्सा करने से रोग मुक्त होने पर शिरोरोग भी अच्छे हो जाते हैं।

भयंकर शिरो दर्द एवं उसका उपचार

ले०—स्वर्गीय वैद्य साहित्य भूषण तेजीलाल नेमा शास्त्री आयुर्वेद रत्न, भाटापारा (म० प्रा०)

लेखक

> मान्य लेखक महोदय आयुर्वेद शास्त्र के अनुभवी विद्वान् थे। प्रकृत लेख म आपने अपने विषय को भली प्रकार सम्पादन करते हुए उत्तम चिकित्सा और सार गर्भित विचारों का पाठकों की भेंट किया है। चिकित्सा प्रकरण सारगर्भित होने के कारण उपादेय और संग्रहणीय है।
>
> —आचार्य हरदयाल वैद्य
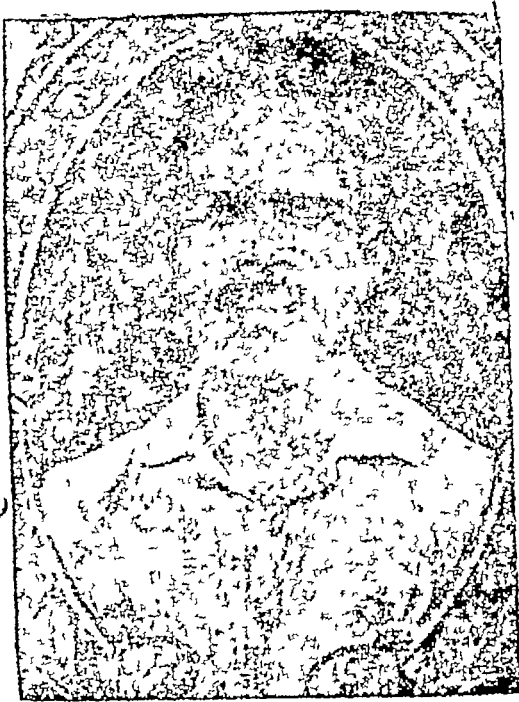
अन्य मस्तिष्क शूलों की अपेक्षा यह शिर का दर्द अति कष्टदायक है, जो बड़ी ही कठिनता से निवृत होता है। यह दर्द टोप के समान सम्पूर्ण शिर के भागों को घेर लेता है जैसे कि शिर पर दर्द का टोप पहरा दिया हो, इस कारण से इस शिरो रोग को हकीम लोग बैजा और खोदा के नाम से भी पुकारते हैं। क्योंकि इसका अर्थ टोप का है। इस सिर दर्द के प्रधान हेतु और कारण में तबीबों के मन्तव्य में परस्पर विरुद्धता पाई जाती है। तबीब शेखबूअली साहब का ऐसा सिद्धांत है कि यह दर्द शिर के समस्त भागों को ग्रस लेता है तथा दर्द समान रूप से एकसा रहता है। इस दर्द में बहुत स्वल्प कारण से घड़ी-घड़ी में कष्ट बढ़ता रहता है एव दर्द रुक रुक कर नहीं होता, अधिक समय पर्यन्त लगातार रहता है। इस दर्द से पीडित रोगी को शब्द, प्रकाश और मनुष्यों का मेल जोल व वार्तालाप करना बुरा लगता है। वह अन्धकार में एकात वास करता है। रोगी को ऐसा ज्ञान होता है कि कोई हथौड़ा व टाकी से उसका शिर फोड़ रहा है। उसका शिर फटता सा या अधिक कष्ट से खींचा सा जा रहा हो ऐसा उसे मालूम देता है। जिससे वह अत्यन्त व्याकुल रहता है।

शिरोरोग के कारण—अधिकतर शिर दर्द होने के छः कारण बतलाये गये हैं जिन्हें हम "वन्ध्या कल्पद्रुम" ग्रन्थ के आधार से नीचे दर्शाते हैं—

१—गाढ़े और दृढ़ बलवान भाफ के परमाणु किसी प्रकार के निकम्मे दूषित दोष से उठ कर दिमाग की उस झिल्ली के नीचे आ कर, एकत्र होकर बन्द हो जावें, जो झिल्ली शिर की खोपड़ी के नीचे अन्दर की तरफ है और भेजा इन झिल्लियों मे लिपटा रहता है तथा वे दोष जिन से भाफ के परमाणु उठ कर दिमाग की झिल्लियों में बन्द हो गये हैं वे चाहे शिर ही में हों अथवा शरीर के अन्य भाग में हों।

२—जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं दूषित और निकम्मे दोष के परमाणु जो कि इस रोग का कारण है उस ही स्थल में ठहर जावें।

३—रक्त से उत्पन्न हुई सरसाम सूजन मुख्यत. दिमाग में उत्पन्न हो जावे।

४—दिमाग मे पित्त की सूजन उत्पन्न हो जाने से।

५—सर्दी का आक्रमण हो जाने की वजह से शिर के भीतरी भागो में सूजन उत्पन्न हो जावे।

६—यह कि गाढ़ा रिआह शिर के पर्दों में घुस कर बन्द हो जावें और इसी कारण शिर का दर्द उत्पन्न हुआ हो।

टोपिका शिरो रोग होने के हेतु-सामान्य और विशेषकर इसके यह कारण है। प्रथम किसी प्रकार का चलना, फिरना, परिश्रम अथवा बालकों के खेलने कूदने का परिश्रम, बडी उमर के पुरुषों का मद्यपान करना अथवा वातकारक वस्तुओं का अधिक सेवन करना, शरीर मे किसी प्रकार की गर्मी सर्दी का पहुंचना, कठोर एव भयङ्कर शब्दों का सुनना इसके अलावा विजातीय द्रव्यों का उदर में जमाव रहना इत्यादि कारणों से शिर दर्द अधिक होने लगता है। यह शिर दर्द पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों को अधिकतर देखा गया है इसे ही "प्रसूति का शिर दर्द" खोपड़ी का दर्द एव टोपिका शिर दर्द कहा करते हैं। प्रसव के समय सर्द वायु का मगज में घुस जाना ही इसका मुख्य हेतु होता है। आयुर्वेदज्ञों ने अभी तक इस रोग पर अपना मनतव्य प्रकट नहीं किया है। आशा है विद्वान वैद्य इस पर ध्यान देंगे।

टोपिका शिरोरोग की पहिचान एवं चिन्ह

इस रोग के विशेषतः पांच चिन्ह हैं यथा—

१—कठोर एवं भयङ्कर शब्दों के सुनने से नफरत करना।

२—प्रकाश (उजाला) को न चाहते हुए अन्धकार में रहने की चाहना करना, एकान्त वासी एवं शिर को नीचे लटकाये रहना तथा दर्द की अधिकता में नेत्रों को न खोल सकना।

३—नेत्र की सन्धियों में पीडा और खिचावट का मालूम होना। यह दशा उस समय होती है जब कि शिर के दर्द का कारण भीतरी झिल्ली में होता है।

४—चौथा चिन्ह यह है कि चेहरा खिचा हुआ मालूम हो और चेहरे की रंगत तबदील हो गई हो।

५—रोगी के शिर पर हाथ रखने से उसे दु.ख मालूम हो। यह दशा प्रायः उस समय पर होती है जब कि रोग का कारण शिर की बाहर की झिल्ली में हो जो कि शिर की हड्डियों पर मढ़ी हुई है।

दोषानुसार भेद—

यह शिर दर्द विशेषत. वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, एवं दोषज (दूषित परमाणु जन्य) पाया जाता है।

चेहरे की रंगत फीकी पढ जाने से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि कौनसा दोष अधिक है।

वातज—वायु रोग की प्रधानता रहने से चेहरा स्याही की झलक वाला दीखता है।

पित्तज—जब पित्त की अधिकता रहती है तब चेहरा पीतता लिये हुए दीख पड़ता है।

कफज—चेहरा अधिक सफेदी लिये भासित होता है एव रक्तज व्याधि में चेहरा लाल (सुर्खी) मालूम हो तो रक्ताधिक्यता वाला शिरो दर्द समझो।

दूषित दोषज व्याधि में—रोगी की शिर की रगें

कूदती एव धड़कती हुई नहीं मालूम होती। यह दशा उस समय होती है जब कि किसी झिल्ली के नीचे भाफ के परमाणुओं के बन्द हो जाने से शिर में दर्द होता है।

इस शिरो रोग की चिकित्सा—

इस शिरो रोग की चिकित्सा मे तभी सफलता मिल सकती है जब तक कि आप इस बात का निराकरण न करलें कि रोग में किस दोष की अधिकता है। जानने के लिये हमने ऊपर उसकी स्पष्ट विवेचना करदी है। चिकित्सक नाड़ी एव प्रश्नोत्तर आदि द्वारा जाच कर उपचार करे।

जो दोष कुपित हो उन्हे पका कर निकाल देवे और शरीर की शुद्धि कर देवे। इस मे शिर और शरीर को शुद्ध करने के पश्चात् दिमाग को उन वस्तुओं से बल पहुँचावे जो इस काम के लिये प्रधान गुण रखती हैं।

शिरोरोग नाशक सकेत—

१—वातज शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन और मस्तक में तैलादि मलना चाहिए।

२—पित्तज शिरोरोग में रोगी को स्निग्ध करके उत्तम मुञ्जिस, जुलाब या विरेचन देना चाहिए।

३—कफज शिरोरोग में लंघन कराना चाहिए तथा गर्मी से पूर्ण सूखे और गरम पदार्थों से स्वेदन करना चाहिए।

४—रक्तज में बड़ों की फस्द खोलना, बालक एवं स्त्री को मुञ्जिस देना, भोजन, लेपन और सेचन वगैरह सारे काम पित्तज शिरोरोग की तरह करना चाहिए। एक बार गरम क्रिया तथा एक बार शीतल क्रिया करनी चाहिए। इसमें रक्त मोक्षण करना अति श्रेष्ठ है।

भीरु पुरुष और बालक तथा स्त्री को फस्द न खुलावे और न रक्त मोक्षण ही करावे।

५—दूषित दोषज--शिरोरोग को नस्य एव जुलाब देकर दुष्ट दोषों को निकालना, आमाशय की स्थिति सुधारना, प्रकृति के अनुकूल अपने शरीर की देख भाल रखना एव आहार विहार में परिवर्तन कर देना चाहिए।

मेरा जहां तक अनुभव है यह शिरो व्याधि वात कफ प्रधान ही अधिक तर देखी गई है और वात कफ प्रधान चिकित्सा ही में सफलता मिली है। वैसे जो जो भी दोष प्रधान हों उन पर ध्यान देकर औषधि करना बुद्धिमान चिकित्सक पर अवलम्बित है।

हम इस भयङ्कर शिरो रोग को, रस, अवलेह, क्वाथ सेंक (तरेडा) नस्य वस्ति, मुंजिश या जुलाब, एवं बंधन तेलादि द्वारा वश में लाते हैं और इस स्थान पर उन्हीं क्रियायें एव योगों को लिख रहे हैं जोकि इस शिरोरोग मे आशुफल प्रद हैं।

१—शिरः शूलादि वज्र रस

द्रव्य और निर्माण विधि—

१७०—शुद्ध पारद — शुद्ध गधक
लोह भस्म (वारितर) — निशोथ
प्रत्येक ४-४ तोला।
शुद्ध गूगल — १६ तोला
त्रिफला (हर्ड, बहेड़ा, आवला) — ८ तोला
मुलहठी — छोटी पीपर
सोंठ — गोखुरू
वाय विडङ्ग — सरिवन
पिढवन — छोटी कटेरी
छोटे गोखरू — बेल
अरणी — सोना पाठा
गभारी — पाढल
प्रत्येक १-१ तोला।

—लेकर प्रथम पारे और गधक की कजली कर उसमे लोहभस्म तथा अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिलावे, पीछे साफ किये गूगल को हमाम दस्ते में डाल कर कूटें। जब गूगल नरम हो जाय तो उस में अन्य द्रव्य मिला दशमूल और भांगरे के रस

की ३-३ भावना देकर ४-४ रत्ती की गोलियां बना-सुखाकर शीशी में भरलें।

मात्रा और अनुपान—२ गोली सबेरे शाम बकरी का दूध या गाय का दूध या पथ्यादि क्वाथ के अनुपान से देवें।

उपयोग—इससे समस्त शिरोरोग अच्छे होते हैं।

२-महालक्ष्मी विलास रस

१७१—लोह भस्म	अभ्रक भस्म
शुद्ध बच्छनाग (मीठाविष)	नागरमोथा
हरड़	बहेड़ा
आंवला	सोंठ
मिर्च	पीपर
धतूरे के बीज	विधारे के बीज
भांग के बीज	छोटा गोखुरू
बड़ा गोखुरू	पीपरामूल

प्रत्येक समभाग

—लेकर सबको १ दिन धतूरा स्वरस में घोटकर २-२ रत्ती की गोली बना लेवे। इसके सेवन से वातज और कफज शिरो रोग नष्ट हो जाता है।

अनुपान—२ तोले अदरख के रस में २ माशे सोंठ का चूर्ण मिला पिलावे अथवा बगला पान के बीड़ा में रख कर खिलावे।

समय—प्रातः साय।

३ रस चन्द्रिका वटी

१७२—भाग से बीज	धतूरा के बीज
कटेरी के बीज	समुद्रफल के बीज
विधारे के बीज	शुद्ध पारद
शुद्ध गन्धक	समान भाग

—लेकर प्रथम पारे गधक की कज्जली बनावें और फिर उसमें अन्य औषधियों का चूर्ण मिला सबको अदरक रस एवं पीपरामूल के क्वाथ में घोट मटर के बराबर गोलियाँ बनालें। इन्हें प्रातः काल सेवन करना और पथ्य पूर्वक रहना चाहिए।

अनुपान—जल। शिरोरोग का नाश होता है। इसके अलावा शोथ, पांडु, पीनस, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, आमवातादि रोग भी नष्ट होते हैं।

इतरीफल मुलैयन

द्रव्य एव निर्माण विधि—

१७३—बड़ी काबली हरड़ की छाल पीली हरड़ की छाल	
छोटी (बालहरड़)	आंवला
बहेड़ा की छाल	प्रत्येक ३-३ तोला
गुलाब के सूखे फूल	सनाय की पत्ती
छिली हुई काली निसोत प्रत्येक १ तोला २ माशे	
सोंठ	२ माशे

—सबको कूट पीस छान ले पश्चात् बादाम के शुद्ध तेल में झकोर ले। इसमें ७४ तोला उत्तम शहद या कंद की चासनी मिला देवे।

मात्रा—१ तोला से २ तोला तक या वयोनुसार अथवा प्रकृति अनुसार दे। यह शिर पीड़ा पर अकसीर है।

पथ्यादि क्वाथ

द्रव्य और निर्माण विधि—

१७४—हरड़ का दल	बहेड़ा दल
आंवला	चिरायता
हल्दी	नीम पर चढ़ी गिलोय

प्रत्येक समभाग

—लेकर जौ कुट करके रखलें।

मात्रा—१ तोला क्वाथ १६ तोला जल में पका चौथाई जल बाकी रहने पर कपड़े से छान उसमें आधा तोला गुड़ मिलाकर देवें।

उपयोग—सब प्रकार के शिर दर्द में इसका उपयोग कर सकते हैं।

सेंक—आर्द्र (तर) एवं दूसरी खुश्क।

वर्तमान समय में रबड़ की थैली इस काम के लिये

मिलती हैं। इसमें गर्म जल अथवा काढ़ा भर कर काम में लें, अथवा ऊनी या फलालैन का कपड़े की चार तह करके रोग नाशक क्वाथ में भिगोकर रोग युक्त अङ्ग पर रख कर सेको।

दूसरी विधि—सूखे सेक की है यानि ईंट, पत्थर अथवा मिट्टी का गोला, कपड़े की गद्दी, रुई की तह, बनाकर अग्नि पर गर्म करके पीड़ित अङ्ग को सेंक देवें या नमक, अजवायन व किसी अन्न की भूसी, बालू रेत इनको कपड़े की पोटली में बांध कर गर्म करके पीड़ित अङ्ग पर सेंक देना। तीसरा तरीका भाप देने का है। याने कोई गर्म काढ़ा अथवा गर्म पानी की भाप या किसी प्रकार की धूनी जो अग्नि पर डाल कर उसमें से धुआ उत्पन्न किया हो अथवा गर्म पत्थर, लोहा जमीन पर पानी व कोई दवा डालकर भाप उत्पन्न की हो तथा इन उपरोक्त भापों पर पीड़ित अंग को रखकर गर्मी पहुँचाई जावे। चिकित्सक-दोषानुसार औषधि का चुनाव कर उपरोक्त कार्य करे। निर्गुण्डी, आक, एरंड पत्र एवं वात कफ नाशक जड़ी बूटियां एवं अन्य उष्ण वीर्य वाले तैल दोनों मरूवा, सोसन, चमेली गुल रोगन, हरिद्रादि का उपयोग बुद्धि अनुसार करें।

पित्तज, रक्तज की प्रधानता से दशांग लेप, रोगन बनफसा, नीलोफर, हिमकल्यान एवं वात प्रधान में महानारायण तैल का तरेढा करें।

नस्य—

१७५—कायफल   वच

—त्रिकुटा को पीसकर नस्य दें इससे वात कफज प्रधान शिर दर्द में आराम होता है।

१७६—बदाम के फल को जल में भिगोकर नस्य दें। इससे शिरोरोग दूर होता है, मस्तिष्क में रुका कफ नाक के द्वारा बह जाता है।

१७७—गुड़ और सोंठ को जल में पीसकर नस्य दें।

१७८—लघु पञ्चमूल दूध में पीस नस्य देने से वात पित्तज एवं बृहत् पञ्चमूल दूध में पीस नस्य देने से वात कफज शिर शूल नाश होता है।

१७९—दशमूल क्वाथ में किंचित सेंधा नमक मिलाकर नस्य दें। इससे शिर शूल में अधिक फायदा होता है

उत्तम नस्य—

१८०—नक छिकनी	१२ तोला
गुलाब पुष्प	२ तोला
केशर	१ माशा
वच	१ तोला
मुश्क कपूर	१ तोला

—सबको कपड़े में छान कर नस्य देने से शिर पीड़ा दूर होती है।

शिरो वस्ति

सिरो वस्ति, सिर्कादि शीतल दवा अथवा किसी प्रकार के शीतल व गर्म तैलादि, पतली दवा शिर के तालू पर लगानी हो तो उसकी विधि यह है—रोगी के शिर के बाल मुड़वा देवे और शिर की पीछे की ऊंचाई से दोनों भौंहों तक एक साफ चमड़े का पट्टा जो ८ या १० अंगुल की चौडाई के दरम्यान का हो और लम्बाई शिर की गोलाई के व्यास के समान हो। इस पट्टे को शिर के चारो तरफ लपेट कर फीता से बाँध देवे और इसकी सन्धियों को उड़द या गेहू के आटे से बन्द कर देवें। अन्दर की तरफ से जो पतले द्रव्य शीतल तासीर व गर्म तासीर के भरने हों उसको रोगी को सीधा बैठा कर भर देवे। जितने समय तक रखने होवें उतने समय तक रखे पीछे दवा को निकाल कर पट्टे को खोल देवे। इसे ही शिरो वस्ति कहते हैं।

इस क्रिया में चिकित्सक निपुण हो। जो दोषानुसार कार्य करेगा तो आशातीत लाभ रोगी को पहुँचायगा। यह वस्ति भोजन करने के पहले ही रोगी को दें। इसे सहन हो तब तक या ५-६ घण्टे तक ले सकते हैं।

मुंजिस या जुलाब—

इस शिरोरोग में मुञ्जिश को ५-७ दिन देकर कोठे के अन्दर आंतों में पड़े एवं चिपटे हुए मलों को ढीला करदे पश्चात् जुलाब दे। यों तो मुञ्जिश से ही बहुत कुछ मल निकल जाता है। यदि रोगी जुलाब और मुञ्जिश पसन्द न करे तो एनीमा द्वारा पेट को साफ करदें। एनीमा इस कार्य के लिये अति उपयोगी सिद्ध होता है।

कोष्ठ नरम करने वाला नुस्खा

१-मुञ्जिश—

१८१—आलू बुखारा उन्नाव
लसोढ़ा बिही दाना
मुनक्का इमली
सौंफ खित्मी प्रत्येक समभाग

—लेकर गरम पानी में भिगो छान कर पिलावे।

२-नुस्खा—

१८२—उन्नाव मुनक्का
गुलाब पुष्प अमलतास

—इनका क्वाथ कर किंचित सेंधा नमक डालकर पिलावें।

तारुन्यादि कषाय

३-जुलाब—

१८३—गुलाब पुष्प	१ तोला
सनाय	१ तोला
सौंफ	१ तोला
मुनक्का	२ तोला

—लेकर सबको बिना कूटे ही कर रात को २० तोले जल में भिगोवे, सबेरे पका कर पांच तोला जल बाकी रहे तब उसमें आधा तोला मिश्री मिला कर कपड़े से छान कर पिलावे। इससे २-३ दस्त बिना कष्ट के साफ हो जाते हैं।

अश्वकन्चुकी रस अभयादि मोदक इच्छाभेदी रस इत्यादि इनको कार्य में ले सकते हैं—

एनीमा की औषधि—

१८४—उन्नाव लसोढ़ा
आलू बुखारा चुकन्दर के पत्र
नीलोफर बनफशा
जौ के डण्ठल आलू बालू

प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ बनावे और मल छानकर तुरंजबीन और थोड़ा तिली का तैल मिला पिचकारी के द्वारा गुदा-मार्ग में भरदे। इससे मल सरलता पूर्वक निकल जाता है और शिरोरोग में फायदा होता है अथवा ४ पौंड पानी में साबुन घोल गरम करके उसमें अंडी का तैल थोड़ा डाल एनीमा लें। गरम पानी करके भी एनीमा लेना हितकारी है

बंधन—(१) रोटिका बंधन—

१८५—महुआ ऽ।

—लेकर जल में इतना पीसे कि लुगदी बन जावे। इस की रोटी बना कर तवे पर एरंड या सरसों का तैल डाल गरम करलो गरम हो जाने पर सुहाती रोटी खोपड़ी पर में बांधे अथवा—

१८६—गाय से दूध में नीचे लिखी दवा का बारीक चूर्ण कर मावा बनाले अब मावा की रोटी सी बना कायफल और सोंठ का बारीक चूर्ण मिला गाय के घृत में सेंक कर मस्तक (खोपड़ी) में बांध दे ऊपर से अन्डी के पत्ते बांधे। इससे शिर दर्द दूर होता है।

१८७—महुआ के पत्ते अन्डी के पत्ते
नागर पान आक के पत्ते
(बकायन के) पत्ते समभाग

—सबकी लुगदी बना सरसों का तैल मिला गरम कर मस्तक और दर्द के स्थान पर बांधे तो फायदा होता है। इसकी यथा विधि भाप देने से भी फायदा होता है।

१८८—काली मिट्टी को जल से भिगोकर रोटी सी बनाकर शिर पर थोप दे। इस प्रकार बदल बदल कर लगावें। इससे शिर दर्द, नेत्र की लाली एवं दर्द आराम होता है।

उपयोगी तैल—

षट् बिन्दु तैल

१८९—अरन्ड की जड़ तगर
सौंफ जीवन्ती
रास्ना सेंधानमक
जल भांगरा वायविडङ्ग
मुलैठी सोंठ

२-२ तोला

—लेकर सिल पर पानी के साथ पीसकर लुगदी या कल्क बनाले। अब
काले तिलों का तैल आधा सेर
बकरी का दूध दो सेर
भांगरे का रस दो सेर

—तथा ऊपर की लुगदी को मिलाकर मन्दाग्नि से पकाओ, जब तैल मात्र रह जाय, उतार कर छानलो। इसी का नाम षट् बिन्दु तैल है। इस तैल की नस्य देने से अथवा ४-६ बूंद नाक में डालने से सब तरह के शिर के रोग आराम होते हैं।

इसके अलावे गिरते हुए बाल, हिलते हुए दांत और जिनकी जड़ उखड़ गई हैं उन दांतों को भी मजबूत करता है। नेत्र दृष्टि बढ़ाता है।

२-महुआ पुष्प तैल

१९०—महुआ के पुष्प (जीरा निकाले हुये) सोंठ
वायविडङ्ग भांगरा
छिली मुलहठी प्रत्येक १-१ तोला

—इन सबको कूटकर २० तोला जल में पकावें। जब १० तोला पानी बकाया रहे उस समय उतार छान लेवें। इसी तेल में ४ तोला मीठा तैल डाल करपकावें। जब तैल मात्र बाकी रहे शीशी में भरलें। इस तैल को कुनकुना करके जब जरूरत हो कान में टपकावें। सर्दी की पीड़ा हो तो गर्म और गर्मी की हो तो शीतल तैल की मालिश मस्तक पर करो। इससे गर्मी एवं सर्दी की मस्तिष्क पीड़ा दूर होती है।

लेप—रक्त पैत्तिक शिर पीडा हर लेप—

१९१—आमला सिंघाड़ा
झाऊ बेर कमलपुष्प
पद्माख चन्दन
दूर्वा खस
बालछड़ नीम पत्र

प्रत्येक समभाग

—इन सबको बारीक जल में घोट कर माथे पर ७ से १४ दिन लेप करें।

२—काफिज शिर पीडा हर—

१९२—निर्गुंडी तगर
पाषाण भेद नाग केशर
इलायची अगर
देवदार बालछड़
राई एरंड मूल

समभाग

—कूटकर अंगूरी सिरका के घोंट माथे पर ७ से १४ लेप करें।

३—शिर दर्द नाशक उत्तम लेप—

१९३—सोंठ दालचीनी
लौंग मुचकुंद का फूल
अरंड की जड़ की छाल अफीम
केशर साठी चावल
कुचला सब समभाग

—लेकर महीन करें तथा पानी से पीसकर या बकरी के

(शेषांश पृष्ठ ८६ पर देखिये)

शिरोरोग

ले०—साहित्याचार्य वैद्य घनानन्द पन्त आयुर्वेदबृहस्पति, बाजार सीताराम देहली (६)

मान्ननीय लेखक आयुर्वेद जगत के समुज्वल रत्न हैं। आप योग्य विद्वान, ग्रन्थ, लेखक और अच्छे टीकाकार भी हैं। इस बार विशेष परि-स्थितियों में आबद्ध होने के कारण आप अपना विस्तृत लेख नहीं भेज सके, तदापि आपने मेरे निमन्त्रण को स्वीकार करते हुए चिकित्सा कर्म में वैद्यों को सफलता के सोपान का मार्ग दर्शन का महत्व पूर्ण कार्य किया है।

—प्रिंसिपल हरदयाल वैद्य

वैसे तो शिरोरोगों में कठिन अनन्तवात अर्धाव-भेदक आदि गिने जाते हैं। परन्तु एक आंखों की खराबी से भी शिरोरोग होता है वह पृथक ही है। प्राय. जिन लोगों को अनेक बार अधिक दिन तक विषमज्वर रहा हो, इसके अच्छे होने के बाद रोगान्त दौर्बल्यता की ठीक-ठीक चिकित्सा नहीं की गई हो, अत उक्त विषम-ज्वर से असमर्थ अङ्ग-प्रत्यङ्ग (आभ्यन्तरिक यन्त्र) कुछ कुछ कमजोर ही बने रहते हैं। मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों में प्रवृत्त हो जाता है, थोड़ी बहुत कमजोरी बनी ही रहती है। विशेषत प्रति दिन कब्ज रहता है या हफ्ते एक दो बार भी कब्ज रहता है। इस कब्ज को मनुष्य अपने सांसारिक कार्यों में अधिक दत्तचित्त होने से कुछ अधिक हानिकर नहीं समझता।

कठिन मौक्तिक ज्वर के बाद तो कम से कम ४४ दिन या २-६ माह तक पथ्य परहेज, लघु भोजन, प्रत्येक दिन कोष्ठ शुद्धि होनी चाहिए, सो नहीं हो पाती। इसी प्रकार कठिन श्वसनक (Pneumonia), फुफ्फुस-कोष (Pleurisy) तथा कठिन प्रवाहिका (पेचिश) आदि अन्य कठिन रोगों के बाद भी जो मनुष्य ठीक तरह स्वस्थ नहीं हो पाते, तथा स्त्रियों को कष्ट प्रसव के बाद या गर्भावस्था में गर्भिणी को कोई कठिन रोग भोगना पड़े, इसके बाद प्रसव होने पर गर्भाशय के अनेक रोग यथा शोथ प्रभृति से गर्भिणी निर्बल हो जाती है। बच्चे को दूध बराबर पिलाना ही पड़ता है एवं अन्य सुव्यवस्था के न मिलने से भी शिर. पीड़ा होती है। प्राय: रोगी शिर: पीड़ा को ही लेकर चिकित्सक के पास आता है। ऐसी अवस्था में निश्चित निदान न होने से अल्प निदानज्ञ शिर में लेप, नस्य, कान में तैल डालना, शिर में तैल मलना इत्यादि बाह्य चिकित्सा करते हैं। इसी प्रकार बाजार में प्रचलित औषधियां, बाम, एस्प्रीन आदि शिर दर्द की दवाओं का प्रयोग कर कुछ काल के लिये शान्ति पाते हैं। पर रोग कुछ न कुछ जमता ही जाता है। बीमार भी नये-नये चिकि-त्सकों से इलाज करवाता रहता है। असली रोग का ठीक निदान व चिकित्सा न होने से आभ्यन्तरिक यन्त्र यकृत आदि बढ़ जाते हैं और इनके कार्य बिगड़ जाते हैं या वे अपना कार्य ठीक नहीं करते। इससे

अग्नि और भी मन्द हो जाती है। साथ ही दाँतों से खून निकलना, दांतों में दर्द होना, दाँतों की जड़ों से पीव निकलना, दन्त नाडी (पायरिया), दांतों में कीड़ा लग जाना या दांतों का काला पड़ जाना या अनेक प्रकार के दन्त रोग तथा आंखों के भी अनेक रोग घर दबाते हैं।

शिरः पीड़ा भी लगातार या बीच बीच में होती रहती है। किस्म-किस्म के बुरे स्वप्न देखना इत्यादि। हां शिर.शूल का निदान पूर्वोक्त रोगों में से रोगी को कोई रोग हो चुका हो अथवा चिकित्सक रोगी की बीमारियों का जन्म से लेकर कब कब क्या-क्या रोग हुए हैं, कितने दिन, वे रोग टिके हैं इत्यादि तत्र तत्र करके खोज कर और जिन अङ्गों में किसी रोग के होने का इतिहास मिले उस अङ्ग में वर्तमान समय कोई विकृति शेष है इत्यादि इसका अनुसन्धान कर वातादि दोषों के लक्षण स्थिर करले इसके उपरान्त—

रोगमादौ परीक्षेत ततोनन्तर मौषधम् ।
ततः कर्म भिषग्पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥

मल, मूत्र, दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न, मुखाकृति, सर्वाङ्गिक परिदर्शन से रोग निर्णय हो जाने पर फिर चिकित्सा प्रारम्भ करे।

प्रायः साधारण शिरोरोग के लिये प्रति दिन मल शुद्धि, लघु ताजा भोजन, साधारण परिश्रम, अन्य स्वास्थ्य के नियमों का परिपालन।

रक्त की कमी हो तो लोह, प्रवाल, मकरध्वज, सोमल, कुपीलु इनके प्रयोग यथावसर करे।

(पृष्ठ ८४ का शेषांश)

दूध में पीस गरम गरम लेप करने से शिर दर्द दूर होता है।

पथ्यापथ्य—शिर दर्द वाले रोगी को उचित पथ्याहार सेवन करावे। अति गर्म और अति शीतल आहार न देवे। खाना खाने के बाद बाईं करवट लेट जावे और थोड़े समय तक लेटा रहे। परिश्रम करना त्याग दे। सुख पूर्वक हजम हो सके ऐसी चीजें, बारीक पुराने चावल, अरहर की पतली २ दाल, या मूंग की भुनी दाल, परवर, मैथी का शाक, टमाटर, चौलाई की भाजी, बथुआ की भाजी, पालक, पुनर्नवा के पत्ता, लौकी, सूरणकंद आदि की सब्जियों का शाक, उबाल कर ठंढा किया पानी, घी, शक्कर, मक्खन, सूखे या तर मेवे, काफी, जुलाब से लिये अन्डी का तेल, गरमपानी से स्नान एवं दोषानुसार आहार विहार की योजना बुद्धिमान चिकित्सक रोगी की दशा अनुसार करदे।

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
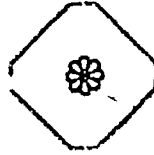
नेत्र विज्ञानीय स्तम्भ

इसमें नेत्र रचना और उसके रोगों की निदान-पूर्विका व चिकित्सा का सुन्दर वर्णन है।

(२)

नवीन मत से—

नेत्र रचना (Eye Anatomy)

ले०—आयुर्वेदाचार्य डा० देवराज "सुमन" बी० आई० एम० एस० (प्रीवियस)
प्राणाचार्य भवन लि० विजयगढ़ (अलीगढ़)

आप प्रधान सम्पादक 'प्राणाचार्य' के धर्म पुत्र हैं। आपने हिन्दी प्रभाकर और व्याकरण विशारद एवं अंग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त की है। श्री वैद्य बाँकेलाल जी गुप्त के सहवास से आयुर्वेद में भी अच्छा अभ्यास कर लिया है और अब तो आप ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज में बी० आई० एम० एस० चतुर्थ वर्ष के छात्र हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

हम नेत्र के अंगों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

१—नेत्र गोलक (Eye ball)

२—सहायक अङ्ग (Accessory orgean)

नेत्र गुहा (Orbital Cavity)—

नेत्र गोलक अस्थि निर्मित गुफा मे रहता है यह गुहा शंकुआकार होती है। जिसका शिखर पीछे की ओर तथा आधार सामने की ओर होता है। यह नेत्र गुहा कपाल तथा मुख की संधि पर होती है। इसकी ऊर्ध्व भित्ती त्रिकोणाकार होती है और पूर्व बाह्य कोण पर (Antro leteral Angle) अश्रुग्रंथि (Lacrimal gland) के लिये छोटा सा खात होता है जिसे अश्रुग्रन्थि खात (Lacrimal fossa) कहते हैं। नेत्र गुहा का अध तल भी त्रिकोणाकार है और यह भी नेत्र गुहा को ऊर्ध्व हनिवका वायु विवर (Magjillary air Sinus) से पृथक् करता है।

नेत्र गुहा की मध्य भित्ति बहुत पतली अस्थि से बनी होती है और नेत्र गुहा को जतुकास्थि और झर्झरास्थि वायु विवर (Sphenoidal and Ethmoidal air sinus) से पृथक् करती है। इसके पूर्व के भाग में आश्रवी परिखा (Lacrimal sulcus) होता है। इसमें अश्रुवाहनी (Lacrimal duct) रहती है।

बाह्य भित्ति (Latral wall):—

यह दृढ़ अस्थि से बनी होती है तथा कुछ तिर्छी पाई जाती है।

शिखर (Apex):—

यह पीछे की ओर दृष्टि नाड़ी छिद्र (Optic foramen) से बनता है। इस छिद्र में से दृष्टि नाड़ी (Optic nerve) तथा दृष्टि धमनी (Opthalmic artery) नेत्र गुहा में प्रवेश करती है। ऊर्ध्व भित्ति एवं बाह्य भित्ति के मध्य में ऊर्ध्व गुहा रंध्र (Sup. orbital fissere) पाया जाता है। इसमें से तृतीय, चतुर्थ पञ्चम, षष्टम, मस्तिष्कीय नाड़ियों की कुछ शाखायें तथा कैवर्नु असप्लाक्सस की कुछ शाखायें नेत्र गुहा में प्रवेश करती है और चाक्षुषी शिरा (Opthalmic vein) और आश्रवी धमनी (Lacrimal artery) इसमें से बाहर जाती है। बाह्य भित्ति तथा अधः भित्ति के मध्य में अध. गुहारंध्र पाया जाता है जिसमें से ऊर्ध्व-

हन्यिका तथा गुहाधारिका रक्त नलिकायें गुजरती हैं।

नेत्र के अङ्ग (Organs) —

१—नेत्र गोलक, २—नेत्र की धमनियां, शिरायें, रस-वाहनियां और वात नाड़िया, ३—नेत्र गोलक को चलन शक्ति देने वाली मास पेशियां, ४—नेत्र श्लेष्मावरण, नेत्र वर्त्म।

नेत्र के उपांग (Appendages).—

१—पलक २—भ्रू ३—अश्रुग्रन्थियां २—अश्रुवाहक प्रणाली ५—अश्रुद्वार ६—अश्रु कुम्भिका (Lachrimal sac) ७—नेत्र गुहा (Orbit)

नेत्र गोलक (Eye ball)—नेत्र गोलक में निम्न मुख्य भाग होते हैं।

१—शुक्ल मण्डल (Cornea) २—नेत्र बाह्य पटल (Sclera) ३—तारा मण्डल (Aris) ४-सधान मंडल (Ciliary body) ५—नेत्र मध्य पटल (Choroid) ६—नाड़ी पटल (Retina) ७—जल मय रस का पूर्व खण्ड (Anterior chamber) ८—यव कांच (Crystaline lens) ९-दृष्टिमण्डल धर कला कोष (Lens Capsule) १०-सांद्र जल (Vitreous Humour) ११—दृष्टि नाड़ी (Optic nerve) १२—सितांबिम्ब (Opticdisc)

नेत्र गोलक लगभग गोलाकार होता है, सामने जो काले रङ्ग का घेरा नजर आता है वहां पर नेत्र गोलक कुछ अधिक उभरा हुआ है और सम्पूर्ण गोलक का १/६ भाग बनाता है। यह छोटे गोलक से बना हुआ प्रतीत होता है। नेत्र गोलक का शेष भाग जो श्वेत वर्ण का दिखाई देता है शेष ५/६ भाग बनाता है और यह बड़े गोलक से बना हुआ प्रतीत होता है। कृष्ण दीखने वाले भाग का मध्य विन्दु (Ant pole) तथा श्वेतभाग का मध्यबिंदु (Post. pole) कहलाता है इन दोनों पोल के मिलने से दृष्टिधुरी (Optic axis) बनती है।

नेत्र गोलक के तीन पटल होते हैं.—(नेत्र बाह्य पटल और शुक्ल मण्डल)

१—सौत्रिक पटल (Fibros tunica)

२—रक्त पोषित पटल (मध्य पटल) (Vascular tunica)

३—नाड़ी पटल (अंत. पटल) (Nervous Tunica)

सौत्रिक पटलः—

इसका पूर्व भाग पारदर्शक होता है इसे शुक्ल मण्डल कहते हैं शेष भाग अपारदर्शक होता है और नेत्र बाह्य-पटल कहलाता है। यह भाग श्वेत तथा दृढ़ होता है। इसमें भी पीछे का भाग सबसे अधिक मोटा है इसका बाह्यतल फेशिया बलवाई से छूता रहता है। सामान्यत नेत्र बाह्य पटल चिकना होता है। जिन स्थानों पर इससे माँस पेशियां आकर लगती हैं वहां पर यह कुछ रफ पाया जाता है इसके अंत. तल पर संधानिका नाड़ी एवं रक्त वाहनियों के लिये परिखा पाई जाती है। पश्चात् भाग में दृष्टि नाड़ी के सूत्र इसमें से गुज़र कर नेत्र गोलक के भीतर आते हैं, इनके कारण यहां पर नेत्र बाह्य पटल में बहुत से छिद्र हो जाते हैं और यह भाग छलनी के समान दीखता है इसे क्रिब्रोजा स्क्लेरा कहते हैं। सौत्रिक पटल के कारण ही नेत्र का आकार गोल है।

नेत्र गोलक का अनुलम्बन (पूर्व पश्चिम) व्यास (Antero Posterior or saggitaldiameter) बाह्य भाग में २४ १५ मिलीमीटर (१ ०२३)इन्च और भीतर के भाग में २२'१२ मि० मी० है। नेत्र के दोनों कोनों के बीच अनुप्रस्थ (उत्तर दक्षिण) व्यास (Horizontal diameter) २४'१३ मि० मी० और उत्तान (खड़ा) व्यास (Vertical diameter) २३ ४८ मि० मी० है। सामान्यतः स्थूल रूप में नेत्र गोलक का व्यास सब और १ इञ्च है।

नेत्र गोलक का भार औसत १०५ ग्रेन अर्थात् ६॥ माशे होता है। शुक्ल मण्डल और नेत्र बाह्यपटल जिस स्थान पर मिलते हैं वहां पर सहज दबा हुआ गोलाकार आकार बन जाता है उस भाग को स्वच्छ-शुक्ल सन्धि (Limbus cornea) संज्ञा दी है।
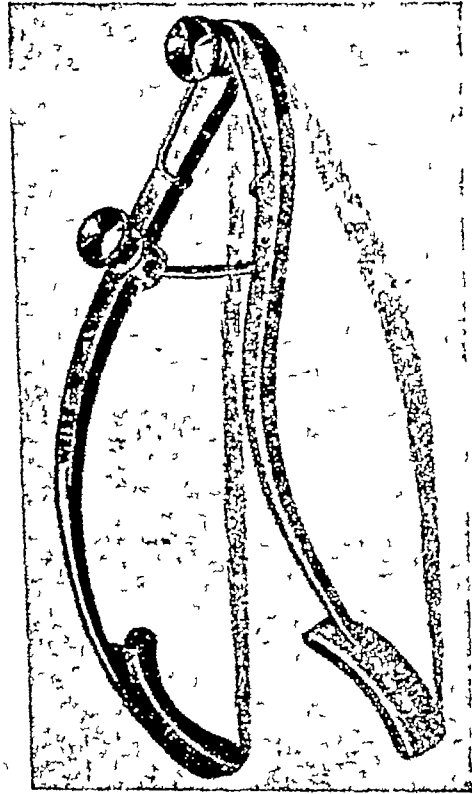
चित्र नं० ३
नेत्रों को खुला रखने की कमानी (Eye speculum)
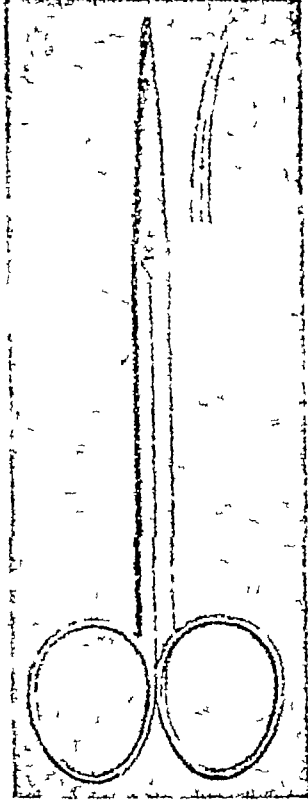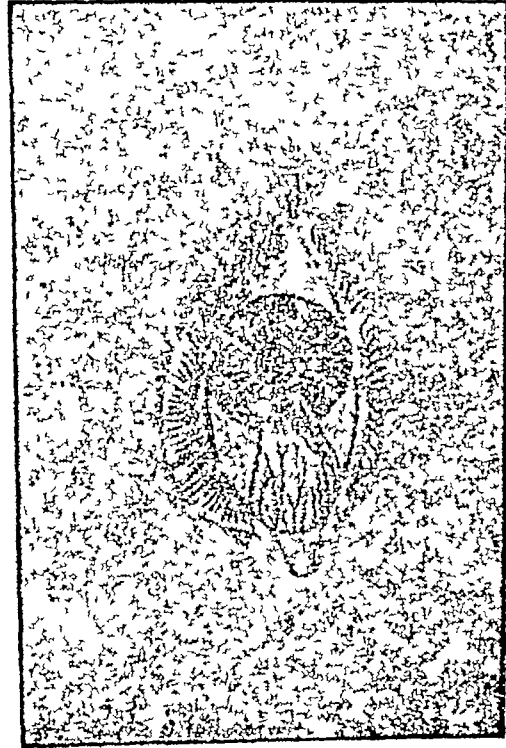
चित्र नं० २
अर्म युक्त नेत्र (Pterygium)
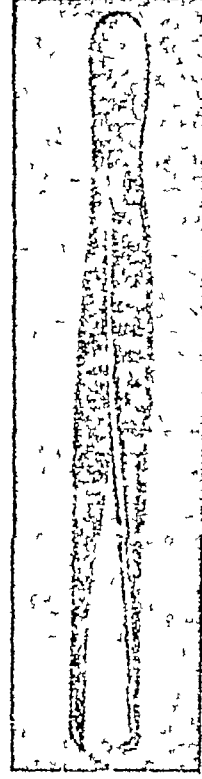
चित्र नं० ५
कैंची

चित्र नं० ४
अर्म मुचुण्डी

शुक्ल मण्डल का मध्य विन्दु और नेत्र बाह्य आच्छादन का पिछला मध्य विन्दु, इन दोनों विन्दुओं को जोडने वाली रेखा को नेत्राक्ष रेखा (Ocular axis) कहते हैं। जो रेखा नाडी पटल के मध्य मे पीत विन्दु (Maculalutea) से शुक्ल मण्डल के मध्य भाग की अपेक्षा कुछ भीतर के भाग मे होकर जाती है उसे दृश्याक्ष रेखा (Visual axis) कहते हैं यह रेखा विशेष महत्व की है। ह्रस्व दृष्टि (Myopia) अथवा दीर्घ दृष्टि (Hyprmetropia) जैसी विकृति में जहा नेत्र गोलक लम्बा या छोटा हो जाता है, वहा इस अक्ष रेखा में भी अन्तर हो जाता है।

शुक्ल मण्डल (Cornea)

नेत्र गोलक के आगे के भाग में जो काला सा पारदर्शक भाग है उसे शुक्ल मण्डल कहते हैं और जो Highly sensative होता है क्योंकि इसमें नाड़ियों के बहुत अधिक सूत्र पाये जाते हैं। परन्तु यहा पर रक्त वाहनियाँ नहीं होती हैं। इसकी मोटाई सर्वत्र समान है। इसका पोषण अग्रिमा जल धानी (Ant, chamber) मे रहने वाले तरल मे होता है। युवावस्था में शुक्ल मण्डल बिलकुल पारदर्शक होता है। फिर कितनेक मनुष्यों में वृद्धावस्था में शुक्ल मण्डल की परधि का भाग अपारदर्शक (Opaque) और श्वेत होने लगता है, उस स्थिति को वृद्धावस्था जन्य श्वेत परिधि (Arcus Senilis) कहते हैं। इससे दृष्टि को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचती।

सूक्ष्म रचना—

अणुवीक्षण यन्त्र से परीक्षा करने पर निम्न पाच स्तर मिलते हैं।

१—अग्रिमा उत्तान स्तरिका (Anterior Epithelial membrane)।
२—बाउमेंन स्तर (Bowmen,s membrane)।
३—गर्भस्तर (Stroma)।
४—डेसमटका स्तर (Descemete,s membrane)
५—पश्चिमा उत्तान स्तरिका (Posterior epithelial -menbrane)।

शुक्ल मण्डल में संवेदक नाड़ियाँ अच्छी तरह विशेष परिमाण में अवस्थित हैं। इसी कारण सामान्य घात से भी अधिक वेदना होती है। इस मण्डल के पीछे के भाग में जल मय रस का पूर्व खण्ड रहता है, जिस भाग में यह मण्डल और नेत्र बाह्य पटल ससर्ग में आते हैं उस भाग में एक रस वाहक मार्ग अथवा जल वाहक मार्ग बन जाता है उस मार्ग को अम्रजल मार्ग (Canal of schlemm) कहते हैं यह मार्ग विशेषतः नीला मोतिया (अधिमन्थ) रोग के साथ अति घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है।

नेत्र बाह्य पटल (Sclerotic coat)—

इस पटल से नेत्र गोलक का ५/६ भाग बनता हैं यह पटल दृढ श्वेत रङ्ग का और चिकना है इसका पिछला भाग अधिक मोटा होता है (लगभग एक मिलीमीटर) और मध्य भाग की मोटाई .४ से .५ मिलीमीटर ही है।

रक्त पोषित पटल (Vascular layare)—

यह सौत्रिक पटल के भीतर की ओर रहने वाला पटल है। इसको तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

१—उपतारा (Iris)।
२—सन्धानिका पिण्ड (Ciliary Body)।
३—नेत्र मध्य पटल (Chorid)।

उपतारा या तारा मण्डल—

यह एक पर्दा है। यह शुक्ल मण्डल के पीछे जो जलमय रस का पूर्व खण्ड है, उसके पीछे रहता है। उपतारा के मध्य में एक छोटा सा छिद्र होता है जिसे तारा कहते है। उपतारा के भीतर कुछ विशेष रंग पाया जाता है जिसके कारण यह काला भूरा एवं अन्य वर्ण का प्रतीत होता है। उपतारा में मांस पेशियों के सूत्र दो वर्गों में पाये जाते हैं। तारा मण्डल के बीच के छिद्र को कनीनिका कहते हैं, कनीनिका (Pupil) में संकु-

चित विकसित होने का गुण है। कनीनिका का व्यास सब मनुष्यों में एक समान नहीं होता। उपतारा और शुक्ल मण्डल के मध्य का भाग पूर्व कुटीर तथा उपतारा तथा ताल के मध्य का भाग पश्चात कुटीर कहलाता है। उपतारा का पोषण दीर्घ पश्चात् एवं पूर्व सन्धानिका रक्त नलिका (Long post. and ant ciliary vesseles) के द्वारा होता है। सम्बन्ध सन्धानिका नाड़ी के द्वारा है।

अणुवीक्षण यन्त्र से देखने पर निम्न रचना मिलती है—इसमें पाँच तह मिलती है।

१—अग्रिम सूक्ष्म त्वचामय स्तर (Endothelial layer)।

२—रक्तवाहिनिमय स्तर (Vascular layer)।

३—सङ्कोचक विस्तारक तन्तुमयस्तर (Layer of dilator and sphinctor muscle)

४—रञ्जित स्तर (Pigmentary layer)

५—अन्तराच्छादन स्तर(Iner lining membrane)

तारा मण्डल में मुख्य दो पेशियां रहती हैं (१) कनीनिका सङ्कोचक (Sphinctor pupillae) (२) कनीनिका प्रसारक (Dilator pupillae) सङ्कोचक पेशी के तन्तु गोलाकार और प्रसारक पेशी के तन्तु किरणों के समान व्यवस्थित हैं।

सन्धानिका मण्डल (पिण्ड) (Ciliary Body)—
यह उपतारा के चारों ओर झालर के समान पड़ा रहने वाला भाग है। इसके तीन भाग हैं।

ततु मय मडल (Orbicularis ciliaris)—उपतारा की बाह्य परिधि पर लगभग यह ४ मिलीमीटर चौड़ी श्वेत पट्टिका के समान पड़ा रहता है। शुक्लमण्डल और नेत्र बाह्यपटल का जहा संगम होता है, उस सङ्गम स्थान के और नाड़ी पटल के दन्तुधारा मडल (Ora serrata) के भाग के साथ पीछे की ओर जुड़ा है।

ततु मय पुट (Ciliary processes)—तन्तु मय मण्डल की ओर नेत्र मध्यपटल की पूर्व परिधि का कुछ भाग मुड़कर झालर के समान दिखाई देता है इससे बनने वाले उभार तथा गढ्ढे सस्पेन्सरि लिगामेण्ट में रहने वाले तत्समान उभार तथा गढ्ढों में रहते हैं। इन प्रवर्धनों की संख्या ६० से ८० तक होती है।

संधानिक पेशी (तन्तु मय पेशी) (Ciliary muscle)—यह उपतारा के चारो ओर ६ मिलीमीटर चौड़ाई तक फैला हुआ अनैच्छिक मांस पेशी द्वारा निर्मित भाग है। इसके सूत्र भी दो वर्गों से बटे रहते हैं।

नेत्र मध्यपटल (Choroid)

यह सन्धान मण्डल के पीछे रहने वाला द्वितीय पटल का शेष भाग है। इसके बाहर की ओर शेष पटल और भीतर की ओर नाड़ी पटल होता है। इसके निर्माण में केशिकायें मुख्य भाग लेती हैं, जिनके बीच बीच में रञ्जक द्रव पाया जाता है इन दोनों कारणों से उसका वर्ण गहरा भूरा दीखता है।

नाड़ी पटल (Retina)

यह तृतीय पटल है और नाड़ी सूत्रों का बना होता है। प्रत्येक वस्तु की छाया इस पटल पर ही बनती है जिसका ज्ञान मस्तिष्क को हो जाता है और वह उसको समझ लेता है। इस पटल का बाह्य पटल नेत्र मध्यपटल को छूता रहता है और अन्त. पटल विट्रसबौडी की हायड मेम्ब्रेन को छूता रहता है। नाडीपटल पूर्व के भाग में पतला होता जाता है। सन्धान मण्डल के पास आकर एक झालर दार परिधि पर जिसे दन्तुधारा मण्डल (Ora serrata) कहते हैं आकर समाप्त हो जाता है। पश्चात् बिन्दु पर नाडी पटल में सबसे अच्छा दिखाई देता है इसे पीत बिन्दु कहते हैं। इसके तीन मिलीमीटर मध्य की ओर सितबिम्ब (Optic disc)

होती है। इस स्थान पर दृष्टि नाड़ी (Optic nerve) नाड़ी पटल से सम्बधित रहती है और यहां पर कुछ भी दिखाई नहीं देता और इसे अन्ध बिन्दु (Black spot) कहते हैं। नाड़ीपटल का निर्माण कई स्तरों से मिलकर होता है जो निम्न हैं।

१०—रञ्जित स्तर-चिन्मयवनिका (Pigmentary layer)

६—दंड शंकुस्तर-रुपादानिका (Layar of rods& cones)

८—बाह्यस्तर-वहिसीमिका (External layer)

७—बाह्यबीजस्तर-यवकन्दिनी बाह्या (Outer nuclear)

६—बाह्य अणुस्तर-तन्तु जालिनीबाह्या (Outer molecular)

५—अन्तर बीजस्तर—यवकंदिनी अन्तरा (Inner nuclear)

४—अन्तर अणुस्तर—तन्तु जालिनी अन्तरा (Inner molecular)

३—नाड़ी ग्रंथिस्तर—पुरुकन्दाणुकिनी (Ganglian layer)

२—नाड़ी स्तर-वितान सूत्रिणी (Layer of nerve fibers)

१—अन्तराच्छादन स्तर-अन्तः सीमिका (Internal membrane)

नाड़ी पटल का पोषण सेंट्रल आर्ट्री से होता है।

रिफ्रैक्टिंग मीडिआ आंफ दी आई, यह तीन होते हैं।

१—तनुजल (Aqueous Humour)

२—कॉचनीय पिंड (Vitreous humoura)

३—ताल (Lens)

१-तनुजल—

यह अग्रिमा जल धानी तथा पश्चादिका जलधानी में रहने वाला तरल है जो कि सधानमण्डल से छूता रहता है। इसकी प्रतिक्रिया क्षारीय होती है और इसमें सोडियम क्लोरेट की अधिक मात्रा पाई जाती है। यह तरल अग्र जल मार्ग (Canal of Schlemm) के द्वारा संधानिका शिरा (Ciliary Veins) में लौट जाता है।

काचनीय पिंड (Vitreous humour)—यह नेत्र गुहा के भीतर ४/८ भाग को पूरित करने वाला पारदर्शी जैली के समान अंग है। इसके ऊपर एक पारदर्शी आवरण रहता है जिसे सान्द्रजलधरा-कोष (हायलोइड मेंब्रेन) कहते हैं। इसके सामने के भाग में एक खात पाया जाता है जिसमें ताल (Lens) रहता है। इस खात के मध्य से कृष्ण-बिंदु तक इसमें एक नलिका पाई जाती है जिसे सांद्र-जलधरा नलिका (Hyloid canal) कहते हैं। भ्रूणावस्था में इस नलिका में से कुछ रक्तनलिकायें गुजरती हैं जो कि बाद में नष्ट हो जाती हैं। कांचनीय पिंड में कोई रक्त नलिका नहीं होती, इसका पोषण नाड़ी पटल तथा संधानिका प्रवर्धन के रक्त नलिकाओं से निकलने वाले लसिका के द्वारा होता है।

दृष्टि मणि (Crystaline lens)

यह उपतारा के पीछे तथा कांचनीय पिंड के आगे रहने वाला द्विउन्नतोदर ताल कहलाता है इसके मध्य में कौरटैक्स पाया जाता है जिसके ऊपर पारदर्शीय तन्तु से निर्मित स्तर होते हैं और सबसे बाहर कोष होता है। भ्रूणावस्था में ताल लगभग गोल होता है और इसमें रक्त नलिकायें भी पाई जाती हैं परन्तु बाद में यह ताल का आकार ग्रहण कर लेता है उसमें रहने वाली रक्त नलिकायें नष्ट हो जाती हैं। इसका पोषण समीपस्थ लसिका से होता है। वृद्धावस्था में ताल अल्प पारदर्शी होता है।

नेत्र के सहायक अङ्ग

नेत्र में निम्न पेशियां होती हैं—

१-नेत्रोन्मीलनी (Levator palpebrae Superior)—

यह छोटी त्रिकोणाकार पेशी है और दृष्टि नाड़ी छिद्र के ऊपर जतुकास्थि के लघु पक्ष से आरंभ होती है। आगे की ओर आकर यह पेशी कलावितान (Apeneurosis) का रूप ग्रहण कर लेती है, जिसका निवेष ऊर्ध्ववर्त्मपट्टिका (Orbital septume suporior Tarsus) तथा ऊर्ध्ववर्त्म (upper lid) की त्वचा मे होता है, इसका सबन्ध तृतीय मस्तिष्कीय नाड़ी से होता है। इसका कार्य ऊर्ध्ववर्त्म को ऊपर उठाना है।

२-सरलापेशी (Rectus muscles)—

यह पेशियां दृष्टि नाड़ी छिद्र के चारों ओर रहने वाले सौत्रिक छल्ले मे व जतुकास्थि के बृहत्पक्ष मे आरम्भ होती हैं इनका निवेष स्वच्छ बिन्दु (Limbous) से ६ मि० मी० पीछे नेत्र बाह्यपटल-सौत्रिक पटल (Sclera) पर होता है। सरलोर्ध्व नेत्रचालनी (Rectus superious) ऊपर के भाग में और अधः नेत्र चालनी सरला (Rectus Inferious) नीचे के भाग में तथा मध्य नेत्र चालनी सरला (Rectus Medilis) मध्य के भाग में एव बाह्य नेत्र चालनी सरला (Rectus Lateralis) बाह्य के भाग में निवेश करती है। इन पेशियों का कार्य नेत्र को किसी भी ओर घुमाना है।

३-वक्रोर्ध्व नेत्र चालनी (Obliqus superious)—

यह दृष्टि नाड़ी छिद्र के समीप रहने वाले सौत्रिक छल्ले से प्रारम्भ होती है फिर नेत्र गुहा के ऊर्ध्व तथा मध्य भाग मे रहती हुई कुछ दूरी पर रस्सी (Tendon) के रूप में परिवर्तित होकर ललाटास्थि के फोवियेवल स्पाइन ट्रोकिरिस तक पहुँच जाती है, यहा पर इसके पीछे मे गुजर कर बाहर की ओर घूम जाती है, फिर सरलोर्ध्व नेत्रचालिनी के नीचे से गुजर कर सरलोर्ध्व नेत्र चालनी तथा बाह्य नेत्र चालनी के मध्य में निवेष करती है।

४-वक्र अधः चालिनी (Obliqus oculi Inferious

यह ऊर्ध्व हन्विका (Maxilla) के नेत्र गुहा की ओर के तल पर अश्रुखात (लैक्रिमल फोसा) के बाहर की ओर से आरम्भ होती है। फिर नेत्र गुहा की अध भित्ति के साथ रहती हुई बाहर की ओर जाकर सरला अध. और सरला बाह्य के मध्य में निवेश करती है। इन दोनों पेशियों का कार्य नेत्र गोलक को अपनी धुरी पर घुमाना है।

नेत्र गोलक की प्रावरणी (Fascia of eyeball)

नेत्र गोलक की दो प्रावरणी होती हैं। १—फेशिया बल्बाई २—आर बिटलफेशिया।

१-नेत्र धर कला (Fascia bulbi)—

यह स्वच्छ मंडल के पीछे सम्पूर्ण नेत्र गोलक को ढके रखती है, यह पतली कला है जिसके कारण नेत्र गुहा मे रहने वाली वसा नेत्र गोलक से भिन्न रहती है। दृष्टि नाड़ी तथा नेत्र गोलक पर लगने वाली मांस पेशी इस झिल्ली मे से गुजर कर ही नेत्र गोलक तक पहुँचती है।

२-कला गुहा (Orbital fascia)—

नेत्र गुहा की ऊर्ध्वभित्ति पर मध्य रेखा के दोनों ओर यह दो वक्र उभार हैं यहां पर घने मोटे मुड़े बाल पाए जाते हैं।

वर्त्म (Eye lids)—

नेत्र गोलक की रक्षा करने लिये के प्रत्येक नेत्र के सामने दो वर्त्म होते हैं। ऊर्ध्व वर्त्म बड़ा तथा अधिक गतिशील है। इसमें ही नेत्रोन्मीलनी का निवेश होता है। दोनों वर्त्म मध्य तथा पार्श्व में जाकर परस्पर मिल जाते हैं इस संधि को कनीनकसन्धि कहते हैं। वर्त्म के खोलने पर इन दोनों के मध्य में जो स्थान दिखाई देता है वह पेलपेब्रल फिसर कहलाता है। वर्त्म की रिक्त धारा पर मुड़े हुए मोटे बाल लगे रहते है। जिनको भ्रू कहते हैं।

नेत्र श्लेष्मावरण (Conjuctiva)—

पलक की धारा से प्रारम्भ होकर पलक के भीतर की ओर आकर समस्त नेत्र गोलक पर श्लैष्मिक त्वचा का जो सूक्ष्म आच्छादन आ जाता है, उसे नेत्र श्लेष्मावरण कहते हैं। यह आवरण ऊपर के पलक को आच्छादित करके नेत्र-गोलक पर जाता है। जिससे पलक

(शेषांश पृष्ठ ६४ पर देखिए)

चाक्षुष्य नेत्र विज्ञान

लेखक—श्री राजवैद्य कविराज श्री विजयरत्न वैद्य वाचस्पति बी० एम० एस० ककरवाई (झांसी)

प्रिय कवि० विजय रत्न वैद्य वाचस्पति राजकीय धर्मार्थ चिकित्सालय ककरवाई (झांसी) के अध्यक्ष हैं। आपने नेत्र विज्ञान पर प्राच्य और प्रतीच्य सिद्धातानुसार तुलनात्मक विवेचन पूर्ण किया है। समयाल्पता के कारण विवेच्य अन्शों की चिकित्सा पद्धति छूट गई है। नवप्रकाशान्वेषियों के लिए लेख सुन्दर और उपादेय है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

अजातानां मनुत्पत्तौ, जातानां विनिवृत्तये।
रोगाणां यो विधिर्दिष्टः, सुखार्थी तं समाचरेत्॥

संसार में मनुष्य को अपने सुखों या दुःखों को भोगने के लिये प्रकृति की ओर से ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां मिली हैं। यही पांच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण) तथा कर्मेन्द्रियां (वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ) अपने-अपने ग्राह्य विषय का बोध कराती हैं परन्तु उनके साथ मन का सम्बन्ध होना अभीष्ट होता है।

इतना होने पर भी चाक्षुष्य इन्द्रिय ज्ञान मात्र के लिए विशेष प्रधान है तथा मेरा प्रयोजन भी इसी से सम्बन्धित है, एव देखा जाता है कि नेत्र रहित मनुष्य का जीवन सर्वथा दुःख मय ही बन जाता है। अतः जिस तरह भी हो सके. इन्हें वही करना चाहिए जिससे नेत्र का संरक्षण हो सके और हम एक विशेष सासारिक सुख की प्राप्ति के निमित्त चाक्षुष गुण के बोध की आवश्यकता समझ सकें।

पाठक वृन्द इस चक्षुष्य गुण विवेचन का लाभ तभी हो सकता है जब कि आपको चक्षु रचना (Anatomy) चक्षुस्थ विविध अणुभवों की क्रिया (Pathalogy) तथा इनकी विकृति (diseases) आदि का ज्ञान कराया जाय, अतः इन सब बातों के साथ साथ आवश्यक नेत्र की रचना इत्यादि का यथा सम्भव वर्णन उपस्थित कर रहा हूँ, एव यह भी भय है कि कहीं लेख इतना बड़ा न हो जाय कि व्यर्थ विवेचन ही सिद्ध हो। अतः समुचित वर्णन ही अभीष्ट है।

नेत्र रचना।—

भगवान् ने दो नेत्र सबको दिये हैं, जो कि नेत्र गुहा में विद्यमान हैं। यह नेत्र गुहाभ्रुओं (Eye brow) के नीचे नासिका के उभय पक्ष में एक-एक गड्ढा रूप से प्रतीत होते हैं, इसको अक्षिखात (Orbital fossa) भी कहते हैं। इसी अक्षिखात के भीतर नेत्र गोलक (Eye balls) रहते हैं। इनकी रक्षार्थ प्रकृति ने अगले भाग पर नेत्रों के ऊपर और नीचे एक-एक नेत्रच्छद अथवा पलक (Eye lids) बना रखे हैं। इन्हीं पलकों के अग्रिम किनारे पर बाल भी उत्पन्न कर दिये हैं जिन्हें अक्षिपक्ष्म संज्ञा दी जाती है, इनका प्रयोजन केवल बाह्य धूल, मिट्टी आदि के सूक्ष्म कणों को अन्तः प्रवेश से रोकना है। अर्थात् किसी भी प्रकार के कीटाणु तथा जीवाणु जो भी बाहर से भीतर प्रवेश करते हैं वह सब इनमें फसकर प्रायः नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार दोनों नेत्र गुहाओं के ऊपरी भाग पर एक-एक भ्रू-भौं (Eye brow) देखने में आती है। इस का भी प्रयोजन प्रस्वेद आदि के कणों को जो कमाल से आते हैं आंख में गिरने से रोकने का है। इन दिव्य नेत्रों की रचना बड़ी विचित्र तथा अद्भुत है। यद्यपि

आयुर्वेद में इसका सविस्तार वर्णन नहीं जो कि इस समय के वैज्ञानिकों को सन्तोष दे सके परन्तु सूत्र रूप को ही विज्ञान की रिसर्च द्वारा भली भांति स्पष्ट कर दिया गया है।

विज्ञान की सहायता से इसके भीतर रहने वाले सब अङ्गों का यथा विधि वर्णन निम्न रूपेण ज्ञानार्थ लिख रहा हूँ।

अक्षि गोलक
(Eye balls or the bulbs of eyes)

इनका आकार बहुधा अण्डे या गेंद के सदृश होता है। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि छोटे बड़े दो गेंदें (Sphere) जिनकी १/६ तथा ५/६ भाग कटी हुई हो और बड़ी गेंद के ५/६ भाग पर छोटी गेंद का १/६ भाग रखा हो। सचमुच इसी तरह से नेत्रों के गोलकों की स्थिति एवं आकृति मिलती है।

इसमें जो छोटा अंश सामने उठा हुआ प्रतीत होता है वह कनीनिका अथवा स्वच्छमण्डल (Cornea) से निर्मित होता है, इन दोनों गोलकों के बीच एक-एक दृष्टि नाड़ी रहती है, एव नेत्र गोलकों के चारों ओर ६-६ मांस पेशियां लगी रहती हैं। इस नेत्र गोलक का व्यास (Diameter) ऊर्ध्व प्रदेश या सन्मुख प्रदेश मे उत्तान (Vertical) अर्थात् खड़ी पंक्ति मे २३½ एस. एम और अनुप्रस्थ (Transverse) अर्थात् आड़ी पंक्तियों में नासिका के कोण से कर्ण की ओर रहे हुए दूसरे कोण तक २५ एम० एम० एवं अनुलम्ब (Anteroposterior) अर्थात् मोटाई (Width) भी २५ एम० एम होती है। सामान्यत. जन्म के समय अनुलम्ब १७ ½ मिलीमीटर होता है तथा युवा अवस्था में २० से २१ तक हो जाता है। स्त्रियों में ये तीनों व्यास कम रहते हैं। परन्तु देखा गया है कि यह व्यास कभी-कभी अठारह वर्ष के बाद भी बढ़ता है और २४ तक हो जाता है। नेत्र गुहाओं में इन अक्षि गोलकों पर एक प्रकार की पतली श्लैष्मिक कला का आवरण चढ़ा रहता है जिसे नेत्रधरकला (Fascia bulbi or

(पृष्ठ ६२ का शेषांश)

और नेत्र गोलक के ऊपर ले जाने पर नेत्र श्लेष्मावरण का सङ्गम होता है। वहां पर ऊपर, नीचे, बाहर और भीतर के भाग में अर्थात् ४ स्थानों पर निम्न पुट बन जाते हैं।

१—ऊर्ध्वपुट (Superior fornix)
२—अधःपुट (Inferior fornix)
३—मध्यपुट (Medial fornix)
४—पार्श्वपुट (Lateral fornix)

अश्रु ग्रन्थिया (Lachrimal gland)—

यह अश्रु बनाने वाली ग्रन्थि है और ललाटास्थिक जायगोमेटिक प्रोसेस के मध्यतल के साथ रहती है। इसका आकार तथा आकृति बादाम के समान होती है। ग्रन्थि के दो खण्ड पाये जाते हैं मुख्य और गौण। ग्रन्थि में छः से बारह नलिकायें निकल कर ऊर्ध्वपुट के बाह्य भाग में आकर खुलती है। कभी-कभी ग्रन्थि के अतिरिक्त समीप ही एक प्रकार का तन्तु पाया जाता है।

अश्रु वहनलिका (Lachrimal duct)—

प्रत्येक वर्त्म की स्वतन्त्र धारा के मध्य में १० मिलीमीटर लम्बी अश्रुवह नलिका पाई जाती है जो पैपिलालैक्रिमलिस से आरम्भ होती है फिर वर्त्म की रिक्त धारा के साथ-साथ मध्य की ओर आकर अश्रु-कुम्भिका (Lachrimal sac) में जाकर खुल जाती है।

अश्रु कुम्भिका—

यह नेत्र के भीतर के कोण से नाक के बाहर की अस्थि की दीवार में एक खड्डे के भीतर रहता है। इस खड्ड को अश्रुखात (Lachrimal fossa) कहते हैं। अश्रु कुम्भिका अस्थि के तन्तु से निर्मित आवरण से सब ओर घिरा हुआ है। इसकी लम्बाई लगभग १२ मिलीमीटर होती है और उसकी पार्श्व भित्ति अश्रु नलिका में आकर खुलती है।

इस प्रकार नेत्र की मुख्य २ रचना का वर्णन करके हम लेखनी को विश्राम देते हैं।

Capsule of tenon) की सञ्ज्ञा दी जाती है। इसके बाह्य और आभ्यन्तर, ऐसे दो स्तर होते हैं। इन दोनों स्तरों के भीतर लसिका रहती है, जिससे नेत्र गोलक अपनी चेष्टा सरलता पूर्वक सम्पन्न कर सकते हैं।

इन अक्षि गोलकों में सामने की ओर पारदर्शक (Tiansparent) भाग हैं, तथा पिछले भाग अपार दर्शक हैं। इन नेत्र गोलकों की गति प्रकृति ने इस प्रकार नियत करदी है कि वह प्रत्येक अवस्था में सुरक्षित रूप से सम्पन्न हो सकती है।

इन अक्षि गोलकों में श्वेत पटल, कनीनिका, मध्य-पटल, तारा, उपतारानुमण्डल, नेत्र दर्पण, अन्तः पटल, पीत विन्दु, दृष्टि, दृष्टि नाड़ी, आर्द्रश्लैष्मिक कला, अग्रिम जलधानी (सन्मुख कोष्ठ), पश्चात् कोष्ठ तेजोजल, सान्द्र जल (मेदस पिंड), नेत्र चालनी पेशियां, अश्रु ग्रंथि, धमनी, शिरायें, रसायनियां आदि आदि अवयव हैं जो कि विविध जीवनोपयोगी महत्व के व्यापार और संरक्षण का कार्य करते हैं।

अक्षि गोलक प्राचीर—

इनकी भीति में तीन बाह्य, मध्य और आतरिक पटल या वृत्ति (Tunics) होते हैं तथा त्रिविध स्वच्छ वस्तु भी मिलते हैं यथा—(१) तेजोवारि (*तनु जल*), (२) दृष्टि *मण्डल* (शुभ्रजल) और (३) *सान्द्रजल* (मेदसपिंड)।

बाह्य पटल

(External tunic of eye ball)

इसका निर्माण दृढ़ स्नायु सूत्रों से हुआ होता है और दो भागों मे विभाजित है—यथा (१) श्वेत पटल, (२) कनीनिका। (१) श्वेत पटल—नेत्र गोलक के पश्चिम ५/६ भाग को ढके रहता है तथा स्वच्छ मंडल * अग्रिम १/६ भाग पर चढ़ा रहता है।

कनीनिका (स्वच्छमडल) (Cornea) यह कांच के समान साफ होता है तथा श्वेत पटल से आगे की ओर विभाज्य रूप से लगा हुआ पाया जाता है। यदि निर्विरोध दृष्टि से निरन्तर देखा जाय तो कृष्ण या पिंगल वर्ण से भाषित होता है। इस ही कनीनिका में से पीछे की ओर स्थित कृष्ण वर्ण के उपतारा की प्रतीत होती है। यही कारण है कि सर्व साधारण लोग कनीनिका को कृष्ण प्रभ मानते हैं।

कनीनिका तथा श्वेत पटल के तन्तु परस्पर मिले रहते हैं क्योंकि श्वेत पटल से ही कनीनिका घिरी रहती है। उदाहरण में यों समझलें कि घड़ी का कांच जो कि नीचे के आधार से बंधा रहता है इसी तरह कनीनिका (स्वच्छ मडल) की स्थिति है।

पाठक वृन्द ! कनीनिका गोलाकार और अति सूक्ष्म चार स्तरों से निर्मित रहती है। स्वास्थ्यावस्था में यह रक्त प्रणाली विहीन होती है परन्तु अपना पोषण ग्रहण अपने परिवेष्टित अवयवों द्वारा करती रहती है।

श्वेत पटल—शुक्ल वृत्ति

(Sclera-sclerotic coat)

यह पटल घन स्नायुओं से अयोजित होता है अतः इसे कठिन पटल भी कहते हैं। यह समग्र नेत्र गोलक को बांधे रहता है और इसका पीछे की ओर दृष्टि नाड़ी शिरा, धमनी से वेधन होता है जो दृष्टि नाड़ी आदि उपतारा की ओर गति करती हैं।

इसके भीतर की ओर मांस पेशियां लगी हैं। जिन के कारण कड़ा प्रतीत होता है तथा अक्षि गोलक के आभ्यन्तरीय अवयवों का सरक्षण करता है। यह सामने की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक स्थूल होता जाता है तथा इसकी मोटाई मध्य भाग में जौ के १/४ हिस्सा के बराबर रहती है एव कनीनिका की मोटाई १/१० भाग के बराबर होती है।

मध्य पटल

(Middle or Vascular tunic of the eye ball)

* स्वच्छ मण्डल—प्रत्यक्ष शरीर में और कनीनिका— हमारे शरीर की रचना में माना गया है। वास्तव में दोनों को पर्याय वाचक समझें।

पतली कला जो उपतारा प्रवर्द्धन की पश्चिम आवरण रूप है, उसे वितानाग्र कला (Parsciliaris Retinal) नाम से पुकारा जाता है।

इस पटल में दस स्तर (पर्त) होते हैं तथा इनमें से नवमी तह जो दण्डाकार शंकु सदृश पदार्थ को निर्मित है, उसे रूप दानिका (Jacob's membrane or Layer of rods & cones) कहलाती है। इसमें से दृष्टि शक्ति उत्पन्न होती है। यह पर्त पीछे से मोटी और जितना आगे बढ़े, उतनी पतली हो जाती है।

दशमी पर्त (Tepetum Nigrum of pigmentary layer) कहते हैं। इस पर्त पर विविध वर्ण के चित्रों के प्रतिबिम्ब (Images) पड़ते हैं और क्षण मात्र रह कर विलय को पाते हैं। इस कला को प्राचीन आचार्यों ने अलोचक पित्त–धरा–कला संज्ञा दी है। ये दोनो पर्त इतर आठ पर्तों से आच्छादित हैं जो कि स्वच्छता होने से प्रतिबिम्ब ग्रहण में प्रति बन्धक नहीं होती।

पीत विन्दु (Macula Leutena or yellow spot)—दृष्टि पटल के पीछे ठीक बीच में एक पीला अण्डाकृति स्थान है, इसे पीत बिन्दु कहते हैं और स्थानों की अपेक्षा इस बिन्दु में देखने की शक्ति तीक्ष्णतम है। इसका व्यास १/२० इञ्च के लगभग है। इस क्षेत्र के बीच में अधिक गहरे रङ्ग का केन्द्र स्थान है, वह गढ्ढा सदृश प्रतीत होता है। यही दर्शन केन्द्र अथवा दृष्टि नियन्त्रण खात (Fovea Centralis) कहलाता है। इस खात पर दृष्टि पटल अत्यन्त सूक्ष्म होता है।

जब आप किसी वस्तु पर दृष्टि डालें तो इसमें गति उत्पन्न होकर, यह स्थान उस पदार्थ के सामने आ जाता है, एवं चाक्षुष्य बिम्ब (Opticdisc) इस स्थान से ३ मिलीमीटर अर्थात् ⅛ इञ्च दूर नासिका की ओर रहता है। इसका व्यास लगभग १॥ मिलीमीटर है। इस खात के मध्य में अङ्कुरसा निकला है, जिसे बिम्बाङ्कुरिका (Optic papillae) कहते हैं। यह दृष्टि नाड़ी के मध्य में रही हुई धमनी और शिरा का प्रवेश-स्थान है। इस स्थान पर प्रकाश के प्रभाव का अभाव है। अर्थात् इस स्थान पर प्रकाश कोष (ग्राह्य Cells) नहीं हैं। इस हेतु से इसे अन्ध विन्दु (Blind spot) संज्ञा दी है।

इस नेत्र गोलक में गर्भ में त्रिविध स्वच्छ वस्तु रहती है यथाः—

१—*तनुजल* (Aqueous Humour)
२—*दृष्टि मण्डल* (Crystalline lens)
३—*सान्द्र जल* (Vitreous Humour)

इसके आगेवर्हिवृत्ति के अशभूत स्वच्छमण्डल (कनीनिका) रहता है। इन चारों के समुदाय को स्वच्छ वस्तु व्यूह (Transparent or Refracting media) संज्ञा दी जाती है। ये सब रूप वाली वस्तुओं के प्रकाश की किरणों को ग्रहण करने में परस्पर सहायक हैं। स्वच्छ मण्डल (कनीनिका) में सग्रह की हुई किरणों का तारा पथ से प्रवेश होता है। फिर दृष्टि मंडल नेत्र दर्पण द्वारा एकीकरण (Focussing) होता है। पश्चात् ये संग्रहित रश्मियाँ सान्द्र जल का अतिक्रमण कर के अन्तर पटल के अन्तिम (दशम) स्तर पर प्रति बिम्ब की रचना करती है।

नेत्र गोलक में देखने पर पहला स्वच्छ मंडल (Cornea) है। दूसरा तनुजल, यह पोषण कर्म करने वाला होने से प्रधान है। तीसरा दृष्टि मंडल (नेत्र दर्पण), चौथा सान्द्रजल (मेदस पिंड) है। यह स्वच्छ पारदर्शक है। इससे नेत्र गोलक का अधिकांश पूरण है। इसके अभाव में गोलक की आकृति नष्ट हो जाती है और प्रति बिम्ब ग्रहण भी नहीं होता।

तनुजल—तेजोजल (Aqueous humour)-यह एक प्रकार का तरल पदार्थ है जो दोनों नेत्रों की अग्रिम जलधानी (Anterior chamber)-और पश्चिम जलधानी (Posterior chamber) में रहता है। यह जल कुछ नमकीन सा होता है। इसका परिमाण २–३ रत्ती है तथा (Plasma) रक्त रस में से बना है। यह तेजोजल दोनों नेत्रों में उपतारा प्रव-

र्द्धन (Ciliary process) द्वारा पश्चात् कोष्ठ में पहुंचता है। यह अपने स्वरस द्वारा स्वच्छ वस्तु व्यूह का पोषण करता है। यह प्रति दिन क्षीण हो जाता है, और नूतन उत्पन्न भी होता रहता है। यह आमदनी शुक्ल वृत्ति (पटल) और कनीनिका सन्धि के मध्य में रही हुई अग्रिम रसायनी के मार्ग द्वारा लसीका से होती है। इस जल को प्राचीन आचार्यों ने तेजोजल संज्ञा दी है।

नेत्र दर्पण—दृष्टि मंडल-दृष्टि मणि (Crystalline lens)-इसे अक्षिमुकुर कांच और ताल संज्ञा भी दी जाती है। यह नेत्र दर्पण दोनों ओर से उभरा हुआ अर्थात् युगल उन्नतोदर है। परन्तु आगे की ओर की अपेक्षा पीछे की ओर का हिस्सा अधिक उभरा हुआ है। यह दर्पण उपतारा के पीछे और नेत्र गोलकान्त के मध्य में रहता है। यह उपतारानुमण्डल द्वारा बद्ध है। इसके आगे तारा सह उपतारा है। इस नेत्र दर्पण और उपतारा के मध्य में पश्चिम जलधानी है। पीछे की ओर सान्द्रजल का पतला कलाकोष है। इसके उदर में नेत्र दर्पण के अनुरूप खात है, जिससे नेत्र दर्पण का धारण होता है।

स्वास्थ्यावस्था में यह पूर्ण रूप से स्वच्छ रहता है, फिर आयुवृद्धि और रोग के हेतु से धुंधला हो जाता जाता है, इस दर्पण की लिङ्ग नाश (मोतियाबिन्दु) नामक मुख्य व्याधि है। इसकी रचना अतिशय जटिल है। यह ताल एक छोटे से चिट मौकिक सदृश आकृति का है। इसके ऊपर एक पतला आवरण चढा है, उस थैली को दर्पण कोष (Capsule of lens) कहते हैं। इसके आगे फैले हुए नेत्र दर्पण की परिधिवेष्टन कलाचक्र (Zonula ciliaris or zonula of tiun)के स्नायु हैं। जो दो स्तरों द्वारा दृष्टि मण्डल बन्धनी (Suspensory ligament of the lens)की रचना करते हैं।

सान्द्र जल--(Vitreous Humour) मेदसपिंड-नेत्र दर्पण के पीछे नेत्र का बडा कोष्ठ है, उसे मेदसपिंड भी कहते हैं। यह कोष्ठ नेत्र के ४/६ हिस्से में रहता है। यह कोष्ठ नेत्र गोलक में पश्चिम की ओर से नेत्र के वर्तुलाकार का रक्षण करता है। यह पारदर्शक कला से बना है, इसे सान्द्र जलधरा कला (Hyaloid membrane) कहते हैं। इसमें पत्तियों के अडे में रहे हुए चिकने तरल सदृश चिकना रस सान्द्रजल रहता है। इस रस में ९८.६% जल होता है। शेष अंश में कुछ नमक और किंचित् पोषक तत्व (Protein) रहता है। इस रस के दबाव से नेत्र के तीनों पटल परस्पर मिले रहते हैं।

यह अन्तर पटल के अङ्क में रहता है और आगे की ओर अपनी गोद में रहे हुए छोटे से खड्डे में नेत्र दर्पण को धारण करता है। इस खात को दृष्टि मंडलाधानिका (Fossa patellaris) संज्ञा दी है। इस सान्द्रजल के मध्य में दृष्टि मडल के पीछे की ओर दृष्टि नाड़ी प्रवेश स्थान तक एक पतली प्रणालिका लसीका पूर्ण होती है जिसे सान्द्रजल प्रपिका (Hyaloid canal) संज्ञा दी जाती है। यह गर्भस्थ शिशुओं की तारा से आच्छादन का पोषण करने वाली धमनी का अवशेष रूप है।

सान्द्रजल धर कला अन्तर पटल की सीमा पर लगी हुई कला से चिपकी रहती है तथा फटे हुए भाग का अगला भाग स्थूल कला चक्र के रूप में नेत्र दर्पण की परिधि में प्रतीत होता है। इस कला चक्र के चारों तरफ साईकिल के व्हीलहल की तरह उपतारा प्रवर्द्धन के अन्दर लगे रहते हैं। एव कला चक्र दो स्तरों में विभक्त हो जाता है। एक स्तर नेत्र दर्पण धारक कला कोष के दोनों ओर आ मिलती हैं और अन्यत्र वही कला बढ़ती हुई उपतारा पेशिका की सहायता से नेत्र दर्पण बन्धनी की रचना करती है, अन्य स्तर इस के पीछे स्थित दृष्टि मण्डलाधानिका को आवृत करता है।

दृष्टि नाडी—(Optic Nerves)

दोनों नेत्रों की दृष्टि नाड़ी नेत्र की तीनों पटलों और चाक्षुष्य बिम्ब का भेदन कर नेत्र के पीछे की ओर

से प्रारम्भ होकर बृहद् मस्तिष्क में गमन करती है। इस नाडी में लगभग पाच लाख सूक्ष्म तार रहते हैं। यह नाड़ी स्थान भेदानुसार तीन हिस्सों में विभक्त हो जाती है। यथा—

१—दृष्टि नाड़ी, २—दृष्टि नाड़ी चतुष्पथ
३—दृष्टि नाड़ी मूलिका

दोनों नेत्रों की दृष्टि नाडी नेत्रों में से निकल कर नासिका की ओर होकर पहले मस्तिष्क के अधो भाग में जतूकास्थि (Sphenoid bone) के ऊपर दृष्टि नाडी परिखा (Optic groove) में जाती है। इसी परिखा के दोनों ओर एक २ छिद्र रहता है- इनमें से जहां पर दोनों नाडियां एक दूसरे से मिलती है उसे दृष्टि नाडी योजनिका और दृष्टि नाडी चतुष्पथ (Optic Chiasma or commissure) कहा जाता है। यह स्थान ठीक पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland) के पीछे की ओर अवस्थित होता है। यहीं से मूलिका दृष्टि नाड़ी नाम से आगे बढ़ती हैं तथा दोनों ओर विरुद्ध दशा में जाती हुई बृहद् मस्तिष्क के पश्चात् खण्ड के भीतर रहे हुए दृष्टि केन्द्र (Visual centers) में प्रवेश करती है। इन दोनों केन्द्रों का परस्पर सम्बन्ध रहता है, एव ये नाड़ियां गति क्षेत्र और लघु मस्तिष्क से भी सम्बन्धित हैं।

नेत्र वर्त्मः-आर्द्र श्लैष्मिक (Conjuctiva)—उभय नेत्रों को बाहर की ओर से नेत्रच्छदों को अन्दर से आवृत करने वाली कला का नाम आर्द्र श्लैष्मिक कला है। जो कि प्रति फलित होकर नेत्र गोलक के अग्रिम भाग को बाह्यावरण के समुख वाले अंश तथा कनीनिका (cornea) को ढाप लेती है। इसी का कुछ भाग नेत्र पुट में भी रहता है और शेष भाग नेत्र के बाहर प्रतीत होता है।

अग्रिमा जलधानीः—Anterior chamber यह कोष्ठ कनीनिका और उपतारा (Iris) के मध्य में स्थित है, तथा तेजोजल (Aqueous Humour) से भरा होता है।

पश्चिम जलधानी—पश्चात् कोष्ट (Posterior chamber)-यह कोष्ठ सन्मुख कोष्ट की अपेक्षा छोटा है तथा इसमे तेजोजल (Aqueous Humour) रहता है, किसी कारण से यह जल निकाल दिया जाय तो इसे Trace out करना कठिन हो जाता है। इसकी स्थिति उपतारा (Iris) और नेत्र दर्पण (crystalline lens) के आवरण के मध्यम स्तर पर मिलती है।

नेत्र चालनी पेशियां
Oculo-Motor-Muscles

उभय नेत्रों के अक्षिगोलक को चारों ओर घूमने के लिए मुख्यतया ६/६ मांस पेशियां लगी हैं जो कि अक्षि-गुहा के पीछे की ओर से निकलकर वाह्य पटल में सम्मिलित हो गई हैं। इनसे एक ऊपर, एक नीचे, एक भीतर के कोए की ओर तथा एक बाहर के किनारे की ओर एवं एक एक ऊपर नीचे वक्र स्थिति में सलग्न हैं। इन्हीं से अन्य नेत्र निमीलनी, दो गौण पेशियां अलग हैं परन्तु पूर्वोक्त पेशियों के सङ्कोच से ही नेत्र की गति चारों ओर सरलता पूर्वोक होती है।

पूर्वोक्त अवयवों के अतिरिक्त निम्न अवयवों की भी नेत्र में अवस्थितिया मिलती हैं यथा.--

अश्रुग्रन्थियां, अश्रुस्थली, अश्रुवाहिनिया, शिरा, धमनी रसायनिया, भ्रू, अक्षिपक्ष्म, उपास्थियां, स्नायुसूत्र, स्पर्श ग्राहणक, चाक्षुषी नाड़ी (Ophthalmic Nerves), नेत्र चेष्टनी नाड़िया (Oculo Motor nerves) और दूसरी नाड़ियां इत्यादि।

पाठक वृन्द ? नेत्र रचना तो हो चुकी परन्तु अब आपको यह बोध कराना चाहता हूं कि Sight (दृष्टि) vision नेत्रों में कैसे होती है। देखिये।

बाहर की ओर दृष्टि डालने पर प्रकाश की किरणें कनीनिक पर पड़ती है तथा यहां से मुड़ कर नेत्र के अन्त भाग में जाती है अर्थात् वे प्रवेश करती हुई तेजोवारि, तारा, नेत्र दर्पण एवं

सान्द्रजल में से क्रमशः अन्तर पटल के अन्तस्तर तक गमन करती है। यही पर्दे का कार्य सम्पन्न करता है तथा इस पर तद्रूप वस्तुओं का चित्रण होता है। आप में से बहुतों ने Photographic कैमरा का चित्र देखा होगा, बस उसी तरह यह भी उलटा होता है, परन्तु अभ्यास करते रहने के कारण यह चित्रण मस्तिष्क में निश्चित स्थान (दृष्टि केन्द्र में) मन द्वारा उलटे से सीधा प्रतीत होता है। जैसे Photographic कैमरा में Negative picture को उलटा करके पुन Posative बनाया जाता है। यह क्रिया एव प्रति क्रिया बहुत शीघ्र सम्पन्न होती है तथा जितना प्रति बिम्ब साफ दिखाई देता है उतना ही चित्रण साफ तथा स्वच्छ प्रतीत होता है।

इन सब प्रक्रिया का प्रभाव तत्काल नवमी रुपादालिकास्तरिका द्वारा विलोम क्रम से सम्पन्न होता है। प्रतिबिम्ब परम्परा जब दृष्टि नाड़ी (Optic Nerve) द्वारा मस्तिष्क में रहे हुए दृष्टि केन्द्र में पहुँचती है तब उसी वस्तु के वर्ण, आकृति, लम्बाई, स्थान इत्यादि का सम्पूर्ण बोध होता है।

रोग निदान —

आयुर्वेदिक शास्त्रकारों और आचार्यों ने जो निदान नेत्र रोगों के बतलाए हैं उनकी आज का वैज्ञानिक युग भी मानता करता है यथा —

उष्णाभितप्तस्य जले प्रवेशा दूरेक्षणाच्च। इत्यादि श्लोक का नीचे स्पष्ट वर्णन किया जाता है—

१—उष्णाभितप्तस्य जले प्रवेशात-निरन्तर रूप से उष्ण और प्रतप्त शरीर होने पर जल में प्रवेश करने से अर्थात् अग्नि इत्यादि से चाहे व्यायाम इत्यादि से जब रक्त प्रसारण वेग से होता है जिससे शारीरिक ऊष्मा या गरमी बढ़ती है। इस तरह तत्काल उष्ण द्रव्य लगा तार प्रयोग करने से भी यदि निदान द्वारा दोषों की विषमता होती है तो नेत्र रोगों की सम्भावना हो सकती है।

२—*दूरेक्षणात्*:-दूर की वस्तु को लगातार देखते रहने से अर्थात् लगातार अत्यन्त दूर के द्रव्य को सेवन करना यथा सूर्य ग्रहण, चन्द्रमा इत्यादि को या किसी भी दीप्तिमान् प्रकाशित उपकरणों की साधना।

३—*स्वप्नविपर्ययात्*—निद्रा में गड़बड़ होने, से अत्यधिक रूप से निरन्तर जागते रहने या बिल्कुल न सोने से अथवा विषम और अकाल रूप में निद्रा का लगातार प्रयोग करना।

४—*स्वेदात्*—स्वेदन कर्म से। स्वेदन कर्म का हीन, मिथ्या और अतिक्रम होने से अथवा जठर अग्नि की विषमता रहने से, अजीर्ण आदि में भोजन करने से या पाण्डु प्रभृति रोगों में पैत्तिक प्रक्रियाओं के बढ़ने से अथवा ह्रास होने पर भी नेत्ररोग उपद्रव में सम्मिलित होते हैं।

५—*रजोनिषेवनोत्*—रज अनुरूप मिट्टी, कंकर, धूल इत्यादि के आंखों में गिर जाने से अथवा रजस्वला स्त्री का निरन्तर रूप से सेवन करना या रज का अङ्ग किसी भी कारण से आंखों इत्यादि में पहुँचने से अर्थात् सक्रमण द्वारा नेत्र रोग सम्भावित होते हैं।

६—*धूम निषेवणात्*—आंखों में किसी भी प्रकार का धूंआ लगने से। अथवा गांजा, इत्यादि के धूम्रपान से।

७—*छर्दि विघातात्*—उलटी या छर्दि एवं असह्य वमन के वेग को रोकने से।

८—*वमन अतियोगात्*—अत्यधिक दोष ऋतु बलादि को विचारे बिना ही मात्रा से अधिक वमन होने से।

९—*द्रवात्*—द्रव अर्थात् तरल पदार्थों के काफी भाग में सेवन से।

१०—*अन्नात*—अचक्षुष्य अन्न सेवन से यथा गुरु, विदाही एव संयोग विरुद्ध भोजन इत्यादि।

११—*निशिसेविनात्*—रात्रि में जागरण करके कार्य करते रहने से अथवा रात्रि में द्रवान्न का या द्रव और अन्न का प्रकृति विरुद्ध प्रयोग करना।

१२—*विडनिग्रहात्*—
१३—*मूत्रनिग्रहात्*—
१४—*वातनिग्रहात्*—
} मलमूत्र एवं उदान तथा अपान वायु के वेगों को स्वतः रोकने से या किन्हीं कारणों द्वारा अवरोध होने से।

१५-*प्रसक्तकोपात्*—लगातार कोप से ।

१६-*प्रसक्तरोदनात्*—लगातार रोते रहने से ।

१७-*प्रशक्तशोकनात्*—निरन्तर शोक ग्रस्त रहने से ।

१८-*शिरोभिघातात्*—शिर में चोट के लगने से ।

१९-*अतिशयमद्यपानात्*—अत्यन्त मद्यपान करने से ।

२०-*ऋतुना विर्पययेण*—ऋतु के उलटे होने से या ऋतु सात्म्य के अभाव होने पर:-यथा वर्षा में नेत्र पोथकी इत्यादि ।

२१-*क्लेशात*—नित्य प्रति गृहस्थ एवं बाहरी दुखों के होने से ।

२२-*अभिघातात्*—अभिघात रूप चोट के लगने से, स्वतंत्र रूप से या परतन्त्रतया ।

२३—*अतिमैथुनात्*—अत्यधिक कामरूपी स्त्री सेवन से । इसी से शारीरिक पुष्टी कारक बल, वीर्य और ओज का क्षय होता है । जिसका प्रभाव नेत्र पर भी होता है । यही कारण है कि आज कल तरुणावस्था में ही शत प्रतिशत नेत्र रोग दृष्टि गोचर होते हैं ।

२४-*वाष्पग्रहात्*—आसन्न किसी भी प्रकार के अश्रुपात को रोकने से ।

२५-*सूक्ष्मनिरीक्षणात*—बहुत सूक्ष्म देखने अर्थात् कशीदे कारी और अनेक प्रकार के निर्टिंग वर्क्स अनुयुक्त काल में करते रहने से अथवा लेखन इत्यादि कार्य में आसक्त रहने से ।

सूक्ष्म दृष्टि एवं गुणतया विमर्श करने पर इन २५ कारणों के अतिरिक्त नेत्र रोगों की प्रकल्पना में कुछ असम्भव सा प्रतीत होता है क्योंकि इन्हीं के अन्तरगत सबका अन्तरभाव हो जाता है । यही कारण है कि विकृति विषम सम्वाय से असख्य नेत्र रोगों का इन्हीं से प्राचीनों ने उद्गम माना है तथा इनके दूर करने के लिए न केवल कायचिकित्सा ही करते थे, अपितु शस्त्र, क्षार, अग्नि इत्यादि कर्म उपयोग में लाते थे । इन सबका प्रमाण सुश्रुत संहिता उत्तरतन्त्र और आयुर्वेद सम्मानित आचार्य भोज और निमिऋषि आदि के उदाहरण मौजूद हैं ।

समय की अल्पता के कारण शेष विचार फिर आगामी अङ्क में उपस्थित करूंगा ।

पोथकी (कुकरे)

लेखक—प्रधान सम्पादक

(Trachoma or granular lids)

प्रकृति के लीला वैचित्र्य के आगे नतमस्तक होना ही पड़ता है। यह नेत्र वर्त्म की व्याधि प्रायः समस्त भूमण्डल पर होती है। आयुर्वेदानुसार रोगोद्गम—"रोगस्तु दोषवैषम्यम्"—के सिद्धान्त के अनुसार सर्वत्र हो सकता है। परन्तु डाक्टर बर्नेट महोदय की खोज के परिणाम में हम यह देखते हैं कि पोथकी रोग हबशियों (Negroes) को नहीं होता। यह बात मानने में आचुकी है। परन्तु इस तथ्य से पर्दा उठा नहीं कि इसका कारण क्या है? अनुमानतः जल, वायु, प्रकृति अथवा देश का प्रभाव अथवा हबशियों के रक्त में ही कोई ऐसा तत्व विद्यमान है जिसके प्रभाव से पोथकी का आक्रमण उन पर नहीं होता। इसी उदाहरण का समकक्ष उदाहरण क्षय की चिकित्सा के प्रकरण में श्री चरकाचार्य ने "छागमध्येतु यक्ष्मनुत्" के उपदेश में किया है एवं इसी तथ्य को आज के विज्ञान ने—बकरियों को राजयक्ष्मा वा क्षय नहीं होता—इन शब्दों द्वारा संसार के सामने रखा है। अस्तुः

परन्तु इस तथ्य को विश्व के सब ही चिकित्सक एक स्वर से मानते हैं कि पोथकी रोग संक्रामक रोग है। कुमारावस्था में संक्रमण प्रभाव त्वरित एवं निश्चित होता है। इसलिये इस रोग का आयारम्भ माता की गोदी से ही शुरू हो जाता है।

उत्पत्ति—

इस रोग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य चिकित्सकों ने नए-नए रहस्यों का उद्घाटन किया है। पाश्चात्य चिकित्सकों की धारणा है कि चिन्तनीय आर्थिक दशा ग्रस्त जन समुदाय के परिवारों को उचित पुष्टिकारक भोजन के प्राप्त न होने से यह रोग होता है एवं जिन पुरुषों वा परिवारों में गण्डमाला का रोग हो उन्हें भी बहुधा यह रोग उत्पन्न हो जाता है। व्याधि ग्रस्त मनुष्यों के अधिक सम्पर्क में रहने से भी प्रायः यह रोग उत्पन्न वा संक्रमित हो जाता है। स्वच्छता के अभाव एवं मैला कुचैला रहने से भी रोग उत्पन्न हो जाता है उष्णोष्ण देश में प्रायः यह रोग अत्यधिक होता है। इसके विपरीत समशीतोष्ण एवं पर्वतादि स्थानों यह रोग प्रायः बहुत न्यून वा शून्य के बराबर होता है।

सम्पूर्ण चिकित्सक इसे संक्रामक मानते हैं। आश्चर्य है कि यह मानते हुए भी इसके उत्पादक जीवाणु का नाम निर्देश पूर्वक किसी ने वर्णन नहीं किया।

साध्यासाध्यत्व—

इस रोग का रोगी आरम्भ में ही यदि किसी योग्य चिकित्सक की चिकित्सा में आजाएं तब ही उसके रोग नाश की सम्भावना समझनी चाहिए अन्यथा यह रोग अत्यन्त दीर्घकालानुबन्धी होता है। शैशव काल से आरम्भ होकर आयुभर रहता ही नहीं प्रत्युत् उत्तरोत्तर अन्य रोगों को उत्पन्न करने का कारण बन जाता है। मूर्ख चिकित्सक के द्वारा आरम्भ में एक बार भी

यदि कास्टिकलोशन का प्रयोग कर दिया जाए तो पुन: जीवन भर यह रोग किसी भाग्यशाली का ही पीछा छोड़ता है।

सम्प्राप्ति—

भिन्न-भिन्न स्थान और भिन्न-भिन्न कारणों से कुपित दोष शनैः शनैः नेत्रों के पक्ष्मों के नीचे भीतर की ओर सञ्चय धारण करके पलकों की श्लैष्मिकला में अत्यंत सूक्ष्म मौक्तिक तंतु को जन्म देते हैं। पलक के एक किनारे से दूसरे किनारे तक इसकी विस्तृत होती है। तदनु वर्त्म भाग में और अधिक दोष सञ्चय से इसमें प्रथम अत्यंत सूक्ष्म छोटे-छोटे कणों का उद्गम होता है। इस अवस्था में साधारण चिकित्सक नाम निर्देश करने में सफल नहीं होते एव रोगी भी किसी विशेष कष्ट का अनुभव नहीं करता। परंतु शनैः शनैः जैसे-जैसे दोष स्थिति बढ़ती जाती है वैसे-वैसे प्रथमोद्भूत सूक्ष्म कण क्रमशः उन्नत होते हुए सर्षपाकार रूप में सबके देखने योग्य बन जाते हैं। यह अवस्था उत्पन्न होने पर इस रोग को पोथकी का नाम दे दिया जाता है।

वर्त्म रोगों की सम्प्राप्ति वर्णन में सुश्रुत ने आज के प्रत्यक्ष सूक्ष्म विज्ञान के आधार पर वर्णित, सम्प्राप्ति के विषय को अधिक स्पष्ट रूपेण व्यक्त किया है—

सुश्रुतोक्त सम्प्राप्ति—

पृथक् दोषाः समस्ता वा यदा वर्त्म व्यपाश्रयाः।
सिरा व्याप्यावतिष्ठन्ते वर्त्मस्वधिक मूर्छिताः॥
विवर्ध्य मांसं रक्तं च तदा वर्त्मव्यपाश्रयान्।
विकाराञ्जनयन्त्याशु नाम तस्मान्निबोधत॥

पोथकी के लक्षण—

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षप सन्निभाः।
रुजावत्यश्च पिटकाः पोथक्य इतिकीर्तिताः॥

सुश्रुत०

स्रावशील, कण्डुयुक्त, गुरु, रक्तसर्षप सदृश, पीड़ाकर पिडिकाओं को पोथकी कहते हैं। सूत्र रूप में इससे अधिक स्पष्ट वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु आचार्य धन्वन्तरि ने पोथकी के उपर्युक्त लक्षणों में पोथकी की ३ अवस्थाओं का स्पष्ट और विशद वर्णन उपस्थित किया है। पाठक महानुभाव निम्न लिखित तीन अवस्थाओं का पृथक् २ वर्णन अवलोकन करें।

१—इसकी प्रथमावस्था में रोगी आँखों से जल स्राव और मन्द २ पीड़ा एवं खाज का अनुभव करता है। वर्त्मस्थ दोष जब उपर्युक्त सरणी के अनुसार अत्यन्त सूक्ष्म कणों की अवस्था में हों तब प्रारम्भ में ये दोनों लक्षण व्यक्त हो जाते हैं। दोष प्राबल्य के अनुसार स्राव अधिक वा स्वल्प एवं शीत वा पिच्छिल अथवा उष्णाश्रुओं के रूप में होता है।

एक प्रसिद्ध पाश्चात्य चिकित्सक ने पोथकी के सम्बन्ध में चित्ताकर्षक भाव प्रदर्शन किए हैं—

The subjective Symptoms in the first stage are Pain, Itching and burning of the lids, Lachimation, Photophobia and asthencopia. Later on there is dimness of vision. Which increases in the third stage. There are also the Annoving symptoms coused by the inverted lashes,

Dr. G. M. Gould A. M. M. D.

अर्थात् "प्रथमावस्था में वेदना, कण्डू (खाज), वर्त्म में दाह, दृष्टि शक्ति की न्यूनता, ये लक्षण होते हैं। तदनु उत्तरावस्था में दृष्टि की मन्दता और भी बढ़ जाती है एव वर्त्म रोग की अन्तिम अवस्था पक्ष्मकोप (जिसे इधर परवाल कहते हैं) की परिस्थिति होती है।"

इस प्रथमावस्था में उपर्युक्त लक्षणों के होने का कारण प्रकृति के नैसर्गिकत्व में व्याघात की उपस्थिति होती है। दोष सञ्चय के कारण पलकों के अप्राकृतिक सघर्ष में संलग्न होने के कारण जल स्राव होता है और कण्डू की अधिकता के कारण संघर्षित पलकों में वेदना प्रतीति स्वाभाविक ही है। इन लक्षणों के साथ-साथ

प्रकाश असहन शीलता होती है। जल स्रावाधिक्य का कारण कुछ तो रोग का आरंभ लक्षण है। संघर्षण वा अधिक खुजलाने से अश्रु ग्रंथियां प्रभावित होकर प्रचुर जल स्राव में सहायक होती हैं एवं अधिक संघर्षण वा खुजलाने से पोथकी की पिड़िकायें फूट जाती हैं तथा फूटी हुई ग्रंथियों के कारण से शोथ स्राव एवं स्राव की पिच्छिलावस्था में वर्त्म के अन्तराल में क्षोभ के कारण पूयोद्गम होकर भी स्रावाधिक्य में कारण बन जाता है।

२—सुश्रुतोक्त लक्षणों के अनुसार पोथकी रोग की दूसरी अवस्था गुरुत्व एवं रक्त सर्षपाकृति सूक्ष्म पिड़िकाओं से आरम्भ होती है। प्रथमावस्था चिरस्थायी होने से ही द्वितीयावस्था की परिणति होती है। इसमें पलकें शोथ के कारण गुरू (स्थूल) उभार युक्त सशोथ प्रतीत होती हैं। प्रथमावस्था में अत्यधिक संवर्धित छदान्तरीय श्लैष्मिक कला के सौत्रिक तन्तु शोथ पीड़ित हुए २ सशोथ स्थूल उभार युक्त प्रतीत होते हैं। इसी दशा को व्यक्त करने के लिये "गुरू" शब्द का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है। किसी भी स्थान पर गुरुत्व या शोथयुक्त उभार होने से यह स्थिति बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि उस स्थान पर रक्तसञ्चय वा रक्ताभिसरण अधिक है। रक्ताभिसरण की तीव्रता कण्डू की शांति के लिये किये गये संघर्षण वा वर्त्मस्थ पिड़िकाओं की प्रचुरता के साथ सम्बन्ध रखती है एवं जहां रक्ताभिसरण अधिक हो वहां रक्त सञ्चय स्वाभाविक हो आता है। रक्त सञ्चय से रक्त सर्षप सन्निभ पिड़िकाओं की उत्पत्ति अनिवार्य हो जाती है। अत दूसरी अवस्था के गुरुत्व और रक्त सर्षपाकृति पिड़िकाओं की स्थिति स्वत. सिद्ध हो जाती है।

Dr. G. M. Gould A. M. M. D के द्वारा दूसरी अवस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"The second stage of the trachoma is ulceration of the follicles. The Secretion now slight. becomes mnca-Purulent, and the follicles, instead of being distinct, Have a ragged appeance and are ulcerated. The entire conjunctive is congested, and the eye lashes are malted together with Secretion."

"अर्थात् पोथकी की द्वितीयावस्था में क्षत हो जाता है। स्राव जो कि प्रथमावस्था में अल्पता से था पूय सदृश हो जाता है और पिड़िकायें (फुन्सी) प्रथक् २ प्रतीत न होकर निम्नोच्च (ऊंची नीची) अवस्था में परिणित हो जाती है और उसमें क्षत (व्रण) हो जाता है। सम्पूर्ण वर्त्म के भीतरी भाग में रक्त सचय होता है। स्राव से पक्ष्म (Lashes) सयुक्त हो जाते हैं।"

अनुभवी चिकित्सक रोगी के शोथ और उभारयुक्त वर्त्मों को देख कर तुरत इस रोग का सहज ही अनुमान कर सकता है। यह दूसरी अवस्था इस रोग को स्पष्टतया प्रतिपादित करने में निःसन्देह सहायक होती है।

तृतीयावस्था—

इस अवस्था में रोगी नेत्र कष्ट को पीड़ा के रूप में अनुभव करने लग जाता है। पीडिकाएं आकार में स्थूल हो जाती हैं। इनके फूटे हुए भाग के अवशेष अंश सिकुड़कर विसरन हो जाते हैं और पिड़िकाओं के दाने विलीन से प्रतीत होने लग जाते हैं। इनके स्थान पर चिह्न से शेष रहे हुए प्रतीत होते हैं। वर्त्म को उलटाकर देखने से शुभ्र रेखाओं के रूप में चिह्नित प्रतीत होते हैं। चिह्नों की अधिक संख्या से कभी कभी शुभ्र रेखाओं की स्थूल शुभ्र सूत्रवत् प्रतीति होती है। इस अवस्था में कण्डू अल्प होती है परन्तु जल स्राव की मात्रा बढ़ जाती है। इन स्थूल और शुभ्र सूत्रों के प्रभाव से वर्त्म स्थूल और वक्र से प्रतीत होने लग जाते हैं। जिसके कारण रोगी सुख पूर्वक पलकों की निमेषोन्मिलन क्रिया

करने में भी अपने आपको असमर्थता अनुभव करता है। अन्त में दोषस्थिति और वृद्धि से कारण वर्त्म का भीतरी भाग श्वेतप्रभ मलिन प्रतीति होने लग जाता है। यही इस रोग की भयावह दशा है। इसी अवस्था में पक्ष्मकोप (परवाल) और दृष्टिमांद्य का आयारम्भ होना आरंभ हो जाता है। यह अवस्था प्राय: शस्त्र साध्य होती हैं। शस्त्रोपचार के अनन्तर भी वर्त्म को स्वच्छ करने एवं दृष्टि की मंदता को दूर करने के लिए औषधोपचार अनिवार्य हो जाता है।

परिणाम—

इस रोग की व्यापकता और भयंकरता का ऊपर वर्णन हो चुका है। निःसन्देह यह व्याधि चिरकाल तक स्थायी रहती है। वर्षोंपर्यन्त वृद्धि को प्राप्त होती हुई नूतन २ पिड़िकाओं को उत्पन्न करती है और पूर्वोत्पन्न पिड़िकायें फूट कर क्षतचिन्हों को छोड़ती हुई अंत में विकराल रूप धारण कर लेती हैं।

पोथकी रोग के उपर्युक्त वर्णन में केवल वर्त्मों के भीतरी भाग में विकृत दोषों की उपस्थिति का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है जिसके द्वारा पोथकी रोग उत्पन्न होता है। परन्तु स्थानिक दोषों के प्रसरण प्रकार को यदि ध्यान में रखा जाय तो विकृत दोष जब वर्त्म के बाह्य भाग की ओर एवं पक्ष्मों की ओर प्रसरण करते हैं तब वर्त्मस्थ उत्तरोत्तर रोगों की उत्पत्ति होती जाती है। एवंविध वर्त्म भाग के एक रोग की उपेक्षा करने से वर्त्म के अन्य उत्तरोत्तर रोगों की स्वत: ही उत्पत्ति होती जाती है।

चिकित्सा—

चिकित्सा की सफलता वा सिद्धि बहुदृष्ट प्रत्यय चिकित्सक पर अवलम्बित है। उत्तमोत्तम योग भी अवस्थान्तर में प्रयुक्त हुआ २ लाभ नहीं करता और यदि उपकार के स्थान पर अनुपकार कर डाले तो कोई आश्चर्य नहीं। अत: चिकित्सा काल में चिकित्सक का लक्ष्य व्याधि की अन्यान्य कल्पना स्थिति में तल्लीन होने से ही अभिलषित फल की आशा हो सकती है। उपर्युक्त अवस्था भेद से योग्य चिकित्सक द्वारा प्रयुक्त निम्नलिखित चिकित्सा क्रम निश्चय ही लाभ कर सिद्ध होगा।

प्रथमावस्था की चिकित्सा—

—शतशोऽनुभूत योगों के प्रकरण में प्रधान सम्पादक की लेखनी द्वारा लिखित तुत्थ द्रवादि योग नैतिक व्यवहार के लिए उत्तम औषधि है। इस प्रारम्भिक दशा में एतावन्मात्र चिकित्सा से ही लाभ हो जाता है।

द्वितीयावस्था की चिकित्सा—

१६४—हरीतकी तुत्थ
मुलहठी प्रत्येक १—१ भाग
मरिच १६ भाग

—जल में पीसकर वर्तिकाएँ बनाकर जल द्वारा घिसकर प्रयोग करें अथवा इन वस्तुओं को १०० तोला परिस्रुत जल में भिगोकर घोल तैयार करें। इसका बिन्दुश: प्रयोग किया जा सकता है।

नेत्र प्रक्षालनार्थ—

१६५—टङ्कणाम्ल १० रत्ती
परिस्रुत जल ५ तोला

—इस द्रव से नेत्रों को बारबार धोना चाहिए।

१६६—रस कर्पूर १ भाग
परिस्रुत जल ८००० भाग

—इस द्रव से नेत्रों को प्रक्षालित करने से नेत्र कष्ट शांत होते हैं। तीसरीअवस्था में भी प्रक्षालनार्थ इसका प्रयोग करना चाहिए।

तृतीयावस्था की चिकित्सा—

जब तक पिड़िकायें फूट कर अपने भग्नावशेषों को अधिक संख्या में उत्पन्न न करें एवं स्थूल सूक्ष्म रूपेण दोष परिणित न हुई हों तब तक ही यह अवस्था औषधि साध्य रहती है। तदुपरांत यह शस्त्रावचारणाई हो जाती है। औषधि साध्यावस्था की चिकित्सा से पूर्व रोगी के उदर, अन्त्र, यकृत प्लीहा, कोष्ठ बद्धता, प्रतिश्याय, एवं

रक्त विकृति तथा नेत्रों की ओर रक्ताभिसरण की वृद्धि की ओर पूर्ण ध्यान रखने की आवश्यकता है। प्रायः इस अवस्था में उक्त अङ्गों की विकृति के साथ साथ रक्त में विकृति हो जाती है अथवा उपर्युक्त उदरादि की विकृति के सहयोग से ही पोथकी रोग तीसरी अवस्था में हठात् चला जाता है। सफलता चाहने वाले चिकित्सक को इस परिस्थिति मे पूर्ण सावधान रहने की आवश्यकता है।

एतदर्थ—पोथकी की चिकित्सा करते हुए उक्त विकृतियों की चिकित्सा भी साथ २ करनी होगी—इस रोगी की कोष्ठ बद्धता और नेत्रों की ओर रक्त संचरण की वृद्धि को तुरंत बन्द करना चाहिए।

१९७—ऐसी अवस्था में त्रिफलाघृत या महात्रिफलाघृत देने से अच्छा उपकार होता है। संशमनी वटी भी अच्छा लाभ करती है। आरोग्यवर्धिनी वटी का उपयोग लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

१९८—त्रिफला चूर्ण   २ तोला
इसबगोल   अफतेमु विलायती
उन्नाव   बिस्फायज

प्रत्येक १-१ तोला

—लेकर हरड़ के मुरब्बा के सीरा में चटनी बनाकर ६-६ माशा शीतोदक से प्रातः देना अति सुखदायक है। इससे पाचन विकार दूर होकर नेत्रों की ओर अधिक रुधिराभिसरण शांत होता है एवं प्रतिश्याय और नेत्र तथा शिरो व्यथा में भी उत्तम प्रभाव करता है। कोष्ठ बद्धता नष्ट होती है।

१९९—नेत्रों की ओर रक्तसंचरण अधिक हो तो शंख प्रदेश (Temple) में एक २ या दो २ जोंक लगवाकर रुधिर निकलवा देना चाहिए। एवं शीत वीर्य औषधियों को पीस कर शंख प्रदेशों में लेप लगा देना चाहिए। इससे भी पर्याप्त मात्रा में लाभ होता है।

२००—तुत्थ	८ तोला
श्वेत मरिच चूर्ण	२ माशा
कांजिक	२४० तोला

—थोड़ी सी कांजी में इन्हें पीसकर अवशिष्ट कांजी में मिलाकर स्वच्छ ताम्र पात्र में भरकर रख दें। सूखने पर चूर्ण को स्वच्छ शीशी में रखलें। तदनु २ रत्ती औषधि ५ तोला अर्क गुलाब में डालकर द्रव तैयार करे और बिन्दुशः डालने से तृतीयावस्था में चमत्कृत लाभ होता है।

यदि शस्त्रकर्म अपेक्षित हो तो चिरानुभवी चिकित्सक द्वारा ही होना चाहिए।

सावधानता—रोगी के स्वास्थ्य पर एवं रोग के उपद्रवों पर पूर्ण ध्यान देते हुए चिकित्सा करने से रोगी स्वास्थ्य लाभ कर लेता है।

स्वास्थ्यरक्षण, भोजन और परिहेय पदार्थ, उपचार और चेष्टाओं के प्रति रोगी को सतर्क रखना कुशल चिकित्सक द्वारा स्वाभाविक अपेक्षित है।

चश्मों के रोग (दृष्टि विभ्रम रोग)

(Errors of Refraction)

ले०—कविराज डा० पुरुषोत्तमदत्त गिरिधर वैद्य वाचस्पति भिवानी (हिसार)

लेख के लेखक लगभग १० वर्ष से किशनलाल जालान धर्मार्थ नेत्र चिकित्सालय भिवानी (हिसार) के अध्यक्ष हैं। एव आप ने इस नेत्र चिकित्सालय का आधारम्भ और संचालन किया है। इस नेत्र चिकित्सालय में लाखों नेत्र रोगी चिकित्सा कराने दूर दूर से आते हैं। शीत ऋतु में २०० रोगियों के नेत्रों का प्रति दिन शस्त्र कर्म होता है। आप अच्छे नेत्र चिकित्सक हैं। अमेरिका, लंडन और योरोप के नेत्रों के अनेक शल्य चिकित्सकों ने आपके शस्त्र कर्म के हस्तलाघवता की भूरि भूरि प्रशसा की है। आप भी अर्जुन की तरह सव्यसाची हैं। अर्थात् नेत्रों के शस्त्र कर्म को दाए और बाए हाथ से अभिन्न रीतया सम्पादन करते हैं। आप श्री मद्यानन्दायुर्वेद महा विद्यालय लाहौर के स्नातक हैं। आयुर्वेद और सुश्रुतीय नेत्र विज्ञान के पारंगत विद्वान् हैं। स्नातक होने के पश्चात ही आपने बम्बई में इस विद्या का विशेष रीतया अध्ययन करके इस कार्य को आरम्भ किया था। अनेक वैद्यों को आप अब तक आनुधिक पद्धति पर नेत्रों की विशेष शिक्षा दे चुके हैं। प्रभु ने आपको रोगियों के प्रति समवेदना सुन्दर स्वभाव, शिष्टाचार एव मधुर भाषण का विशेष दान दिया है। इस लेख में आपने दृष्टि विभ्रम रोग को बडी सुन्दर भाषा में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। हम लेखक महोदय से अनुरोध करेंगे कि वह अपने चिरकालानुभव किये विज्ञान को आयुर्वेदीय सरणी के अनुसार पुस्तक रूप में संसार को प्रदान करने का कष्ट करें। सर्व गुण सम्पन्न लोकप्रिय शिष्य को पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

—हरदयाल वैद्य

आजकल बहुत से लोग एवं स्त्रियां और बच्चे तक भी चश्मों का प्रयोग करते देखे जाते हैं। यह सब लोग चश्मे नेत्रों पर क्यों लगाते हैं? ऐसे कौन-कौन से नेत्र रोग हैं—जो चश्मों के प्रयोग की आवश्यकता को उत्पन्न करते हैं? और चश्मे उन रोगों से उत्पन्न दृष्टिमांद्यता को कैसे दूर करते हैं? वैद्य लोग ऊर्ध्वजत्रुगत इन रोगों से तथा इन उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अत. आइये हम वैज्ञानिक रूप से इन चश्मों

के रोगों की बाबत अति संक्षिप्त रूपेण कुछ बता देते हैं। जिससे कि वैद्य बन्धु इन रोगों के रहस्य को समझ सकेंगे।

इन रोगों को समझने से पूर्व दो बातों को मस्तिष्क में बिठा देना आवश्यक है अर्थात् इन दो वैज्ञानिक नियमों को समझ लेने पर ही हम इन रोगो के विवरण को ठीक ढङ्ग से समझ सकेंगे।

१—हम किसी भी वस्तु को तब ही देख सकते हैं जब उस वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें हमारे नेत्र में प्रवेश करके हमारे नेत्र के दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर उस वस्तु का प्रति बिम्ब हमारे दृष्टि पटल पर बना देती हैं। यदि किसी दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें हमारे नेत्र में प्रवेश नहीं कर सकती तो हम को वह वस्तु दिखाई नहीं दे सकती, अथवा यदि वह प्रकाश रश्मियें हमारे नेत्र के दृष्टि पटल पर ठीक केन्द्रित नहीं हो पातीं और उस दृष्य वस्तु का प्रति बिम्ब उन रश्मियों द्वारा हमारे नेत्र के दृष्टि पटल पर नहीं बन पाता, तो भी हम को वह वस्तु या तो दिखाई नहीं देगी या अस्पष्ट दिखाई देती है।

चित्र नं० १ में तीर की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें नेत्र में प्रविष्ट होकर दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर दृष्टि पटल पर तीर का प्रति बिम्ब छोटा सा बना रही है।

उपरोक्त प्रथम नियम के बाद दूसरा नियम और भी ध्यान से समझ लेना आवश्यक है—

२—किसी भी प्रकाशमान पदार्थ अर्थात् सूर्य, दीपक, चन्द्रमा इत्यादि की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें जब किसी माध्यम से टकराती हैं अर्थात् उनके रास्ते में जब कोई रुकावट पड़ती है, तो उन प्रकाश रश्मियों के साथ तीन बातें होती हैं। (१) वह प्रकाश रश्मियें उस माध्यम में जज्ब हो जाती हैं, अर्थात् उसी माध्यम में ही समाकर वहीं समाप्त हो जाती है जैसे काले कपड़े, लकड़ी आदि पर पड़ने वाली रश्मियें वहीं समाप्त होकर रह जाती हैं, या (२) यदि वह माध्यम पारदर्शक हो तो प्रकाश रश्मियें उसमें से वर्तित होकर अर्थात् टेढ़ी होकर दूसरी ओर निकल जाती हैं।

जैसे पारदर्शक स्वच्छ शीशे पर पड़ने वाली रश्मियें शीशे में से होकर दूसरी ओर निकल जाती हैं, और शीशे में से दूसरी ओर की वस्तुयें भी हमें दिखाई देती हैं या फिर तीसरी क्रिया उन रश्मियों के साथ यह होती है कि यदि वह माध्यम चमकदार वस्तु हो तो उस वस्तु से टकरा कर फिर वे वापिस लौट आती हैं, अर्थात् "प्रतिवर्तित" हो जाती हैं जैसे दर्पण पर पड़ने वाली रश्मियें।—हमारे "दृष्टि विभ्रम" रोगों का सम्बन्ध पारदर्शक अर्थात् स्वच्छ माध्यम में से होकर दूसरी ओर निकल जाने वाली प्रकाश रश्मियों की क्रिया है, इतना समझ लेने के बाद आइये अब हम आगे चलते हैं।

किसी भी प्रकाश पुञ्ज से निकलती हुई प्रकाश रश्मियें इस वायु मण्डल में तीर की तरह सीधी चलती है, रात्री को बिजली के बल्ब से निकलती हुई रश्मियों को बल्ब के चारों ओर सीधी लकीरों की सूरत में हम रोज देखते हैं। देखिये चित्र नं० २। प्रकाश रश्मियें वायु मण्डल में तो सीधी चलती हैं पर जब वह किरणें किसी स्वच्छ पारदर्शक माध्यम में से गुजरती हैं तो उस माध्यम की शक्ति के अनुसार उसमें से टेढ़ी होकर अर्थात् "वर्तित" होकर पार हो सकती हैं—जैसे स्वच्छ पानी के भरे हुए बर्तन में जब हम एक सीधी कलम डालते हैं, तो वह कलम पानी में हमको टेढ़ी दिखाई देती है। देखिये चित्र नं० ३। क्यों कि उस कलम के साथ जल में प्रवेश करती हुई रश्मियें जल में प्रविष्ट होकर जल की सतह की ओर थोड़ी टेढ़ी हो जाती है अर्थात् वर्तित हो जाती है और जल प्रविष्ट कलम का भाग हमको ठीक कलम की सीध में नहीं प्रत्युत टेढ़ा दिखाई देता है। प्रकाश किरणों का इस प्रकार पारदर्शक माध्यम में से 'वक्रीभूत' होकर गुजरना 'वक्री भवन' अथवा "वर्तन" कहलाता है और चश्मों के रोगों का सम्बन्ध इस प्रकाश "वर्तन" अथवा "वक्री भवन" से है।

आइये अब हम और आगे चलते हैं—

साधारणतयः चश्मों के ताल (Lenses) दो प्रकार के होते हैं, एक 'उन्नतोदर' (Convex) और दूसरे 'नतोदर' (Concave)। प्रकाश रश्मियें जब किसी "उन्नतोदर" पारदर्शक कांच पर पड़ती हैं तो वह उस में से पार होती हुई उस ताल के केन्द्र की ओर वर्तित होकर निकलती हैं और इस प्रकार वह सब रश्मियां ताल से कुछ दूरी पर जाकर केन्द्रीभूत होकर एक विन्दु के रूप में मिल जाती हैं। उस बिन्दु को ताल का "केन्द्र बिन्दु" (Focal point) कहते हैं।

आप ने आतशी शीशे को तो अवश्य देखा होगा और उसको प्रयोग भी किया होगा। दोपहर को धूप में उस आतशी शीशे को सूर्य की ओर करके किसी कागज या कपड़े के ऊपर उस ताल में से निकलती हुई प्रकाश रश्मियों को यदि केन्द्रित करें तो उस कपड़े या कागज को आग लग जाती है। आप स्वय करके देखलें। ऐसा क्यो होता है? उत्तर ऊपर बताया जा चुका है। अर्थात् उस आतशी (उन्नतोदर) काँच की सूर्य की ओर वाली पृष्ठ पर जो प्रकाश रश्मियें पड़ रही हैं वह सब रश्मियें उस काच में से पार होती हुई उस ताल के केन्द्र की ओर वर्तित होकर निकलती हैं और इस प्रकार वह आगे जाकर एक बिदु के रूप में कागज या कपड़े के ऊपर केन्द्रीभूत हो जाती हैं और इस प्रकार उस आतशी शीशे के सारे पृष्ठ पर पड़ती हुई प्रकाश रश्मियों की उष्णता भी केवल एक बिन्दु रूप में एकत्रित होकर उस कपड़े या कागज को आग लगा देती हैं।

ताल केन्द्र (Centre of the Lens) 'रश्मि केन्द्रविन्दु' (Focal Point) के बीच का फासला ताल के 'उन्नतोदरत्व' (Convexity) पर निर्भर रहता है—

जितना ही ताल अधिक 'उन्नतोदर' होगा उतना ही 'प्रकाशरश्मि वर्तन' (Refraction) अधिक होगा और उतना ही 'रश्मिकेन्द्र विन्दु' 'ताल केन्द्र' के समीप बनेगा, और इसी प्रकार जितना कम उन्नतोदर ताल होगा उतना ही रश्मि वर्तन भी कम होगा और उतना ही रश्मिकेन्द्र विन्दु ताल से अधिक दूरी पर बनेगा। देखें चित्र नं० ४–९।

अब जिस उन्नतोदर ताल का रश्मिकेन्द्र बिन्दु (focal point) तालकेन्द्र से एक मीटर अर्थात् चालीस इञ्च (४० इञ्च) की दूरी पर बनेगा, उस ताल को हम + १·० अर्थात् एक नम्बर का ताल कहेंगे। इसी प्रकार ताल के उन्नतोदरत्व और ताल केन्द्र से "रश्मिकेन्द्र बिन्दु" की दूरी के नियात से चश्मों के शीशों के नम्बर बनते हैं अर्थात् जिस उन्नतोदर कांच का रश्मिकेन्द्र बिन्दु ताल केन्द्र से २० इञ्च पर बनेगा उस का नम्बर + २ होगा और जिस ताल का केन्द्र बिन्दु १० इञ्च पर बनेगा उस ताल का नम्बर + ४ होगा और इसी प्रकार जिस ताल का रश्मिकेन्द्र ताल से दो इञ्च की दूरी पर बनेगा उसका नम्बर +२०·० होगा इत्यादि।

नतोदरताल (Concave lens)

पारदर्शक नतोदर ताल की वर्तन क्रिया उन्नतोदर कांच के. ठीक विपरीत होती है अर्थात् पारदर्शक नतोदर कांच (Concave lens) के पृष्ठ पर पड़ती हुई प्रकाश रश्मियें जब उसमें से पार होती हैं तो ताल के केन्द्र की ओर नहीं प्रत्युत उसके किनारे की ओर वर्तित होकर निकलती हैं और इस प्रकार एक दूसरे से पृथक् होकर दूर हो जाती हैं। देखें चित्र नं० ६। उन्नतोदर ताल को हम + निशान से जाहिर करते है और नतोदर कांच को–निशान से अर्थात् +२ +४ +१० इत्यादि नम्बर उन्नतोदर कांच को और –२,–३ –१०, नतोदर कांच को बताते हैं। इतना समझ लेने के उपरांत आइये अब हम नेत्र की ओर चलते हैं।

पूर्व बताया जा चुका है कि किसी दृश्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मिएं जब हमारे नेत्र में प्रवेश करती हैं तो वह वर्तित होकर हमारे नेत्र के दृष्टि पटल

पर केन्द्रित होकर उस वस्तु का बिन्दु रूप में प्रतिबिम्ब बनाती है, तब हमको वह वस्तु दिखाई देती है। यदि उस वस्तु का प्रतिबिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर नहीं बन पड़ता तो हमको वह दृष्य वस्तु ठीक और स्पष्ट नहीं दिखाई देती—दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियों का वर्तन हमारे नेत्र में कैसे होता है ताकी वह रश्मियें दृष्टि पटल पर जो नेत्र के बाह्य पृष्ठ से लगभग १ इन्च की दूरी पर नेत्र के अन्दर होता है, केन्द्रित हो कर वस्तु का प्रतिबिम्ब बना सकें, इसके लिए भगवान ने दो उन्नतोदर पारदर्शक स्वच्छ वर्तनीय माध्यम (Transparent Refractive media) नेत्र में बना दिये हैं वह हैं—(१) कनीनिका (Cornea) और (२) चक्षुताल (Lens)। यह दोनो पारदर्शक उन्नतो-दर माध्यम हैं जिनमें से गुजरती हुई प्रकाश रश्मियें वर्तित होकर ठीक दृष्टि पटल पर केन्द्रित हो जाती हैं। चक्षुताल ठीक आतशी शीशे की तरह उन्नतोदर स्वच्छ पारदर्शक वस्तु है जो नेत्र में तारा के पीछे रहता है और जिसका काम नेत्र में प्रवेश करने वाली प्रकाश रश्मि-यों को वर्तित करके दृष्टि पटल पर केन्द्रित करता है।

चश्मों के रोग

ऐसे नेत्र रोग जिनमें चश्मा लगाने की आवश्यकता पड़ती है और चश्मा लगाने से ही दृष्टि साफ हो सकती है वह चार हैं—(१) "ह्रस्व दृष्टि" (Myopia) (२) "दीर्घ दृष्टि" (Hypermet-ropia) (३) "अबिन्दु दृष्टि" (Astigmatism) और (४) "वृद्धि दृष्टि" (Presbyopia)। यह चारों रोग प्रकाश रश्मिवर्तन क्रिया के दोष से उत्पन्न होते हैं और उन वर्तन दोषों को ठीक करने के लिये ही चश्मों का प्रयोग करना पड़ता है इसलिए इन रोगों का वर्णन करने से पूर्व इतनी लम्बी उपरोक्त भूमिका रूप में 'प्रकाश रश्मिवर्तन क्रिया" को लिखने तथा समझाने की आव-श्यकता प्रतीत की गई क्योंकि इन चारों रोगों का सम्बन्ध इन उपरोक्त रश्मि वर्तन सम्बन्धी सब बातों से है। इन बातों को भली प्रकार समझे और मस्तिष्क में बिठाये बिना चारों चश्मों के रोगों का कारण सम्प्राप्ति, लक्षण, और चिकित्सा समझना असम्भव हैं पर अभी इन रोगों की ओर आने से पूर्व थोड़ा सा शुष्क भाग और रहता है, पाठक उसको भी थोड़ा सा मन लगाकर अवश्य समझलें जिसके बाद यह चारों रोग 'दृष्टि विभ्रम रोग' भली प्रकार समझ में आजावेंगे और इनके कारण, सम्प्राप्ति, लक्षण एवं चिकित्सा आदि समझने में भी कठिनता नहीं पड़ेगी,

अस्तु—यह अनुमान लगाया गया है कि बीस फुट या इससे अधिक की दूरी से किसी दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें परस्पर समानान्तर (Pa-rrlel) होती हैं। पर ज्यों-ज्यों कोई दृष्य वस्तु नेत्रों के समीप आती जाती है अर्थात् उस दृष्य वस्तु की दूरी २० फुट से कम होती जाती है त्यों-त्यों उस वस्तु की ओर से नेत्रों की ओर आती हुई प्रकाश रश्मियें परस्पर पृथक् एक दूसरे से दूर (दूरी कृत्य Divergent) होती जाती है। "फासला कम होने के साथ-साथ वस्तु की ओर से आती हुई रश्मियें अधिक अधिक "दूरी कृत्य" (Divergent) होती जाती है"। आगे चलने से पूर्व इस नियम को पुनः समझ लेना अत्यावश्यक है कि नेत्रों से २० फुट या उससे अधिक दूरी पर स्थिति किसी दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें परस्पर समानान्तर (Parrlel) होती हैं। पर ज्यों-ज्यों फासला दृष्य वस्तु का नेत्रो से कम होता जाता है त्यों-त्यों उस वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें परस्पर अधिक अधिक "दूरी कृत्य" होती जाती हैं। यह नियम ध्यान में कर लेने के बाद अब हम आपको बताते हैं कि प्रकाश रश्मियें किसी दृष्य वस्तु की ओर से आकर जब हमारे नेत्रों के अन्दर प्रवेश करती हैं तो "पारदर्शक उन्नतोदर कनीनिका" और उन्नतोदर "चक्षुताल" की वर्तन शक्ति द्वारा वर्तित होकर हमारे दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर उस दृष्य वस्तु का प्रति बिम्ब बनाती है तो हमको दृष्य वस्तु दिखाई देती है। ठीक इसी प्रकार जैसा कि साधा-

रण फोटो लेने वाले कैमरा से, उसके अन्दर पीछे रखी हुई मसालेदार प्लेट पर किसी वस्तु का प्रति बिम्ब पड़ता है तो उस वस्तु का चित्र उस प्लेट पर बन जाता है।

अब याद रखिये कि साधारण रूप से हमारे निरोग नेत्रों की कनीनिका और चक्षुताल का उन्नतोदरत्व इतना है और इस उन्नतोदरत्व द्वारा रश्मियों की वर्तन शक्ति (Refractive power) इतनी है कि २० फुट या उससे अधिक दूरी पर रखी हुई दृश्य वस्तु की ओर से आती हुई समानान्तर प्रकाश रश्मियें ठीक दृष्टि पटल पर केन्द्रित हो जाती हैं और उसका प्रति बिम्ब ठीक दृष्टि पटल पर बन कर वह वस्तु हमको स्पष्ट दिखाई देती है। पर जो दृश्य वस्तुयें २० फुट से कम दूरी पर हैं या नेत्रों से और भी अधिक समीप हैं उन वस्तुओं की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें तो "दूरी कृत्य" होती हैं। उन दूरी कृत्य (Divergent) प्रकाश रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने के लिये नेत्र को अधिक "वर्तन शक्ति" की आवश्यकता पड़ती है ताकि वह समीप वाली वस्तु हमको दिखाई दे सके। आप यों समझिये कि एक आदमी सीधा आपकी ओर मुख किये हुए आ रहा है उसको आप तक पहुँचने के लिये मुड़ने की आवश्यकता नहीं है पर जिस मनुष्य का मुख ठीक आपके सामने नहीं है उसे आपकी ओर मुख करने के लिये अपने मुख को मोड़ना होगा। चित्र नं० ७ में में दो समानांतर "अ" और "आ" प्रकाश रश्मियों को 'क' तक केन्द्रित होने के लिये कम मुड़ने अर्थात् वर्तित होने की आवश्यकता है पर "इ" और "ई" 'दूरी कृत्य' रश्मियों को 'क' तक पहुचने और केन्द्रित होने के लिए अधिक मुड़ने अर्थात् वर्तित होने की आवश्यकता है। जैसा कि बताया जा चुका है कि साधारणतय. 'कनीनिका' और "चक्षुताल" का निरोग नेत्र में उन्नतोदरत्व इतना है कि २० फुट या अधिक की दूरी से आती हुई समानांतर प्रकाश रश्मियें वर्तित होकर दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर प्रतिबिम्ब बना सकती हैं। पर इन दूरी कृत्य (Divergent) अर्थात २० फुट की अपेक्षा समीप से आती हुई प्रकाश रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने के लिये जो अधिक वर्तन शक्ति की आवश्यकता है वह कैसे पूरी हो? वह हो सकती है यदि कनीनिका या चक्षुताल का उन्नतोदरत्व बढ़ जावे। क्यों कि हम पहले कह चुके हैं कि जितना अधिक किसी पारदर्शक माध्यम का उन्नतोदरत्व होता है। उतना ही उस माध्यम में से पार होने वाली प्रकाश रश्मियों का वर्तन अधिक होता है। अब कनीनिका का तो उन्नतोदरत्व बढ़ नहीं सकता पर चक्षुताल को परमात्मा ने ऐसा लचकदार बनाया है कि दूरी कृत्य प्रकाश रश्मियों के अनुपात से आवश्यकतानुसार चक्षुताल का उन्नतोदरत्व उन "दूरी कृत्य" रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने के लिये बढ़ जाता है और इससे हमको समीप के पदार्थ लेख आदि भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। पर ? ताल की यह शक्ति भी सीमित है। आप यदि पुस्तक को नेत्रों के बहुत निकट लाते जावें तो एक सीमा ऐसी आती है जहां से अक्षर आपको दिखाई नहीं देते। इसका तात्पर्य यह है कि इन के समीप से आती हुई प्रकाश रश्मियें इतनी अधिक दूरी कृत्य हैं कि चक्षुताल का उन्नतोदरत्व इतना अधिक नहीं बढ़ सकता कि वह अत्यधिक 'दूरी कृत्य' रश्मियें वर्तित होकर दृष्टि पटल पर केन्द्रित हो सकें। इससे वह अक्षर हमको दिखाई नहीं देते हैं, अस्पष्ट दिखाई देते हैं और दो-दो हो जाते हैं।

वृद्धि दृष्टि रोग (Presbyopia)

अब हम वृद्धि दृष्टि रोग की ओर मुड़ते हैं। यह "वृद्धि दृष्टि" (Presbyopia) वास्तव में कोई रोग नहीं है प्रत्युत आयु की वृद्धि के साथ साथ होने वाली प्राकृतिक प्रक्रिया (Physiological process) है। वह कैसे? आइये जरा ध्यान से पढ़िये आप समझ जायेंगे। सुश्रुत ने भी इस क्रिया का सूत्र रूप से इन शब्दों में वर्णन किया है।

"यत्नवानपि चात्यर्थम् सूचीपाशं न पश्यति"

अर्थात्—अत्यन्त यत्न करने पर सूई का छिद्र

दिखाई नहीं देता है। ऊपर बताया गया है कि चक्षुताल लचकदार है और उसका उन्नतोदरत्व दूरीकृत्य प्रकाश रश्मियों की आवश्यकतानुसार, उनको अधिक वर्तित करके दृष्टिपटल पर केन्द्रित करने के लिये बढ़ भी सकता है। पर यह लचक (Elasticity) आयु की वृद्धि के साथ-साथ, चक्षुताल के केन्द्रीय भाग के तन्तुओं में शुष्कता आते जाने के कारण घटती जाती है यहां तक कि ४० वर्ष की आयु में चक्षुताल के उन्नतोदरत्व बढ़ने की शक्ति तालु तन्तुओं में शुष्कता आ जाने के कारण इस सीमा तक रह जाती है कि १३ इञ्च या इसके समीप के अक्षरों की ओर से आती हुई 'दूरीकृत्य' प्रकाश रश्मियें दृष्टि पटल पर केन्द्रित नहीं हो सकतीं और इससे साधारण निरोग मनुष्य को ४० वर्ष की आयु में १३ या १२ इञ्च के फासले पर बारीक अक्षर या मोटे अक्षर भी पढ़ने में कठिनाई प्रतीत होने लगती है। कम प्रकाश में और रात्रि में तो यह अक्षर दिखाई देते ही नहीं। वह कठिनाई पाश्चात्य अर्थात् ठण्डे देशों में ४५ वर्ष और भारत जैसे उष्णता प्रधान देशों में ४० वर्ष की आयु में आरम्भ होती है। अर्थात् अक्षर साधारणतय पढ़ने लिखने के फासले से अर्थात् १२ या १३ इंच से स्पष्ट दिखाई नहीं देते। उनको देखने के लिए पुस्तक आदि को दूर रखना पड़ता है। जिससे बारीक अक्षर कम दिखाई देते हैं मोटे तो दीख जाते हैं। इस उत्पन्न हुई प्राकृतिक कठिनाई को वृद्धदृष्टि (Presbyopia)कहते हैं।जिसको सुश्रुत ने सूत्र रूपेण "यत्नवानऽपि चात्यर्थम् सूचीपाशं न पश्यति." ऐसा कहा है।

बच्चों में चक्षुताल मे लचक अधिक होने के कारण "ताल उन्नतोदरत्व बर्धक शक्ति" (Accommodation) इतनी अधिक होती है कि वह पुस्तक को दो इञ्च, ३ इञ्च एव ४ इञ्च के फासले से भी पढ़ लेता है। पर आयु के बढ़ने के साथ साथ यह शक्ति घटती जाती है और नजदीक से सुगमता पूर्वक पढ़ने का फासला बढ़ता जाता है यहा तक कि निरोग मनुष्य भारत में ४० वर्ष की आयु में १३ इञ्च से नजदीक के अक्षर या बारीक चीजें स्पष्ट नहीं देख सकते, उन्हें स्पष्ट देखने का यत्न करने के लिये उसे पुस्तक या वस्तु को १३ इञ्च के फासले से दूर ले जाना पड़ता है। तो इस कठिनाई को दूर कैसे किया जावे? इसकी चिकित्सा है "ताल उन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" में उत्पन्न हुई कमी को पूरा करने के लिए चश्मों में उन्नतोदर ताल देना। यह निरोग मनुष्य में इस हिसाब से दिये जाते हैं।

४० वर्ष की आयु में + १'०	+ ४'० से अधिक ताल 'वृद्ध दृष्टि' रोग में नहीं दिया जाता क्योंकि इससे अधिक की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।
४५ ,, ,, ,, + २'०	
५० ,, ,, ,, + ३'०	
५५ ,, ,, ,, + ४०	

'ह्रस्वदृष्टि' (Myopia)

आरम्भ में ही बताया जा चुका है कि दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें यदि वर्तित होकर दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर वस्तु का प्रतिबिम्ब बनाती हैं तो वह वस्तु हमको स्पष्ट दिखाई देती है पर यदि २० फुट या उससे अधिक दूरी की दृष्य वस्तु की ओर से आती हुई समानान्तर प्रकाश रश्मियें बिना "ताल उन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" का प्रयोग किए दृष्टि पटल पर केन्द्रित न होकर उससे पूर्व ही केन्द्रित हो जाती हैं जिस से उस वस्तु का प्रतिबिम्ब दृष्टि पटल पर नहीं बन पाता तो वह दूर की वस्तु हमको स्पष्ट नहीं दिखाई देती अथवा बिलकुल ही नहीं दिखाई देती है इसको 'ह्रस्व दृष्टि' कहते हैं। देखिये चित्र नं० ८॥

ऐसी अवस्था तीन कारणों से उत्पन्न होती है। (१) चक्षुताल के च्युत होकर अपने स्थान से आगे सरक आने से। (२) नेत्र गोलक की 'अन्तः बाह्य' लम्बाई के साधारण अवस्था की अपेक्षा बड़ी होने से। (३) किसी भी कारण से नेत्र की 'रश्मिवर्तन शक्ति' (Refractive Power) के अधिक होने से इन उपरोक्त तीनों कारणों से समानान्तर रश्मियें अर्थात् २० फुट से या अधिक दूरी की दृष्य वस्तुओं की

ओर से आती हुई रश्मियें, तो दृष्टि पटल मे पूर्व ही केन्द्रित हो जाती हैं पर ज्यों २ वह वस्तु समीप आती जाती है उसकी ओर से आती हुई 'दूरी कृत्य' रश्मियें दृष्टि पटल पर बिना 'तालोन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति' के प्रयोग के ही केन्द्रित हो सकेंगी इसीलिए ही इस रोग के अर्थात् 'ह्रस्व दृष्टि' के रोगी को दूर की वस्तुऐं दिखाई नहीं देती हैं अथवा अस्पष्ट दिखाई देती हैं। पर समीप की वस्तुऐं अच्छी और स्पष्ट दिखाई देती हैं। जितना अधिक तीव्र यह 'ह्रस्व दृष्टि' रोग होता है उतना ही उसके रोगी को सूक्ष्म वस्तुयें अधिक समीप से स्पष्ट दिखाई देती हैं। सुश्रुत ने भी इस रोग का सूत्र रूपेण यों उल्लेख किया है।

"दूरस्थान्यपि रूपाणि मन्यते च समीपतः"

अर्थात् दूर की दृश्य वस्तुऐं समीप आने पर ही मान्य होती हैं अर्थात् दिखाई दे सकती हैं। स्मरण रखना चाहिए कि 'ह्रस्वदृष्टि' रोग वाले को 'वर्तन शक्ति' अधिक होने के कारण समीप से अच्छा दिखाई देता है और इसीलिए ४० वर्ष की आयु के पश्चात् भी 'वृद्धि दृष्टि' के कारण उन्नतोदर ताल लगाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती अर्थात् वह बिना उन्नतोदर ताल के प्रयोग के ४० वर्ष की आयु के पश्चात् भी बारीक अक्षर पढ़ सकता है, प्रत्युत समीम का बारीक कार्य करने के लिये भी उसे ताल "उन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" (Accommodation) के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। "ह्रस्व दृष्टि" की चिकित्सा है, नतोदर ताल के चश्मे (Concave lenses) का प्रयोग करना। नेत्रों की परीक्षा करके जितनी नेत्रों की "वर्तन शक्ति" (Refractive Power) अधिक हैं जिससे समानान्तर अर्थात् २० फुट की दुरी से आती हुई रश्मिऐं दृष्टि पटल से पूर्व ही केन्द्रित हो जाती है उतनी शक्ति के 'नतोदर ताल' चश्मे में प्रयोग के लिए दे दिये जाते हैं जिनसे कि समानान्तर प्रकाशरश्मियें 'दूरी कृत्य' होकर उस अधिक 'वर्तन शक्ति' का प्रयोग करके दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर दृश्य वस्तु का प्रतिविम्ब बना सकती हैं और रोगी को दूर की वस्तुयें दिखाई देने लग जाती हैं।

स्मरण रखना चाहिए कि यदि किसी को —१'० का 'ह्रस्व दृष्टि' रोग है तो उसको ४५ वर्ष की आयु तक "वृद्ध दृष्टि" रोग का कष्ट नहीं होगा इसी प्रकार—२'० वाले रोगी को ५० की आयु तक पढ़ने के लिए उन्नतोदर ताल लगाने की आवश्यकता नहीं होगी और ४'० वाले 'ह्रस्वदृष्टि' रोगी को तो आयुपर्यन्त, यदि और कोई रोग बीच में न हो जावे, पढ़ने के लिए उन्नतोदर ताल लगाने की आवश्यकता न होगी अस्तु,

"दीर्घ दृष्टि" (Hypermetropia) यह रोग मायोपिया के ठीक विपरीत हैं अर्थात् इसमें समानान्तर प्रकाश रश्मियें, अर्थात् २० फुट या उससे दूर से दृश्य वस्तु की ओर से आती हुई प्रकाश रश्मियें नेत्र की साधारण अवस्था में, अर्थात् बिना 'तालोन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति' का प्रयोग किये, न तो दृष्टि पटल से पूर्व केन्द्रित हो सकती है और न ही दृष्टि पटल पर केन्द्रित हो सकती है प्रत्युत दृष्टि पटल से भी पीछे जाकर केन्द्रित हो सकती है जिससे (देखिये चित्र नं० ६) कि दृष्टि पटल पर दूर की दृश्य वस्तु का प्रतिविम्ब नहीं बनपाता। कारण वही ह्रस्व दृष्टि के तीन कारणों से ठीक विपरीत कारण हैं। अर्थात् (१) चक्षुताल का अपने स्थान से च्युत होकर पीछे की ओर सरक जाना (२) किसी भी कारण से कनीनिका अथवा ताल की साधारण वर्तन शक्ति का कम हो जाना और (३) नेत्र गोलक की अन्तः बाह्य (Antro Posterior axis) लम्बाई का कम होना, जिससे कि समानान्तर प्रकाश रश्मियें दृष्टि पटल पर पहुँच कर भी केन्द्रित नहीं हो पाती क्योंकि दृष्टि पटल 'अन्तः बाह्य' लम्बाई के कम होने के कारण अपने स्थान से कुछ आगे होता है।

इस रोग में भी ह्रस्व दृष्टि रोग वत् दूर की वस्तुऐं रोगी को नहीं दिखाई देनी चाहिए क्यों कि उनका प्रति विम्ब दृष्टि पटल पर तो बन नहीं सकता, पर होता यह है कि इस रोगी को दूर की वस्तुयें ठीक दिखाई देती हैं। क्योंकि आप को स्मरण रखना चाहिये कि नेत्र में

समीप की वस्तुओं की ओर से आने वाली 'दूरी कृत्य' रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने वाली "ताल उन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" जो उपस्थित है। रोगी के नेत्र उस शक्ति का दूर की समानान्तर रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने के लिये भी प्रयोग कर लेते हैं अर्थात् नेत्र की साधारण वर्तन शक्ति की कमी को "तालोन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" के प्रयोग से पूरा कर लिया जाता है। यद्यपि यह शक्ति समीप की "दूरी कृत्य" रश्मियों को केन्द्रित करने के कार्यार्थ बनाई गई है। इसकी सहायता से नेत्र की वर्तन शक्ति बढ़ कर दूर की वस्तुओं की ओर से आती हुई समानान्तर प्रकाश रश्मियें दृष्टि पटल पर केन्द्रित होकर प्रति बिम्ब बना सकती हैं और इस लिये रोगी को दूर की दृश्य वस्तुयें भी ठीक दिखाई देती हैं। उस रिजर्व शक्ति का जो केवल समीप की सूक्ष्म वस्तुओं को देखने के लिए ही बनी है दूर के लिये प्रयोग कर देने पर रोगी को समीप का कार्य करने में कष्ट का अनुभव होता है। दुर्बल रोगियों को इस कारण पढ़ने लिखने अथवा नजदीक का कार्य करने पर शिर पीड़ा, जलागमन, नेत्र पीड़ा, थकावट आदि लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं और रोगी समीप का कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। स्मरण कीजिये कि जहां पर 'ह्रस्व दृष्टि' वाले को नेत्र की साधारण वर्तन शक्ति के आधिक्य के कारण समीप का कार्य करने के लिये भी "ताल उन्नतोदरत्व वर्धन शक्ति" के प्रयोग की भी आवश्यकता नहीं पड़ती वहां दीर्घ दृष्टि वाले रोगी को इस शक्ति का प्रयोग दूर के लिये भी करना पड़ता है। नजदीक का कार्य करने के लिये तो इस शक्ति का आवश्यकता से भी अधिक प्रयोग करना पड़ता है।

इसलिए इस रोग में समीप का कार्य करने पर रोगी को नेत्र जलन, जलागमन, थकावट, शिर पीड़ा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा है नेत्रों की परीक्षा अर्थात इस रोग की वर्तन शक्ति की कमी की जांच कर के उस कमी को पूरा करने के लिए उसी शक्ति के 'उन्नतोदर' ताल चश्मों में प्रयोगार्थ देना। याद रखिये कि जहाँ 'ह्रस्व दृष्टि' वाले को 'वृद्धि दृष्टि' का प्रभाव ही नहीं होता, और वह ४० वर्ष के बाद भी बिना उन्नतोदर तालों की सहायता से पढ़ने लिखने का और दूसरा समीप का कार्य कर सकता है, वहां 'दीर्घ दृष्टि' के रोगी को ४० वर्ष की आयु से पूर्व ही 'वृद्ध दृष्टि' रोग का प्रभाव प्रतीत होने लगता है और पढ़ने लिखने के लिए वृद्धि दृष्टि के नियमित तालों से अधिक शक्ति के ताल प्रयोग करने पड़ते हैं जैसे कि यदि 'दीर्घ दृष्टि' +३'० का का है तो ४५ वर्ष की आयु में पढ़ने लिखने के लिए +३'० दीर्घ दृष्टि रोग का और +२'० 'वृद्धि दृष्टि' के नाम का अर्थात् कुल पढ़ने लिखने के लिए उसे +५'० नम्बर का ताल प्रयोग करना पड़ेगा।

'अबिन्दु दृष्टि' (ASTIGMATISM)

'अबिंदु दृष्टि' या निर्बिन्दुता कहते हैं 'नेत्र की विविध दशाओं में प्रकाशरश्मियों का एक सा बराबर वर्तन न होकर रश्मियों का बिन्दु रूप में केन्द्रित न होना'। आतशी उन्नतोदर शीशे को जब आप सूर्य के नीचे रखते हैं तो +१०'० के उन्नतोदर ताल के नीचे रश्मियों का चार इञ्च के फासले पर ठीक बिन्दु के रूप में केन्द्री भवन होता है। क्योंकि उन्नतोदर ताल चारों ओर से बराबर उन्नतोदर होता है और उसमें से पार होने वाली प्रकाश रश्मियें चारों ओर से बराबर वर्तित होकर एक बिन्दु रूप में केन्द्री भूत हो जाती है पर यदि उस उन्नतोदर ताल का एक दिशा में तो उन्नतोदरत्व +१०.० हो और दूसरी दिशा में +६'० हो तो उसमें से पार होती हुई रश्मियों का वर्तन चारों ओर एक बराबर नहीं होगा और वह वर्तित होकर निकलने वाली प्रकाश रश्मियें किसी भी दूरी पर बिन्दु रूप में केन्द्रित नहीं हो सकेंगी प्रत्युत एक दिशा में तो रश्मियें ४ इञ्च पर केन्द्री भूत होना चाहेंगी और दूसरी दिशा में करीब ६½ इञ्च पर, इसलिए उनका केन्द्री भवन ताल के नीचे ४ इञ्च और साढ़े छै इञ्च ६॥ इञ्च पर कुछ अन्य प्रकार का होगा ठीक इसी प्रकार जब नेत्र में कनीनिका एवं ताल पृष्ठों का उन्नतोदरत्व चारों

और एक सा न होकर भिन्न भिन्न होता है तो प्रकाश रश्मिएं दृष्टि पटल पर बिन्दु रूप में केन्द्रित न होकर विविध आकार में केन्द्रित हो सकती हैं और इससे वह वस्तु हमको स्पष्ट दिखाई नहीं देती है इस रोग को निर्विन्दुता (Astigmatism ऐस्टिगमेटिज्म) कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है एक असरल (Irregular) और दूसरा सरल (Regular)। असरल वह जिसमें दो से अधिक दिशाओं में रश्मिवर्तन भिन्न भिन्न होता है यह असाध्य है—दूसरा सरल—वह जिसमें केवल दो प्रतिकूल दिशाओं में ही वर्तन क्रिया में भेद होता है जैसे (Vertical Meridion) खड़ी दिशा में वर्तन शक्ति +६°०, और इसके विपरीत आड़ी (Horizental meridion) में ३०।

सरल 'निर्विन्दुता' आगे फिर तीन प्रकार का होता है। (१) साधारण (Simple Astigmatism) (२) मिश्रित (Compound) (३) विरुद्ध (Mixed)। (१) जिसमें एक दिशा में तो वर्तन क्रिया उचित अर्थात् आवश्यकतानुसार दृष्टि पटल पर केन्द्रित करने के लिए ठीक होती है पर दूसरी दिशा में अधिक या कम इसे साधारण 'निर्विन्दुता' कहते हैं। (२) मिश्रित—जिसमे एक दिशा मे वर्तन क्रिया अधिक और दूसरी में उससे भी अधिक या एक दिशा मे कम और दूसरी में उससे भी कम और (३) विरुद्ध जिसमें एक दिशा में वर्तन शक्ति आवश्यकता से कम और दूसरी में अधिक अर्थात् एक दिशा में 'ह्रस्व दृष्टि' और दूसरी दिशा में 'दीर्घ दृष्टि.। इस रोग में शिर पीड़ा वमनेच्छा, थकावट, दृष्टिमान्द्य, कनपटी और भ्रू प्रदेश में पीड़ा आदि लक्षण होते हैं। इसकी चिकित्सा यह है.—साधारण भेद में जिस दिशा में उन्नतोदर या नतोदर ताल की आवश्यकता है उस दिशा की, और उस दिशा की वर्तन शक्ति की जांच करके, आवश्यकता नुसार रोगी को एक दैशिक (Planocylinders) नतोदर या उन्नतोदर ताल के चश्मे में प्रयोग करना। दूसरी और तीसरी अवस्था में उन्नतोदर या नतोदर तालों से युक्त एक दैशिक (Cylindirical lenses) तालों के चश्मों का प्रयोग कराया जाता है। इन तालों के चश्मों के प्रयोग से दृष्टि मांद्य, शिर पीड़ा, आदि लक्षण शांत हो जाते हैं। अब प्रश्न रह जाता है कि नेत्रों की 'दृष्टि विभ्रम रोगों' (Errors of Refraction) के लिये परीक्षा या जाँच कैसे की जाए ताकि किस रोग में किस किस नम्बर का चश्मा (चिकित्सा रूप) प्रयोगार्थ दिया जावे।

नेत्र परीक्षा

नेत्र परीक्षा दो प्रकार की है। (१) यान्त्रिक (Objective test) (२) तालपेटिका द्वारा (Subjective test by Trial case)। यान्त्रिक परीक्षा वैज्ञानिक रूप मे यन्त्रों की सहायता से अन्धेरे कमरे (Dark room Examination) में नेत्र विशेषज्ञ द्वारा ही की जाती है पर दूसरी परीक्षा ताल पेटिका द्वारा शीशा लगा लगाकर साधारण चिकित्सक द्वारा भी की जा सकती है। Subjective test अर्थात ताल पेटिका द्वारा 'दृष्टि विभ्रम रोग परीक्षा विधि' एक पृथक लेख में दी जा सकती है यहां नहीं अन्यथा लेख बहुत लम्बा हो जावेगा। यह लेख वैद्य बन्धुओं को केवल इन रोगों का दिग्दर्शन मात्र करने के उद्देश्य से ही अत्यन्त सूक्ष्म रूपेण लिखा गया है। इन रोगों का पूर्ण विवरण एव परीक्षा विधि लिखने से पूरे पाच सौ पृष्ठ की पुस्तक बन सकेगी। मैंने अपनी ओर से इस शुष्क विषय को सरल से सरल भाषा मे मनोरञ्जक बना कर लिखने का प्रयत्न किया है इस पर भी यदि किसी पाठक को कहीं कोई बात समझ में न आवे तो पत्र द्वारा शका निवारण की जा सकती है और हा यदि वैद्य बन्धुओं ने इस लेख को लाभप्रद समझा और इच्छा प्रकट की तो ताल पेटिका द्वारा 'परीक्षा विधि' पर भी विस्तृत लेख लिख दूंगा जिस से वैद्य भी यत्न करने पर परीक्षा करने पर परीक्षा करके चश्मे, रोगियों को प्रयोगार्थ दे सकेंगे। पर ऐसा अनुरोध करने से पूर्व इस उपरोक्त लेख को भली प्रकार समझ लेना आवश्यक है और इन रोगों को भली प्रकार समझने के लिये पूर्व दिये गये प्रकाश वर्तन सम्बन्धी नियमों को भी ध्यान पूर्वक पढ़कर समझ लेना आवश्यक है।

सुश्रुतोक्त नेत्रशल्य चिकित्सा

Surgery of the Eye in Sushrut

ले०—कविराज डा० पुरुषोत्तमदत्त गिरिधर वैद्य वाचस्पति, भिवानी (हिसार)

पाठक वृन्द! कविराज श्री पुरुषोत्तमदत्त गिरिधर जी का यह द्वितीय लेख है। आपका संक्षिप्त परिचय दृष्टिविभ्रम नामक लेख के प्रारम्भ में दिया गया है। इस लेख में पाठक लेखक के आयुर्वेद प्रेम और निर्भीकतया स्पष्ट भाषण की पराकाष्ठा को हृदय स्पर्शी भावों के द्वारा अनुभव करेंगे।

विदेशीय चिकित्सकों द्वारा यह दुन्दुभिनित्य पीटी जाती है कि नेत्र शल्य चिकित्सा आधुनिक ज्ञान की देन है परन्तु प्रस्तुत लेख में सुश्रुतीय नेत्र शल्य चिकित्सा विज्ञान को आप एक कृत कर्मा कर्मठ की लेखनी से, विदेशियों को सुश्रुत के पद चिन्हों पर चलता पाएँगे।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

इसमें सन्देह नहीं है कि वैद्य समाज साधारणतया शल्य चिकित्सा से सर्वथा अनभिज्ञ है। "वैद्य" शब्द से जनसाधारण द्वारा कायचिकित्सक ही अर्थ समझा जाता है अर्थात् ऐसा चिकित्सक जो गोली, क्वाथ, पुड़िया आदि दे कर शारीरिक रोगों की चिकित्सा करता है। जन साधारण को तो यह ज्ञान भी नहीं है, कि 'शल्य' और 'शालाक्य' भी आयुर्वेद का एक अङ्ग है और वैद्य रूपी प्राणी का आयुर्वेदज्ञ होने के नाते से शल्य और शालाक्य सहित अष्टांग आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करना कर्तव्य है। स्वयं वैद्य भी इसी विचार प्रवाह में यही जानते हैं कि केवल गोलियां और पुड़ियां, क्वाथ आदि अनुपान द्वारा देकर रोग चिकित्सा का यत्न करना ही उनका कर्तव्य मात्र है।

तो फिर आयुर्वेद के इस अङ्ग अर्थात् शल्य और शालाक्य की उन्नति हो कैसे? अब जब कि देश स्वतन्त्र है अपना 'देशीय राज्य' है, समय आ गया है कि अपने देशीय चिकित्सा विज्ञान अर्थात् आयुर्वेद के सब अङ्गों के पुनरुद्धार और विकास की ओर भी ध्यान दिया जावे।

अस्तु—शल्य चिकित्सा का तो सुश्रुत ने सुन्दर विवरण दिया ही है। प्रत्युत कई शल्य प्रयोग (Operations) तो ऐसे हैं जो पाश्चात्य शल्य चिकित्सा के असीम उन्नत हो जाने पर भी सुश्रुत के समय से आज तक तनिक से हेर फेर के अतिरिक्त वैसे के वैसे ही प्रत्युक्त होते आये हैं, जैसा कि सुश्रुत में उनका विवरण दिया हुआ है, पर शालाक्य चिकित्सा में भी नेत्रों के कई शल्य प्रयोग (Eye operation) ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और प्रयोग विधि आज भी ठीक वैसी की वैसी चली आ रही है, जैसा कि सुश्रुत ने शालाक्य तन्त्र में उनका विवरण दिया है। यहां तीन ऐसे शल्य प्रयोगों (Eye operation) का वर्णन किया जाएगा। जिन्हें नेत्र विशेषज्ञ अर्थात् नेत्र शल्य चिकित्सक (Eye su-

rgeons) आज भी सुश्रुतोक्त विधि अनुसार उन ओपरेशनों को करते हैं ।

१—पोथकी लेखन (Scraping of Trachoma granules)
२—अर्म छेदन (Excision of the Pterygium)
३—लिङ्गनाश चिकित्सा (Cataract surgery)

पोथकी (Trachoma)

पोथकी को साधारण भाषा में रोहे, कुकरे, राजस्थान में 'दाणे' आदि कहते हैं । इस रोग में नेत्रच्छद अर्थात् पलकों की अन्दर वाली पृष्ठ पर की श्लैष्मिक कला में दाने (Granules) से पड़ जाते हैं जो नेत्रों में चुभते हैं, जिससे-नेत्रो में जल बहुत आता है, शिराजाल और रक्तता आजाती है । आरम्भ में समुचित चिकित्सा न होने से नेत्रों में व्रण शुक्र (Ulcers cornea) हो जाते हैं तथा फोले (Opacities cornea) से पड़ जाते हैं, दृष्टिमान्द्य और अन्त में दृष्टिनाश भी हो जाता है । पाश्चात्य चिकित्सा में इन दानों (Trachoma granules) को शस्त्रों द्वारा छील देने (Scraping) की व्यवस्था की गई है और इस ओपरेशन का वर्णन सुश्रुत ने भी सुन्दर रूप से उत्तर तन्त्र अध्याय त्रयोदश में "पोथकी लेखनम्" के नाम से ठीक ऐसे ही किया है जैसा कि आजकल भी महोन्नत शल्य चिकित्सा काल में होता है । आजकल यह पोथकी लेखन (Scraping of trachoma granules) निम्न विधि से किया जाता है ।

रोगी के नेत्र वर्त्म अर्थात् पलक को उलट कर शुद्ध जल से अच्छी प्रकार धोया जाता है, तदनान्तर उन पोथकी के दानों को चाकू से पछ कर रुई से साफ करके फिर अच्छी तरह Scraper से छील दिया जाता है । रक्त बन्द होने पर पुन धोकर ऊपर दाहक एव पोथकी नाशक कास्टिक लोशन अथवा तुथ्य के टुकड़े से रगड़ दिया जाता है, और तुरन्त पुनः ही भली प्रकार धो दिया जाता है, पश्चात् लक्षणानुसार शोथ नाशक एव पोथकी नाशक औषधियों द्वारा दैनिक चिकित्सा की जाती है । आइये देखें सुश्रुत ने इस शल्य क्रिया का वर्णन कैसे किया है जो किया कि आज से २००० वर्ष पूर्व भी सुश्रुत काल में प्रयुक्त होती थी ।

> सुखोदकप्रतप्तेन वाससा सुसमाहितः ।
> स्वेदयेत वर्त्मनिर्भुज्य वामाङ्गुष्ठाङ्गुलि स्थितम् ॥

अर्थात् सावधानी पूर्वक वाम हाथ की अंगुली और अंगूठे से पलक को उलटा कर और अच्छी प्रकार पलक को स्थित करके "सुखोदक प्रतप्तेन" सुहाते २ गर्म जल मे पलक को 'स्वेदयेत' सेके अर्थात् धोवे । आगे—

> अगुल्यागुष्ठ काभ्यातु निर्भुग्नं वर्त्म यत्नतः ।
> स्रोतान्तराभ्या न् यथा चलति सस्र्पेऽपि वा ॥

अर्थात् उलटे हुए पलक को सावधानी पूर्व अगूठे और अंगुली से इस प्रकार दृढ़ पकड़े रखें कि शल्य कर्म करते हुए पलक न तो हिले और न हाथ से छूटे । फिर—

> तत• प्रमृज्य स्रोतेनवर्त्म शस्त्र पदाङ्कितम् ।

शस्त्र से उन दोनों को पादाङ्कित करके अर्थात् पछ कर, कपड़े से साफ करके "लिखेत शस्त्रेण पत्रैर्वा" उन दानों का शस्त्र से अथवा (जहा शस्त्र प्राप्त न हो) या पत्र से लेखन करे अर्थात् उन दानों को छील दे । "ततो रक्ते स्थिते पुन स्विन" अर्थात् रक्त ठहर जाने पर पुन• स्वेदन करे अर्थात् उष्ण जल से धोवे ।

> मनोत्वाकासीस व्योपाद्र्ञ्जन सैन्धवैः
> श्लक्ष्णपिष्टैः समाक्षिकै प्रतिसार्य ।

अर्थात् पलक को उष्ण जल से धोने के बाद (पोथकी नाशक एवं दाहक औषधियों से) मनसिल, कासीस, त्रिकुट अञ्जन व लवण इन औषधियो को पीसकर मधु से युक्त करके पलक पर रगड़े और पुनः 'उष्णवारिणा प्रक्षाल्य हविषासिक्तं यथावत् समुपाचरेत्' उष्ण जल से पुन. इन दाहक औषधियों को धोकर घृत से सेक कर यथावत् उपचार करे । पाश्चात्य चिकित्सक हमेशा अज्ञानवश

यह आपत्ति करते आए हैं कि आयुर्वेद में कहीं (Asepsis a Antisepsis) शुद्धताई का प्रयोग नहीं है। इस शल्य कर्म में कदम–कदम पर सुश्रुत ने उष्ण जल से सेंक कर सफाई का आदेश दिया है। इससे अधिक और क्या (Asepsis) का ध्यान रखा जा सकता है। पोथकी को पाश्चात्य मतानुसार शल्य चिकित्सा (Scraping) और सुश्रुतोक्त इस शल्य विधि में आज भी तिल मात्र का फर्क नहीं पड़ा है। अस्तुः। अब देखिए

अर्म छेदन

(Excision of pterygium)

अर्म एक ऐसा रोग है जिसमें नेत्र के श्वेत भाग अर्थात् श्वेत पटल से एक त्रिकोण मांस वत रक्त वाहनियों सहित नेत्र के कृष्ण भाग अर्थात् कनीनिका की ओर धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है; इस मांस का अग्र कोण (Apex) कनीनिका से सुदृढ़ रूप से लगा हुआ होता है। जब यह मांस बढ़ कर कृष्ण भाग का वृहद्भाग ढक लेता है तो दिखाई देना बन्द हो जाता है, इसे अर्म कहते हैं। इस अर्म को कृष्ण भाग पर से उतार लेना ही इसकी चिकित्सा है सुश्रुत ने 'अर्मछेदनम' के नाम से इसकी शल्य चिकित्सा का यों वर्णन किया है—

> तत्त संरोषितं तूर्णं सुस्विन्नं परिघट्टितम्।
> अर्मपत्र वलीजातं तत्रैतल्लगयेत भिषक्॥

अर्थात् उस संरोषित अर्म को स्वेदन करके अर्थात् उष्ण जल से धोकर फिर उसको पकड़ कर हिलाना चाहिए जिससे नीचे का भाग ढीला हो जाता है। तब उस नीचे के भाग को जो श्वेत पटल पर है तथा जो ढीला हो गया है एवं उस में वली अर्थात् झुरियां पड़ गई हैं, उस नीचे के भाग को "अपाङ्ग प्रेक्षमाणस्य बडिशेन समाहित', बडिश यन्त्र अर्थात् चिमटी से पकड़ कर ऊपर उठावे, और रोगी अपनी दृष्टि अपङ्ग अर्थात् बाहर के कोये की तरफ फेरे रखे ताकि अर्म सामने आ जावे और उस को पकड़ने एवं उस पर ओपरेशन करने में सुभीता रहे। तदनन्तर "मुचुण्ड्याऽऽदायमेधावीसूची सूत्रेण च पुनः" मुचुण्डी अर्थात् चिमट को चुटकी से पकड़ कर सूई से अर्म के नीचे से (श्वेत भाग वाले ढीले हुए अर्म के नीचे से) धागा गुजार दे और उस धागे द्वारा अर्म को ऊपर उठाले, उठाते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिए कि कहीं अर्म टूट न जावे।

> 'न चोत्थापयता क्षिप्रं कार्यमभ्युन्नतन्तुतत्'

उस धागे को अर्म के नीचे से कृष्ण भाग की ओर खींचता जावे जिससे सारा अर्म नेत्र से पृथक् होता जावेगा, पर अग्रकोण, जो सुदृढ़ लगा हुआ है वह पृथक् नहीं होगा।

> "उल्लिखेत् मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेनं"

उस दृढ़ भाग, 'क' को तीक्ष्ण मण्डलाग्र शस्त्र अर्थात् तेज चाकू से काट दे। फिर उस कृष्ण भाग और शुक्ल भाग से अलग हुए हुए अर्म को अन्तापाङ्ग, अर्थात् नाक वाले कोये की ओर लेजाकर अन्दर की ओर चौथाई भाग अर्म का छोड़ कर शेष सारा काट दें।

> "विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णात शुल्काच्चमण्डलात्
> नीत्वा कनीनिकोपान्तं छिन्द्यान्नाति कनीनिकम्"

चौथाई भाग अर्म का न छोड़ने से और अन्तापाङ्ग तक काट देने से रक्त बहुत आता है और कई बार वहाँ नाड़ी व्रण (नासूर) बन जाता है जो कृच्छ्र साध्य होता है।

> 'कनीनक वधादस्र नाड़ी वाऽप्युपजायते'

और कम छेदन करने से अर्थात अर्म का बहुत सा भाग शेष रखकर काटने से पुन' वृद्धि (Recurrence) हो जाती है। तदनन्तर यह अर्म पुन.वृद्धि को प्राप्त न हो। इसके लिए उस स्थान को दग्ध एव प्रतिसारण (Canterise) कर देना चाहिए अर्थात् यवक्षार, त्रिकटु आदि प्रतिसारणीय औषधियों से उस अर्म रिक्त स्थान को जला देना चाहिए।

> "प्रतिसारणमक्ष्णोस्तु ततः कार्यमनन्तरत्"
> "यावनालस्य चूर्णेन त्रिकटोलवणस्यच"

प्रतिसारणान्तर उष्णोदक से सेक कर अर्थात् धोकर आँख पर पट्टी बांध दें।

"स्वेदयित्वा ततः पश्चाद्बध्नीयात्"

तीसरे दिन पट्टी खोलकर स्वेदन करके व्रण वत् चिकित्सा करें।

"त्र्यहान्मुक्त्वा स्वेद दत्वा शोधन माचरेत्"।

इसके अनन्तर इस ओपरेशन में यदि पीछे कोई शूल्यादि उपद्रव खड़े हो जावें तो उनका पृथक पृथक उपचार कैसे किया जावे, इसका सुश्रुत ने वर्णन किया है, पर इन सब बातों को लिखने से लेख बहुत लम्बा हो जावेगा। यद्यपि आजकल इस सुश्रुतोक्त शल्य क्रिया से कुछ भेद हो गया है, सूची धागे से पृथक करने के स्थान में Spatula या और यन्त्रों से अर्म को पृथक करते हैं पर सिद्धांत और क्रम उसी प्रकार है जैसाकि सुश्रुत ने (Step by step) सुन्दर रूपेण वर्णन किया है अस्तु अब मोतियाबिन्द के ओपरेशन की ओर आवें।

(मोतियाबिंद) श्लैष्मिक लिंगनाश
(Cataract)

नेत्र के अन्दर कृष्ण भाग के पीछे एक पारदर्शक उन्नतोदर ताल होता है जिसका कार्य प्रकाश रश्मियों को दृष्टि पटल पर केन्द्रित करके दृश्य वस्तु का प्रतिबिम्ब बनाना है ताकि वह वस्तु हमको दृष्टि गोचर हो सके। यह ताल जब किसी भी कारण से अपारदर्शक अर्थात् धुन्धला हो जाता है तो उसको मोतियाबिन्द, श्लैष्मिक लिंगनाश (Cataract) कहते हैं। जब तक वह पूर्ण रूपेण अपारदर्शक नहीं हो जाता उसे कच्चा मोतियाबिन्द (Incipient Cataract) कहते हैं कच्चा अर्थात् तरुण मोतियाबिन्द का ओपरेशन वर्जित है सुश्रुत ने भी कहा है।

"दोषः प्रत्येति कोपाच्च विद्धोऽति तरुणश्च च:"

मोतियाबिन्द के ओपरेशन का उद्देश्य अथवा सिद्धांत यह है कि उस अपारदर्शक हुए चक्षुताल को रास्ते से किसी प्रकार हटा देना चाहिए ताकि प्रकाश रश्मियों के लिए रास्ता साफ हो जावे और रश्मियें नेत्र में प्रवेश कर सकें और रोगी को दिखाई देने लग जावे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सुश्रुत ने 'शलाकाग्र' से उस मोतियाबिन्द अर्थात् ताल को नेत्र के अन्दर धकेल देने का आयोजन किया है जिससे दृष्टि का मार्ग साफ हो जाता है। इसको अंगरेजी में (Couching of the lens) कहते हैं। यही ओपरेशन अनादि काल से संसार के सब देशों में मोतिया के लिए सन् १७४५ ई० तक प्रयुक्त होता आया है, १७४५ ई० में फ्रांस के एक डा० डेवियल के मस्तिष्क में यह विचार आया कि इस मोतियाबिन्द को नेत्र के अन्दर न फेंक कर नेत्र में ही चीरा देकर उसे निकाल देना चाहिये। इसको कहते हैं (Extraction of Cataract)। तब से यह ओपरेशन विविध संशोधनों से सुसंस्कृत होता हुआ आज तक प्रयुक्त होता है, पर सिद्धांत दोनों शल्य कर्मों का एक ही है कि किसी भी प्रकार उस मोतियाबिन्द को जो प्रकाश के रास्ते में पत्थर रूप से अटका हुआ है हटा दिया जावे। इस ओपरेशन को सुश्रुत ने सुन्दर और पूर्ण रूपेण वर्णन किया है कि जिससे स्पष्ट हो जाता है कि ऊर्ध्वजत्रुगत शल्य क्रिया भी प्राचीन काल में किस प्रकार उन्नत थी और हमारे देश में पहले भी नेत्र विशेषज्ञ (Eye specialist) होते थे जिनको सुश्रुत ने "नयन-चिन्तकः" और "दृष्टिविशारद" की उपाधि दी है।

आवृता पटलेमाद्यणो वाह्येन विवराकृतिम।
शीत सात्म्या नृणा दृष्टिं माहु *'नयनचिन्तकाः'* ॥
कृष्णात सप्तम निच्छन्ति दृष्टिं *'दृष्टि विशारदा.'*

मोतियाबिंदु के ओपरेशन का समय (Season) प्रायः ऐसा है जब न तो अधिक शीत और न अधिक गर्मी होती है जैसे फाल्गुण चैत्र और उधर असूज कार्तिक, प्रायः इस मौसम में रोगी को आंख बनवाने में सुख मिलता है और इन मासो मे ही रोगी आखें बनवाने के लिए दौड़ दौड़ कर आते हैं।

सुश्रुत ने भी—

"काले नात्युष्ण शीतले"

ऐसा निर्देश किया है।

"श्लेष्मिके लिंगनाशे तु कर्म वक्ष्यामि सिद्धये"

अर्थात् अब मोतियाबिन्द के कर्म का वर्णन किया जाता है। इस ओपरेशन को करने से पूर्व देख लेना चाहिए कि मोतियाबिन्द अर्धचन्द्राकार होता है उसमें रेखायें (Spokes) होती हैं सुश्रुत ने भी कहा है:—

'न चेदर्धेन्दु' 'राजिमान वा बहु प्रभः दृष्टिस्थो लक्ष्येत दोषः।

ऐसे मोतियाबिन्द का अभी कर्म नहीं करना है, पके हुए मोतियाबिन्द वाले रोगी की आंख को स्वेदन करके अर्थात् उष्णोदक से साफ करके बिठादें—

"स्निग्ध स्विन्नस्य" स्वा नासा पश्यतः समम्"

और उसको कहे कि अपनी नासा की ओर दृष्टि फेरदे। जौ के समान टेढ़ी शलाका को दोनों ओर के शुल्क भाग को बचाकर कृष्ण भाग में प्रवेश करे अर्थात् कृष्ण भाग के दोनों ओर जो शुल्क भाग है उसमें शलाका को नहीं घुसेड़ना चाहिए वरना रक्तागमन होगा और शलाका मोतिया तक नहीं पहुंच सकेगी।

"शुल्कभागौ द्वौ कृष्णानमुत्वा"

न बहुत नीचे न ऊपर अर्थात् शुक्ल कृष्ण की सन्धि स्थान पर ही (Limbus) पर शलाका को अन्दर प्रवेश करके—

"नाधोनोर्ध्वं च पार्श्वाभ्या छिद्रे दैव कृतेततः"

Anterior chamber में डाल कर उस मोतियाबिन्द को सलाई से नीचे Vetreous chamber में धकेल दे। शलाकाग्र से फिर तारा अर्थात् दृष्टि मण्डल में उस मोतियाबिन्द को लेखन करे।

"शलाकाग्रेन तुततो निर्लिखेद्र दृष्टिमण्डलम्"

रोगी को आपरेशन से पहिले आश्वासन दे और उत्साह वर्धन करे कि "तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा और तुम्हें तुरन्त दिखाई देने लग जावेगा।" ऐसा उत्साह वर्धक आश्वासन आवश्यक है नहीं तो रोगी ओपरेशन के समय डर कर हिल जावेगा और शलाका और कई मार्मिक अंगों में चुभ जावेगी।

"शलाका प्रयत्नेन विश्वस्तं।"

दाईं आंख पर ओपरेशन वाम हाथ से और वाम का दांए हाथ से करे।

"दक्षिणेन भिषक् सव्यं विध्येत सव्येन चेतरत।"

शलाका अगर ठीक Anterior chamber में प्रविष्ट हुई है तो रोगी को पीड़ा भी नहीं होगी और एक बूंद साफ जल (Aqueous) निकलेगा।

"वारित्रिन्द्रागमः सम्यग भवेच्छब्दस्या व्याधे।"

उपतारा आदि (Iris) किसी और स्थान पर चुभने से पीड़ा भी होगी और रक्त निकलेगा। ओपरेशन होने पर शुद्धताई (Asepsis) के लिये पुनः नेत्र को स्वेदन करे अर्थात् उष्णोदक से धोवे। "स्थिरेदोषे चलेवापि स्वेदेदक्षि" और तदनन्तर नेत्र में स्त्री दुग्ध डाल दे जो (Atropine) एट्रोपीन का काम करता है अर्थात् पुतली को थोड़ा सा फैला देता है। "योसित्स्तन्येन को विदः" ओपरेशन ठीक हो जाने पर अर्थात् अपारदर्शक चक्षुताल (मोतियाबिन्द) के रास्ते से हट जाने पर तुरन्त दिखाई देने लग जावेगा, जैसे बादल हट जाने पर सूर्य पुनः चमकने लग जाता है।

निरभ्र इवघर्मांशुर्यदा दृष्टि प्रकाशते।
तथा ग्रस्मैलिखिता सम्यग ज्ञेयायाचापि निर्व्यथा॥

कई बार धकेलने पर मोतिया पूरा च्युत नहीं होता है (Partial dislocation of lens), सलाई हटाते ही पुनः स्वस्थान पर आ जाता है तब कहा है कि—

"दोषे प्रत्यागतेऽपिवाव्याधो भूयोविधीयते।"

पुनः वेधन करके पुनः ओपरेशन करे। ठीक ओपरेशन हो जाने पर अर्थात् चक्षुताल (Cataractous lens) के रास्ते से हट जाने पर उपरोक्त क्रिया स्वेदन "वायोषित्स्तन्य" करके "वस्त्र पट्टेन वेष्टयेत" पट्टी बांध दे और रोगी को ऐसे स्थान पर जहां धूल, शोर आदि न हो सीधा चित्त लिटा दें।

"ततोगृहेनिरावाधे शयीतोत्तान एवच।"

रोगी खांसी, छींक, थूकना, उठना, बैठना आदि कोई कर्म न करके आराम से लेटा रहे।

"उद्गार कासदन्तथुष्ठीवनोत्कम्पानिच तत्कालं नाचरेत्"

पश्चात चिकित्सा

(After care and after treatment)

हर तीसरे दिन नेत्रों की पट्टी खोल कर नेत्रों को पूर्ववत उष्ण जल से स्वेदन करे अर्थात् धोवे।

"त्र्यहात् त्र्यहाच्च धावेत स्वेदयेदक्षि पूर्ववत'

दस दिन पीछे लघु अन्नाहार करे। इतने दिन दुग्ध सेवन 'व, पूर्ण विश्राम करे।

दशाहमेवम् सयंम्य हितं दृष्टि प्रसादनम् ।
पश्चात कर्मच सेवेत लघ्वन्न चापि मात्रया ॥

उपद्रव चिकित्सा

(After complications)

यदि वेधन कर्म में (Iris) में शलाका चुभ जाती है तो आंख अर्थात् (Anterior chamber) रक्त से भर जाती है। तब रक्त जज्ब करने वाली औषधियों से दैनिक स्वेदन करे।

"पूर्येतशोणिते नाक्षितन्त्र"

"क्षीरतन्य यष्ट्याह्वपक्व सेके हितं घृतम् "

कृष्ण भाग के नीचे श्वेत भाग (Canjunctiva या Sclera) में शलाका चुभने से शोथ व रक्तता आ जाती है और पीड़ा होती है तब घृत सेचन द्वारा चिकित्सा करने का आदेश किया है। इसी प्रकार कई उपद्रवों और उनकी सम्यग चिकित्सा का वर्णन करते हुए आगे कहा है कि यदि कच्चा मोतिया बिन्द का ओपरेशन किया गया तो नेत्र में कई प्रकार के उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं इस लिये कच्चे मोतियाबिन्द का ओपरेशन नहीं करना चाहिए।

दोषस्त्वधोऽप कृष्टोऽपि तरुणः पुनरुर्ध्वगः।
कुर्याच्छुक्लारुणं नेत्रे तीव्ररुग्जानष्टदर्शनम् ॥

पूर्ण पका हुआ मोतियाबिन्द शलाका लगाते ही तुरन्त विश्लिष्ट हो जाता है और दृष्टि तुरन्त आ जाती है।

"दोषस्तुस'जात चलो घनः सम्पूर्ण मण्डलः
प्राप्यनश्येच्छ्शलाकाग्रं"

इस प्रकार उपद्रवों और उनकी चिकित्सा का समुचित वर्णन करने के बाद सुश्रुत ने दृष्टि वर्धक योग दिये हैं जो रोगी को पीछे प्रयोग करने उचित हैं। इन सब बातों का वर्णन लेख विस्तार भय से न करके यह दर्शाना अभिप्रेत है कि सुश्रुत में नेत्र शल्य चिकित्सा का कैसा सुन्दर और क्रमबद्ध रूपेण वर्णन है। इसको नेत्र विज्ञान से परिचित वैद्य ही अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। पर यह तो स्पष्ट हो गया है कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व भी वैद्यों द्वारा (Surgery of the eye) नेत्र शल्य चिकित्सा का सम्यक प्रयोग होता था और आयुर्वेद इस नेत्र विज्ञान (Science of Eyes) से रहित नहीं है। ऐसे ऐसे बहुत से शल्य कर्मों का सुश्रुत में विस्तृत वर्णन है यहां केवल नमूना दिखाने के लिए तीन नेत्र शल्य कर्मों का संक्षिप्त रूपेण वर्णन किया गया हैं। स्वराज्य हो जाने पर अब तो वैद्य समाज को अपने इस ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों की जानकारी के विकास और विशेषकर नेत्र रोगों के ज्ञान विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।

सुश्रुत में नेत्र रचना (Anatomy and Physiology of the Eye), नेत्र रोग Diseases of the Eye), उनकी औषधि चिकित्सा एवं शल्य चिकित्सा का समुचित वर्णन हैं जो पाश्चात्य मतानुसार प्रचलित विज्ञान से बहुत कुछ मिलता है। आवश्यकता उसको समझने, उस पर विचार करने और उस विज्ञान का पुनं विकास करने की है। वैद्य भी अवश्य नेत्र विशेषज्ञ हो सकते हैं और आयुर्वेद पर किए गए इस आरोप और धब्बे को लोगों की दृष्टि से हटा सकते हैं "कि आयुर्वेद में ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों का कोई वैज्ञानिक वर्णन नहीं हैं एवं अब समय आगया है जब वैद्यों को इस ओर अग्रसर होकर सुश्रुतीय ज्ञान, जो आदि काल से जनता के हित के लिए कार्य कर रहा था अब उसकी नये और अभूतपूर्व महान माने जाने वाले शल्य शालाक्य से उसकी तुलना की जावे।

सुश्रुत के तीन शल्यकर्म

ले०—श्री कविराज महेन्द्रकुमार जी शास्त्री बी० ए० आयुर्वेदाचार्य, बम्बई

प्रिय कविराज श्री महेन्द्रकुमार शास्त्री B. A. वैद्य वाचस्पति, आयुर्वेदाचार्य, स्थानापन्न, प्रसीपल पोद्दार आयुर्वेदिक मैडीकल कालेज बम्बई, प्रियतम शिष्यों में से हैं।

आपकी कुशाग्रबुद्धि आरभ से ही गुरुवर्ग को प्रभावित करती रही है। तनिक भी आयुर्वेदीय पत्रों का अवलोकन करने वाले आपकी प्रतिभा से पूर्ण परिचित हैं। प्रायः समाचार पत्रों में आपके सारगर्भित लेख निकलते ही रहते हैं, एतदतिरिक्त आप **आयुर्वेद का इतिहास द्रव्य गुण परिचय** आदि अनेक ग्रन्थों के लेखक और टीकाकार भी हैं। प्रस्तुत लेख में आपने प्राच्य और प्रतीच्य नेत्र चिकित्सा कर्म पर तुलनात्मक सुन्दर विवेचना पूर्ण लेख लिखते हुए बीसवीं सदी के सर्वमान्य विज्ञान से आयुर्वेदोक्त शल्य कर्म की सोदाहरण उत्कृष्टता दिखाकर अपनी योग्यत और प्रतिभा के अनुसार ही कार्य किया है। आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित एवं सफल अध्यापक हैं। एतदर्थ आप धन्यवादार्ह हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

अद्यतनीय आयुर्वेद वाङ्मय में उपलब्ध शालाक्य तन्त्र का अधिकांश भाग सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र के कुछ अध्यायों में ही सुरक्षित है। स्वतन्त्र शालाक्य सम्बन्धि वाङ्मय की सत्ता अभी तक ज्ञात नहीं हो सकी। शायद भविष्य में कौमारभृत्य की काश्यप संहिता के समान किसी विदेहाधि की शालाक्य सम्बन्धि संहिता प्राप्त हो जाए।

किंतु इस समय समुपलब्ध संक्षिप्त साहित्य से शालाक्य सम्बन्धि विशाल और व्यवस्थित विज्ञान की झांकी मिलती है। साथ ही आश्चर्य होता है कि उस प्राचीन काल में किस प्रकार उन्होंने नेत्र रचना और जीवित नेत्र की अतः झांकी का ज्ञान प्राप्त किया होगा। और वह भी ऐसा ज्ञान जो आज भी सूर्य की भांति सत्य है तथा जिसमें आज विशाल विज्ञान भी कुछ परिवर्तन नहीं कर सका। यही प्रमाणित करने के लिए इस लेख में सुश्रुत के तीन शल्य कर्मों की तुलना आधुनिक तम शल्य कर्मों से की गई है। जिसमें पाठकों को सत्य का साक्षात् स्वयमेव मिल जायगा। लेख का ढङ्ग इस प्रकार है कि प्रथम मूलभूत सुश्रुत तथा आधुनिक पाठ को बराबर (संस्कृत और आंगल भाषा में) स्थान दिया गया है उसके नीचे हिन्दी में अनुवाद दिया गया

है। ताकि पाठक पढ़ते समय तुलना को भलीभांति समझ सकें।

यहाँ यह लिखना अप्रासगिक न होगा कि सुश्रुतोक्त नेत्र रोगों का वर्णन इतना वैज्ञानिक ढङ्ग पर है कि आधुनिक काल के बढ़े चढ़े नेत्र रोग विज्ञान से किसी कदर कम नहीं है। हां आधुनिक परिस्थितियों के अनुसार उसमें यत्र तत्र साधारण सा परिवर्तन कर नए रूप से सम्पादन की आवश्यकता है।

शल्य कर्म की तैयारी—

प्राचीन तन्त्रों में यद्यपि अनेकों बातों का विस्तृत वर्णन नहीं हैं तथापि संकेत प्राय. सब बातों का मिलता है। नेत्र रोगों में शल्य कर्म के पूर्व उन्हें प्रक्षालनादि करना पड़ता है। यह प्रक्षालन क्रिया आजकल सेलाइन लोशन (नमक का विलयन) से किया जाता है। सुश्रुत ने भी अर्म रोग के शल्यकर्म में 'संरोधयेत्तु तूर्णं भिषक् चूर्णैस्तु लावणै.' द्वारा यहीं संकेत किया गया है।

प्राचीन काल शल्य कर्मों में वेदनाहर द्रव्य कौन २ से वर्ते जाते थे। इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता तथापि कुछ वेदनाहर द्रव्य ज्ञात थे ऐसा कुछ उद्धरणों से सिद्ध होता है। आजकल अनेक स्थानीय तथा सर्व शरीर संज्ञाहर (वेदनाहर) द्रव्यों के विषय में पर्याप्त ज्ञान बढ़ गया है। अनेकों शल्यकर्म स्थानीय संज्ञाहरों द्वारा बिना वेदना के कर लिए जाते हैं। नेत्र के बहुत सारे शल्य कर्म इसी प्रकार के संज्ञाहरों की सहायता से किए जाते हैं। हां, बाल, वृद्ध या भीरु प्रकृति के व्यक्तियों में कुछ विशिष्ट शल्य कर्मों में सार्व देहिक संज्ञाहरों का प्रयोग करना पड़ता है। नेत्र रोगों में प्रायः नोवोकेन का १–२ प्रतिशत तक का विलयन इस कार्य के लिए व्यवहृत होता है। यदि इसमें एड्रेनेलीन १ प्रतिशत विलयन की कुछ बूंदें मिला ली जाएँ तो जहां संज्ञाहरत्व गुण बढ़ जाता है वहा शल्य कर्म करते समय रक्त स्राव भी कम हो जाता है। नेत्र रोगों में स्थानीय संज्ञाहरण के लिए औषधि का कहां तथा किस प्रकार प्रविष्ट करना चाहिए।

यह चित्र संख्या एक में दिखाया गया है। चित्र के साथ उसकी व्याख्या सब स्पष्ट हो जाती है। अब आगे शल्य कर्मों का वर्णन किया जाता है। रोगों का नामोल्लेख ही किया जाएगा। विस्तृत वर्णन नहीं।

अर्म छेदन (Pterygium)

(चित्र सं० २)

सौश्रुतीय वर्णन

स्निग्धं भुक्तवतोह्यन्नमुपविष्टस्य यत्नतः।
संरोधयेत्तु नयनं भिषक् चूर्णैस्तु लावणैः॥
ततः सरोषितं तूर्णं सुस्विन्नंपरिधावितम्।
अर्म यत्र वलिजातं तत्रैतल्लगवेद्भिषक्॥
अपांगं प्रेक्षमाणस्य बडिशेन समाहितः।
मुचुण्ड्यादाय मे धावी सूचीसूत्रेण वा पुनः॥
न चोत्थायता क्षिप्रं कार्यं मुन्नतं तु तत्।
शस्त्राबाध भयाच्चास्यं वर्त्मनी ग्राहयेद्भिषक्॥
ततः प्रशिथिली भूतं त्रिभिरेव विलम्बितम्।
उल्लिखन् मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन परिशोधितम्॥

आधुनिक वर्णन

PTERYGIUM

Treatment:—Pterygium is best left alone unless it is progressing rapidly towards the pupillary area, or is very disfiguring. The latter reason is not of much weight, since it cannot be removed without leaving a scar.

The apex of the pterygium may be destroyed by diathermy. Removal is effected by seizing the ne-

विमुक्तं सर्वतश्चापि कृष्णाच्छुक्लाच्चमण्डलात् ।
नीत्वा कनीनिकोपान्तं छिन्द्यात् नाति कनीनिकम् ॥
चतुर्भाग स्थिते मासे नाक्षिव्यापत्तिमृच्छति ।
कनीनिका नासासमीपस्थाक्षि सन्धिः (डल्हण)
कनीनिका बधाद्रस नाड़ी वाप्युपजायते ॥
हीनच्छेरात् पुनर्वृद्धि शीघ्रमेवाधिगच्छति ।

सु० उत्तरतन्त्रम्

भावार्थः—

स्निग्ध अन्न (हलका दुग्धादि) सेवन कर सुख-पूर्वक बैठे हुए (आजकल मेज पर लेटे हुए) रोगी के नयनों में लावणचूर्ण से उत्तेजित कर एव तत्काल ही अच्छी प्रकार स्वेद देकर धोवे। पुन. पलकों (वर्त्म) पर शस्त्र का आघात न हो एतदर्थ उन्हें सम्यकूतया पृथक् करे (चि० सं० ३ के यन्त्र द्वारा) तब वडिश द्वारा अर्म को स्थिर करके मुचुण्डी (चि० स० ४) द्वारा उसके प्रान्त भाग को पकड़ कर अथवा सुई पिराये धागे को नेत्रीयकला में डालकर उससे अर्म को धीरे २ ऊपर उठाएं। तब तीक्ष्ण मण्डलाग्र (जिसका अग्रभाग गोल हो) शस्त्र (कैंची चि० सं० ५) द्वारा ऊपर उठे हुए भाग को काटे। इस प्रकार नेत्र की कला (Conjunctiva) कटेगी। पुन. कला के नीचे अवस्थित अर्म से कला को पृथक करे। अब कला से प्रथक हुये अर्म को कृष्ण भाग तथा श्वेत भाग से काटकर प्रथक् करदें और कनीनिका के पास तक काटकर इसका छेदन करे। किंतु श्वेत भाग के चतुर्थांश बराबर कनीनिका से दूर ही काटे अन्यथा कनीनिका में शस्त्राघात से अत्यन्त रक्त स्राव और नाड़ी रोग हो जाता है। हीनछेदन से अर्म पुन. बढ़ जाता है।

ck, near the corneal margin, with fixation forceps, raising it, and shabing or dissecting the apex from the cornea. Care must be taken not to go too deep. The pterygium is freed from the sec erotic for about half the distance towards the canthus. Two converging incisions with scissors separate the apex and greater part of the body. The conjuctiva is then freed from the sclerotic above and below so as to admit of the two edges being sutured torgether.

Pterygium sometimes recurs after removal. This may be only apparent, owing to vascularisation of the denuded area. If it actually re-forms and extends towards the pupillary, area, the apex should be turned down under the bulbar conjunctiva and sutured in this position (Mcreynolds).

भावार्थ.—

टेरिजियम (अर्म) को उस समय तक नहीं छेदना चाहिए जब कि यह नेत्र तारा की ओर शीघ्र गति से न बढ़ रहा हो अथवा इससे नेत्र सौन्दर्य में अति व्याघात न पड़ रहा हो। सौन्दर्य व्याघात को अधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए क्यों कि अर्म छेदन करने पर भी व्रणचिन्ह तो रह ही जाता है।

अर्म छेदनार्थ रोगी को शल्य शय्या (Operation Table) पर लिटाकर सेलाईन लोशन से नेत्र का प्रक्षालन कर अर्म के सिरे को नेत्रतारा की ओर के किनारे से मुचुण्डी (फिक्सेशन फार्सेप्स) से पकड़कर धीरे से उठाए। इस ऊपर उठे सिरे को, कृष्णमण्डल से श्वेतमण्डल की ओर को काटते जायें। किंतु छेदन में

इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गहरा छेदन न होने पावे अन्यथा नेत्र का तरल बाहर निकल आएगा कृष्णमण्डल श्वेत मण्डल की मध्य तक छेदन करते जाएँ किंतु कनीनिका के समीप तक नहीं जाना चाहिए। श्वेत मण्डल की चौड़ाई के आधे तक ही छेदन करें। अर्म छेदन के पश्चात श्वेत मण्डल पर रहने वाली कला को अर्म के ऊपर नीचे पृथक् करलें और अर्म को काटकर फेंकदें अथवा कला के अन्दर को मोडकर कला को सी दें।

कभी कभी छेदन के पश्चात् भी अर्म पुनः उत्पन्न हो जाता है। ऐसी दशा अर्म को कृष्ण श्वेत मण्डलों से छुड़ाकर श्वेत मण्डलस्थ कला के अन्दर की ओर कई तहें लपेट कर ऊपर से कला को सी दें।

द्वितीय शल्य कर्म

पक्ष्मकोप (Entropion)

सौश्रुतीय

याप्यस्तु यो वर्त्म भवोविकारः

सःपक्ष्मकोपोऽभिहितः पुरस्तात् ।

तत्रोपविष्टस्य * नरस्य चर्म

वर्त्मोपरिष्टादनु तिर्यगेव ॥

भ्रुवोरधस्तात् परिमुच्यभागौ पक्ष्माश्रितश्चैक

मतोऽवकृन्तेत् ।

कनीनिकायागं गतं सम समन्तात्

यवाकृति स्निग्धतनोर्नरस्य ॥

उत्कृष्य शस्त्रेण यवप्रमाणं

बालेनसीव्येत्भिषगप्रमत्तः ।

दत्वा च सर्पिर्मधुनावशेष

कुर्यात् विधान विहितंव्रणेयत् ॥

ललाटदेशेच निवद्धपट्ट प्राक्स्यूतमत्राप्यरंचवद्‌ध्वा ।

आधुनिक

TREATMENT OF CICATRICIAL ENTROPION

In the Jaesche-Arlt operation the zone of hair follicles is transplanted to a slightly higher position. The lid is splint from the outer canthus to just outside the punctum along the grey line between the lashes and the orifices of the meibomain glands. During this procedure the globe is protected by the spatula insorted between it and the lid, or held by a lid clamp. The incision extends between the tarsus

* उपविष्ट शब्द का जहा भी शल्य कर्म के सम्बन्ध में आए वहा उसका अर्थ लिटाकर करना चाहिए। मेज पर रोगी को लिटाकर धन्वन्तरि उसके सिर के पीछे खड़ा होता है।

स्थैर्ये गतेचाप्यथ शस्त्र मार्गे
वालान् विमुञ्चेत् कुशलोऽभिसमीक्ष्य ॥

भावार्थ—

पलकों (वर्त्म) में (विशेषतः ऊपर के) होने वाली याप्य व्याधि पक्ष्मकोप का वर्णन पहले किया जा चुका है। स्निग्ध हलका अन्न खाए हुए रोगी को आराम से शल्य कर्म शय्या पर लिटा कर और नेत्र गोलक को उसके गोहा (चित्र सं० ७) से सुरक्षित करके पलक के ऊपर के भाग में (नेत्र गोलक की ओर के नहीं) पक्ष्म (पलकों) के बाल के ऊपर तथा भोओं के नीचे के भाग को (जहाँ नेत्र बालों की जोड़ रहती हैं उस भाग को छोड़ते हुए) अपांग (बाहर का कोया) से कनीनिका (नासा की ओर की नेत्र सन्धि) तक त्वचा और उसके नीचे के कुछ भाग को यवाकृति रूप में काटे। अर्थात् किनारों पर कम चौड़ा और बीच में अधिक चौड़ा जैसा चित्र संख्या (A) ६ में दिखाया गया है। पुनः सावधानी से बाल से या रेशम के धागे से सी दें। जैसा कि चित्र संख्या ६ के (B) भाग में दिखाया है। सीकर व्रण के ऊपर घी और मधु चुपड़ कर पहले से सोकर तैयार किया हुआ पट्ट ललाट प्रदेश पर बांध दें। जब शस्त्र का व्रण स्थिर हो जाए तो बाल को निकाल दें।

and the orbicularis for a depth of 3-4 m. m., so that the zone containing the hair follicles is thoroughly loosened. A crescentic piece of skin is then removed from the lid. The lower incision extends through the skin down to the tarsus at a distance of 3-4 m. m. from the edge of the lid and parallel with it for its whole length. The middle part of the upper incision is 6-8 m. m. from the edge of the lid. The crescentic piece of skin thus marked out is removed, without taking any orbicularis. The two skin incisions are then sutured. In this manner the zone of lashes is transplanted to a higher level. The gaping wound in the intermarginal strip may be filled in with a graft of mucus membrane; this tends to prevent the follicles from being drawn down again when the wound cicatrises. Care should be taken not to preduce ectropion by removing too much skin.

भावार्थ—

इस आपरेशन में पलकों के किनारों को कुछ ऊपर की ओर उठाया जाता है। पलक को बाह्य नेत्र कोया सन्धि से नासा की ओर की नेत्र सन्धि तक पक्ष्म और स्नेह ग्रन्थियों के मुखों के मध्य में चीर दिया जाता है पलक में चीरा लगाते समय नेत्र गोलक को स्पेचुला द्वारा सुरक्षित कर दिया जाता है, यह नेत्र और पलक के मध्य में प्रविष्ट किया जाता है। यह चीरा नेत्र पलक की मास पेशी (आर्बिकुलारिस) और टार्सस के मध्य में दिया जाता है। एतदर्थ वेधस पत्र (चित्र स० ८) से काम लिया जाता है। चित्र सख्या ६ में यह चीरा स्पष्ट है।

इस प्रकार अर्द्ध चन्द्राकार के आकार का चीरा हो जाता है, इसकी चौड़ाई किनारों पर ३-४ सूत (मिलीमीटर) और मध्य में ६-८ सूत (मिलीमीटर) होती है। इस प्रकार वेधस पत्र द्वारा चीरी हुई त्वचा को मुचुण्डी से पकड़ कर (चित्र स० ४) मण्डलाग्र (चत्र सख्या ५) से काट दिया जाता है। पुनः त्वचा की नीचे की कला को व्रण में लाकर ऊपर से व्रण के दोनो सिरों को सीं देते हैं ताकि नेत्र पक्ष्म पुनः नीचे की ओर न झुक जाएं। चीरा देने में इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं पक्ष्म ऊपर की ओर अधिक न उठ जाए। सींने के पश्चात् वेसलीन में बने सक्रमण नाशक मलहर लगा कर पट्टी बांध दी जाती है।

तीसरा शल्य कर्म

दृष्टि निर्लेखनम् (Needling or Discission)

सौश्रुतीय

श्लैष्मिके लिंगनाशे तुकर्म वक्ष्यामिसिद्धये।
....

स्निग्ध स्विन्नस्यतस्याथ कालेनात्युष्ण शीतले।
यन्त्रितस्योपविष्टस्य स्वा नासा पश्यतः समम्॥
मतिमान् शुक्लभागौ द्वौ कृष्णान्मुक्त्वाह्यपागतः।
उन्मील्यनयने सम्यक् सिराजाल विवर्जिते॥
नाधो नोर्ध्वे न पार्श्वाभ्या छिद्रे दैवकृते ततः।
शलाकया प्रयत्नेन विश्वस्तं यववक्त्रया॥
मध्यप्रदेशिन्यंगुष्ठस्थिर हस्त गृहीतया।
दक्षिणेन भिषक् सव्य विध्येन वामेनचेतरत्॥
वारिबिन्द्वागमः सर्मं भवेच्छब्दस्तथाव्यधे।
... ...

शलाकाग्रेण तुततोनिर्लिखेद्दृष्टि मण्डलम्॥
....

निरभ्रइव धर्मांशु यदा दृष्टि प्रकाशते।
तदाऽसौ लिखिता सम्यग् ज्ञेया याचापि निर्व्यथा॥
देवकृते छिद्रे इति छिद्रमिवछिद्र न परमार्थे तश्छिद्रमस्ति, (डल्हण)

आधुनिक

OPERATION UPON THELENS DISCISSION OR NEEDLING

Needling of the soft lens in young patients usually requirs a general anaesthetic, though it is quite painless under cocaine. The pupil must be fully dilated with atropine.

Instruments required:— speculum fixation forcepes, cataract needle, I, prefer a needle with a fairly long cutting edge. It is best to perform the Operation in a darkened room with obligue illumination. The surgeon stands above the patient, The conjusctival sac ha-

चित्र नं० ६
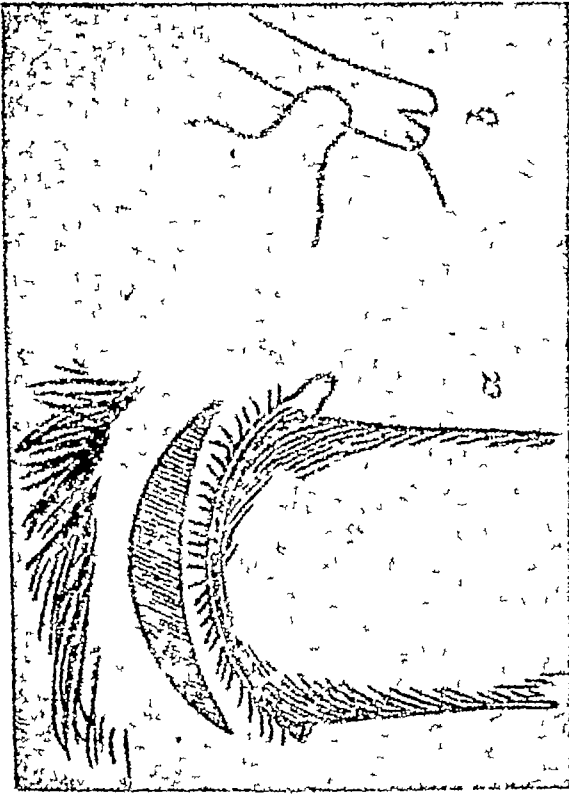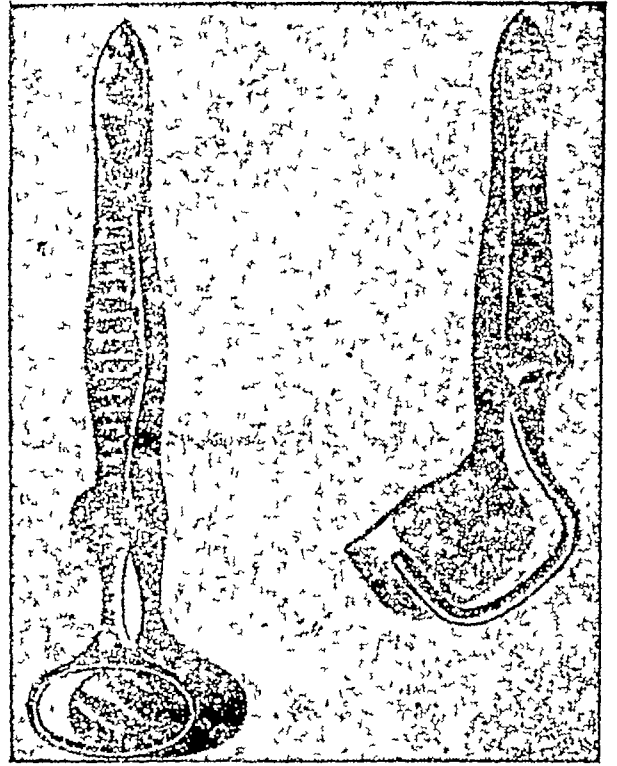
चित्र नं० ७
(Clamp forceps)
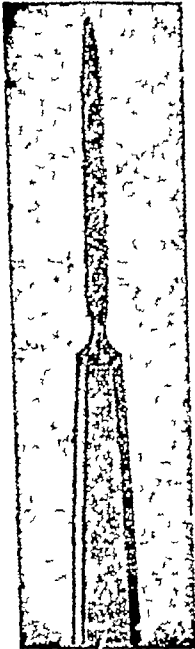
चित्र नं० ८
(यवमुखी शलाका)
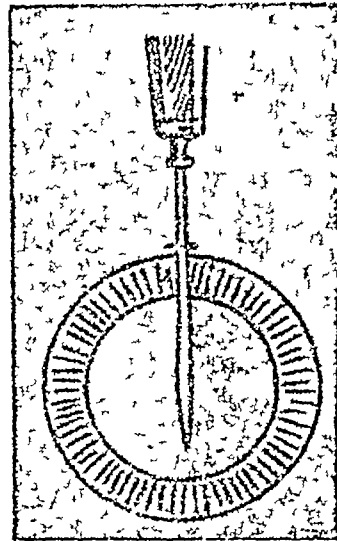
चित्र नं० ९
दृष्टिमणि के आवरण का छेदन (दृष्टि निर्लेखनम्)

परमार्थतश्छिद्रमस्ति (डल्हण)।
दशातमेवं संयम्य हितं दृष्टि प्रसादनम् ॥
पश्चात्कर्मंच सेवेते लघ्वंन्न चापिमात्रया।

भावार्थ—

श्लेष्मिक लिंग नाश में निम्न शल्य कर्म करना चाहिए। स्निग्ध स्वेदन रोगी को सम ऋतु में जब न अधिक उष्णता हो और न ही अधिक शीतलता यह कर्म करना चाहिए।

रोगी को यन्त्रित कर (आज कल संज्ञाहरों के उपयोग के कारण यन्त्रित करने की आवश्यकता नहीं) शल्य कर्म शय्या पर लिटाएं। और नेत्र को वर्त्म ग्राहक (चित्र संख्या ३) द्वारा स्थिर करें। अब अपांग (बाह्य नेत्र सन्धि) से कृष्ण मण्डल की ओर के शुक्ल मण्डल के दो भागों को छोड़ कर शिराजाल रहित ठीक श्वेत कृष्ण मण्डल की सन्धि पर देवकृत छिद्र में विश्वास के साथ प्रयत्न पूर्वक यवमुखी शलाका को प्रविष्ट करें। यह ध्यान रहे कि देवकृत छिद्र में ही (कृष्ण शुक्ल मंडल सन्धिः) शलाका का प्रविष्ट करे। ऊपर या नीचे या पार्श्व में नहीं। जैसा कि चित्र संख्या ९ में दिखाया गया है। यदि दाहिने नेत्र में शल्यकर्म करना हो तो श्लाका को वाम हाथ प्रदेशिनी और अंगूठे के मध्य में और यदि बांये नेत्र में शल्य कर्म करना हो तो दाहिने हाथ से शलाका को ग्रहण करना चाहिए।

सम्यक् विद्ध होने पर एक विशेष प्रकार के शब्द के साथ पानी का बिन्दु निकलता है। जब दृष्टि में धुंधलापन रहे और वह स्पष्ट देखने लगे तब समझना चाहिए कि वेधन कर्म अच्छी तरह हो गया है। वेधन के बाद दस दिन तक रोगी को पट्टी बांधनी चाहिए। पुनः पथ्य के साथ नेत्र प्रसारनों का प्रयोग करें।

ving been douched, and the speculum inserted, the eye is fixed down and in (right eye) with fixation forceps held in the left hand. The needle is introduced just outside the limbus i. e., through the conjunctiva and sclero-cornea, in a plane parallel to that of the iris, at a point just above the horizontal meridian of the cornea. It is carried through the anterior chamber until the point reaches the lower part of the pupil. The handle is then slightly raised, so that the point just perforates the lens capsule. The handle is then moved so that it and the point move through arcs of circles which have their centre at the spot where the shaft is engaged in the cornea-selera. Having thus made a curved, more or less vertical incision in the capsule, a second incision is made at right angles to it. This is done by very slightly withdrawing the needle so as to disengage it. It is then passed farther on towards the left side of the pupil. The handle is again slightly raised and at the same time rotated, so that the cutting edge is brought in contact with the capsule. As the needle is slowly withdrawn a straight incision is made in it in a horizontal direction when this is sufficiently large the handle is depressed. The handle is rotated so that the plane

of the blade faces upwards, and the needle is quickly no withdrawn from the eye. By withdrawing it quickly no aqueous should be lost. If much aqueous is lost, anterior synechia may result. Sterile atropine ointment is introduced into the couctival sax and both eyes are bandaged.

भावार्थः—

शलाका कर्म बच्चों में यदि करना हो तो सार्वदैहिक संज्ञाहरण के साथ करना चाहिए। यद्यपि स्थानीय संज्ञाहरों की सहायता से भी किया जासकता है। शलाका कर्म मोतिया बिन्दु (श्लैष्मिक लिंग नाश) में तो युवावस्था से पूर्व पाया जाता है किया जाता है।

आवश्यक यन्त्र—वर्त्म ग्राहक (Speculum) चित्र संख्या ३ मुचुण्डी (Fcxation Forceps) चित्र संख्या ९ यव मुखी शलाका (Cataract needle) चित्र संख्या ८।

इस शलाका कर्म को अंधेरे कमरे में एक दिशा से आरहे विद्युत प्रकाश (तिरछे प्रकाश) में करना उत्तम है। सर्जन रोगी के शिर की ओर खड़ा होता है। नेत्र को धोने के बाद तथा वर्त्म ग्राहक को लगाने के पश्चात् यदि दाहिनी आँख में कर्म करना हो तो बांये हाथ में मुचुण्डी को पकड़ कर नेत्र की कक्षा को ग्रहण कर नेत्र को स्थिर करे। बाईं आंख के शलाका कर्म में इससे विपरीत विधि की जाती है ततः चित्र संख्या ३ में दर्शाए प्रकार के अनुसार श्वेत कृष्ण मण्डल की सन्धि पर (देवेकृत छिद्र में) यव मुखी शलाका प्रविष्ट की जाती है। यह शलाका बिल्कुल सीधी लाइन में दूसरी ओर तक दृष्टि के तिहाई हिस्से तक पहुंचाई जाती है। अब इसका तीक्ष्ण भाग ऊपर की ओर करके खड़ी रेखा की दिशा में काँच को काटा जाता है। पुनः आड़ी रेखा की दिशा में इस प्रकार दो तीन बार काँच को काटा जाता है ताकि उसका ऊपरी कोष कट जाए। इस

प्रकार काटने के बाद शलाका को सावधानी से बाहर निकाल लिया जाता है। इस कर्म से पूर्व नेत्र तारा को विस्तृत कर लेना आवश्यक है। अन्यथा कृष्ण मण्डल का कुछ भाग कट जाने का भय रहता है।

ऊपर के तीन शल्य कर्मों की तुलना से पाठकों को पता लग ही गया होगा कि सुश्रुत के तथा आधुनिक शल्य कर्मों में कोई विशेष भेद नहीं है। यत्र तत्र जरा सा भेद है जो नगण्य जैसा है। साथ ही यह भी स्पष्ट ही है कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने अपने विज्ञान को कितना उन्नत किया था कि आज तक भी उनकी अनेकों बातों में आज का बढ़ा चढ़ा विज्ञान भी अधिक परिवर्तन नहीं कर सका। किन्तु तो भी इतना तो मानना ही पड़ता है कि कुछ दिशाओं में आधुनिक विज्ञान ने पर्याप्त उन्नति की है और हमें अपने पूर्वजों के नष्ट भाग को पुनः ग्रहण करने में उससे सहायता लेनी चाहिए।

हम पाठकों को सावधान कर देना चाहते हैं कि केवल पठन मात्र से इन कर्मों को नहीं किया जा सकता। इसके लिए (योग्यां) कर्माभ्यास की आवश्यकता है अन्यथा अपयश ही हाथ आता है।

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक

नासिका विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में नासिका रचना, तद्गत रोग एवं उनकी चिकित्सा का सविस्तार सुन्दर वर्णन हुआ है।

(३)

नासारोग ज्ञानार्थः—

नासिका की संक्षिप्त रचना

और

चिकित्सा

ले०—बालकराम शुक्ल आयुर्वेदशास्त्राचार्य एम० डो० एच०, (हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस)

श्री माननीय प० बालकराम जी शुक्ल माने हुए विद्वानों और लेखकों में से हैं। आपने कभी ऐसे लेख पाठकों की भेंट नहीं किये जो अपूर्ण अशुद्ध, सारहीन और तुलनात्मक दृष्टि कोण से अरुचि कर हों। आपने अपने प्रस्तुत लेख **नासा रोग विज्ञान** में गवेषणा पूर्ण तथ्यों का उद्धरण किया है। पूर्ण मनो योग से पढने वाले पाठक आपके लेख में अनेक नूतन और ज्ञान दायक तत्वों को पायेंगे। आपका लेख समस्त दृष्टि कोणों से सराहनीय है। इस सफल लेखन के लिए लेखक हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

नासिका के रोगों का ज्ञान भलीभांति होने के लिए नासिका की रचना का ज्ञान होना आवश्यक है। नासिका में अन्दर से दो विषमाकार की गुहायें हैं। जिनका पिछला द्वार ग्रसनिका के नासाभाग (Nasal Part of The Pharynx) में गुजरता है। नासिका का कुछ भाग (अगला भाग) तरुणास्थिनिर्मित, और कुछ भाग अस्थिनिर्मित होता है। इसके निर्माण में १४ अस्थियां सहायता करती हैं। नासा गुहायें आगे और पीछे की अपेक्षा मध्य में संकुचित हैं। दोनों तरफ की नासा-गुहायें एक पर्दे के द्वारा एक दूसरे से प्रथक् हैं। इस पर्दे को नासा मध्य प्राचीर कहते हैं। नासा गुहाओं की पार्श्वीय भित्ति बड़ी विषम है। उसमें तीन सुरङ्गाकार भाग होते हैं। इनमें सबसे निचली और बड़ी सुरङ्ग को अधः सुरङ्गा (Inferior meatus) कहते हैं। अश्रु-मार्ग का निचला द्वार इसी में खुलता है। इस सुरङ्ग के ऊपर अधः शुक्तिकास्थि, रहती है। पूर्व कपालास्थि, झर्झरास्थि जतुकास्थि, और ऊर्ध्वहन्वस्थियों के वायु कोटर नासा गुहा से छिद्रों द्वारा सम्बन्धित हैं। इसीलिए नासा गुहा के शोथ के इन कोटरों में पहुंच जाने का भय रहता है। इन्हीं सब विषमाकार रचनाओ के कारण नासा रोगों में पूयादि की ठोक सफाई न होने से वे रोग गम्भीर और चिरकालीन होते हैं। समस्त नासा गुहा बहुत पतली श्लेष्मल कला से आच्छादित रहती है। इस कला में असख्य सूक्ष्म रक्तनलिकायें फैली हुई हैं। श्वास द्वारा भीतर जाने वाली वायु जब नासा गुहा से होकर जाती है। तो इन रक्त नलिकाओं के कण्टक अपनी गर्मी द्वारा वायु को भी शरीर के तापक्रम के बराबर गरम बना देते हैं। और यदि वायुमण्डल की वायु में शरीर से अधिक गर्मी हो तो उसकी कुछ गर्मी अपने अन्दर लेकर भी वायु को सदा शरीर के तापक्रम के बराबर रखता है। इससे बाहरी गर्मी, या सर्दी वाली वायु

अपने साथ रुग्ण नासिका का उपसर्ग, ग्रसनिका, स्वर यन्त्र, श्वासनलिका रोग हो जाता है। नलिकायें रक्त के कम हो जाने से, तथा उसके मोटी हो जाने से उपर्युक्त कार्य ठीक नहीं हो पाता है। इस कारण फेफड़े भी गर्मी सर्दी के शिकार होकर रुग्ण हो जाते हैं। इससे श्वास प्रश्वास का कार्य विकृत हो जाने से इसका हानि कारक प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त श्वास की वायु अपने साथ रुग्ण नासिका का उपसर्ग, ग्रसनिका, स्वरयन्त्र, श्वास नलिका, तथा, फुफ्फुसतक पहुँचाकर भी इन अङ्गों को रुग्ण करवा देती हैं। इन सब बातों को देखते हुये नासा रोगों की चिकित्सा, चिकित्सक को बहुत बुद्धिमानी से करना चाहिए।

नासारोग विज्ञानम्

नासारोगो की चिकित्सा और नाम —(१) पीनस (Atrophic Rhinitis) (२) पूतिनस्य (Oyaena) (३) नासापाक (Ulceration of the nose) (४) पूयशोणित (५) क्षवथु Sheezing (६) भ्रंशथु (Chronic nasaldis charge or chronic Rhinorshoea) (७) दीप्ति Aente Rhinito) (८) प्रतिनाह (Nasal obstruction) (९) नासापरिस्राव (Acnte Rhinorshoea (१०) नासासोष, ११-१५ प्रतिश्याय (Coryza) के पांच भेद।

१६-२२ सात प्रकार का अर्बुद (Cancer), २३-२६ अर्श चार प्रकार के, २७-३० चार प्रकार का शोथ, ३१-३४ चार प्रकार का रक्त पित्त (Epistaxis) इस भांति नासिका के ३४ प्रकार के मुख्य रोग माने जाते हैं। इन रोगों में उपद्रव स्वरूप बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यथा—

फिरङ्गजन्यनासाशोथ (Syphilitic Rhinitis), नासिका क्षय रोग (Tuberculosis of the nose) कलाक्षयजन्यनासा शोथ (Atrophic Rhinitis), नासासम्बन्धीय अस्थि कोटरिक चिरकालीन शोथ (Chronic sinusitis), नासिका का दुष्टार्बुद (Cancer), नासार्श, (Polypus) और नासिका के क्षय रोग में (Lupus Vulgaris) अधिक होता है। नासागत रक्त पित्त (Epistaxis), चिरकालीन निर्गन्धनासा स्राव (Chronic Phinorrhoea), साधारण चिरकालीन नासा शोथ, वृद्धिजन्य चिरकालीन नासा शोथ, क्षय जन्य चिरकालीन नासा शोथ, लसिका ग्रन्थीय शोथ (Adenoids), तीव्र प्रतिश्याय (Snuffles), रोहिणी (डिफथीरिया), एक्यूसिनूमाइटिस, ग्रासज्वर (हेफीवर), आवेशिक स्राव, (Glanders) प्रभृति रोग देखे जाते हैं।

यान्त्रिकी नासारोग परीक्षा प्रणाली

प्रणाली—

नासारन्ध्र में जो व्याधिया उत्पन्न होती हैं। उनका निर्णय करने के लिए नासिका रन्ध्र के अन्दर परीक्षा करना अत्यन्त महत्व का विषय हो जाता है। इस लिए लैङ्गिकस्कोपिक दर्पण, अथवा तड़ित् प्रदीप से आलोक का प्रक्षेप करें। इसके बाद नासावीक्षण यंत्र (Nose Speculum) नासारन्ध्र के अन्दर प्रविष्ट करके परीक्षा करें। इसके लिये 'डूप्ले' और 'फोन्केल' महोदय कृत दो प्रकार के नासावीक्षण यंत्र हैं। इन दोनों में से किसी एक से नासा रोग की परीक्षा की जा सकती है। नासावीक्षण यन्त्र प्रवेश करने के पहले रोगी का मस्तक पीछे की तरफ को झुकाये रक्खें और नासारन्ध्र के पीछे की परीक्षा करना होवे तो तालू के पीछे अगुलि प्रविष्ट करें अथवा, गले के पीछे एक छोटा दर्पण रखें। तो ठीक जाना जा सकता है और मृतास्थि की परीक्षा करने के लिये नासा शलाका (नैजलप्रोव) सबसे अधिक उपयोगी होता है।

नासिका पर वाह्य आघात के कारण नासिका के बाह्य वा आभ्यतारिक अशों में जो सम्पूर्ण परिवर्तन हो जाता है। यथा अनेक पुरुषों में नासिका बैठ जाती है अथवा चौड़ी हो जाती है। यह अवस्थानुसार नासास्थि के भग्न, अथवा

आघात से भी हो जाती है और उपदंश की तृतीयावस्था में भी नासिका बैठ जाती है। इन अवस्थाओं में नासिका के अन्दर एक प्रकार का यंत्र व्यवहृत होता है। उसको नासिका के अन्दर प्रवेश करने से नासिका की विकृति ठीक हो सकती है। इसके पश्चात् समुचित उपचार करें।

ऐन्द्रियक रोग परीक्षा

नासा रोगी को देखकर स्पर्श करके, सूंघ करके उसके रोग का परिज्ञान करना चाहिए। विशेष करके अरिष्ट लिङ्गों में और व्रणों की गन्ध विशेष का ज्ञान घ्राणेन्द्रिय से किया जाता है।

यथोक्तं सुश्रुते—

> घ्राणेन्द्रिय विज्ञेया, अरिष्टलिङ्गादिसुव्रणानामव्रणा
> नागंधविशेषा ।

प्रतिश्याय

(Nasal catarrh, Comman Cold)

निर्वचन—नासारन्ध्र में और उससे सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण गह्वर में, अथवा श्वास मार्ग के ऊर्ध्वांश की श्लैष्मिक कला में जो शोथ उत्पन्न हो जाता है। उससे सामान्य ज्वरांश, मस्तक में भारीपन और वेदना होती है और नासा रन्ध्र से लगातार जलीयस्राव निकलता है वह लसीला होता है। पश्चात् उसका स्वरूप श्लेष्माभ होता है। अंत में श्लेष्म पूय युक्त क्लेद निकलता है। इस स्वरूप वाले विकार को प्रतिश्याय कहते हैं।

यथोक्त निरुक्ति

> वातं प्रति (अभिमुख) श्यायोगमनं कफादीना
> यत्रसः प्रतिश्यायप्रमाणयति चरकाचार्यः ।
> घ्राणमूलेस्थितः श्लेष्मा रुधिर पित्तमेव ।
> मारुताध्मात शिरसः श्यायते मारुतं प्रति ॥

भावार्थ—

जब नासिका के मूल में श्लेष्मा, रुधिर, और पित्त संचित होते हैं और वायु प्रकुपित होकर मस्तक में पहुँच जाता है। तब नासिका से प्रतिश्याय में जल के तुल्य नासास्राव होने लगता है। उसमें सब दोष निकलते हैं। उनका स्वरूप भिन्न २ स्वरूप का होता है। जिसका वर्णन आगे किया जावेगा।

कीटाणुकारणता

अष्टांग संग्रह में प्रतिश्याय की उत्पत्ति वर्णन करते हुए लिखा है कि इसके कृमि, दीर्घ, स्निग्ध, श्वेताणु होते हैं।

यथोक्तमष्टाङ्ग संग्रहे

> मूर्छन्तिचात्रकृमियो दीर्घस्निग्धसिताणवः ।

प्रतिश्याय में कई प्रकार के कीटाणु मिलते हैं। कभी कभी नासा स्राव में कीटाणु नहीं भी मिलते हैं। मिलने वाले कीटाणुओं में प्रधानतया निम्न लिखित देखे जाते हैं। प्रतिश्यायी, अथवा, प्रसेकी सूक्ष्म गोलाणु (मैक्रोकोकसकटारालिस); हरिद्वर्णस्तवक गोलाणु (स्टैफिलो कोकसविरिडन्स) और शोणांशिक माला गोलाणु, फुफ्फुस गोलाणु, फ्रीडलण्डर का दन्डाणुश्लेष्मक (एन्फ्लुएञ्जा), दंडाणु, इनके अतिरिक्त कीटाणु न मिलने पर भी रोग होता है। अतः इसका कारण कोई विशिष्ट विषाणु (Virus) माना जाता है। यह रोग संक्रामक है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसका भावार्थ यह है कि प्रतिश्याय केवल विषाणुओं से, अथवा, दोनों से प्रादुर्भूत होता है।

सहायक कारणता

वयः—यह व्याधि स्वाभाविक क्षमता के कारण जन्म के बाद पहले वर्ष में सबसे न्यून होता है अथवा, नहीं होता है। उसके बाद ५ साल तक सबसे अधिक होता है। इसके बाद शनैः शनैः कम होता रहता है और वृद्धावस्था में सब से कम हुआ करता है। इसका कारण यह है कि पुनः पुनः पीड़ित होने के कारण देह में क्षमता की वृद्धि होती जाती है।

ऋतुकाल

यह रोग सब ऋतुओं में हो सकता है परन्तु हेमन्त

और शिशिर ऋतुओं में तथा समाप्त होने वाली ऋतु के अन्त समाप्त में और आने वाली ऋतु के आदि सप्ताह मे अर्थात् ऋतु सन्धि में (ऋत्योरन्यादि सप्ताहौ सन्धिरिति स्मृतः) अधिक होता है और शीत काल में गृहों के अन्दर मनुष्य एकत्र रहते हैं। दर्वाजे खिड़कियाँ बन्द रक्खी जाती हैं जिससे गृहों के अन्दर वायु अशुद्ध और दूषित होकर प्रतिश्याय का कारण बन जाता है और ऋतु परिवर्तन काल में साधारणतः प्रतिश्याय उत्पन्न हो जाता है।

वायु मण्डल—कुम्भ आदि मेलाओं में जहाँ पर बहुत से मनुष्य एकत्र होते हैं। दुष्प्रवजिन (Bad ventilation), धूल और तीव्रवाष्प वा गैस

यथा—ब्रोमिन, क्रमिक, पाइरिथ्रम, लाल मिर्च प्रभृति के आघ्राण से प्रतिश्याय उत्पन्न हो जाता है। और आहार दोष, अल्प भोजन, क्षुधा, अत्यधिक परिश्रम, चिन्ता, सर्दी लगना, शीतल वायु के प्रवाह में सोना, मद्यपान, तम्बाकू सेवन, शरीर की दुर्बलता और मन को खिन्न करने वाले अन्य कारणों से भी प्रतिश्याय हो जाता है और कण्ठशालूक (Adenoids), तुण्डिका नासार्श, नासा गह्वर में सूजन, प्रभृति गले और नासा के रोग वात रक्त (Gout), आमवात (Rheumatism), फिरङ्ग, राजयक्ष्मा, मधुमेह, अवटुका ग्रन्थि का कार्य ठीक न चलना (Hypothyroidism) प्रभृति रोग भी प्रतिश्याय के कारण होते हैं और वंशज प्रवृत्ति भी अनेक वार इस रोग की उत्पत्ति में कारण दिखाई देती है। परन्तु इस प्रवृत्ति में पर्यावरण (Enviroment) और परिस्थिति का कितना भाग होता है। और माता पिता से प्राप्त दोषों का कितना भाग होता है। यह निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

सम्प्राप्ति

प्रतिश्याय जनक कीटाणु, और विषाणु ये दोनों अलग अलग अथवा संयुक्त होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं। तो भी साधारणतया यह सिद्धात है कि विषाणु पहले नासा पर आक्रमण करके प्रतिश्याय को प्रारम्भ करते हैं और उसके बाद वहां पर जो कीटाणु उपस्थित होते हैं। वे विषाणुओं के आक्रमण से दुर्बल हुई श्लेष्मकला पर दूसरी बार आक्रमण करते हैं। वास्तविक में प्रतिश्याय की उत्पत्ति में विषाणु और कीटाणु सहकारी होते हैं। कीटाणुओं का दूसरा आक्रमण रोग की दृष्टि से विषाणुओं की अपेक्षा अधिक महत्व का होता है। उनके कारण प्रतिश्याय में विविध और उग्रता आजाती है और नासारन्ध्र शोथ, ग्रसनिका शोथ (Pharynxitis), और स्वर यन्त्र में सूजन, श्वसनिका शोथ फुफ्फुस पाक, श्वसनीय फुफ्फुसपाक (ब्रोङ्कोन्यूमोनिया), ग्रीवा ग्रन्थिशोथ, मध्यकर्ण शोथ, नेत्राभिष्यन्द प्रभृति उपद्रव पैदा हो जाते हैं और दूसरे कीटाणु प्रगुणित (Meltipeied) होकर जो इतने बल वाले होते हैं और उपद्रव उत्पन्न करते हैं। ये विषाणुओं के सह जीवन से, अथवा, सहयोग से, अथवा नासा की प्रति कारक शक्ति घटने से इसका अभी तक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। परन्तु साधारणतया यही निश्चय है कि विषाणुओं के कारण नासा की प्रति कारिता घट जाने से पूय जनक उपद्रव होते हैं।

ऊपर में वर्णन किये हुए कारणों में शरीर के अन्दर स्वाभाविक रासायनिक समतोल में विकृति होकर अम्लता की अधिकता हो जाती है। तथा स्वायत्त नाड़ी संस्थान पर परिणाम होकर वाहिनी प्रेरणा और उष्णता के नियन्त्रण कार्य ठीक नहीं होता है।

किसी चिकित्सक का मत है। कि जब ठण्डक लगती है और शीत वायु का स्पर्श होता है, जल मे भीगता है गर्मी से आकर शीतल जल पान स्नान आदि कारण हैं। तब शरीर की शाखायें हाथ पैर आदि भी ठण्डे हो जाते हैं। उस समय नासा की श्लेष्मल कला की गर्मी ५-६ प्रति शत कम हो जाती है। इन सब बातों के परिणाम से नासिका में रक्त की अधिकता, रक्त की स्थिरता (Stnres) और स्थानिक प्रतिकार शक्ति की दुर्बलता

में हो जाता है, जिससे पहले विषाणु (Virus) और पश्चात् अन्य कीटाणु उस पर अपना अधिकार कर लेते हैं। व्याधि का प्रारम्भ उपश्लेष्म कला में होता है। वहाँ पर रक्त वाहिनी विस्फारित होकर अनेक आकार वाली, लसिकाणु (Lymphocyte) प्लाज्मासेल्स (Plasma cells) लाल कण प्रभृति की बाहुल्यता होने से वह शोथ युक्त हो जाती है। उसके बाद ऊपर की श्लेष्म कला (Mucous mambrane) भी शोथ युक्त होकर नष्ट होने लगती है। उपश्लेष्मक (Submucous) और श्लेष्म कला की सूजन के कारण अधो भाग में शुक्तिकास्थि के पास नासा मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। पहले जो नासा से स्राव निकलता है। वह जलीला होता है। पीछे उसका स्वरूप श्लेष्मा होकर अन्त में वह श्लेष्म पूयतुल्य (Muco purulent) बन जाता है। प्रारम्भिक स्राव में कोई जीवाणु नहीं मिलते। परन्तु उसके बाद के स्राव मे अनेक प्रकार के जीवाणु मिलने लगते हैं। ये द्वितीयक जीवाणु ऊपर नीचे फैल कर अनेक उपद्रव पैदा कर देते हैं।

रोग की संक्रामकता

प्रतिश्याय युक्त रोगी जब उच्चस्वर से भाषण करता है, खांसता है अथवा, छींकता है। उस समय उसके आसपास के व्यक्ति विशेषतया सामने के वातावरण में जो सूक्ष्म बिन्दुत्क्षेप निकलते हैं। वे रोगाणु युक्त होने के कारण समीप में बैठने उठने वाले मनुष्यों के श्वसन संस्थान में जाकर उपसर्ग पैदा करते हैं छींक के इन बिन्दुक्षेपों का उपसर्ग जनक ठप्पा ज्यादा से ज्यादा दो तीन फुट का होता है। इससे ज्यादा नहीं होता है। खांसने का बिन्दूत्क्षेप इससे कम और भाषण का बिन्दुत्क्षेप सबसे कम होता है। इसको ड्रापलेट (Droplet) या, संसर्ग (Contact) कहते हैं।

वायुवाही सिद्धान्त (Airborne)

इसके अनुसार बिन्दूत्क्षेपों (ड्रापलेट) के तथा थूक के सूक्ष्म कणों के साथ जो रोगाणु जो वातावरण में फैलते हैं। अनेक घटों या, दिनों अथवा सप्ताहों तक जीवित रहते हैं।

जमीन के फर्श, दीवाल, या, कपड़ों पर बैठते हैं। और वायु प्रवाह के साथ, अथवा घर में झाड़ू लगाते समय वातावरण में फिर से उठते हैं और श्वास लेने के साथ घर में रहने वाले मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करके उनको रोगाक्रांत कर देते हैं

संक्षेप में बिन्दुत्क्षेप सिद्धान्त का तात्पर्य यह है। कि रोगी के मुख से निकले हुये जीवाणु उसी समय समीप बैठे हुए स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रविष्ट होकर रोग पैदा कर देते हैं, और वायुवाही सिद्धान्त के अनुसार रोगी के मुख से निकले हुए रोगाणु न्यूनाधिक समय तक वातावरण में अथवा अन्य स्थानों में जीवन क्षम रह करके उसके बाद न्यूनाधिक अन्तर रहने वाले स्वस्थ मनुष्यों के शरीर से श्वास के साथ प्रवेश कर कर प्रतिश्याय पैदा कर देते हैं। इसमें रोग की प्रसार की दृष्टि से प्रथम मार्ग अधिक महत्व का और दूसरा मार्ग गौणक हो जाता है।

पूर्वरूप

प्रतिश्याय के आक्रमण होने के पहले मलावरोध शिर में वेदना और भारीपन, और छींकें आने लगती है। अङ्गों में टूटने के समान वेदना होने लगती है। रोमाञ्च, शीत, बेचैनी और ज्वरांश प्रभृति पूर्व रूप में प्रकट होता है।

यथोक्तं सुश्रुते—

शिरोगुरुत्वं क्षवथो प्रवर्तनःतथाङ्गमर्दः परिहृष्टरोमताच-
उपद्रवाश्चापरे नृणाँप्रतिश्यायपुरः सराः स्मृताः ॥

लक्षण

रोग का संचय काल ८-४८ घंटों का होता है। इसके संसर्ग की अवधि लक्षण प्रकट होने के कुछ घंटों से प्रारम्भ होती है और लक्षण उत्पन्न होने के बाद २० घंटों तक जारी रहती है। अर्थात् इस अवधि में रोगी से रोग का प्रसार होता है।

प्रतिश्याय के प्रारम्भ में साधारणतः नासा गह्वर में और नासाग्रसनिका में खुश्की और गुदगुदी मालूम होती है और आलस्य, क्लान्ति का अनुभव होता है। अधिकतर सर्दी लगकर सार्वाङ्गिक विकार के लक्षण प्रकट होते हैं। ज्वर, पृष्ठवंश में और हाथ पैरों में वेदना, ऐंठन, त्वचा रुक्ष और खुश्क हो जाती है। मूत्र की अल्पता हो जाती है और गाढ़ावर्ण मूत्र का हो जाता है। सम्मुख कपाल में वेदना बढ़ जाती है। इसके बाद नासानाह छींकें आंखों से पानी बहना शुरू हो जाता है और अन्त में नासा से प्रचुर स्राव बहने लगता है उसके साथ साथ गले में खराश, खांसी, कफ का निकलना और कान का बन्द होना प्रभृति लक्षण प्रायः होते हैं। नासा साफ करने के बाद कुछ क्षण तक अवरोध हट जाता है। भ्रू के ऊर्ध्व प्रदेश में वेदना होती है। नेत्र रक्त वर्ण तथा अश्रु पात बढ़ जाता है। आंखों में रोशनी लगने पर नेत्रों से अश्रु पातन बढ़ जाता है। अधिक स्राव हो जाने पर रोगी निस्तेज हो जाता है। और शरीर का भार और बल घट जाता है। अनेक बार स्वर यंत्र में भी रोगाणु पहुँचकर वहां विकृति उत्पन्न कर देते हैं। जिससे स्वर भेद हो जाता है। कभी कभी प्रतिश्याय की विकृति ग्रसनिका (Pharynx) में शुरू होकर ऊपर नासा में और नीचे स्वर यंत्र में फैल जाता है। कभी स्वर यंत्र से विकृति आरम्भ होकर ऊपर नासा तक फैलती है। प्रारम्भ का स्थान स्थानिक प्रतिकार के ऊपर निर्भर होता है। कभी कभी कान में भी असह्य पीड़ा होने लगती है।

साध्यासाध्यता

रोग की मर्यादा सामान्यतया १४ दिन से अधिक उपद्रव रहित अवस्था में नहीं होती है। प्रारम्भ में नासा स्राव पानी के समान पतला और अधिक मात्रा में वर्ण रहित निकलता है। रात्रि में अधिक निकलता है।

यथोक्त सुश्रुते—

अजस्रमच्छं सलिल प्रकाशं-
यस्याविवर्णं स्रवनहीनासा।
रात्रौविशेषेणहित विकारं नासापरिस्राव-
मितिव्यवस्येन ॥

इसके बाद धीरे धीरे स्राव कम हो जाता है। यह रोग स्वयं घातक नहीं है। परन्तु इसमें बार बार होने की प्रवृत्ति होने से रोग जीर्ण हो जाता है और उससे अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं. तथा उपद्रव उत्पन्न होने पर प्रतिश्याय बारबार होता रहता है।

इस भांति यह दुश्चक्र बराबर जारी रहता है। अन्त में शरीर को दुर्बल कर निस्तेज बना देता है। उसका परिणाम राजयक्ष्मा जैसे भयङ्कर शत्रु शरीर के अन्दर छिपे हुए रोगों के उत्थान में सहायक होकर जीवन की लीला समाप्त कर देते हैं।

यथोक्त अष्टाङ्ग सग्रहे—

क्रुद्धाःवातोल्वणाःदोषाः नासायास्त्यानतागताः।
जनयन्ति प्रतिश्याय वर्धमान क्षयप्रदम् ॥
सर्वे एव प्रतिश्यायाः दुष्टता यान्त्युपेक्षितः॥

रोग निर्णय

कोई कठिनाई प्रतिश्याय के निर्णय करने में नहीं होती है। इसके निर्णय करने के समय बालकों में रोमान्तिका (मजील्स), कुक्कुर खांसी (हुपिंग कफ), श्वसनक ज्वर (न्यूमोनिया), शैशवीय अङ्गघात, रोहिणी (डिफथीरिया) इनका ध्यान रखना चाहिए। युवा व्यक्तियों में श्लेष्मकज्वर (इन्फ्लुएञ्जा), श्वसनक ज्वर, का ध्यान रखें। जब रोग बराबर होता रहता हो तब मध्य कर्ण शोथ, नासागह्वरशोथ, नासार्श प्रभृति जीर्ण उपद्रवों का और तरुणों में राजयक्ष्मा का सन्देह करके रोगी की परीक्षा करें। वाहिनी प्रेरक नासाशोथ (Vasomtor Rhinitis) में भी बराबर प्रतिश्याय होता है। परन्तु अकस्मात आक्रमण अत्यधिक, अकस्मात ठीक हो जाना, ज्वराभाव प्रभृति से उसको पृथक कर सकते हैं।

त्रिदोष कारणता

प्रतिश्याय का सद्योजनक निदान पूर्वक सम्प्राप्ति वर्णन—

प्रतिश्याय का निदान दो प्रकार का होता है। (१)

रोग को शीघ्र उत्पन्न करने वाला। यह निदान अत्यत बलवान होने के कारण दोषों को इतना अधिक दूषित कर देता है कि दोषचयादि क्रम की अपेक्षा किये बिना ही अत्यधिक बढ़कर रोग पैदा कर देते हैं। (२) दूसरे प्रकार के निदान के द्वारा चयादि क्रम (सञ्चय, प्रकोप, प्रसर, स्थान सञ्चय फिर व्यक्ति) से उत्पन्न हुए दोषों का मूल अत्यन्त गम्भीर होकर शरीर में व्याप्त हो जाता है।

यथोक्तम्—

नकेवलंक्षयं प्राप्यदोषाः कुप्यतिंदेहिनाम्।
आन्यदापिहिकुप्यन्ति हेतुवाहुल्यनोरणात् ॥

प्रथम प्रकार—

पुरीष मूत्रादि वेगों का विधारण, अजीर्ण, धूलि आदि का नासिका में जाना, अधिक भाषण, अधिक क्रोध, ऋतुचर्या के नियम का ठीक तरह से पालन न करना, शिर में धूपादि से उष्णता का लगना, रात में अधिक जागना, दिन में अधिक सोना, जल का अधिक प्रयोग करना, शीत लगना, अत्यधिक विषय भोग करना और रुदन करना, इन कारणों से प्रकुपित हुआ वायु, प्रथम से घनीभूत स्वरूप वाले श्लेष्मा से युक्त शिर में प्रतिश्याय उत्पन्न कर देता है।

यथोक्तं चरके—

सधारणाजीर्ण रजोनिमाष्य कोधर्तु वैषम्यशिरोभितापैः।
संज्ञागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायक मैथुनवाप्पसेकैः ॥
संस्थानदोषे शिरसिप्रवृद्धोवायु, प्रतिश्यायमुदीरयेतु ॥

चयादि क्रम जनक निदान पूर्वक सम्प्राप्ति वर्णनम्

शिर में वातादि दोष तथा रक्त पृथक्-पृथक् अथवा सम्मिलित होकर, सञ्चयादि को प्राप्त होते हैं। इसके बाद विविध प्रकार के प्रकोपक कारणों से प्रकुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं।

यथोक्तम्—

चयंगताः। मूर्द्ध निमारुतादयः पृथक्-
समस्ताश्चतथैव शोणितम्।
प्रकुप्यमाणाःविविधै प्रकोपणैस्मतः-
प्रतिश्यायकराः भवन्ति ॥

वातज प्रतिश्याय का लक्षण

वातज प्रतिश्याय में नासिका विबद्ध हो जाती है और भार से आच्छादित शिर मालूम होता है। जल के तुल्य स्राव होता है, गला तालु और ओष्ठ का शोष, शङ्ख प्रदेश और नासिका में सूचीवेधनवत् पीड़ा होती है। नासा की श्लैष्मिक कला में शोथ हो जाता है। अति तीव्र वेग से खासी आने लगती है। मुख वैरस्य, स्वर भेद और शिरो वेदना होने लगती है।

यथोक्तं चरके—

घ्राणार्तितोदैः श्वयथुर्जलाभः स्रावोऽनिलात्सस्वरमूर्धरोग।

पैत्तिक प्रतिश्याय का लक्षण

पित्तज प्रतिश्याय में नासिका से पीत वर्ण वाला उष्ण स्राव निकलता है। रोगी कृश और पांडु वर्ण, सन्तप्त और तृष्णार्त हो जाता है। आतुर के मुख से धूम युक्त अग्नि निकलती हुई मालूम होती है, नासा का अग्र भाग पक जाता है, मुख शोथ और ज्वर भी हो जाता है।

यथोक्तं चरके—

नासाग्रपाक ज्वरवक्त्र शोषतृष्णोष्णपीतस्रवणानि पित्तात्।

कफज प्रतिश्याय के लक्षण

श्लेष्मज प्रतिश्याय में नासिका से शुक्ल वर्ण युक्त शीतल कफ बार बार निकलता है और रोगी का वर्ण श्वेत मालूम होता है। स्फतिचक्षु, मस्तक, मुख भाराक्रांत मालूम होता है और नासा, मस्तक, ओष्ठ और तालू में अत्तन्त कंडू प्रतीत होता है। खांसी, अरुचि, ज्वर आदि हो जाता है।

त्रिदोषज प्रतिश्याय के लक्षण

पक्व वा अपक्व प्रतिश्याय बारम्बार तिरोहित और बारम्बार आविर्भूत होता है। त्रिदोषज प्रतिश्याय में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। इसमें मिथ्याहार विहार करने से दूषित प्रतिश्याय हो जाता है।

रक्तज प्रतिश्याय के लक्षण

रक्तज प्रतिश्याय में नासिका से रक्त स्राव होता है तथा रक्त वर्ण के नेत्र, मुख व निश्वास में दुर्गन्ध, घ्राण शक्ति का नाश, उरः क्षत रोग के लक्षण अर्थात् वक्षःक्षत, वक्षःस्थल की स्तब्धता, कर्णपीड़ा कफ का पूति भाव, कास, ज्वर और पीनस रोग उपस्थित हो जाता है। इसमें फिर श्वेत व कृष्ण वर्ण के सूक्ष्म-सूक्ष्म कृमि उत्पन्न हो जाते हैं तब कृमि उत्पन्न हो जाने पर कृमिज शिरोरोग के सम्पूर्ण लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

यथोक्तं सुश्रुते —

रक्तजेतु प्रतिश्यायेरक्तास्रावः प्रवर्तते।
ताम्राक्षश्चभवेजन्तुरुरोघात प्रपीड़ित॥
दुर्गंधोच्छ्वासवदनस्तथागधान्न वेत्तिच।
मूर्च्छंतिचात्र कृमयः श्वेताः कृष्णास्तथाणवः॥
कृमिमूर्ध्निविकारेणसमानं चास्यलक्षणम्।

कष्ट साध्य दुष्ट प्रतिश्याय के लक्षण

जिस प्रतिश्याय में नासिका कभी प्रक्लेद युक्त कभी शुष्क, कभी बद्ध, अथवा विवृत हो जाती है। निःश्वास प्रश्वास में दुर्गन्धि आने लगती है और आघ्राण शक्ति नष्ट हो जाती है। इसको कष्ट साध्य युक्त प्रतिश्याय कहते हैं। प्रतिश्याय की उपेक्षा करने पर क्रमशः पीनस रोग में परिणाम हो जाता है और पीनस बढ़ कर बाधिर्य, अन्धता, घ्राण शक्ति का अभाव, उत्कट नेत्र रोग, अथवा कास, अग्नि मांद्य और शोथ रोग उत्पादन कर देता है। इसको दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं।

यथोक्तं सुश्रुतेन—

प्रक्लिद्यतिपुनर्नासा पुनश्चपरिशुष्यति।
मुहुरानह्यते चापिमुहुर्विव्रियते तथा॥
निश्वासोच्छ्वासदौर्गन्ध्यं तथा गन्धान्न वेत्ति च।
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम्॥

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्या प्रतिकारिणः।
कालेनरोगजननाः जायन्ते दुष्टपीनसः॥
बाधिर्यमान्ध्यमघ्राणं घोराश्चनयनामयान्।
कासाग्निसादशोफाश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसा॥

चिकित्सा रहस्यम्

संक्षेपतः क्रियायोगोनिदान परिवर्जनम्।

प्रतिश्याय रोग एक क्षुद्र रोग मालूम होता है। इससे आतुर इसकी उपेक्षा करता है। अतः इसका परिणाम बड़ा भयङ्कर होता है। इस प्रतिश्याय से कास और कास से राजयक्ष्मा जो रोगाधिपति माना जाता है वहां तक उत्पन्न हो जाता है।

यथोक्तम् चरके—

प्रतिश्यायादथोकासः कासात् संजायतेक्षयः।

इस लिये प्रतिश्याय के उत्पन्न होते ही जिन कारणों से यह रोग उत्पन्न हुआ होवे उनको सर्वथा त्याग कर उसका प्रतिकार करना चाहिए यही चिकित्सा रहस्य है।

चिकित्सा के भेद

प्रतिश्याय की चिकित्सा तीन श्रेणियों में विभक्त की जाती है। प्रथम—निवारक चिकित्सा, द्वितीय—सार्वाङ्गिक चिकित्सा, तृतीय—स्थानिक चिकित्सा।

निवारक चिकित्सा का वर्णन

जिन व्यक्तियों को बार-बार प्रतिश्याय से पीड़ित रहना पड़ता है उनकी इस पराधीनता को उपर्युक्त निवारक चिकित्सा द्वारा ह्रास किया जा सकता है। इनको आलस्यपन त्याग कर के खुली हुई शुद्ध वायु में भ्रमण करना चाहिए और शारीरिक परिश्रम शक्ति के अनुसार थोड़ा-थोड़ा अवश्य करना चाहिए और ऋतु स्वभाव के अनुसार, शीतल व उष्ण जल से स्नान करना चाहिए। यदि स्नान सह्य न होवे तो प्रातः काल उठ कर मस्तक, मुख मण्डल, ग्रीवा, गला, शीतल जल से

उत्तम रीति से धोना चाहिए। इससे बाह्य रक्त प्रणालियों में संकोचन शीघ्रता की शक्ति उत्पन्न होती हैं। इससे जो रक्त प्रणालियों की क्षीणता से प्रतिश्याय की अवस्था उत्पन्न होती थी, वह घट जाती है तथा नीचे और ठंडे स्थान में निवास करने से भी प्रतिश्याय उत्पन्न हो जाता है। इसलिये ऐसे निवास स्थान को त्याग देना चाहिए और शुष्क हवा दार स्वास्थ्य कर स्थान में निवास और कुछ दिन वायु परिवर्तन करने के लिये अन्य स्वास्थ्यकर स्थान में चला जाना चाहिए। किसी चिकित्सक का मत है कि प्रातः सामुद्रिक स्नान व नदी स्नान, श्रेयस्कर है।

सार्वाङ्गिक चिकित्सा और स्थानिक चिकित्सा

रोगी को आराम से चारपाई पर लेटे रहना चाहिए। शरीर में सीधी वायु नहीं लगनी चाहिए। इसलिये ऋषियों ने प्रतिश्यायी को निवात स्थाने शयन करना, बैठना, क्रीडादि करना प्रतिपादन किया है और उष्ण वस्त्रों का आच्छादनादि की व्यवस्था, उष्णपेय, उष्ण जल से स्नान, उष्ण आर्द्र वस्त्र वेष्टन (Wet pack) लघु आहार की प्रतिश्याय के प्रारम्भ में व्यवस्था करे और शिर पर उष्ण वस्त्र बांधे रहना चाहिए।

यथोक्त सुश्रुते—

निवात शय्यासनचेष्टनानिमूर्ध्नो गुरुष्णञ्चत थैववासः।

अपथ्य—

चिन्ता, शोक, विषयभोग, अतिरूक्ष, शीतल भोजन, शीतल जलपान, और शीतल जल से स्नान, नूतन मद्य पान, और मलमूत्रादि वेगों का विधारण, प्रभृति प्रतिश्याय में अहितकर है।

यथोक्तम्

शीताम्बुयोसिच्छिशिरावगाह चिन्तानिरुक्षाशनवेगरोधान्।
शोकञ्च मद्यानि, नवानि विवर्जयेत्पनीसरोग जुष्टः॥

एलोपैथिक उपक्रम

रोग के आरम्भ में जब नासाभ्यन्तरीय श्लैष्मिक कला में सामान्यतया सूजन, खुश्की और नासिका से पानी निकलना आरम्भ न हुआ होवे तो निम्न-लिखित व्यवस्था विशेष फलप्रद होती है। यदि रोगी मध्याह्न काल में भोजन कर चुका है तो सायंकाल को भोजन न देवें और शयन काल के प्रायः चार घंटे पहले ½ ग्रेन एसिटेट्, वा, सल्फेट आफ मार्फिया अल्प परिमाण में प्रयोग करें। गात्र उष्ण वस्त्र से आवृत रखें। शयनकाल में अल्प मात्रा से ह्विस्की, और जल के साथ फिर ½ ग्रेन सल्फेट आफ मार्फिया का विधान करें। यदि गात्र में ठण्ड लगकर सर्दी हुई है तो अविलम्ब ही टर्किशस्नान महोपकारी है। यदि टर्किशस्नान की असुविधा होवे तो उष्ण जल में राई का चूर्ण डालकर पैर धोवें। गरम जल पीवें अथवा, डोवर चूर्ण, शय्या ग्रहण काल में प्रयोग करें। इस अवस्था में उष्णजल, ह्विस्की, और अल्पमात्रा में नीबू का रस, शर्करा के साथ प्रयोग करने पर शीघ्र ही रोग का दमन हो जाता है।

चौबीस घंटा गत हो जाने के बाद यदि ज्वर और सार्वाङ्गिक अवसाद की प्रतीति होवे तो क्विनीन हाईड्रोब्रोमाइड, या, फेनायंमाल क्विनीन मिश्रण ५ ग्रेन की मात्रा में लेने से लाभ होता है। कत्तृण (Leman grass) की चाय पिलावें अथवा तुलसी ११ पत्ती, और काली मिर्च ७ संख्या में लेकर चाय बनाकर पीवें। नीलगिरी तैल (Eucalyptus oil) सूंघने के लिये देवें, प्याज, लहसन, दाल चीनी का तेल प्रभृति का भी व्यवहार किया जाता है। प्रारम्भ में नासा का स्थानिक उपक्रमन करें। परन्तु आगे चलकर यदि आवश्यकता होवे तो समवल (Isotonic) लवण जल या, १% एफेड्रिन सल्फेट् डाला हुआ समवल लवण जल नासा धोने के काम में लावें। कुल्ला करने के लिये लवण जल अथवा ग्लैकोथायमोलीन या, लिस्टेरिन का प्रयोग करें। सामान्यतया प्रतिश्याय में कर्पूर का व्यवहार होता है। रोग की प्राथमिक अवस्था में कुछ बूंद स्प्रिट आफ कैम्फर शर्करा के साथ आधा घंटा का अन्तर देकर कई वार सेवन करें तो रोग दब जाता है। इस रोग में

२४ घंटे तक जलीय आहार बन्द कर देवे। तो रोग का उपशमन हो जाता है। नासिका से स्राव निकलने पर स्प्रिट आफ कैम्फर रुमाल पर छिड़क कर रुमाल को सूंघना चाहिए। टैनिन का सूक्ष्म चूर्ण कर नस्य देवे।

बालकों को तरुण प्रतिश्याय होने पर शर्करा चूर्ण नासा गह्वर के मध्य में मुख से फूक देवें तो विशेष उपकार होता है।

प्रौढ़ व्यक्ति को प्रतिश्याय हो तो उसके लिये १० ग्रेन की मात्रा में डॅपी कार्पूरादि चूर्ण विशेष उपकारक है।

किसी चिकित्सक का मत है कि पूर्ण मात्रा में मार्फिया का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि इससे नाड़ियों की उत्तेजना का दमन होता है। रोगी को घर से बाहर नहीं निकलने देवे। ऐसी व्यवस्था करने से नवीन उग्रता उत्पन्न नहीं होती है।

डा० होपेनल का मत है कि यह कीटाणु जन्य रोग है। अतः इस में यथेष्ट परिमाण में शुष्क लघु आहार देवे। उग्रसुरा, तम्बाकू का प्रयोग निषिद्ध है। वह—मर्फाइन्, एण्टीमनी, पोटासियाईं साइट्रेट, अहिफेन, ब्रोमाइड, प्रभृति प्रयोग के विरोधी हैं।

अनुभूत प्रयोग—

२०१—कुनीन सल्फ	१८ ग्रेन
लाइकर आर्सनिक	१२ बूंद
लाइकर एट्रोपाइन	१ बूंद
एक्स्ट्रेक्ट जेनसियन	२० ग्रेन
पल्वः गमः एकेसी	अनुमानत

—इनको एकत्र करके १२ गोलियां बनावे। अवस्थानुसार १-१ गोली दो, तीन, चार वा छः घण्टा के अन्तर से देवे।

डा० फ्रोंटिस और डा० लो का मत है कि रक्त प्रणाली समूह के संचालन करने वाली नाड़ियों में न्यूरोसिस नामक विकार से यह रोग उत्पन्न होता है। इस लिये श्लैष्मिक कला के रक्ताधिक्य और चैतन्याधिक्य के दमन करने के लिये ब्रोमाइड और बेलाडोना इस रोग की प्रथम अवस्था में प्रयोग करे। डा० फ्रोंटिस 1/120 ग्रेन की मात्रा में एट्रोपिया चार वा छः घण्टा के अन्तर से तीन चार मात्रा तक प्रयोग करने की अनुमति देते हैं। रोग की द्वितीयावस्था में—कुनीन १-२ ग्रेन, डोवर चूर्ण २-५ ग्रेन, तीन चार घण्टा के अन्तर से देवे। नासा से स्राव बढ़ाने के लिये अमोनिया का श्वास से ग्रहण करना उपयोगी है।

२०२—कार्बोलिक एसिड (दाना)	१० ग्रेन
सोडाबाईं कार्ब	१ ड्राम
सोडा बोरेक	१ ड्राम
ग्लिसरीन	१ औंस
जल	४० औंस

—एकत्र करके इससे नासिका धोवें वा स्प्रे रूप में व्यवहार करें। कार्बोलिक एसिड की गन्ध असह्य होने पर उसके परिवर्तन में अल्प परिमाण में यूक्यूलिप्टिस, मेन्थल, और थाइमल (Thymal) का प्रयोग करें। जब श्लैष्मिक कला के शोथ के कारण स्प्रे का प्रयोग असंभव हो जाता है। अतः कोकीन द्रव (प्रति शत २-४ अंश) प्रयोग करने पर तन्तु सकल संकुचित हो जाते हैं इसके बाद अन्य उपयोगी औषधि का अवलम्बन किया जा सकता है। अनेक समय कोकीन के द्वारा प्रथम दशा में उपकार हो जाता है। परन्तु बार-बार प्रयोग करने से रक्तावेश और अधिक बढ़ जाता है।

परमेंगनेट आफ पोटास को गरम जल में घोल कर उससे नासा रन्ध्र को धोने से भी लाभ होता है।

आभ्यन्तरिक प्रयोग

आजकल शुल्वौषधियों (यथा—एम, बी ६९३) का भी प्रयोग होता है। इससे लाभ होता है।

जब नासा बन्द हो जाती है। तब वाहिनी संकोचक औषधियों का प्रयोग (यथा वैन्सेड्री का टुआमिन

सल्फेट) करना चाहिए।

वैक्सीन का वर्णन

जब प्रतिश्याय बारबार होता होवे तो नासास्राव में मिलने वाले जीवाणुओं से आत्मजनिवैक्सीन बनवाकरके उसका उपयोग करें। यदि कार्य न हो सके तो सग्रहीत प्रतिश्याय वैक्सीन का उपयोग करें। रोगोत्पादक जीवाणुओं के स्वभाव भेद से, कम्पनियों के द्वारा तैयार किया हुआ तीन प्रकार का वैक्सीन (Vaccine) मिलता है। जहां पर जो आवश्यक हो उसका प्रयोग करें इसके सिवाय, नासा, गला इत्यादि की परीक्षा करें। यदि नासार्श, अभिवद्ध तुण्डिका (टान्सिलाइटिस) कण्ठ शालूक, पूय युक्त नासा गह्वर प्रभृति दूषित स्थान होवे। तो शस्त्र चिकित्सा का अवलम्बन कर उनको ठीक करें। इसके बाद नासा में स्थानिक कार्य के लिये, एथनीलामाइड में बनाया हुआ सल्फाडायासावुन का २.५ % घोल लगाया जाता है। तथा रेडियम लवण का उपयोग प्रविकरण (Irradiation) के लिये किया जाता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा रहस्यम

नवीन प्रतिश्याय के अतिरिक्त अन्य सकल प्रकार के प्रतिश्यायों में घृत पान प्रशस्त होता है। और इस प्रतिश्याय में विविध प्रकार के स्वेद हितकारी होते हैं। और उपयुक्त समय में अवपीडनस्य का प्रयोग हितकारी होता है। नूतन प्रतिश्याय को परिपाक करने के लिये स्वेद प्रयोग ठीक होता है। अम्लरस के साथ उष्ण भोज्य का व्यवहार करें। गरम दुग्ध में अद्रक डालकर पकाकर गुड मिलाकर पीवें। अथवा, सोंठ के चूर्ण को घी में भून कर चीनी की चासनी में पकाकर सेवन करें। उष्ण जल पीवें। तीन दिन तक ऐसा करें। इन क्रियाओं के द्वारा प्रतिश्याय परिपक्व होकर के कफ गाढा होकर निकलता है। इस समय, कटफल का चूर्ण सूंघने के लिये देवें। और वातादि दोषों का विवेचन करके, विरेचन, आस्थापनवस्ति, धूमपान, और कवल धारणादि की व्यवस्था करें। और समस्त प्रतिश्यायों में प्रवात हीन ग्रहों में रहना चाहिए। और मोटे वस्त्र से शिर को ढके रहना चाहिए।

यथोक्तम्

प्रतिश्याये सुसर्वे ग्रह वात विवर्जितम्।
वस्त्रेणगुरुणानेन शिरसो वेष्टनं हितम्॥

पक्व प्रतिश्याय में—वमन, शरीर की अवसन्नता और गुरुता, ज्वर, अतिसार अरुचि, अप्रीति, ये उपद्रव उपस्थित हो जाते हैं इसमें लंघन, और पाचक अग्निवर्धक औषधि का प्रयोग करना चाहिए।

वात श्लेष्मयुक्त प्रतिश्याय में रोगी तरुणवयस्क होने पर उसको अधिक मात्रा में द्रव पदार्थ पिलाकर वमन करावें। और उपस्थित उपद्रव की चिकित्सा करें। इससे प्रतिश्याय के लक्षण मृदु होने पर अपक्व प्रतिश्याय के तुल्य चिकित्सा करें।

वातिक प्रतिश्याय की चिकित्सा

वातिक प्रतिश्याय में—

२०३—*शाल पर्णी*	*विदारी कंद*
सहदेवी	गंगेरम
गोखुरू	पृष्ठिपर्णी
शतावर	सारिवा
काला सारिवा	माषपर्णी
मुद्गपर्णी	छोटी कटेरी
बड़ी कटेरी	पुनर्नवा
एरण्ड	हंसपदी

प्रत्येक समान भाग

—लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ बना लेवें। और पञ्च लवण के साथ गौ घृत में पकावें। फिर स्नेहपान विधि के अनुसार घृत पान करावें। और नस्य का प्रयोग करें।

पित्तज प्रतिश्याय की चिकित्सा

२०४—शतावर	विदारीकंद
असगन्ध	वराही कद
मुद्ग पर्णी	माषपर्णी
गिलोय	काकड़ासिंगी

वंश लोचन — पद्माख
मुलहठी — कमल के फूल
प्रत्येक समानभाग

—लेकर क्वाथ बनावे। उसमें गौ घृत पकावें। उस घृत का विधि पूर्वक सेवन करावें। शीतल परिषेक और शीतल लेप प्रयोग करें। तथा—

रक्त चन्दन — प्रियङ्गु
द्राक्षा — गिलोय
गो जिह्वा — मुलहठी

—इनके क्वाथ का कुल्ला करें।

द्राक्षा — मुलेठी
गुलकन्द — सौंफ
कासनी — समभाग

—इनको पकाकर विरेचन के लिए देवें और कटफलादि नस्य देवें।

चिकित्सा—रक्तज प्रतिश्याय की करें।

कफज प्रतिश्याय की चिकित्सा

२०५—इसमें रोगी को घृतपान कराके स्निग्ध करें। इसके बाद वमन कारक द्रव्यों के साथ, तिल उड़द की यवागू बनाकर पिलावें। इससे वमन होता है। वमन के बाद कफनाशक मण्ड प्रभृति खाद्य पदार्थों की व्यवस्था करें।

विडङ्गादिनस्य

२०६—वायविडङ्ग — सेंधानमक
हिंगु — गुग्गुल
शुद्धमैंनसिल — वच
समानभाग

—लेकर कूट पीस छान कर रोगी को नस्य देवें।

धूम्रपान—

२०७—घी, तैल, सत्तू, इनको मिलाकर धूम्रपान करावें। यह प्रतिश्याय, कास, हिक्का को नाश करता है।

अवपीड़नस्य—

२०८—पिप्पली — सहिजन के बीज
वायविडङ्ग — कालीमिर्च
प्रत्येक समानभाग

—लेकर चूर्ण कर छान लेवें। फिर आवपीड़नस्य लेवें। इससे प्रतिश्याय दूर होता है।

प्रतिश्याय नाशक वनफ्सादि क्वाथ

२०९—गुल वनफ्सा — ४ माशा
गांजवा — ४ माशा
रेशाखतमी — ४ माशा
मुलहठी — ४ माशा
अञ्जीर जर्द — ५ दाना
लिसोढ़ा — ७ दाने
मुनक्का — ७ दाने
काली मिर्च — ७ दाने

—इनको लेकर ꠰ पानी में क्वाथ विधि से पकावें। चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर वस्त्र से छान कर उसमें शर्बत खशखाश ३ तोला मिला कर पीवे। इस भांति ३ दिन तक लगातार पीवे। इससे प्रतिश्याय में अवश्य लाभ होता है।

पैत्तिक प्रतिश्याय पर शतपुष्पादि योगः

२१०—सौंफ — १ तोला
बिहीदाना — ४ माशा
मुलहठी — ४ माशा
गुल नीलोफर — ४ माशा

—इनको क्वाथ विधि से पकावे। फिर १ तोला बनफ्सा मिला कर प्रातः काल गरम-गरम ही तीन दिन तक पीवें। इससे गर्मी से पैदा होने वाले प्रतिश्याय में अवश्य लाभ होता है।

प्रतिश्याय हर नस्य

१११—श्वेत कन्नेर के पुष्प — कचूर
वालछड़ — कश्मीरी पट्टा

उस्त खद्दूस मुलहठी
छोटी कटेरी के फल प्रत्येक १-१ तोला
—से कूट पीसकर छान लेवें। फिर इसमें पिसा हुआ ६ माशा कपूर मिलावें। इससे छींकें कम आती हैं परन्तु नासा से स्राव अधिक होता है।

व्योषादि वटी

२१२—सोंठ काली मिर्च
पीपल तालीस पत्र
जिरिण्क चित्रक
अम्लवेत चव्य
जीरा श्वेत भुना हुआ प्रत्येक १-१ तोला
बड़ी इलायची तेज पात
दालचीनी प्रत्येक ३ माशा

—इनको कूट पीस कर छान लेवें। फिर इसमें पुराना गुड़ १० तोला १२ माशा मिलाकर बेर के बराबर गोली बनावें।

मात्रा—१-१ गोली गरम जल से ३-३ घण्टे बाद लेवे अथवा इसको मुंह में रख कर चूसें।

फल—इससे प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद आदि उपद्रव भी शान्त होते हैं।

कटफलादि चूर्ण

२१३—कटफल पोहकरमूल
काकड़ा सिंगी सोंठ, मिर्च, पीपर
जवासा काला जीरा
प्रत्येक ५-५ तोला

—इनको कूट-पीस कर छान लेवें।

मात्रा—२ माशा।

अनुपान—आद्रक स्वरस ३ माशा मधु ६ माशा मिलाकर दिन में तीन बार चाटें। इससे प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद प्रभृति रोग शान्त हो जाते हैं।

चित्रक हरीतकी अवलेह

२१४—चित्रक ५० पल
जल ५० सेर

—लेकर क्वाथ बनावें। शेष १२॥ सेर, आंवला के रस के अभाव में—

आंवला ५० पल
जल ५० सेर

—लेकर क्वाथ बनावें। शेष १२॥ सेर,

गिलोय ५० पल
जल ५० सेर
शेष क्वाथ १२॥ सेर,

दशमूल ५० पल
जल ५० सेर
शेष क्वाथ १२॥ सेर,

—इन क्वाथों को एकत्र करके उसमें १०० पल गुड़ डाल कर पकावें। फिर उसमें हरीतकी चूर्ण ८ सेर देकर पाक करें, पाक ठीक हो जाने पर—

सोंठ मिर्च
पीपल दालचीनी
तेजपात बड़ी इलायची
प्रत्येक २-२ पल
यवक्षार १ तोला

—प्रक्षेप डालें, दूसरे दिन मधु २ सेर मिश्रित करें।

मात्रा—१ तोला गरम जल से प्रातः साय लेवें। इससे पुराने से पुराना प्रतिश्याय अच्छा हो जाता है।

पीनस रोग विज्ञानम्

(Atrophic Rhinitis)

पीनस रोग में श्वास द्वारा शोषित कफ से नासामार्ग कभी कभी रुक जाता है और कभी गीला हो जाता है। कभी गरम प्रतीति होता है। सुगन्धि और दुर्गन्धि का ज्ञान नहीं होता है। इसका कारण यह है कि नासिका अवरुद्ध रहती है। पीनसोत्पादक दोषों के द्वारा जिह्वा भी दूषित हो जाती है। जिससे मधुरादि रसों का भी ज्ञान नहीं होता है। नासिका में कृमि भी पड़ जाते हैं। परन्तु सदैव पीनस में कृमि पड़े होवें ऐसा भी आवश्यक

नहीं है। जिस किसी प्रकार के चिरकालीन सपूय नासा विकार में अधिक गदगी रहेगी उन सब में कृमियों के पड़ने की सभावना रहती है और यदि सफाई रहेगी तो कृमि नहीं पड़ेंगे। यदि नासिका मे कोई चीज पड़ गई हो तो चिरकाल तक उसी में पड़ी रहने से उसी में सड जाती है अथवा नाक में किसी प्रकार का दुष्ट अर्बुद हो गया हो तो भी नासा में आनाह भी पैदा हो जाता है और दुर्गन्धित स्राव भी नाक से निकलता है। इसको सुश्रुताचार्य ने अपीनस भी कहा है। क्योंकि (अवाप्यो-स्तसनद्धादिसुवा) इस सूत्र से विकल्प करके अपि के आकार का लाप होने से, पीनस तथा अपीना दोनों शब्द सिद्ध होते हैं। इसके अन्य लक्षण वात कफजन्य प्रतिश्याय के समान होते हैं।

यथोक्तसुश्रुते

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायातितुधूपनेच ।
नवेभियोगन्धरसाजलजन्तुर्जुष्ट व्यस्येदिहपीनसेन ॥
तंचानिलश्लेष्मभवविकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गकः ।

पीनसोपक्रम

पीनस के रोगी की छींक व कास के द्वारा उसके समीप की वायु में उसके जीवाणु फैल जाते हैं। अतः ऐसे रोगी छींकने के समय नासिका के सामने रूमाल लगा लेवें इससे दूसरों का उपकार होता है। पीनस रोग में स्थानिक चिकित्सा में नस्य का प्रयोग करें। इससे अधिक लाभ होता है। पहले रोगी को मृदु विरेचन देकर कोष्ठ की शुद्धि करें। फिर निम्नलिखित नस्य देवें।

नस्य प्रयोग—

२१५—सोडियाई बाई कार्बनस   २ ग्रेन
मैग्निसियाई कार्बनस   ३ ग्रेन
मेन्थल   १ ग्रेन
हाइड्रोक्लोरेट आफ कोकेन   ४ ग्रेन
क्षीर शर्करा   १॥ औंस

—इनको मिश्रित कर २–४ घंटा के अन्तर से नस्य रूप में व्यवहार करें।

स्प्रे प्रयोग—

२१६—हाइड्रोक्लोरेट आफ कोकेन   ४॥ ग्रेन
एन्टीपायरिन   १८ ग्रेन
सोडियाई बाई कार्बनस   १ औंस

—इनको मिश्रित करके स्प्रे स्वरूप में व्यवहार करें।

वाष्प ग्रहणार्थ—

२१७—मेन्थल   आधाभाग
कर्पूर   १ भाग

—मिलाकर इसकी वाष्प ग्रहण करें।

आभ्यन्तरिक प्रयोग

२१८—बहेड़ा का छिलका   काली मिर्च
अनार का छिलका   लवङ्ग
शीरे खिस्त   प्रत्येक ४–४ तोला

—बबूल के क्वाथ की इनको भावना देकर कूट पीस क[र] गोली १ चना प्रमाण बनाकर तीन २ घंटे के बा[द] लेवें।

अनुपान—उष्णजल, इससे लाभ होता है और रात्रि क[ो] चित्रक हरीतकी अवलेह १ तोला की मात्रा में उष्ण जल से लेवें।

पूति नस्य (Ozaena) का निर्वचन

यह पूति नस्य उन सब रोगों में उत्पन्न हो सकत[ा] है जिनके कारण नासिका से दुर्गन्ध औ[र] दुर्गन्ध युक्त स्राव निकलता है और निःश्वास में अत्यन्त दुर्गन्धि आती है। यह दुर्दम, कष्टदायक रोग है। अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त नासा गह्वर के विशेष पुरातन रोग को पूतिनस्य (ओजिना) कहते हैं।

निदान

नासिका से दुर्गन्ध युक्त स्राव प्राय. निम्न लिखित कारणों से निकलता है।

१—सब प्रकार के चिरकालीन निर्गन्ध नासा स्राव कालान्तर में प्राय दुर्गन्धित स्राव का रूप धारण कर लेते हैं।

२-फिरङ्ग जन्य नासा शोथ (Syphilitic Rhinitis)
३—फिरङ्ग जन्य नासाशोथ (Tnberenlosis of The nose)
४—कला क्षय जन्य नासा शोथ (Atrophic Rhinitis)।
५—नासिका से सम्बन्धित एक या अनेक अस्थि कोटरों का चिरकालीन शोथ (Chronic sinusitis)।
६—नासिका का दुष्ट अर्बुद (Cancer)।
७—पालिपस (Polypus) एक प्रकार की वृद्धि।
८—कभी कभी बाहरी पदार्थ (Foreign body) भी नासिका में पड़ कर रुके रहते हैं और कालान्तर में स्वय सड़ कर और नासिका की श्लैष्मिक कला में व्रण पैदा करके दुर्गन्धित स्राव कराते हैं। कई चिकित्सक ओजिना रोग का कारण विशेष जीवाणु (माइक्रोब) मानते हैं। इस रोग की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न मत देखे जाते हैं। जो व्यक्ति जन्म से दुर्बल होते हैं अथवा गण्डमाला जन्य दौर्बल्य ग्रस्त होते हैं अथवा रक्त ज्वर, मसूरिका प्रभृति पिडिका वाले ज्वरों का भोग करने के बाद अत्यन्त दुर्बल होते हैं। वे इस रोग से आक्रान्त होते हैं। यह रोग अधिकांशस्थल पर युवावस्था के प्रारम्भ में प्रकट होता है और नव वर्ष से २० वर्ष वाले तरुण व्यक्ति इस रोग से आक्रात होते हैं।

लक्षण

तरुण प्रतिश्याय के बार बार आक्रमण करने से वा गण्डमाला ग्रस्त व्यक्ति के किसी निर्दिष्ट कारण के अतिरिक्त लाक्षणिक ओजिना उत्पन्न होता है। रोग की प्रथमावस्था में ये सब लक्षण अस्पष्ट रहते हैं। परिणतावस्था में सब लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अनेक स्थल पर इस रोग से पीड़ित व्यक्ति स्वस्थ मालूम होता है। किन्तु कुछ काल के बाद उसका स्वास्थ्य भङ्ग हो जाता है और अन्ततः लगातार दुर्गन्ध युक्त दूषित वायु श्वास से ग्रहण करने से देह अन्त में विकार ग्रस्त हो जाता है। निश्वास में इतनी खराब दुर्गन्धि आती है कि रोगी के साथ एक घड़ी भी बैठना असम्भव हो जाता है। किसी किसी रोगी की घ्राण शक्ति क्षीण हो जाती है अथवा बिल्कुल लुप्त हो जाती है। इससे उसको दुर्गन्धि नहीं मालूम होती है। इस रोग में शारीरिक लक्षणों के मध्य में पूर्व कपाल और भ्रू के ऊर्ध्व प्रदेश में वेदना, निरुत्साह, निस्तेजकता, रसनेन्द्रिय विकार, घ्राण शक्ति का लोप और मनोवृत्ति की क्षीणता लक्षित होती है। श्रवणेन्द्रिय की क्रिया की विकृति, कभी-कभी कर्ण शोथ, अभिष्यन्द, प्रभृति उपद्रव रूप में प्रकट होते हैं।

भावीफल

साधारणतया यह रोग कष्ट साध्य है और अधिकांश स्थल पर दुःसाध्य रोग हो जाता है। अनेक रोगी ४० वर्ष के बाद स्वतः आरोग्य हो जाते हैं।

चिकित्सा

लाक्षणिक पूतिनस्य की चिकित्सा पुरातन प्रतिश्याय के तुल्य करें इसकी चिकित्सा दो श्रेणियों में विभक्त की जाती है।

१—दैहिक चिकित्सा।
२—स्थानिक चिकित्सा।

दैहिक चिकित्सा

शारीरिक चिकित्सा के लिए रोगी की अवस्था के अनुसार बलकारक और परिवर्तक औषधि देवें। रक्ताल्पता (एनीमिया) उपस्थित होने पर संखिया (आर्सेनिक), लोहा, क्विनीन, अथवा आयोडीन, उपयोगी हैं। यदि स्ट्रोमस डायथिसिस (Diathesis) के लक्षण वर्तमान हों और पाचन संस्थान में विकृति लक्षित होती हो तो हाइपो फोस्फाइट की व्यवस्था करें और अन्यान्य प्रकार के डायथिसिस वर्तमान होने पर उसकी उपयुक्त चिकित्सा करें। इसके अतिरिक्त सुपाच्य पुष्टिकर पथ्य देवें और व्यायाम, विशुद्धि वायु सेवन, समुद्र जल में स्नान प्रभृति द्वारा विशेष उपकार दिखाई

देता है। कई चिकित्सक—आर्सेनिक, कार्डलिवरआइल, क्लोरेट आफ पोटास के आभ्यन्तरिक प्रयोग का अनुमोदन करते हैं।

स्थानिक चिकित्सा

नासिका में यदि क्लेद सूख गया हो तो उस पर उष्ण तैल लगा देवें। जब क्लेद भीग जावें तो उसको निकाल देवें। उसके पश्चात क्लोराइड आफ-जिंक, कोराइसफ्लूइड वा परक्लोराइड आफ मर्करी के द्रव द्वारा नासा गुहा को धो देवें। इसके पश्चात ग्लाई सिराइनम् वोरासिस् प्रभृति सक्रमण नाशक औषधि को रूई से प्रयोग करें अथवा, औषधि द्रव्य सयुक्त रूमे, वाष्प, द्रव, चूर्ण, मलहम, आदि का प्रयोग करें।

उपदशिक पूतिनस्य मे पूर्वोक्त स्थानिक चिकित्सा के साथ साथ यथा विधि उपदश की चिकित्सा भी करें।

फिरङ्ग जन्य नासा शोथ

फिरङ्ग की तृतीयावस्था के व्रण प्राय: ओजिना के उत्पादक होते हैं। नासा के कई स्थानों पर इस अवस्था की प्रसिद्ध विकृति गमा (Gumma) बनती है। जिसके फूटने पर व्रण बन जाता है। शीघ्र ही नासिका की अस्थि में भी व्रण पहुंच जाता है और अन्यत्र गति से फैलता हुआ नासिका की मध्य प्राचीर (Septum) और तालु को नष्ट कर डालता है, नाक बैठ जाती है। नासा के व्रणों का तीव्र गति से बढ़ना नासागत फिरङ्ग की मुख्य पहिचान है।

नासिका का क्षय रोग

नासा में क्षयज व्रण बहुत कम होते हैं। केवल एक रोग जिसको Lupus Vulgaris प्रायः होता हुआ देखा जाता है।

ल्यूपस वलगैरिस

इस रोग में पिन के शिर के बराबर सूक्ष्म ग्रन्थियां उत्पन्न हो जाती हैं। जिनका रङ्ग ललाई लिए भूरा होता है। यह मुलायम और पारभाषक होती है। इनमें क्षय रोग के जीवाणुओं का उपसर्ग हो जाता है। यह रोग प्रायः बचपन में ही दिखाई देता है और २० वर्ष से अधिक आयुवालों को बहुत कम होता है। यह रोग प्रायः बहुत धीरे धीरे बढ़ता है। कभी कभी इसका शोथ युक्त भाग छिलकर अलग हो जाता है अथवा बीच में अच्छा हो जाता है। परन्तु किनारों की ओर बढ़ता जाता है। किंतु अधिकतर इसकी ग्रन्थियां क्षय रोग के जीवाणुओं के तथा अन्य जीवाणुओं के उपसर्ग के कारण व्रण का रूप धारण कर लेती हैं। ये व्रण मछली के छिल्के जैसे छिल्केदार रचना से ढके रहते हैं। जिनके नीचे दुर्गन्धित पूय भरी रहती है। यह रोग स्त्रियों में अधिक होता है। कभी २ नासा की मध्य प्राचीर को खा डालता है और उसमें छिद्र कर देता है।

चिकित्सा

सामान्य स्वास्थ्य को सुधारना चाहिए। पीड़ित भाग पर सूर्य का प्रकाश लगे ऐसा प्रवन्ध करें। दाहक पदार्थों यथा—कार्बोलिक, सेलिसेलिकअम्ल से जला देवें अथवा लेखन करने के बाद दग्ध करना चाहिए।

कला क्षय जन्य नाशा शोथ

(Atrophic Rhinitis,)

परिचय — इसमें नासिका की कला का क्षय होता है।

लक्षण

नासिका से गाढ़ा और बदबूदार स्राव होता है जो कभी अधिक, कभी कम निकलता है।

१—नासा गुहा प्राय. बढ़ जाती है। उसकी छत कभी बढ़ी हुई कभी दबी हुई होती है, नासिका की श्लैष्मिक-कला, पतली, पीली, कड़ी, ससक्त, सूखी, छिल्केदार रचना से ढकी हुई और सड़न युक्त होती हैं। यह कभी दोनों नासारन्ध्रों मे और कभी एक रन्ध्र से होती है। प्राय. इस रोग के साथ ग्रसनिका शोथ भी (Pharyngitis) रोगी में विद्यमान रहता है।

२—निश्वास में दुर्गन्धि रहती है। जिसको रोगी स्वयं नहीं जान पाता है। क्योंकि उसकी घ्राणेन्द्रिय मन्द हो जाती है।

३—नासा के चौड़े होने से, नासागुहागत श्लेष्म कला के रंग द्वारा, तथा व्रण की अनुपस्थिति से, इन तीनों लक्षणों के द्वारा यह रोग अन्य प्रकार के ओज़िना से प्रथक किया जाता है ।

चिकित्सा

साधारणतया, स्वास्थ्य को सुधारना चाहिए और नासागुहा की श्लैष्मिक कला को ठीक रखने के लिए, चिरकालीन गन्धहीन नासास्राव की भांति चिकित्सा करना चाहिए ।

नासा सम्बन्धितअस्थि कोटरीय चिरकालीन शोथ
(Chronic Sinusitis)

नासा गुहा से संक्रमण पहुँचने के कारण नासा से सम्बन्धित अस्थि कोटरों में भी शोथ हो जाता है। तीव्र नासा शोथ, शिर में सर्दी लगना, श्लेष्मक ज्वर (इन्फ्लुएञ्जा), तीव्र प्रकार के कुछ ज्वर, नासिका में आघात तथा शस्त्र कर्म इस रोग के सहायक कारण होते हैं। कभी कभी देखा जाता है, कि ऊपरी जबड़े के दाँत के उखड़वाने के बाद ऊर्ध्व हन्वस्थिगत कोटरों में शोथ हो जाता है। इस रोग का मुख्य लक्षण यह है कि—एक नासा रन्ध्र से पूय वा पूययुक्त श्लेष्म निकला करती है जो दुर्गन्धित होती है। पूर्वकास्थि कोटर (Frontalsinuses) झर्झरास्थि कोटर (Ethmoidol sinuses) और जतुकास्थि कोटर (Sphenoidal sinuses) ये भी इस रोग के शिकार होते हैं।

चिकित्सा

यह चिरकालिक और गम्भीर रोग है। सामयिक लाभ के लिये २५ प्रतिशत मेन्थाल, स्प्रिट में घोलकर इसकी १० बूंद आधा सेर जल में डाल कर भाप सूंघना चाहिए। बाद में स्थायी लाभ के लिये शस्त्र कर्म करावें।

नासा गह्वरीया स्वाभाविक वृद्धि
(Polypus)

यह तीन प्रकार की होती है—

१—श्लैष्मिक कला जन्य (Mucous)।
२—नासा ग्रसनिकागत (Naso pharyngeal)।
३—घातक (Malignent)।

श्लैष्मिक कला जन्य पालिपस
(Mucocs polypus)

यह प्रकार अधिकतर मिलता है। प्रायः यह युवावस्था में और पुरुषों में अधिक दिखाई देता है। यह श्लैष्मिक कला के कहे शोथ युक्त (Oedemator) भाग हैं और प्रायः दोनों नासा गुहाओं में होते हैं। किन्तु एक से भी उत्पन्न हो सकते हैं। इनका आकार बहुत छोटी गुटिका से लेकर इतना बड़ा भी हो सकता है कि नासा गुहा को बिल्कुल बन्द कर देवें, यदि सावधानी से देखा जावे तो किसी किसी श्वास रोगी में भी देखा जाता है। प्रायः ये लम्बे नाल या डण्ठल वाले पीले, भूरे और चमकीले होते हैं। इसलिये अपने इन्हीं लक्षणों द्वारा पहचाने जा सकते हैं। श्लैष्मिक कला जन्य पालिपस को किसी अंश में नासार्श कह सकते हैं।

नासाग्रसनिका गतपालिपस
(Fibroma of the naso pharynx)

इस प्रकार के सौत्रिक तन्तुज अर्शोऽर्बुद, नासिका और तालु के मध्य में उत्पन्न होते हैं। इनका आयतन धीरे धीरे बढ़ जाता है और ऐसा बढ़ता है कि नासारन्ध्र से भीतर से बाहर होकर तालू के ऊपर झूलने लगता है। कभी कभी कटोरी के मध्य में प्रवेश कर जाता है। नासा में होने पर बार २ शोणित स्राव होता है। बधिरता श्वास प्रश्वास में कष्ट मालूम होता है। इससे मुख की अस्थि में एक प्रकार की विकृति उत्पन्न हो जाती है। इसको मेढ़क मुख (फ्लेसफेस) कहते हैं। इस प्रकार के अर्शोऽर्बुद उत्पन्न होने से रक्तस्राव अधिक होता है। किंतु

इनमें पुनरुत्पत्ति की प्रवृत्ति होती है।

घातक नासाऽर्बुद
(Malignant Polypus)

इस प्रकार का पालिपस बहुत कम होता है। जब ये होते हैं तो मुख्यत. ऐपीथीलिओमा (Epithelioma), इन्डोथीलिओमा (Endothelioma) और सारकोमा (Sarcoma) प्रकार के होते हैं। ये भी शीघ्र बढ़कर मुख की आकृति में एक विशेष प्रकार की विकृति उत्पन्न कर देते हैं। इसको भी मण्डूक मुख, कह सकते हैं। इनसे पीड़ा होती है और रक्त मिश्रित पूतिगन्ध युक्त नासा स्राव होता है अर्थात् घातक पालिपस के कारण पूय-रक्त पैदा होता है।

चिकित्सा

प्रथम प्रकार के पालीपस को स्नेयर (Snare) या पञ्चफारसेप्स (Punch forceps) नामक शस्त्रों से काट देने पर भी पुन. उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये इनका समुचित शस्त्र कर्म करना चाहिए। फाईब्रोमा, और मैलिगनेंटपालिपस की चिकित्सा एक्स किरणों (X Rays) से और रेडियम से करना चाहिए।

नासापाक
(Ulceration of the nose)

परिचयात्मक लक्षण—

नासिकागत पित्त जब नासिका में बहुत से व्रण और पाक, गीलापन तथा सड़न पैदा कर देता है। तब इस रोग को नासापाक कहते हैं।

यथोक्तं सुश्रुते

घ्राणाश्रित पित्तमरुत्रिकुर्याद यस्मिन्-
विकारे बलवांश्चपाकः।
तं नासिकापाकेमितिव्यव स्वेदविक्लेदकोथाव-
थवापि यत्र॥

नासिका में व्रण प्रधानत: दो कारणों से उत्पन्न होता है।

१—फिरङ्ग जन्य नासा शोथ (Syphilitic Rhinitis) से।

२—नासा की श्लैष्मिक कला के एक विशेष प्रकार के रोग (Lupus valganis of the nose) से, फिरग की प्रारम्भिक अवस्था में नासा के व्रण अगम्भीर और निर्गन्ध तथा प्रायः रक्त मिश्रित स्राव वाले होते हैं। किन्तु बाद की अवस्थाओं के फिरंगज व्रण गहरे और बहुत दुर्गन्धित स्राव वाले होते हैं। यद इस दशा के स्राव में भी रक्त न आने लगे तो यह पूय रक्त हो सकता है। किन्तु दुष्ट पालीपस में रक्त युक्त दुर्गन्धित स्राव प्राय. होता है। अतः कहा जा सकता है कि पूय रक्त नामक नासा रोग (Malignant polypus) का एक लक्षण है किंतु यह पालीपस बहुत कम होता है।

नासा रोग के विभाग

भौतिक लक्षणों के अनुसार नासा रोग को पाश्चात्य विज्ञान की दृष्टि से पांच स्थूल भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१—नासागत रक्तपित्त (Epistaxis)।

२—नासा प्रतिनाह।

३—गन्ध हीन तीव्र नासा स्राव (Acute Rhinorrhoea)।

४—गन्ध हीन चिरकालीन नासा स्राव (Chronic Rhinorrhoea)।

५—पूति गन्धी चिरकालीन नासा स्राव। वस्तुत: पीनस, पूति नस्य, नासा पाक, पूयरक्त ये सब नासा रोग इसी ओजिना (Ozaena) के भिन्न भिन्न लक्षण मात्र हैं।

पूयरक्त लक्षण

कुपित दोषो से अथवा, ललाट में, किसी भाँति चोट लगने पर नासामार्ग से जब रक्त मिश्रित पूय बहने लगती है तो इस रोग को पूय रक्त कहते हैं।

दोषज क्षवथु लक्षण

नासिका की शृङ्गाटक नामक मर्म स्थिति वायु जब दूषित होकर के नासिका के द्वारा कफ के साथ बारबार आवाज के साथ निकलता है तब इस रोग को दोषज-छिका रोग कहते हैं। इसको अंग्रेजी में शीजिङ्ग कहते हैं।

आगन्तुक क्षवथु लक्षण

राई आदि तीक्ष्ण द्रव्यों के उपयोग से, तीक्ष्ण, कटु पदार्थों को अधिक सूंघने से, सूर्य की तरफ देखने से कफ पिघलता है। सूत्रादि से नासिका की तरुणास्थि (नासा की मध्य दीवार) अथवा शृङ्गाटक नामक मर्म में रगड़ लग जाने से दूसरे प्रकार की अर्थात् आगन्तुक छींक उत्पन्न हो जाती हैं।

भ्रंशथु को चिरकालीन निर्गन्ध नासास्राव (Chronic nasal Discharge, or, chronic Rhinorrhoea) कह सकते हैं तथा, उन सब रोगों का समावेश भ्रंशथु में हो सकता है जिनसे गाढ़ा गाढ़ा और निर्गन्ध कफ नासिका से निकलता है। इसी दृष्टि से क्रोनिरिनोरिया को उत्पन्न करने वाले प्राय. सब नासा रोग अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भ्रंशथु को उत्पन्न करने वाले होते हैं। किंतु बाद में जब उनका स्राव दुर्गन्ध युक्त हो जाता है तो पीनस, पूतिनस्य, नासापाक और पूय रक्त मे से किसी एक, या अनेक का रूप धारण कर लेता है।

भ्रंशथु का लक्षण

पित्त के द्वारा शिर के सतप्त हो जाने पर पहले का संचित गाढ़ा दूषित नमकीन कफ नासिका से गिरता है। तब इसको भ्रंशथु रोग कहते हैं।

चिरकालीन निर्गन्ध नासास्राव

यह निम्न लिखित रोगों के कारण उत्पन्न होता है-

(क) चिरकालीन नासा शोथ—इसमें नासा की श्लैष्मिक कला में पुराना शोथ पैदा हो जाता है। जिससे श्लैष्मिक कला मोटी हो जाती है और उससे स्राव होता है।

चिर कालीन नासा शोथ तीन प्रकार का होता है—

१—साधारण (Simple)

२—वृद्धि जन्य (Hypertrophic) और ३—क्षयज (Atrophic)।

साधारण चिरकालीन नासाशोथ

इसमें नासा की श्लेष्मिक कला में रक्ताधिक्य युक्त पुराना शोथ होता है। कभी कभी बाद में चल कर श्लेष्मिक कला में वृद्धि भी होती है। इसमें पूय हीन, या पूय युक्त श्लेष्मा का निरन्तर स्राव होता है। प्राय. कभी कभी इसमें नासा प्रतिनाह भी हो जाता है। इस से आवाज बदल जाती है और निद्रा में रोगी खर्राटे के साथ श्वास लेता है। हृदय और फुफ्फुस के रोग, मद्य-पान, बारबार प्रतिश्याय का होना और उसकी उपेक्षा करना, अभिघातादि, नासा में क्षोभ पैदा करने वाले पदार्थों यथा—उग्रगन्ध, धूंआ, धूलि का निरन्तर नासिका में जाते रहना, एडिनोइड (Adenoid) और बढ़ी हुई टांसिल आदि साधारण चिरकालीन नासा शोथ के उत्पन्न होने में सहायक कारण होते हैं। इस शोथ के श्रुतिसुरङ्ग में बढ़ जाने का भय रहता है। इसके अतिरिक्त बालकों में यह रोग होता है तो उनके श्वास कार्य मे बाधा उत्पन्न होती है।

वृद्धि जन्य चिरकालीन नासा शोथ

इसमें नासिका की कला की पर्याप्त वृद्धि होती है। यही इसकी मुख्य पहिचान है। यह वृद्धि प्रायः अध. शुक्तिकास्थि (Inferior Turbinate) के अगले पिछले सिरों पर होती है। इसके वही लक्षण हैं जो साधारण चिरकालीन नासाशोथ के हैं। केवल विशेषता यह होती है कि इसके लक्षण कुछ तीव्रता में होते हैं। यहां तक कि हलकी वृद्धि में भी शिर शूल और मानसिक दौर्बल्य हो जाता है। प्राय. इस रोग के साथ एडीनोइड भी विद्यमान रहता है। यह रोग कष्ट साध्य है।

क्षय जन्य चिरकालीन नासाशोथ

इसमें नासा की श्लैष्मिक कला का क्षय हो जाता

है। इसमें नासिका से गाढ़ा और दुर्गन्ध युक्त स्राव अत्यधिक मात्रा में निकलना, और कभी कभी अत्यल्प मात्रा में भी निकलता है। शेष लक्षण पहले वर्णन किये गये हैं। उनको देखिये। कभी कभी आघात लगने के कारण या किसी ऐसे रोग के कारण जिससे नासा गुहा का सम्बन्ध मस्तिष्क सुषुम्ना जल से होता है, नासिका से जलाभ द्रव पदार्थ बूंद२ गिरता रहता है यह द्रव चालनी पटल के द्वारा नासागुहा मे पहुंचता है। यह मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (Cerebro-Spinal fluid) होता है।

साधारण चिरकालीन नासा शोथ की चिकित्सा

२१६—प्रारम्भिक दशा में लवण (१ औंस जल में १० ग्रेन) या बोरिक एसिड (१ औंस जल में ५ ग्रेन) या खाने वाला सोडा (१ औंस जल में १० ग्रेन) अथवा कार्बोलिक एसिड (१ औंस जल में २ बूंद) इन सब से नासिका का परिषेचन (डूश) करें। इसके बाद मेंथल और यूकेलिप्टस (१ औंस जल में दोनों को मिला कर २० या ३० ग्रेन) लगाना। अथवा केवल नवसादर की वाष्प श्वास द्वारा लेवें या कोकेन और थाईमाल का मलहम लगावें। रोग के बाद की बढ़ी हुई दशा में दग्ध करना (Cantery) सामान्य स्वास्थ्य को सुधारने के लिये मछली के तेल आदि के साथ जीव द्रव्य (A) को पर्याप्त मात्रा में शरीर मे पहुंचाना चाहिये। अन्य बल दायक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। पर्वतीय भूमि में और सूखी जलवायु में रहना और मद्यपान से बचना चाहिए। इस रोग के लिए चिरकालीन चिकित्सा की आवश्यकता है।

वृद्धि जन्य चिरकालीन नासा शोथ की चिकित्सा

साधारण नासा शोथ के तुल्य चिकित्सा करें। किन्तु कुछ तीव्र उपचार यथा विद्युत्प्रयोग अथवा शस्त्र कर्म का उपयोग करें।

क्षय जन्य नासा शोथ की चिकित्सा

इसकी चिकित्सा प्राय. सफल नहीं होती है। क्योंकि इसका उपचार करने से मस्तिष्कावरण में शोथ हो जाता है।

दीप्ति लक्षण

जब नासिका में जलन के साथ धूम की तरह वायु निकलती है और नासा जलती हुई मालूम होती है तब इस रोग को दीप्ति कहते हैं। इसका कारण यह है जब नासिका की श्लैष्मिक कला में सूजन के कारण रक्ताधिक्य हो जाता है तो इसमें जलन प्रतीत होती है और इसी कारण नासिका से गरम गरम वायु निकलती है। यह लक्षण तीव्र नासा शोथ (Acute Rhinitis) में होते हैं।

यथोक्तं सुश्रुते—

घ्राणेभृशं दाहसमन्वितेतु विनिः सरेद्धूमइवेहवायुः।
नासाप्रदीप्तेव च यस्यजन्तोर्व्याधिन्युतं दीप्तिमुदाहरन्ति ॥

प्रतिनाह वर्णनम्

(Nasal obstruction)

वायु के साथ कफ जब श्वास मार्ग को बन्द कर देता है तब इस रोग को प्रतिनाह कहते हैं। प्रायः नासिका के प्रत्येक रोगो में कम या अधिक मात्रा में पाया जाता है। यह दो प्रकार का होता है।

१—*अल्प कालीन*—जैसे प्रतिश्याय में साधारणतया देखा जाता है और उसके अच्छे होने पर अच्छा हो जाता है।

२—*चिरकालीन प्रतिनाह*—यह अधिक न्यून मात्रा में हो सकता है। इसमें रोगी की अवस्था में खर्राटेयुक्त और प्राय. मुख से श्वास लेता है यह चिरकालीन अवरोध निम्न रोगों के कारण होता है।

१—वृद्धि जन्य चिरकालीन नासा शोथ।

२—नासार्श।

३—नासा गत विजातीय द्रव

४—नासागत दुष्टार्बुद (Neoplasms) नासा प्राचीर की विद्रधि, अभिघातज रक्तार्बुद

नासिका गुहा के मुख्य भाग
१—जतकास्थि कोटर
२—पुप्रीमा शुक्तिका
३—ऊर्ध्व शुक्तिका
४—मध्य शुक्तिका
५—कराठ कर्णी नाली का छिद्र (मुंह)
६—अधः शुक्तिका
७—गल शुगेडका

नेत्र रचना
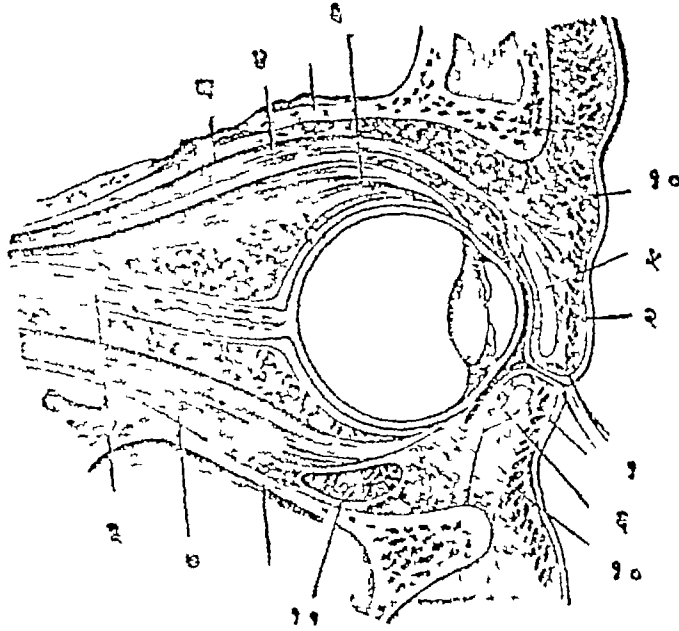
नासा मध्य प्राचीर का ठीक मध्य रेखा में न होकर किसी एक तरफ होना या नासा मध्य प्राचीर का एक या दोनों तरफ की नासा गुहा की ओर इतना नतोदर होना कि उसके एक ही पृष्ट में कोण जैसा बन जाय, (Spurop the septum) शुक्ति कास्थि की वृद्धि और एडिनोइड (Adenoid), चिर कालीन प्रतिनाह (Chronic nasal obstruction) का प्रभाव, मुख से श्वास लेना, निद्रा की दशा में शब्द युक्त श्वास लेना। इनके अतिरिक्त रोगी में निम्न रोगों के हो जाने की प्रवृत्ति हो जाती है। प्रसनिका शोथ (फेरिन्जाइटिस), जिह्वा रोग या नितावा (Stomatitis), क्लोम शाखा की श्लैष्मिक कला का प्रसेक युक्त शोथ (Bronchial catarrh), फुफ्फुस में शीत वायु के प्रवेश करने से जो बुरे परिणाम हो सकते हैं वे सब; शब्द का सानुनासिक हो जाना और समस्त शरीर के श्वास कार्य (Jissue respiration) में बाधा उत्पन्न होना आदि।

लसीका ग्रन्थीय शोथ (Adenoids)

प्रसनिका (फैरिंक्स) में बहुत छोटी छोटी सरसों जैसी लसीका ग्रथि पाई जाती हैं। मुख, प्रसनिका और नासा गुहा के रोगों के कारण प्राय. इन ग्रन्थियों में भी शोथ हो जाता है तथा इन लसीका ग्रन्थियों के उपसर्ग के कारण भी मुखादि में तथा मध्य कर्ण में शोथ हो जाता है। इन्हीं शोथ युक्त ग्रंथियों को एडीनोइड कहते हैं। जो बच्चे मुख से श्वास लेते हैं या नींद की दशा में खर्राटे युक्त शब्द के साथ श्वास लेते हैं उनमें एडीनोइड के पहले से ही होने की अत्यधिक सम्भावना करनी चाहिए। यह रोग निम्नलिखित तीन कारणों से विशेष चिन्तनीय होता है।

(क) यह चिरकालीन मध्य कर्ण शोथ के प्रधान कारणों में से है जो अन्त में बधिरता उत्पन्न कर देता है।

(ख) सम्पूर्ण शरीर का श्वास कार्य विकृत कर देता है।

(ग) मस्तिष्क शक्ति का ह्रास कर देता है।

नासा स्राव (Acute Rhirorrhoea)

लक्षण—

जब नासिका से गाढ़ा, पीला, श्वेत, पतला, दोष (कफ) निकलता है तो उसको नासा स्राव कहते हैं।

यथोक्त—

घ्राणाद्घन· पीनसिनस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम्।

कारण

तीव्र नासा शोथ (Acute Rhinitis), तीव्र प्रतिश्याय (एक्यूटकोराइजा), स्नूफ्लेस (Snuffles), रोहिणी (डिफथीरिया), एक्यूट सिन्यूसाइटिस, हेफीवर (Hayfever) आवेशिक स्राव (Spas modic Rhinorrhoea), ग्लोन्डर्स (Glonders) ये कारण हैं।

तीव्र नासा शोथ

इसमें नासिका की श्लेष्मल कला में तीव्र शोथ होता है। किसी प्रकार से नासा गत श्लेष्मक कला में क्षोभ पैदा होने से, धूल या किसी बाहिरी पदार्थ के प्रवेश करने से, नासिका में चोट लगने से, या शिर में शीत लगने से यह रोग उत्पन्न होता है। कभी-कभी संक्रामक रूप में भी फैलता है। चिरकालीन नासा शोथ, एडीनोइड और नासा गुहा, नासा कोटर आदि का उपसर्ग युक्त होना। यह इसके सहायक हेतु है। किन्तु अधिक काल तक रहने से, बारबार होने से मध्य कर्ण शोथ और क्लोम शाखा की श्लैष्मिक कला में शोथ (ब्रोंकाइटिस) उत्पन्न कर देता है।

तीव्र प्रतिश्याय

इसमें नासिका से किंचित् पूय युक्त पतले कफ का स्राव होता है और छींक भी साथ आती है। नेत्र

स्राव, शिरो वेदना, अल्प ज्वर होता है। यह दशा कुछ दिन तक रहती है।

स्नूफ्लेस (Snuffles)

जिन बालकों को जन्मजात फिरंग होता है। उनमें प्राय. पैदा होने के कुछ ही दिनों के बाद नासा स्राव होने लगता है और नासिका की श्लैष्मिक कला में शोथ हो जाता है। इसको स्नूफ्लेस कहते हैं।

रोहिणी (डिफ्थीरिया)

इसमें नासिका से स्राव होता है। वह रक्त मिश्रित होता है। नासा गुहा और ओठ छिल जाते हैं। नासिका में अवरोध हो जाता है। परन्तु रोहिणी के सार्वदैहिक लक्षण यथा अधिक दुर्बलतादि अत्यल्प मात्रा में होते हैं। नासा मध्य प्राचीर और अध' शुक्तिकास्थि पर भूरी और श्वेत झिल्ली दिखाई देती है।

एक्यूट सायनूसाइटिस (Acute sinusitis)

इसके उत्पन्न होने के कारण भी वही कारण है जो क्रोनिक सायनूसाइटिस के हैं। इस रोग मे नासा स्राव होता है और नासिका के मार्ग में प्रतिनाह हो जाता है।

ग्रास ज्वर (हेफीवर)

यह एक प्रकार की घास की गन्ध से होता है, इससे ज्वर होता है। इसमें नासिका से स्राव और नेत्र से अकस्मात् अधिक स्राव होता है।

आवेसिक स्राव

इसके लक्षण भी हेफीवर के तुल्य होते हैं।

ग्लैंडर्स (Glanders)

अत्यधिक नासा स्राव इसका प्रधान लक्षण है।

चिकित्सा

रोग से बचने के लिये सामान्य स्वास्थ्य को बढ़ाना चाहिए तथा सर्दी, गर्मी व शीतल जलवायु के सहन करने योग्य अपने शरीर को बनाना चाहिए। धूलादि से बचने के लिये रुमाल का प्रयोग करना चाहिए। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति की खांसी, छींक के द्वारा आस पास की वायु में रोग के जीवाणु फैलते हैं। अत. ऐसे रोगियों के सम्पर्क से बचना चाहिए।

रोगी को एक रुमाल मुख या नासा के सामने रखके खांसना, छींकना चाहिए। ताकि दूसरों मे उसका उपसर्ग न फैलने पावे। नासिका के प्रेसक युक्त शोथ का शमन करने के लिये एड्रेनेलीन (Adrenaline), मेन्थाल (Menthal), कपूर, सोहागा (Rax) और पेरोलीन (Paroleine) का स्थानिक प्रयोग करना चाहिए। रोग का अन्य स्वस्थ व्यक्तियों में प्रसार रोकने के लिये रोगी को चाहिए कि विसक्रामक द्रव्यों की भाप और उन्हीं का मलहम आदि नाक में प्रयोग करे सार्वदैहिक लक्षणों की लक्षणानुसार चिकित्सा करें। यदि एडीनोइड्स और टॉन्सिलस हों तो उनकी समुचित चिकित्सा करें। स्वजनित वैक्सीन (Autogenous vaccine) भी रोग प्रति रोध (Prophylaxis) और चिकित्सा दोनो कार्यों के लिये उपयुक्त होती है। इन सब उपचारों के साथ साथ कारण का त्याग करना और विश्राम लेना भी बहुत आवश्यक है। यदि इस रोग का कारण जन्मजात फिरङ्ग और रोहिणी भी हो तो उसकी भी चिकित्सा करना आवश्यक है।

नासा शोष का वर्णन

नासिकाश्रित श्लेष्मा का प्रकुपित वायु और पित्त अत्यन्त शोषण कर देते हैं तब नासिका से अति कष्ट से निश्वास प्रश्वास निकलते हैं

यथोक्तम्—

घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेनगाढपरिशोषितेच।
समुच्छ्वसित्यूर्ध्वमधश्च कृच्छ्राधस्तस्य नासापरिशोष उक्तः॥

आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्त

पीनस रोग का उपक्रम

पीनस रोग में स्नेहपान, स्वेद विधि नियमानुसार

रोगी को कराके वमन और विरेचन देवें और तीक्ष्ण वीर्य युक्त लघुपाक वाले खाद्य पदार्थों को अल्प मात्रा में दें। उष्णजल पीने के लिये और उपयुक्त समय में धूम पान कराना हितकारी है।

हिंग्वादिनस्य—

२२०—हींग — सोंठ
पीपल — काली मिर्च
इन्द्रजव — श्वेत पुनर्नवा
लाक्षा — तुलसी बीज
कायफल — वच
कूठ — सहजने के बीज
विडङ्ग — करञ्ज

प्रत्येक समभाग

—ले कूट पीसकर छान लेवें। इसको अवपीडनस्य की विधि से देवें अथवा उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क गो मूत्र के साथ सर्षपतैल तैल विधि से पकाकर उसका नस्य देवें।

कटफलादि क्वाथ—

२२१—कायफल — पोहकर मूल
काकड़ा सिङ्गी — सोंठ
मिर्च — पीपल — जवासा
कलौंजी — प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ विधि से क्वाथ बनावें। उसमें आर्द्रक रस उचित मात्रा में मिलाकर पीवें। इससे पीनस रोग शान्त होता है।

२२२—तिक्त पत्रिका (पर्वतीय नाम- सीतावनी) का स्वरस नासिका में डालें और इसकी पत्तियों को पीस कर टिकिया बना लेवें। वह टिकिया नासिका के छिद्र के आगे रखकर कपड़ा बाँध देवें। एक २ छिद्र के सामने भिन्न २ समय में बाधें। इससे यदि नासा में कृमि पड़ गये हों तो वे सब टिकिया पर आजावेंगे। फिर टिकिया निकाल देवें। इस तरह जब तक कीड़ा निकलना बन्द न हो तब तक प्रयोग करते रहें। यह पीनस का अनुभूत योग है।

पूतिनस्योपक्रम

इसमें पीनस में लिखा हुआ चिकित्सा कर्म करना चाहिए और निम्नलिखित नस्य का प्रयोग करें।

२२३—इन्द्रयव — हींग
काली मिर्च — लाक्षा स्वरस
कायफल — कूठ
वच — सहिजने के बीज
विडङ्ग — प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण करें। फिर इसका अवपीड नस्य देवें।

व्याघ्री तैल—

२२४—छोटी कटेली — दन्ती
वच — सहिजन
तुलसी के बीज — सोंठ
मिर्च — पीपल
सेंधानमक — समभाग

—इनका कल्क बनाकर सर्षपतैल डाल कर तैल विधि से पाक करके, नासिका में इस तैल के बूंद डालने से पूतिनस्य रोग नष्ट होता है।

नासापाक चिकित्सा

नासापाक रोग में बाह्य और आभ्यन्तर चिकित्सा तथा पित्तनाशक विधान समूह का प्रयोग करें और रक्त मोक्षण करावें। इसके पश्चात् क्षीरि वृक्षों (वट, गूलर, पीपल, पिलखन, पारिसी पीपल) की त्वचा को पीसकर उसमें गो घृत मिलाकर लेप करें और इनकी त्वचा का क्वाथ बनाकर परिषेचन करें।

पूय रक्त की चिकित्सा

पूय रक्त नामक रोग में नाड़ी व्रण के तुल्य चिकित्सा करें। इस रोग में बलवान रोगी को वमन करावें, अवपीडनस्य देवें, तीक्ष्ण धूम और शोधन नस्य का प्रयोग करें। इससे लाभ होता है।

यथोक्त अष्टाङ्ग संग्रहे

पूयरक्ते नवे कुर्यात् रक्त पीनसवत्क्रियाम् ।
... .. अतिप्रवृद्धे नाड़ीवद् ॥

क्षवथु और भ्रंशथु रोग की चिकित्सा

इन दोनों व्याधियों में शिरो विरेचन द्रव्यों का प्रधमन नस्य देवें और मस्तक पर वातघ्न द्रव्यों का स्वेद और स्निग्ध धूम प्रभृति हितकर क्रिया समूह की व्यवस्था करें।

गुग्गुलादि धूम प्रयोग—

२२५—गुग्गुल	मोम
घृत	प्रत्येक समभाग

—इनको मिलाकर धूमपान करें। इससे क्षवथु, भ्रंशथु रोग नष्ट होता है।

शुण्ठी तैल—

२२६—सोंठ	कुष्ठ
पीपल	विल्व की छाल
द्राक्षा	प्रत्येक समभाग

—लेकर इनको कल्क, और कषाय बनाकर सर्षप तैल में तैल पाक विधि से पकावें। इस तैल को नस्य विधि से लेवें। इससे लाभ होता है।

दीप्त रोग की चिकित्सा

इस रोग में पित्त नाशक और मधुर वर्ग की शीत, वीर्य वाली औषधियों का प्रयोग करें तो लाभ होता है। यथा—

२२७—निम्बपत्र रसाञ्जन का नस्य देवें। अल्प मात्रा में शिर. स्वेदन हितकारी है और क्षीर तथा जल मिलाकर परिषेचन करें। इससे लाभ होता है।

नासानाह की चिकित्सा

नासानाह में स्नेहपान, स्निग्धधूम और शिरोवस्ति का प्रयोग करें तथा वातव्याधिनाशक बला तैल प्रभृति औषधि समूह का प्रयोग करें तो उत्तम लाभ होता है।

नासास्राव की चिकित्सा

नासास्राव नामक रोग में नली द्वारा शिरोविरेचनीय द्रव्यों का नस्य देवे और तीक्ष्ण अवपीड नस्य देवें, चित्रक, देवदारु, यमानी इनका तीक्ष्ण धूम देवें। इसमें मांस भोजी के लिए छाग मांस प्रयोग हितकारी है।

नासाशोष

नासाशोष में दुग्धोत्थ घृत पान करावें और गो घृत में कर्पूर मिलाकर नासिका रन्ध्रों में लगावें। अणु-तैल (चरकोक्त) का नस्य देवें और लघु, शीत वीर्य युक्त अन्न खावें। मांस भोजी को जांगल मांस देवें। स्नेह, स्वेद का प्रयोग और स्नेहिक धूम का प्रयोग उपयोगी होता है अथवा बला तैल का नस्य, और पान में प्रयोग करें, इससे लाभ होता है।

यथोक्त अष्टाङ्ग संग्रहे

नासाशोषे बलातैलं पानादौभोजन रसैः ।
स्निग्धो धूमस्तथा स्वेद, नासानाहेऽप्य- विधिः ॥

अर्श, शोथ तथा अर्बुदादि की चिकित्सा इन २ रोगों के प्रकरण में कहे हुये उपक्रमानुसार करें। यहां पर लेख के विस्तार के भय से वर्णन नहीं किया जा सका है।

अत्रिफलकशनीजी

२२८—पीली हरीतकी का वक्कल	काबुली हरड़
का छिल्का	काली हरड़
बहेड़ा	प्रत्येक १॥—१॥ तोला
आंवला	४ तोला
धनियाँ	४॥ तोला
प्रवाल भस्म	२ तोला
कच्ची खाँड	२० तोला
गो घृत	१५ तोला
शहद	४ तोला

—सबको कूट पीस छानकर गो घृत में मिलाकर, शहद और खाँड भी मिला देवें। दो-तीन सप्ताह तक किसी

स्निग्ध मृत्पात्र में बन्द करके अनाज की राशि में गाड़ देवें। फिर इसको निकाल कर १-१॥ तोला की मात्रा में गरम पानी से लेवें।

लाभ—इससे सब प्रकार से नासा रोग प्रतिश्याय प्रभृति पुराने भी अच्छे होते हैं। परन्तु इसका ६ मास प्रयोग करें और पथ्य से रोगी को रहना चाहिए।

नासागत रक्त स्राव (Epistaxis)

पर्याय—नकसीर, नासिक रक्त पित्त,

निर्वचन—नासिका की श्लैष्मिक कला में असंख्य रक्त वाहिनियां रहती हैं। शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा बहुत कम गहराई में और बहुत पतली दीवार वाली होती हैं। यही कारण है कि कभी कभी प्राय आसानी से फट जाती हैं और नासा से रक्त गिरने लगता है। बहुत ऊंचे पहाड़ों पर जहां वायु मण्डल का दबाव काफी कम रहता है, वहां पर जाने से कभी कभी नासिका से रक्त आने लगता है। यह विकृति भी उपर्युक्त कारणों से ही होती है अर्थात् नासा से जो रक्त निकलने लगता है उसको नकसीर (नासिक रक्त पित्त) कहते हैं।

कारण

नासिका से रक्त स्राव होने के दो प्रकार के कारण होते हैं—

१—नासागत (Local)
२—सार्वदैहिक (Constitutional)

१-नासागत कारण—

इनमें प्रायः बहुत थोड़ा सा रक्त स्राव होता है और उसका मुख्य कारण नासागत कला का रक्त मय हो जाना ही होता है। यह रक्त मयता (Congestion) इन दशाओं में हो सकती है— एडेनौइड्स (Adenoids), नासार्श (Polypus), तीव्र नासाशोथ (एक्यूटरेहनाइटिस), नासिका में कृमि पड़ जाना, नासिका या करोटितल (Base of the skull) पर अभिघात लगना वा किसी विजातीय बाहरी द्रव्य (Foreign body) का नासिका में प्रविष्ट हो जाना। निम्नलिखित नासागत रोगों में नासा से रक्त स्राव बारबार होता है— घातकवृद्धियां यथा दुष्टार्बुद (Cancer) आदि फिरङ्गजन्य तथा क्षय जन्य व्रण, या किसी अन्य प्रकार के व्रण (यदि वे छोटे होते हैं तो शीघ्र पहचान में भी नहीं आते हैं)।

कभी कभी जब नासागत रक्त स्राव बहुत अल्प मात्रा में होता है तो पीछे गले में जाकर निगला जाता है और थूक के साथ या खांसी के साथ बाहर निकलता है। ऐसी दशा में आमाशयिक रक्त स्राव (Haematemesis) या फुफ्फुसीय रक्तस्राव (Haemoptysis) का भ्रम हो जाता है। अतः सावधानी से नासागह्वर को देखकर उपर्युक्त रोगों का, नासा के रक्त पित्त का निर्णय करना चाहिए।

२-सार्वदैहिक कारण—

इनसे अधिकतर पर्याप्त मात्रा में रक्त स्राव होता है। यहां तक कि किसी किसी रोगियों में चिन्ताजनक रूप धारण कर लेता है। कुछ लोगों में यह रोग पारिवारिक होता है और कुछ लोगों मे नासा से रक्तस्राव होने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी होती है। सार्वदैहिक कारणों को पुन. दो भागों में बांटा जा सकता है।

(क) रक्त वाहक अङ्गों में विकृति।
(ख) रक्त गत विकृति।

(क) यदि रोगी स्वस्थ और ४० वर्ष से अधिक अवस्था का हो तो उसे पहले पहल नकसीर फूटे तो "ब्राइट" का चिरकालीन रोग (Chronic Bright, s Diseases) अथवा रक्त भाराधिक्य (High Blood Pressure) की आशङ्का करनी चाहिए। हार्दिक कपाटों की विकृति (Cardiac Valavar Disease), एम्फीसीमा (Enphysema), पुरानी खांसी (Chronic Bronchitis) और यकृत् की शिरोसिस् (Cirrhosis of the Liver) इन रोगों में भी नासा से रक्त स्राव का होना प्राय देखा जाता है। इनके अतिरिक्त निम्न दशाओं में भी यह रक्त स्राव होता

है। वक्ष गुहागत अर्बुद (Thoracic Jumours), तीव्रतम ज्वर (Extreme Jemperative), अत्यधिक व्यायाम के बाद, आर्तवकाल (Menstrul period), ऊंचे पहाड़ो पर जाना अथवा, वायुयान की यात्रा।

(ख) रक्त गत विकृति

इसमें रक्त में ही कुछ ऐसी विकृति हो जाती है कि उसमें जो शरीर के बाहर आने पर शीघ्र जम जाने का गुण होता है उसमें कुछ दोष आजाता है। यहां पर यह जान लेना चाहिए कि रक्त स्राव के बन्द होने में स्वयं रक्त भी सहायक होता है। क्योंकि जो रक्त शरीर के बाहर आ जाता है वह जम कर फटी हुई धमनी या शिरा अथवा व्रण के मुख को बन्द कर देता है। इस प्रकार रक्त बहना अपने आप बन्द हो जाता है। रक्त के जमने के गुण में विकार आजाने से या तो वह बिल्कुल जमता ही नहीं यथा—Haemophilia में जमता नहीं या देर में जमता है। निम्न लिखित रोगों में रक्त में यह दोष उत्पन्न होने से नासिका से रक्त स्राव होता है, Purpura, Haemophilia, Scurvy, Leukaemia, साधारण या दुष्ट पाण्डुरोग (Simple spernetious anaemia) रक्त कणिकाओं (Bloodplatelets) की कमी (Thrombicytopenia), कुछ विशिष्ट ज्वर यथा आन्त्रिक ज्वर (Typhoid), आमवात (Rheumatism) और रक्त स्रावी प्रकार के विस्फोट (Haemorrhagic forms of exanthanata), बच्चों में कुक्कुर कास (Hooping cough) और कई प्रकार के ज्वरों की प्रारम्भिक दशाओं में प्राय. नासिका से रक्त स्राव भी कभी-कभी हो जाता है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए नासा गत रक्त पित्त (Epistaxis) यदि अधिक मात्रा में बार बार हो तो बहुत ही सावधानी से उसके कारण का अन्वेषण करना परमावश्यक है।

चिकित्सा

यदि हृदय या फुफ्फुस के कारण नकसीर फूटी हो और अधिक रक्तस्राव न हो तो उसे रोकने की आवश्यकता नहीं है। इन रोगों में शिर में पीड़ा होती है और रक्त का भार अधिक रहता है। अत. प्रत्येक नकसीर की दशा में रक्तभार (Blood pressure) नापना चाहिए। जब तक रक्तभार अधिक रहता है तब तक कोई भय नहीं रहता।

अ—नकसीर के आवेग के समय की चिकित्सा

इसमें रक्त स्राव को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। रोगी को आराम से और शान्ति पूर्वक रक्खे। उसे इस प्रकार उत्तान लिटा दें कि उसका शिर सीधा और चिबुक सामने की ओर रहे। शिर को ठण्डा तथा पैर को गरम रक्खे। ग्रीवा के पीछे पृष्ठ वंश पर वर्फ रक्खे। हाथों को भी ऊपर उठाया जा सकता है चूंकि सार्वदैहिक कारणों से उत्पन्न रक्त स्राव प्राय. नासा मध्य प्राचीर के पूर्व भाग के एक स्थान से होता है। अत. शरीर के उस भाग को अंगुली और अंगूठे से दबाये रहे। अग्निदग्ध भी किया जा सकता है। रक्त स्राव के स्थान पर एड्रेनलीन लगाने पर भी रक्त का आना बन्द हो जाता है। यदि यह सब उपचार रक्त स्राव बन्द करने में असफल हो जाय तो नासा गुहा को सूखे पिचु या फ्रोत (Ribhon gauze) से खूब कस कर भर देना चाहिए और उसे प्रति दिन बदलते रहना चाहिए, मुख द्वारा चार चार घंटे पर कैल्सियम क्लोराइड लेना चाहिए। कैल्सियम क्लोराइड (Calcium chloride) का त्वचा गत सूचीवेध (Subcuteneous injection) द्वारा भी प्रयोग किया जा सकता है। आवश्यकता होने पर अश्व की लसीका (Horse serum) का भी (१० से २० शीशी प्रति दिन) त्वचा गत सूचीवेध द्वारा प्रयोग करें। यदि इतना अधिक रक्त स्राव हो गया हो कि त्वचा में पीतिमा आ गई हो तो किसी स्वस्थ व्यक्ति का रक्त रुग्ण व्यक्ति में प्रवेश करना चाहिए।

(ब) दौरे के मध्य में नासा गह्वर के पूर्व और

पश्चात् भागों को सावधानी से देख कर कारण का अन्वेषण कर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

समय समय पर नासिका में वैसलीन या गो घृत स्निग्ध वस्तु लगाते रहने से भी रक्त स्राव रोके रखने में सहायता मिलती है।

आयुर्वेदीयोपक्रम

इसकी चिकित्सा यह है कि जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआ होवे उनका प्रतिकार करना चाहिए। यदि रोगी बलवान हो और मस्तिष्कादि किसी यन्त्र में रक्ताधिक्य होने से नासिका से रक्त स्राव हो तो उसको सहसा बन्द नहीं करना चाहिए क्योंकि सहसा बन्द करने से प्लीहा वृद्धि आदि होने की सम्भावना रहती है। किन्तु यदि रोगी दुर्बल हो और अधिक मात्रा में रक्तस्राव होगया हो तो बन्द कर देना चाहिए।

यथोक्तं—

पित्तलं स्तम्भयेन्नादौ प्रवृत्त बलिनोयत।

हृत्पाण्डु ग्रहणी रोगप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥

आमलक प्रलेप

शुष्क आंवलों को पीस कर गो घृत में भून लेवें फिर बकरी के दूध में पीस कर मस्तक पर प्रलेप करे। जिस प्रकार सेतु (बांध) से जल का प्रवाह रुक जाता है उसी प्रकार इस लेप से नासिका से रक्त गिरना बन्द हो जाता है अथवा शीतल जल में चीनी घोलकर शरबत तैयार करके नासिका द्वारा पीवें अथवा नासिका से दूध पीवें अथवा द्राक्षारस अथवा इक्षुरस में चीनी मिलाकर नासिका से पीने पर रक्त बन्द हो जाता है। अनार के फूलों के स्वरस का नस्य देवें वा दूर्वा के स्वरस में घी मिला कर नस्य देवें अथवा आम की गुठली का रस व पलाण्डु के रस का नस्य लेवें। इससे नासा से रक्त गिरना बन्द हो जाता है।

प्रतिश्याय (जुकाम) चिकित्सा

लेखिका—प्रकाशवतीदेवी जैन, वैद्य विशारदा, लाखाभवन (जबलपुर) सी० पी०

इस लेख में पढ़िये—

- प्रतिश्याय चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें।
- जुकाम की रामबाण चिकित्सा
- तत्काल-फलप्रद दो-सरल योग।
- यदि जुकाम बहुत बहता हो तो।
- प्रसूता के जुकाम पर विशेषतानुभव।
- प्रतिश्याय-जन्य सिर दर्द पर सविवरण चिकित्सानुभव, आदि आदि।

श्री मती पण्डिता प्रकाशवती जैन वैद्य विशारदा लाखाभवन में स्त्री चिकित्साकार्य सफलता से कर रही हैं। आपने प्रतिश्याय चिकित्सा को मनोहर भाषा और सुन्दरता से पूर्ण किया है। विवेचन प्रकार और चिकित्सा वर्णन सुलझे हुए प्रकार से हुआ है। एतदर्थ वैद्या जी धन्यवाद की पूर्ण अधिकारणी हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

प्रतिश्याय चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें—

१—जुकाम शुरू होते ही पानी गर्म करके पीयो। नाक बंद करके पानी पीना सर्वोत्तम है, एक हाथ से पहले नाक बद कर लीजिये फिर गिलास से पानी (गर्म किया हुआ) थोड़ा थोड़ा पीयें.

२—जाड़ों के दिन हों तो स्नान मत करिये। यदि न रहा जाय तो दुपहर मे गर्म पानी से स्नान करके फौरन शरीर पोंछ कर कपड़े पहिन लें। गर्मी के दिनों में भी मात्र एक बार तौलिये से रगड़-रगड़ कर स्नान करें ताकि शरीर के रोम कूप भली भांति खुल जांय।

आयुर्वेद में लिखा है कि—

त्यजेत्स्नानं शुच क्रोध, भृशं शय्या हिमं जलम्।

अर्थात् जुकाम में स्नान न करें, गुस्सा न करें, दिन में न सोवें और रात में भी अधिक देर तक न सोवें, ठण्डे जल का उपयोग न करें।

३—पीने-नहाने आदि में सर्वत्र गर्म पानी काम में लें।

४—भोजन न करें, लघन, उपवास सर्वोत्तम है। यदि न रहा जाय तो अल्प मात्रा में पथ्य भोजन करें। कफ नाशक पथ्य लें।

५—कान बद करके रखें, गर्मी से दिनों में भी कान के छेदों में रुई लगालो।

आयुर्वेद में लिखा है कि—

'पीनसेषु च सर्वेसु, निर्वातागारिणो भवेत् ।'

अर्थात्—सब जुकाम या बिगड़े जुकाम में बिना हवा के मकान में रहो । अर्थात् वायु से बचते रहो । तेज गरमी लगे, फिर भी ठण्डी-वायु या सीधी-वायु का सेवन न करो ।

६—महिलाओं को चाहिए कि वे सिर में खूब कंघी करें । इससे रोम कूप खुल जाते हैं पसीने एवं रद्दी मद्दे को निकालने में सहायता मिलती है । बड़े बाल वाले पुरुष भी इस बात पर ध्यान रखें ।

७—यदि कब्ज हो तो 'पञ्चसकार' आदि सरल विरेचन लेकर दस्त साफ कर लेना चाहिए । कइयों को तो गरम पानी से ही दस्त हो जाता है ।

८—सोते समय अपना सिरहाना ऊंचा न रखो सिराहना ऊंचा रखने से सारा जुकामी मवाद छाती पर गिरता है ।

९—जहां तक हो जुकाम को बाहर निकाल दो, जुकाम का रोकना तो बहुत ही बुरा है । इसमे पचासों कठिन रोग पैदा हो जाते हैं । अन्त में मृत्यु होना तक संभव है ।

१०—डाक्टरों की तरह गरम दवायें देकर जुकाम को रोको मत । हां गुलबनफ्से का काढ़ा पिला सकते हैं ।

११—जिन्हें प्रतिदिन चाय पीने की आदत है, बिना चाय के रहा ही नहीं जाता, ऐसे लोगों को तुलसी पत्र और काली मिर्च की चाय पीनी चाहिए । १५-२० तुलसी पत्र एवं ३-४ काली मिर्चों का चूर्ण पर्याप्त है ।

१२—जुकाम में पानी खूब बहता हो तो भुने चने खाना चाहिए एवं गरमागरम भुने चने सूंघना बहुत ही उत्तम है ।

१३—जुकाम के साथ हरारत, छींकें, खाँसी आदि विकार पैदा हो जाते हैं, उनकी चिन्ता न करें । जरूरत हो तो उनकी सामान्य चिकित्सा करें । जुकाम के ठीक होने पर ये स्वय ठीक हो जाते हैं ।

जुकाम की रामबाण चिकित्सा

२२९—चिकित्सक लोग रूमाल में 'यूलिकप्टिस आयल' (नीलिगिरी तैल) डाल कर सुंघाते हैं । इसकी तेज बू जुकाम में कुछ आराम सा पहुँचाती है । उसे सूंघना चाहिए ।

रूमाल में ४-५ बूंद नीलगिरी तैल डालकर सूंघने से एवं पथ्य पूर्वक रहने से जुकाम बिगड़ने का डर नहीं रहता ।

२३०—एक देशी प्रयोग जो सर्वथा निरापद है एवं न० २२९ के प्रयोग की तरह तत्काल लाभ दिखाता है । यहां पर बताया जा रहा है ।

प्रयोग—एक रूमाल में तीन माशे अजवायन लेकर बांध लो, बांधने की गांठ कुछ ढीली रक्खो, ताकि हथेली पर रखकर रगड़ी जा सके । अब इस पोटली को हथेली पर रखकर या दोनों हाथों से रगड़ो फिर पोटली को सूंघो । एक उग्र तेज सुगन्ध आयगी । आपका जुकाम एव जुकाम से पैदा हुआ सिर दर्द ठीक होगा ।

सस्ता एवं हजारों बार का सुपरीक्षित निरुपद्रव प्रयोग है । अवश्य काम में लिजिये ।

२३१—काले जीरे का चूर्ण रूमाल में रखकर एव रगड़ कर सूंघने से भी जुकाम ठीक हो जाता है । प्रयोग न० २३० की विधि से काम लीजिये ।

२३२—यदि आपका जुकाम बहुत बहता हो तो दो दिन बाद तीसरे दिन रात को सोते समय दो तोला गुड़ में चार काली मिर्चों का चूर्ण मिलाकर खाइये । ऊपर से पानी बिल्कुल न लें । इसके बाद निर्वात स्थान में फौरन मुंह बन्द कर सो जाइये । प्रात. जुकाम ठीक हुआ मिलेगा ।

नोट—गुड़ खाने के तीन घटे पहिले पानी पीलें । दवा खाने से पहिले ही पेशाब आदि की बाधा से निवृत हो जांय, ताकि दवा खाकर तत्काल सोया जा सके ।

२३३—एक बार परीक्षा के समय मुझे जुकाम ने सताया

मेरी सहेली ने सोते समय एक लड्डू दिया। प्रात काल मैं उठी तो मालूम किया कि जुकाम प्रायः गायब है। बहुत पूछ ताछ–अनुनय के पश्चात् उन्होंने बताया कि, वह एक माशे भाग एवं एक माशे गुड़ का लड्डू था। जो कभी नशीली चीज नहीं लेते, उनका जुकाम इसी योग से ठीक हो जाता।

मैंने उन्हें बताया कि किसी भी महिला को कोई भी नशीली चीज औषधि रूप में भी कदापि नहीं देनी चाहिए किन्तु प्रयोग सत्वर लाभदर्शक है।

प्रसूता के जुकाम पर विशेषानुभूत प्रयोग

२३४—दो तोले दशमूल लेकर डेढ़ पाव पानी में उबालो जब पानी जल कर आधा पाव रह जाय तो उतार कर छान ले। इसमें १ तोला पुराना गुड़ और एक छोटी पीपल का चूर्ण डाल कर प्रसूता को सोते समय पिलादो और मुंह ढक कर सोने दो।

प्रातः ही प्रसूता उठ कर देखेगी कि उसका जुकाम एवं शिर दर्द दोनों ही कम हो गये हैं। साथ ही साथ प्रसूत रोग में होने वाले अन्य उपद्रव भी इसके साथ नियमित रूप से कम हो जाते हैं। सुपरीक्षित है।

२३५—दो तोले अदरक का रस निकाल कर उसमें दो तोले गुड़ डाल कर चाशनी बनाओ। बाद में एक छोटी पीपल आग पर सेक लो। इसे पीस कर उक्त पूरी चाशनी में चटाओ। पसीना आकर जुकाम उसी दिन ठीक हो जायगा।

नोट—यह प्रयोग भी रात को सोते समय ही करना चाहिए। शेष हिदायतें प्रयोग नं० २३२ की तरह समझलें।

२३६—*शास्त्रीय व्योषादि वटी* चूसने एवं "प्रतिश्याय की चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें" पर विधि पूर्वक चलने से प्रतिश्याय ठीक हो जाता है। साथ ही साथ जुकाम से पैदा हुई खांसी भी ठीक हो जाती है।

प्रतिश्याय जन्य शिर दर्द पर—

सविवरण चिकित्सानुभव यहां दिया जारहा है।

आज से करीब दो वर्ष पहले की बात है कि एक महिला अपने सिर दर्द से बड़ी परेशान होकर यहां आई। उस पर बड़े-बड़े नामी गिरामी दो शिरोरोगाचार्यों की चिकित्सा हो चुकी थी। प्रारम्भ में उनके नाम सुनकर दिल में हिम्मत कम हो गई। फिर भी रुग्णा से पूरा चिकित्सा विवरण पूछा।

उसने मुझे बताया कि दवा क्या थी ? यह तो मालूम नहीं किन्तु इसका अनुपानादिक क्या था ? यह मैं बता सकती हूँ।

उसने बताया प्रातः दुपहर एव सायं की पुड़ियाँ बादाम के हलवे के साथ लेती थी। रात को बादाम रोगन दूध में पीती थी। एक सप्ताह इलाज चलाया, कुछ लाभ न हुआ।

दूसरे चिकित्सक ने सूंघने को एक नस्य दी। उसने कुछ छींकें आईं। एक इन्जेक्शन भी लगाया। प्रति दिन तीन पुड़िया खाने को दीं। वे कन्द के साथ दी जाती थीं। इन्होंने प्रातः सायं दूध जलेबी खाना बताया था। पथ्य में दूध भात और दूध रोटी। वहां पर भी एक सप्ताह इलाज चला किन्तु कोई भी लाभ न हुआ। आज यकायक आपसे सलाह लेने आई हूं।

मैंने पूछा कि तुम्हें शिर दर्द कितने दिनों से है ? शिर में किस हिस्से में अधिक दर्द रहता है ? किस समय दर्द बढ़ता है ?

इसके उत्तर में उसने अपनी ग्रहस्थी के दुःख का तमाम इतिहास उड़ेल दिया। सचमुच भारतीय महिला वैद्यों का समय ऐसे ही प्रसङ्गों में बरबाद हो जाता है। संकोचवश सुनती रही, उसने भी खूब सुनाया।

बात चीत में मालूम हो गया कि इस शिर दर्द का सूत्रपात प्रतिश्याय से हुआ है। शिरोरोगाचार्यों ने 'वातज शिर दर्द' समझ कर चिकित्सा की फलतः सिर दर्द ठीक न हुआ।

(शेषांश पृष्ठ १६८ देखें)

प्रतिश्याय (Coryza)

Shri Ayurvedacharya Dr. Nishi Kant Shaunak A. L. I. M. (Madres)

कविराज आयुर्वेदाचार्य श्री निशिकांत वैद्य वाचस्पति प्रियशिष्यों में से हैं। आप योग्य विद्वान् और अनुभवी चिकित्सक हैं। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में सफल अध्यापक रह चुके हैं। वर्तमान में बटाला में आप सर्वप्रिय चिकित्सक हैं। उभज्ञ होने के कारण अच्छे लेखक भी हैं। एव आपने अपने लेख प्रतिश्याय में उभयात्मक भाव प्रदर्शित करने में सफलता प्राप्त की है। चित्रों के द्वारा विषय बोधारम्य बन गया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

लोग प्राय. प्रतिश्याय को एक तुच्छ सा रोग समझकर आरम्भ में इसकी चिकित्सा की ओर विशेष ध्यान नहीं देते। वैसे तो किसी भी रोग में उपेक्षा करनी उचित नहीं होती, परन्तु प्रतिश्याय के लिए तो विशेष रूप से प्रारम्भ से ही चिकित्सा की ओर ध्यान देना आवश्यक होता है। यह रोग प्रारम्भिक दशा में जितना ही सुख साध्य होता है, बढ़कर अथवा जीर्ण होने पर उतना ही कष्टसाध्य वा असाध्य हो जाता है। लिखा भी है—

सर्वएव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।
दुष्टता 'यान्ति कालेन तदाऽसाध्याभवन्ति हि ॥
"माधव नासारोग"

प्रतिपूर्वक 'श्यैङ्गतौ" धातु से कर्मणि घञ् द्वारा प्रतिश्याय शब्द सिद्ध होता है, मधुकोषाकार ने भी इसी धातु और प्रत्यय से

"वातं प्रति अभिमुखं श्यायो गमनं कफादीना यत्र सः प्रतिश्यायः"।

अर्थात्— वात को अभिमुख करते हुए जहां कफादि दोषों का गमन (स्राव) होता है, वह प्रतिश्याय है। इसी प्रकार चरक में भी प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति का वर्णन करते हुए लिखा है, कि कुपित उदान वायु द्वारा आध्मात है शिर जिसका, ऐसे मनुष्य के घ्राण मूल में स्थित श्लेष्मा रुधिर वा पित्त, मारुत को अभिमुख करते हुए जब गमन (स्राव) करते हैं तब देह को कर्षण करने वाला घोर प्रतिश्याय उत्पन्न होता है।

घ्राण मूले स्थितः श्लेष्मा रुधिरं पित्तमेव वा ।
मारुताध्मान शिरस· श्यायते मारुतं प्रति ॥
प्रतिश्यायस्ततो घोरो जायते देह कर्षणः ॥
(च० चि० अ० ८)

निदान

माधव कार ने निम्न लिखित प्रतिश्याय का निदान लिखा है—

सधारणाजीर्ण रजोतिभाष्यै क्रोधर्तु वैषम्य शिरोऽभितापैः।
प्रजागराति स्वपनाम्बु शीतैरवश्यया मैथुनवाष्पधूमैः ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायु· प्रतिश्यायमुदीरयेत् ॥

देखा भी जाता है कि ऐसे मनुष्य जो बन्द (घिरे हुये से) मकानों में प्रायः रहते हैं, और जिनमें अजीर्ण, कोष्ठ बद्धता, निरन्तर रात्री जागरण, दिवा स्वप्न, अधिक मैथुन, अति भाषण, अधिक सुरापान, वेगावरोध अथवा अन्य किसी कारण से रोग क्षमता (Immunity) कम

हो गई हो, ऐसे सभ्य पुरुषों के शिर में शीत लगने, ठण्डे २ जल में चिरकाल तक रहने शीत मारुत अथवा ओस में चिरकाल तक रहने से प्रतिश्याय रोग हो जाता है।

कई मनुष्यों ने अपने शरीर पर यह परीक्षण करके सिद्ध किया है, कि शीतादि कारण एक स्वस्थ (रोग क्षमता संपन्न) पुरुष में प्रतिश्याय रोग उत्पन्न नहीं कर सकते, अत रोग क्षमता की न्यूनता एक मुख्य सहायक कारण है।

स्वस्थ मनुष्यों में भी तीक्ष्ण धूम्र, रज आदि में देर तक रहने से यह रोग हो जाता है। मसूरिका, वात श्लेष्मिक ज्वर, आन्त्रिक ज्वर आदि रोगों में भी रोगाणु जन्य विषों द्वारा यह रोग हो जाता है।

पाश्चात्य विद्वान इसे सक्रामक अवश्य मानते हैं। परन्तु अभी तक इसके लिये किसी एक विशेष रोगाणु को, कारण सिद्ध करने में, सफल नहीं हो सके और वह कई रोगाणुओं को प्रतिश्याय के लिये सहायक कारण मानते हैं।

प्रतिश्याय के लक्षण

इस रोग में नासिका की श्लेष्मिक कला में प्रदाह (Catarrh) होजाता है जिससे वह कुछ लाल और शोथ युक्त होजाती है, यह शोथ कई बार इतनी अधिक होती है कि इससे श्वास मार्ग बन्द सा हो जाता है अत. रोगी को इसे खोलने की इच्छा से कई बार बड़े वेग से नाक द्वारा वायु को बाहर निकालना पड़ता है, नासिका, अन्दर से कुछ गरम गरम प्रतीत होती है और उसमें विशेष प्रकार की झनझनाहट होने से रोगी को बार २ छींक आती हैं।

प्रदाह की प्रारम्भिक अवस्था में श्लेष्मिक कला सूखी सी रहती है, परन्तु शीघ्र ही इसमें से स्राव प्रारम्भ हो जाता है जो कई बार इतना अधिक हो जाता है कि रोगी तङ्ग आ जाता है। यह स्राव कभी कभी बाहर को न निकल कर पीछे गले की ओर चलता रहता है और कई बार इतना तीक्ष्ण होता है कि इसके कारण नाक के आस पास ओष्ठों पर जलन सी होने लग जाती है, गले की ओर जाता हुआ यह स्राव गले की श्लेष्मिक कला में भी प्रदाह उत्पन्न कर देता है जिससे कई बार निगलने में भी कष्ट अनुभव होता है।

यह स्राव धीरे-धीरे जलीय से गन्दला और गाढ़ा होने लगता है और धीरे-धीरे प्रदाह के शान्त होने पर बन्द हो जाता है। इसके साथ साथ रोगी में अगमर्द, रोमहर्ष, मन्द ज्वर, प्यास की अधिकता आदि लक्षण भी कभी—कभी पाये जाते हैं। नासिका का ललाटास्थि कोटर, जतुकास्थि कोटर, गण्डास्थि कोटर, आँखों तथा कानों से सम्बन्धित है।

इस प्रकार सम्बन्धित होने से यह श्लेष्मिक कला का प्रदाह इन-इन स्थानों पर भी न्यूनाधिक मात्रा में अपना प्रभाव दर्शाता है, जिससे कि प्रतिश्याय के रोगी में आखों के आस पास, ललाट में, गण्ड प्रदेश में वेदना प्रतीत होती है। कभी-कभी आखों से जल स्राव भी प्रारम्भ हो जाता है, (Eustachian tube) कण्ठ कर्णी नाली द्वारा प्रदाह के कान में प्रसार करने पर कभी कभी कर्ण शूल, कर्ण प्रदाह और कुछ अश में बाधिर्य तक की प्रतीत होती हैं।

यह सब लक्षण जीर्ण प्रतिश्याय में प्राय पाये जाते हैं, यही प्रदाह श्वास प्रणाली में पहुँच कर कास और फुफ्फुस-कोष्ठों में पहुँच कर क्षय तक को उत्पन्न करती है। निदान में कहा भी है।

प्रतिश्यायादथो कास. कासात्सजायते क्षय।

चिकित्सा

जैसे पहले वर्णन किया जा चुका है, नव प्रतिश्याय सुख साध्य होता है और केवल थोड़े से उपवास करने, शिर को भली भाति वस्त्र से ढक कर गरम रखने, निवात गृह में वास करने और कोई ऐसी औषधि सेवन से जिससे कि स्वेद आ जाये, प्राय. नव प्रतिश्याय ३-४ दिन में ठीक हो जाता है।

भाव प्रकाश में लिखा है—

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वात विवर्जितम्।
वस्त्रेण गुरुणा तेन शिरसो वेष्टननं हितम्॥

प्रतिश्याय की आम अथवा पक्वावस्था का ध्यान रखते हुए सामावस्था में उपवास भी पर्याप्त लाभप्रद होता है।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनु स्वरः।
क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमाम पीनस लक्षणम्॥

यह आम प्रतिश्याय के लक्षण हैं। प्रतिश्याय की इस अवस्था में उपवास से लाभ का वर्णन करते हुए कहा है—

कुक्षि अक्षि भवा' रोगाः प्रतिश्यायः नवज्वरः।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशम यान्ति लघनात्॥

कुक्षि भव रोग, अभिष्यन्द और अधिमन्थ यह दो नेत्र रोग (इस प्रकार तीन) प्रतिश्याय और नव ज्वर यह पांच रोग पांच दिन के उपवास से शान्त हो जाते हैं।

२३८—मृत्युञ्जय अथवा त्रिभुवन कीर्ति रस १ रत्ती
सितोपलादि अथवा तालीसादि १॥ माशा
—ऐसी ३ मात्रा निम्न क्वाथ से दें।

वहुलैस्तुलसी पत्रैरुषणमित्रै' कृत कला चित्रै'॥
क्वाथः सितासहाया कफज्वर प्रतिश्याय शिरोऽर्तिहा॥
सि० भै० म० माला।

२३९—तुलसी पत्र मरिच
खूबकला प्रत्येक समभाग
—लेकर क्वाथ में खांड मिलाकर मृत्युञ्जय आदि की मात्रा से दिन में तीन बार दें। इससे पसीना आकर एक दो दिन में ही प्रतिश्याय और इसके साथ होने वाला ज्वर, शिरः शूलादि शान्त हो जाते हैं।

नासा रोग में कहा पञ्चामृत रस भी १-२ रत्ती की मात्रा में उपरोक्त क्वाथ से देने पर नव प्रतिश्याय में लाभ होता है।

२४१—पाश्चात्य वैद्य प्रायः एस्प्रीन ३ ग्रेन
डोवर्स पाउडर २ ग्रेन
क्विनीन ५ ग्रेन
—दिन में ऐसी ३ मात्रा गरम जल या चाय आदि से देते हैं। (Dovers Powder) डोवर पाउडर के योग में पड़ी अहिफेन स्राव को शोषण करने में और एस्प्रीन के साथ मिल कर शिरः शूल को शान्त करने में सहायक होती है। एस्प्रीन-और क्विनीन मिल कर स्वेद लाकर ज्वर को भी शान्त कर देते हैं। अतः यह योग भी बड़ा लाभप्रद है। शूल की अधिकता में एस्प्रीन ५ ग्रेन और क्विनीन ३ ग्रेन कर देनी चाहिए।

जीर्ण प्रतिश्याय प्रायः कष्ट साध्य होता है और जब तक रोगी के आहार विहार और उपचार का पूर्ण रूप से ठीक प्रबन्ध न हो रोग ठीक होने में नहीं आता।

इसकी चिकित्सा में रोगी के बल को भी बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। निम्नयोग बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

२४१—पोस्त डोडा उन्नाव
लसूड़िया प्रत्येक ५-५ तोला
बनफशा मुलहठी
काजुबान रेशाखत्मी
जूफा खत्मी
खबाजी प्रत्येक २॥-२॥ तोला
—यह सब रात को पांच सेर पानी में भिगोदें, प्रातः काल मसल कर छान लें। इसमें ५॥ खाण्ड डाल कर चाशनी बनालें। इसी प्रकार रात को दूसरे पात्र में
बादाम गिरी खीरे
कद्दू खरबूजे के बीज
खशखश प्रत्येक २॥-२॥ तोला
—थोड़े से पानी में भिगोदें। प्रातः इसकी पिट्ठी बनालें।
कीकर का गोंद कतीरा गोंद
बिहीदाना प्रत्येक १।-१। तोला

(शेषांश पृष्ठ १६६ पर देखें)

जीर्ण प्रतिश्याय और उसकी चिकित्सा

ले०—आयुर्वेदाचार्य कविराज रामसिंह वैद्य वाचस्पति धर्मार्थ आ० औषधालय नूरपुर (कांगड़ा)

कविराज रामसिंह जी वैद्य वाचस्पति आयुर्वेदाचार्य सयत और अनुरक्त रहने वाले शिष्य वर हैं। आप १०-१२ वर्ष से कागड़ा प्रान्त के प्रख्यात नगर नूरपुर में धर्मार्थ दातव्य चिकित्सालय के अध्यक्ष हैं। चिकित्सा साफल्य के कारण आप आबाल वृद्ध सबके प्रिय हैं। अन्वेषण की प्रियता के कारण आपने अनेक औषधियां प्रस्तुत की हैं। आपने अपने लेख में जीर्ण श्याय और उसकी चिकित्सा में वांछनीय विधि का अनुसरण किया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

मेरे गुरुदेव प्रिन्सिपल हरदयाल जी ने मुझे पत्र द्वारा आज्ञा दी कि मैं प्राणाचार्य—"ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक" के लिये अपने इच्छित विषय पर लेख लिखूं, अतः उनकी आज्ञा पालनार्थ मैं प्रतिश्याय (Cold) (जिसे यूनानी वाले जुकाम कहते हैं) के बारे में अपने अनुभव के आधार पर एक लेख भेज रहा हूँ।

प्रतिश्याय एक ऐसा रोग है कि जिससे सभी परिचित हैं, प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को कभी न कभी इसका साक्षात्कार हुआ होगा, मैंने कई सज्जनों को यह कहते सुना है कि स्वास्थ्य की रक्षा के निमित्त वर्ष में एक दो बार प्रतिश्याय हो जाना हितकर है। लगभग दो वर्ष पूर्व मैं भी इस उक्ति में ननु, नच करने का साहस नहीं करता था, क्योंकि मुझे भी स्वयं वर्ष में विशेषकर शीत काल में ऋतु परिवर्तन के समय एक दो बार प्रतिश्याय हो जाया करता था, किन्तु अब मैं अपने दो वर्ष के अनुभव के आधार पर यह विश्वास पूर्वक कह सकता हूं कि आयुर्वेद द्वारा प्रदर्शित आहार विहार विधि पूर्वक रखने से तथा ऋतुचर्या दिनचर्या का पालन करने से एक प्रतिश्याय ही क्या सभी प्रायः रोगों से मनुष्य पूर्णतया बच सकता है, इस सृष्टि के रचियता परमपिता परमात्मा ने यह सृष्टि हमारे सुख के लिए उत्पन्न की है, इससे सुख कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इसका प्रतिपादन वेदों तथा आयुर्वेदादि उपवेदों में किया गया है, जो उनको पढ़कर समझ कर जितनी मात्रा में उस विधि का पालन करेगा, वह उतनी मात्रा में सुख प्राप्त करेगा, ऐसा मेरा अनुभव है। स्वास्थ्य स्वाभाविक अवस्था है और रोग अस्वाभाविक! आयुर्वेद के ग्रथों में वर्णित आहार विहार तथा ऋतुचर्या दिनचर्या का पालन करने वाला मनुष्य अपने स्वास्थ्य को चिर स्थायी रख सकता है। सोलह वर्ष तक ज्ञान को परिपक्व न होने के कारण तथा साठ वर्ष के पश्चात् इस भौतिक शरीर के स्वाभाविक अपरिहार्य ह्रास के कारण यदि कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु उक्त आयु के मध्य में रोगी पड़ना एक महान पाप है। आज प्रतिश्याय के उत्पत्ति कारणों तथा चिकित्सा आदि पर प्रकाश डाला जाता है।

प्रतिश्याय का निदान तथा सम्प्राप्ति—मल मूत्र के रोकने से, बिना भूख और असमय तथा अधिक मात्रा

में भोजन करने से तथा भोजन सम्बन्धी अन्य नियमों का उलंघन करने से, दिनमें बहुत सोने तथा रात्रि में बहुत जागने से, ऋतु के अनुसार अपना आहार विहार न रखने से, विबन्ध कारक भोजन करने से, अधिक शीत श्लेष्म-वर्धक वस्तुओं के सेवन से, धुआ, रज आदि के नासिका में प्रवेश करने से, शीत स्थान पर अधिक समय तक कार्य करने से किसी बन्द स्थान की अशुद्ध विषाक्त वायु के नासिका में प्रवेश कर जाने तथा ऋतु परिवर्तन के समय कुपित हुआ वायु शेष कुपित दोषों को शिर में अवरुद्ध करके नासिका द्वारा प्रवृत्त करता है तो यही प्रतिश्याय कहलाता है, जैसे कि महर्षि चरक ने लिखा है—

सधारणाजीर्णरजोतिभाष्यैः क्रोधर्तु वैषम्य शिरोऽभितापैः ।
प्रजागराति स्वपनाम्बु शीतै रवश्यया मैथुन वाष्प धूमैः ॥
सस्त्यान दोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्याय मुदीरयेत्तु ॥

पूर्वरूप—प्रतिश्याय के उत्पन्न होने से पहले निम्न लक्षण देखने में आते हैं—छींकें आना, मस्तक का भारी होना, आंखों का जकड़ जाना, अगों का टूटना, रोमांच होना, इसी प्रकार के अन्य उपद्रवों का उत्पन्न होना, जैसे माधवाचार्य ने लिखा भी है—

क्षव प्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णतास्तम्भोऽङ्ग मर्द परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवा श्चाप्यपरेपृथग्विधा नृणाप्रतिश्याय पुरः सरा स्मृताः॥

रूप—वातादि भेद से प्रतिश्याय वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सन्निपातिज तथा रक्तज पांच प्रकार का है । और भिन्न २ अवस्था में लक्षण इस प्रकार हैं—

१—वातिक अवस्था में—नाक का अवरुद्ध होना, गल तालु और ओष्ठ का सूखना, कनपटी का दुखना, गले का बैठ जाना, आदि लक्षण देखे जाते हैं ।

२—पैत्तिक अवस्था में—नाक से पीले पानी का चलना तथा नासिका में दाह होना साथ में सारे शरीर का उष्ण होना, नाक से धुआ सा निकलता प्रतीत होना आदि लक्षण देखे जाते हैं ।

३—श्लैष्मिक अवस्था में—नाक से सफेद बहुत कफ का निकलना, नेत्रों का कुछ भारी होना, गला तालु, ओष्ठ में कुछ खुजली का प्रतीत होना, शरीर का विशेष भारी होना आदि लक्षण देखे जाते हैं ।

४—सन्निपातिज अवस्था में—उपरोक्त सभी लक्षण मिश्रित रूप से पाये जाते हैं ।

५—रक्तज अवस्था में—श्लेष्म के साथ रक्त का आना तथा पैत्तिक प्रतिश्याय के प्रायः सभी लक्षण पाये जाते हैं ।

चिकित्सा—जो व्यक्ति सर्वदा के लिए सर्वथा प्रतिश्याय आदि रोगों से बचना चाहे, उसे अपना आहार बिहार अपनी सब इन्द्रियों की चेष्टायें तथा क्रियायें, अपना जागना और सोना, अपनी ऋतुचर्या और दिनचर्या आयुर्वेदोक्त विधि अनुसार युक्ति पूर्ण रखनी चाहिए। यदि भूल से आहार विहारादि की किसी त्रुटि के कारण प्रतिश्याय के उपरोक्त पूर्वरूप शरीर में प्रकट होने लगें तो उसको प्रतिश्याय के उत्पादक दोषों की सञ्चय अवस्था समझते हुये उनको वहीं शांत करने का प्रयत्न करना चाहिए, एतदर्थ उपवास सर्व श्रेष्ठ उपाय है । जैसे चक्रदत्त ने लिखा है—

अग्नि कुक्षि भवा रोगाः प्रतिश्याय व्रणा ज्वराः ।
एते पञ्च रात्रेण शामयन्ति केवलमेव लंघनात् ॥

उपवास के दिन नमकीन गर्म जल इच्छानुसार पिया जा सकता है, इससे शरीर की शुद्धि होने में सहयोग मिलता है, क्योंकि नमकीन गर्म वात श्लेष्मा के सघात को तोड़कर उनको शान्त करता है मल और मूत्र को लाने में सहयोग देता है, यदि शरीर में कुछ वेदना हो और ज्वर भी साथ में हो आधा सेर सहन करने योग्य नमकीन गर्म जल पीकर कम्बलादि आवरण के सहयोग से पसीना लेना चाहिए, यदि इससे भी शरीर हल्का न हो तो रात्रि के समय

२४२—बनफसा	६ माशे
गुलाब पुष्प	१ तोला
तुलसी पत्र	३ माशे
काली मिर्च	४ रत्ती

—इनके क्वाथ से मधुर 'विरेचन चूर्ण" ६ माशे खा लेना चाहिए, इससे प्रातः काल उदर शुद्ध होकर शरीर दोषों से रहित होकर हल्का हो जायगा, अब भूख लगने पर मुनक्का, दाख, मधु, या तुलसी पत्र की चाय इच्छानुसार पी जा सकती है, तीसरे दिन यदि शरीर सर्वथा हलका प्रतीत हो और भूख खूब लगी हो तो कुलथ की दाल या मूंग अथवा मसूर की दाल में-अदरक लहसुन, जीरा आदि मिलाकर सेवन करना चाहिए किन्तु रात्रि के समय केवल तुलसी पत्र की चाय ही सेवन करनी उचित है।

यदि प्रतिश्याय के दोषों की सञ्चय अवस्था में ध्यान न दिये जाने के कारण प्रतिश्याय अपने सर्व लक्षणों को प्रकट कर देवे तो भी उपरोक्त विधि से इसका प्रतिकार करना चाहिए।

जीर्ण प्रतिश्याय चिकित्सा —कई बार प्रथम अवस्था में असावधानता के कारण प्रतिश्याय जीर्णावस्था को प्राप्त कर जाते हैं। और कई प्रकार के उपद्रव पैदा कर देता है, जैसे माधवाचार्य ने लिखा है—

बाधीर्यमन्ध मूकत्व घोराश्च नयनामयान्।
शोथाग्निमाद्य कासादीन् वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः॥

यहां तक कि प्रतिश्याय की उपेक्षा करने से क्षय जैसी भयङ्कर व्याधि रोगी पर आक्रमण कर सकती है, जैसे माधव निदान के पञ्च निदान प्रकरण में लिखा है—

प्रतिश्यायादथो कासः कासात्सजायते क्षयः॥

अतः प्रतिश्याय की जीर्णावस्था में बड़ी सावधानता से उसे शीघ्र दूर करने का प्रयास करना चाहिए, एक जीर्ण प्रतिश्याय से पीड़ित रोगी का चिकित्सा क्रम अपने अनुभव के आधार पर पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखा जा रहा है—

एक ३५ वर्षीय ससरदार साहब अपना कष्ट इस प्रकार सुनाने लगे, जब से मैंने होश संभाला है, तबसे मैं अपने आपको जुकाम रोग से पीड़ित देख रहा हूं, कभी जुकाम भी हो जाता है, सिर प्राय. भारी रहता है, नासिका से सास लेने का सौभाग्य प्रायः मुझे कम ही रहता है, जिह्वा का स्वाद नष्ट प्राय है, अच्छी भूख की अनुभूति से वञ्चित रहता हूँ और शरीर रक्षा के लिए खा लेता हूं अच्छा भोजन मिलने पर भी स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन क्षीण हो रहा है, रात्रि को खांसी भी कभी कभी आती है, आप दमे के बीमारों की अच्छी चिकित्सा करते हैं, क्या मेरा भी इस रोग से छुटकारा कर पायेंगे।

इस व्यक्ति के रोग का निदान "जीर्ण प्रतिश्याय" करते हुये इस प्रकार चिकित्सा प्रारम्भ की—

रोगी को रात्रि भोजन तथा साय काल का फलाहार सर्वथा बन्द करा दिया गया,

२४३-महालक्ष्मी विलास रस	एक रत्ति
तालिसादि चूर्ण	२ माशे

—ऐसी एक २ पुड़ियां मधु के साथ प्रात. ८ बजे तथा सायं काल ५ बजे दिलाई गयी, लवण भास्कर चूर्ण

(पृष्ठ १६२ का शेषांश)

मैंने उसे दूसरे दिन आने को कहा। उसे समझा दिया कि दवा जरा तेज होगी, घबड़ाना नहीं, सिर-दर्द अवश्य ठीक हो जायगा।

२३७—दूसरे दिन 'देवदाली बन्दाल' के ४-५ फलों का स्वरस निकाल कर रुग्ण को कुर्सी पर बैठा कर गरदन पीछे की ओर झुका कर ड्रापर से ६-६ बूंद दोनों नथुनों में टपकाया और ऊपर सूंघने को कहा। सारा गला, मुंह, नाक आदि कड़वे हो गये फिर पानी बहना शुरू हुआ। रुग्ण को उसके परिचारक के साथ घर पहुँचा दिया। खाने को घृत युक्त खिचड़ी बतादी। दो दिन रात पानी खूब बहा। सिर दर्द हमेशा को जाता रहा। सचमुच यह प्रयोग अपूर्व फलप्रद है।

नोट—ऊपर लिखे सभी प्रयोग परमोत्तम निरापद अनुभव पूर्ण एव चिकित्सानुभव के प्राणस्वरूप हैं। व्यर्थ तो कभी जाते ही नहीं। सरल इतने हैं कि कलम से लिखे नहीं जा सकते।

२ माशे भोजनान्तर दिलाया गया। रात्रि के समय मधुयष्ट्यादि क्वाथ से सिद्ध दुग्ध इच्छानुसार दिलाया गया, कब्ज के दिन इसमें बादाम रोगन डलवा दिया जाता था, प्यास के समय गर्म पीने को बताया, प्रात. सायं शुद्ध वायु में भ्रमण तथा रात्रि को शीघ्र सोने प्रातः शीघ्र जागने ब्रह्मचर्य सेवन आदि स्वास्थ्य के आधार भूत नियमों के पालन का आदेश दिया गया, इस प्रकार लगभग दो मास के पश्चात् रोगी ने अपने इस भयङ्कर रोग से छुटकारा पा लिया।

जीर्ण प्रतिश्याय में आवश्यकतानुर द्राक्षासव, द्राक्षारिष्ट, च्यवनप्राश आदि रसायनों का भी सहयोग लिया जा सकता है।

उपसंहार—सभी प्रकर के रोगों की चिकित्सा के लिए दोषों का ध्यान रखते हुए पथ्य की ठीक व्यवस्था और स्वास्थ्य के साधारण नियमों का पालन औषधि की अपेक्षा अधिक कल्याण कारी है, अतः इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

नोट—आयुर्वेदोक्त स्वास्थ्य के नियमों का वर्णन अपने अनुभव के आधार पर करूंगा, यह मेरा बड़ा प्रिय और अनुभूत विषय है।

(पृष्ठ १६५ का शेषांश)

—लेकर वस्त्र पूत चूर्ण बनालें।

उपरोक्त पिष्ठी और चूर्ण डाल कर अवलेह सिद्ध करें। सिद्ध होने पर ऽ= बादाम रोगन मिलाकर सुरक्षित करलें—इसे १।-२॥ तोले की मात्रा में दिन में दो बार खिला कर ऊपर से आयुर्वेदीय चाय अथवा मधुयष्टि क्वाथ दूध और खाड मिलाकर दें। आश्चर्यजनक लाभ प्रीतत होता है। शास्त्रोक्त योगों में से स्वर्णयुक्त लक्ष्मी विलास रस २-२ रत्ती की मात्रा में उचित अनुपान से बहुत उपयोगी है।

भिन्न-भिन्न वैद्य कफकेतु, चन्द्रामृत आदि रसों का तालीसादि, सितोफलादि, लवंगादि इत्यादि चूर्णों का च्यवनप्राश, कूष्मांण्डादि अवलेहों का प्रयोग भी अवस्थानुसार करते हैं। और यश के भागी बनते हैं।

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
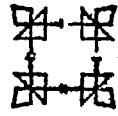
कर्णरोग विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में श्रवणेन्द्रिय रचना और उसके रोग व-
शमनोपायों का रुचिकर विवेचन हुआ है।

(४)

कर्ण और उसके रोग

लेखक–गौरीशङ्कर श्रीवास्तव कविराज साहित्य महोपाध्याय, बीना (इटावा) मध्यप्रदेश

श्री गौरीशङ्कर जी श्री वास्तव साहित्य महोपाध्याय मध्य प्रदेश के बीना (इटावा) नामक स्थान पर स्वतन्त्र चिकित्सा वृत्ति के द्वारा आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। साहित्य में आपकी अच्छी रुचि है और आप अच्छे कहानी लेखक हैं। आपने "कर्ण और उसके रोग" नामक लेख में कर्णेन्द्रिय रचना उसके कार्य एव उसके रोगों पर भली प्रकार मनन किया है लेख ज्ञान वर्द्धक है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

श्रवणेन्द्रिय का माध्यम कान है। इसके पूर्व कि हम कर्ण रोगों पर विचार करें यह आवश्यक है कि शरीर क्रिया विज्ञान और रचना (Physiology and anatomy) की दृष्टि में इस महत्व पूर्ण ज्ञानेन्द्रिय की रचना सक्षिप्त में समझलें जिस से रोगों की चिकित्सा में सहायता मिले।

रचना:—कान मोटे तौर से तीन भागों में विभक्त है—

१–बाह्य कर्ण (External ear)
२–मध्यकर्ण (Middle ear)
३–आन्तर कर्ण (Internal ear)

बाह्य कर्ण—दो भागों में बटा है।

(अ) कान का बाहर से दिखने वाला भाग इसे कर्ण शुष्कली (Pinna) कहते हैं। यह आढी टेढ़ी त्वचा च्छादित कूर्चा से बना है जो खोपड़ी के बाहर स्नायु और हड्डियों से बंधी हुई है। इसका काम स्वर लहरों को एकत्रित करना और उन्हें कर्ण नलिका की ओर भेजना है।

(ब) इसका दूसरा भाग कर्ण नलिका (Auditory canal) है जो लगभग सवा इञ्च लम्बी होती है। यह भीतर नीचे की ओर जाती है। इसका बाहरी भाग त्वचा का और भीतरी हड्डियों का है। इसके भीतरी ओर एक पतला पर्दा (Tympanic membrance) रहता है जो ढोल के समान तना रहता है।

मध्य कर्ण—कान के पर्दे के भीतरी ओर मध्यकर्ण रहता है। कनपटी की हड्डी में यह आढ़ा–टेढ़ा सकरा और पोला भाग है। इसमें से Eustachian नलिका लगभग एक इञ्च लम्बी निकलती है जो भीतर कंठ में जाकर खुलती है। अतः मध्य कर्ण का पोला भाग सदा वायु से भरा रहता है। इस कान के बाहरी ओर Drum और भीतरी ओर Internal ear रहता है।

पोले हिस्से में तीन छोटी हड्डियों की जञ्जीर बनी रहती है जो बनावट के हिसाब घन (Hammer) नेहाई (Incus) और रकाब (Stapes) कहलाती हैं।

घन की मूढ़ पर्दे (Drum) के भीतरी बाजू से, और चौड़ा भाग निहाई से जुड़ा हुआ है। निहाई की हड्डी रकाब से जुड़ी रहती है। रकाब का तरल Internal ear के बाहरी बाजू के छेद पर रहने वाले पर्दे पर रहता है। कान के पर्दे पर पड़ने वाले स्वरा-

घात का प्रवाह इन हड्डियों की जञ्जीर द्वारा Internal ear में पहुंचता है।

आतर कर्ण—यह मध्य कर्ण के भीतरी ओर कनपटी की हड्डी के भीतर तिकोना हिस्सा है जो अस्थि कुहर Bony labyrnith कहलाता है। इस भाग की रचना बड़ी उलझी हुई है।

इसके तीन भाग हैं।

(क) मध्यभाग (Vesti bule) यह अस्थि कुहर के बीच का पोला है जिसके सामने शखाकृति भाग (Cochlıea) रहता है।

(ख) कर्ण वलय (Semicircular canal) में तीन अर्ध वर्त्तुलाकार नलियां हैं जो (Vesti bule) के ऊपरी और पिछले भाग में रहती हैं—एक खड़ी, एक आड़ी और एक तिरछी। प्रत्येक में पतले आवरण की नली बनी रहती है। यह तीनों नलियां एक साथ पाँच मु ह से Vestibule में खुलती हैं क्योंकि इनमें की दो नलिया मध्य भाग में खुलने के पूर्व एक दूसरे से मिल जाती हैं। प्रत्येक नली के मुंह के भीतर (Auditory nerve) की शाखाएं फैली रहती है।

कर्ण वलयों से निकलने वाले Auditory nerve की शाखायें छोटे मस्तिष्क की ओर जाकर शरीर का तौल सभालने में सहायक होती हैं।

अस्थिकुहर (Semi circlular canal) में पतले आवरण की बनी एक थैली रहती है जिसे त्वक् कुहर कहते हैं। यह Internal ear के उक्त तीनों भागों में रहती है और उसमें (Endo lymph नामक तरल पदार्थ भरा रहता है।

नलियों में रहने वाले तरल पदार्थ पर दवाव पड़ने के कारण तज्जन्य प्रेरणा (Impulse) मस्तिष्क की ओर प्रवाहित होती है जिससे हमें अवयवों की स्थिति (Position) का बोध होने में सहायता मिलती है।

(ग) शङ्खाकृति भाग (Cochlea) यह मध्य भाग का अगला बाजू है जिसका आकार शङ्ख के समान है। इसका बाह्य बाजू एक छिद्र है जिस पर पर्दा रहत है जो इसे मध्य कर्ण से प्रथक करता है।

इसके भीतरी तरल पदार्थ में (Organ of coti विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय से Auditory nerve के छोर जुड़े रहते हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों के कम्पन के कारण नाड़ी तन्तुओं के छोर उद्दीपित होकर प्रेरणा (Impulse) उत्पन्न करते हैं। यह प्रेरणा नाड़ी तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क के श्रुति केन्द्र (Area of hearing) में आता है जहां उसका सुनने की सम्वेदना में रूपान्तर हो जाता है।

सुनने की क्रिया—स्वर लहरें कर्ण शुष्कली में जमा होकर कर्ण नलिका (Auditory canal) में प्रविष्ट होती है और उसके पर्दे (Drum) पर जमा होकर हलचल करती हैं।

मध्य कर्ण की तीन हड्डियों वाली जञ्जीर इस पर्दे से जुड़े होने के कारण यह लहरें कान की हड्डियों के द्वारा Internalear के बाहरी छेद Oval for amen पर पहुँच जाती हैं जिससे त्वक-कुहर के बाहरी-भीतरी तरल पदार्थ में लहरें उत्पन्न होती है। कान की विशिष्ट ज्ञानेन्द्रिय Organ of coti त्वक् कुहर से जुड़ी होने के कारण Auditory nerve के माध्यम से उत्पन्न हुई प्रेरणा (Impulse) मस्तिष्क के श्रुति केन्द्र में पहुंचती है जहां श्रवण की सम्वेदना में यह रूपान्तरित हो जाती है।

रोग और उनकी चिकित्सा

कर्ण शूल—कानों में प्राप्त वायु की गति को पित्त कफ और रुधिर कुपित होकर आवृत कर देते हैं तब कानों में पीड़ा होती है।

चिकित्सा—

२४४—आक के पत्तों में घी लगाकर अग्नि पर सेकिये और उनका रस निकाल कर कान में डालिए।

२४५—बकरे के मूत्र में सेंधा नमक डाल कर उसे गरम करिए और गुनगुना होने पर उसे कान में डालिये।

२४६—अदरक का रस मुलहठी
सेंधा नमक शहद
आंवला पृष्ठपर्णी का रस
सुहागा नीम के पत्तों का रस
प्रत्येक समभाग

—लेकर सबको सरसों के तैल में डाल गरम करिए और पच जाने पर कान में डालिए।

२४७—दीपिका तैल का प्रयोग करिए।

कर्ण नाद—कर्ण श्रोत में स्थित वायु प्रकुपित होकर मृदङ्ग, शङ्ख जैसे शब्दों की उत्पत्ति करती है। इस व्याधि को कर्ण नाद कहते हैं।

चिकित्सा—

२४८—सज्जी खार सूखी मूली
हींग पीपल
सौंफ प्रत्येक समभाग

—लेकर कल्क करिए। इसका चौगुना तिल का तैल मिलाइए। कल्क का चौगुना सिरका लेकर तैल में डालिए। फिर इसे चूल्हे पर चढ़ा दीजिए। तैल पच जाने पर उसे छान लीजिये। कर्ण शूल, कर्ण नाद और बहिरापन दूर होते हैं।

कर्णस्राव—चोट, कान में पानी जाने अथवा फुन्सी आदि पकने के कारण कान से पीव बहने लगती है। इसमें वायु विकार होता है। इस व्याधि को कर्ण-स्राव कहते हैं।

चिकित्सा—

पहिले कान को साफ कर लेना चाहिए। इसके लिये Hydrogen per oxide, फिटकिरी का जल अथवा नीम का पानी प्रयोग करें। फिर—

२४९—क्षार तेल डालिए। रोता हुआ आदमी हंसने लगता है।

२५०—कौड़ी की भस्म कान साफ करके डालिये।

२५१—शङ्ख भस्म भी लाभप्रद है।

२५२—सोंठ हर्र
लोध मजीठ
आंवला प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण कर कैथ के रस में शहद मिला कर कान में डालिए।

२५३—सज्जी खार के चूर्ण को बिजौरे नीबू के रस में मिला कर कान में डालिए।

२५४—आम जामुन
महुआ बड़

—इनकी कोंपलों का कल्क बराबर तिल के तैल में पकाइए। फिर इसका प्रयोग करें।

२५५—समुद्रफेन का चूर्ण कान धोकर डालें।

२५६—पलास की जड़ का छिलका तिल के तैल में पका कर उस तैल का प्रयोग करें।

२५७—मूली के पत्तों का रस १ तोला
तिल का तैल १ तोला

—लेकर उसे पकावें। तैल मात्र रह जाने पर ठण्डा करके ३-४ बूंद कान में डालिए।

कर्ण कण्डू और कर्ण गूथ—कफ सयुक्त वायु जब कानों में खुजली उत्पन्न करता है तो कर्ण कण्डू और पित्त की ऊष्मा कफ को सुखाकर जो खुजली मचाती है उसे कर्ण गूथ कहते हैं।

इसमे क्षार तैल अथवा दीपिका तैल का प्रयोग लाभकर है।

कृमि-कर्ण—जब कानों में कीड़े पड़ जाते हैं तब कृमि कर्णक व्याधि कही जाती है। यह त्रिदोषज होती है।

चिकित्सा—

२५८—हरताल को गौ मूत्र में पकाकर डालिए।

२५९—हींग अथवा मद्य का कान में डालने के लिए प्रयोग करें।

२६०—सोंठ मिर्च
पीपल समभाग

—इनका चूर्ण काम में लावें।

२६१—हुलहुल का स्वरस अथवा निरगुण्डी का स्वरस अथवा फिर किच आऊ की जड़ का स्वरस काम में लाइए।

२६२—नीम की पत्तियां पानी में डालकर वफारा दीजिए।

कर्ण विद्रधि—कान में दोषों से अथवा चोट आदि के कारण विद्रधि उत्पन्न हो जाती है तब लाल या पीला स्राव होकर सुई कोंचने सी पीड़ा हो, दाह और चूसने जैसी अनुभूति हो तो कर्णविद्रधि समझना चाहिए। यह व्याधि बड़ी भयङ्कर होती है और कान के मूल में शोथ हो जाता है।

चिकित्सा—

२६३—कुट कलोंजी
कायफल कुलथी
प्रत्येक समभाग

—लेकर पानी में पीसकर गरम करिए और गुनगुना गुनगुना लेप करें।

२६४—हींग १ माशा
अफीम १ माशा
वच १ माशा

—सबको भंगरा के रस में पीसकर लेप करिए।

२६५—कुचला और कारे जीरे को पानी में पीसकर गरम करिए और उनका लेप कीजिए।

२६६—कुलथी कायफल
घी प्रत्येक समभाग

—लेकर कांजी में पीसकर गुनगुना लेप करिए।

बहिरापन—

२६७—आड़ू की गुठलियों के तेल का लगातार छै मास प्रयोग करने पर बहिरापन जाता रहता है।

कर्ण रोग तथा उनके कुछ अनुभूत योग

लेखक-आयुर्वेदाचार्य पं० श्री छविदत्त जी शर्मा वैद्य, अमृतसर

मान्य लेखक अमृतसर के प्रमुख चिकित्सक हैं। आपका ज्ञान वृद्ध और स्फुरणशील हैं। आयुर्वेद की सौत्रिक रचनाओं की आधुनिक तथ्यों के अनुसार परस्पर तुलनात्मक गवेषणा करना आपका स्वभाव है। आप आयुर्वेद के अच्छे पडित एवं आयुर्वेदाचार्य हैं। आपने अपने प्रस्तुत लेख में जहा कर्ण रोग और उनकी चिकित्सा पर पूर्ण प्रकाश डाला है वहा आपने कर्णेन्द्रिय के प्रधान सञ्चालक मन और हृदय के सम्बध में ऊची समविन्ता प्रदर्शित की है। आगे चलकर दैहिक ग्रंथियों की विकृति से ही सब रोग उत्पन्न होते हैं ऐसा मानने वालों को आयुर्वेदिक सिद्धात प्रदर्शन में भी सफलता प्राप्त की है। लेख पठनीय है।

—आचर्य हरदयाल वैद्य

कर्ण को आकाश की इन्द्री मानते हैं। शब्द आकाश का गुण है। ससार में जो भी शब्द होता है वह कर्णों द्वारा ही जाना जाता है। दिशायें शब्द की अधिदेवता है। शब्द आकाश में उत्पन्न होकर तुरन्त दशो दिशा में व्याप्त हो जाता है अर्थात् दिशायें मन के वेग की तरह से शब्द को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती हैं। ऐसा सुश्रुत से ज्ञात होता है। दिश श्रोत्रस्य, ऐसा जो सुश्रुत शरीर स्थान में लिखते हैं उसका यही अभिप्राय है।

कर्णों में ईश्वर ने ऐसी रेडियम लगाई हुई है जो तुरन्त ही रेडियो की तरह से शब्द को ग्रहण कर लेती है, जिस प्रकार अमेरिकादि दूर देशों में हो रहे भाषणादिकों को हम रेडियो यन्त्र द्वारा यहा पर बैठे उसी समय में सुन लेते हैं, उसी प्रकार जहा तक हमारे कानों की शक्ति होती है वहा तक के शब्द को उसी क्षण में दूर बैठे हुए सुन लेते हैं।

कर्णों का सम्बन्ध सिर से है जिस प्रकार अक्षि, नासिका आदि ज्ञानेन्द्रियों का सिरके भीतर हृदय है जो मन का स्थान है यह कमल मुकुला कर वत है यही चेतना का स्थान भी है। इससे १० ज्ञानवह नाड़ियां निकलती हैं जो ज्ञानेन्द्रियों को अपने अपने कार्य में लगाये रहती हैं तथा शरीर पर बैठो हुई मक्खी आदि का भान तुरन्त मनको कराती हैं। आधुनिक विज्ञानवेत्ता इसी को मस्तिष्क कहते हैं। मस्तिष्क से भी दश नाड़ियां निकलती हैं जो कान, नाक, आख, जिह्वा, तथा सर्व शरीर से सम्बन्ध रखती हैं। यह आंख, कान, नासिका के केन्द्रों के बिलकुल मध्य में हैं। मन स्थानीय हृदय भी ठीक इसी तरह से हैं "कर्णाक्षि नासिका मध्यगत' सु मन.सुमयूखा विकशन्ति" आयुर्वेद सूत्र मन ही सब ज्ञानेन्द्रियों का स्विच है। मन को सस्कृत साहित्य तथा इंगलिश साहित्य में

को सब रोगों का कारण मानता है अत: जितने भी सामान्यज तथा नानात्मज रोग होते हैं वह इन्हीं तीनों से होते हैं। भेद इतना है कि सामान्यज रोगों से तीनों दोषों का कुछ न्यूनाधिक विकृत भाव होता है परन्तु नानात्मजों में यह बात नहीं। वातिक संस्थानों के ८० रोग, पित्त वह स्रोतों के ४० और इसी प्रकार श्लेष्म वह स्रोतों के २० रोग प्राधान्येत चरक ने बताये हैं। शरीर का प्रत्येक भाग इन सबसे व्याप्त है अत कानों में भी सामान्यज तथा नानात्मज दोनों तरह के रोग होते हैं।

१—*कर्णशूल के सामान्य लक्षण*

समीरण श्रोत गतोऽन्यथाचरन्। समन्ततः शूल मतीव कर्णयाः। करोति दोषैश्च यथास्व मावृतः। सकर्ण शूलः कथितोदुराचरः ॥

सु० उ० २०

पित्त, कफ तथा रक्तादि दोषों से आवृत हुआ प्राण वायु जब विकृत हो जाता है और कानों में ठीक तरह से अपने कार्य को नहीं कर पाता यानी उसमें जब रुकावट होती है तब कानों में शूल होता है।

प्राण का स्थान तथा कार्य—प्राणो "मूर्द्धन्यवस्थित." यह शिर में रहता है और कण्ठ तथा उर तक जाता है (कण्ठोरश्चरः), बुद्धीन्द्रिय हृदयमनोधमनी धारण: ज्ञानेन्द्रिय सिरस्थित हृदय मनोवह अर्थात मनन करने वाली धमनियों को धारण किये हुये है। जिस प्रकार प्राण वायु सिरस्थित होता हुआ इन सब कार्यों को करता है उसी प्रकार आलोचक पित्त जिसका स्थान मूर्द्धा है तथा तर्पक श्लेष्मा जो कि शिर में स्थित है तीनों अविकृतावस्था में रहते हुए शरीर के ऊर्ध्वजत्रुओं का पालन करते हैं। इनकी विकृति से ही ऊर्ध्व जत्रु रोग होते हैं। कर्ण गत वायु जब किन्हीं कारणों से कर्णादि स्रोतों में रुक जाता है और वह अन्य मार्ग से निकलने की कोशिश करता है तब कान में सुइयां चुभने जैसी या कान फटे जाने की तरह की अथवा अग्नि से जल जाने के बाद जो वेदना होती है उसकी तरह की वेदना

हो तब यह कर्ण शूल कहलाता है। इसके अधिक बढ़ जाने पर मनुष्य को ज्वर, मूर्छा, दाह, कास, जी मचलाना, उलटी आदि उपद्रव होते हैं। यहां तक कि मृत्यु तक का भय हो जाता है। कर्ण शूल, अशब्द श्रवण अर्थात् अल्प शब्द श्रवण, उच्चैः श्रुति तथा बाधिर्य इनको चरक ने वात वह संस्थानों का रोग माना है और इसीलिये उन्होंने अशिति वात विकारों में इनको पढ़ा है।

२—कर्ण नाद (Noises in the ear)

लक्षण—

यदातु नाडिषु विमार्गमागत सएव शब्दाभिवहासु तिष्ठति।
श्रृणोति शब्दान् विविधास्तदानरः प्रणादमेन-
कथयन्ति चामयम्॥
सु० उ० अ० २०

जब शब्द ज्ञान कराने वाली नाड़ियों में वायु विमार्ग गामी होकर ठहर जाता है तब मनुष्य अनेक प्रकार के शब्दों को सुनता है इसको कर्ण नाद कहते हैं। इसको विदेह ने बड़ी सुस्पष्टता से वर्णित किया है।

शिरोगतो यदावायु श्रोतयोः प्रतिपद्यते।
तदातुविविधान् शब्दान् समीरयति कर्णयो॥
भृङ्गारक्रौञ्चनादंवा मण्डूक काकयोस्तथा।
तन्त्रीमृदङ्गशब्दंवा सामतूर्यं स्वनंतथा
गीताध्ययन वंशानां निर्घोषंद्वेडनं तथा॥
अपामिव पतन्तानॉ शकटस्येवगच्छतः।
स्वसतामिव सर्पाणा सदृश श्रूयते स्वनः॥

३—कर्ण क्ष्वेड (Nois in the ear)

यह भी शब्द वाही स्रोतों का ही रोग है परन्तु इसमें केवल एक ही तरह का शब्द कानों में आता है जो वेणुघोष यानी बांसुरी सी कानों में बजती हो। इसका लक्षण इस प्रकार है—

वायुः पित्तादिभियुक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम्।
करोतिकर्णयोःक्ष्वेड कर्णक्ष्वेडः स उच्यते।
सु० अ० २०

४—बाधिर्य (Deafness)

यह भी शब्द वहस्रोतों की ही बीमारी है। इस रोग में कानों में किसी तरह का कोई शब्द सुनाई नहीं देता अपितु जब यह रोग उपेक्षा करने पर बढ़ जाता है तब मनुष्य को यन्त्र की सहायता लेनी पड़ती है, यह श्लेष्मान्वित वायु से होता है। आरम्भावस्था में यदि मनुष्य इसकी चिकित्सा न करे तो फिर वह बिलकुल बहरा कर देता है अतः मनुष्य को सदा रोगों के प्रतीकार में सतर्क तथा सजग रहना जरूरी है।

इसके लक्षण—

सएवशब्दानुवहा यदासिराः कफानुयातोव्यनुसृत्यतिष्ठति।
तदानरस्याप्रतिकार सेविनो भवेत्तुबाधिर्यं मसशयं खलु॥
सु० अ० २०

कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड तथा बाधिर्य तीनों शब्द वह स्रोतों के ही रोग हैं। परन्तु आयुर्वेद की विशेषता देखिये कि इनका कितना अच्छा विषद वर्णन किया है जिससे कि प्रत्येक वैद्य अच्छी तरह से जानले। कर्णस्राव (Otorrhoea), कर्ण विद्रधि (Abscess in the ear) पूतिकर्ण (Feadid dis charge from the ear) यह तीनों बिलकुल मिलते जुलते ही रोग हैं। थोड़ा सा नाम मात्र का ही फर्क है।

५—कर्ण स्राव (Otorrhoea)

इसमें कान से रक्त वर्ण का सा रक्त मिश्रित जल अथवा केवल पानी सदृश स्राव होता है। कभी कभी पतला पूय भी आता है। यही सिर में कानों के केन्द्र स्थल पर चोट लग जाने के कारण तथा कानों में पानी भर जाने से अथवा कर्ण विवर में फुन्शी फोड़ा तथा किसी कारण से व्रण हो जाने से होता है। इसमें अक्सर वेदना भी होती है। इसका लक्षण इस प्रकार है।

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो जलेप्रपाकादथवापिविद्रधे.।
स्रवेत्तु पूयं श्रवणोऽनिलावृत' सकर्ण
सस्राव इति प्रकीर्तित'॥

६—कर्ण विद्रधि (Abscess in the ear)

इसमें और कर्ण स्राव में केवल इतना ही भेद है कि

कर्ण स्राव में कान से रक्त पीव तथा अरुण वर्ण का रक्त स्राव ही होता है पूय मिश्रित नहीं होता। कर्ण विद्रधि दो प्रकार की सुश्रुत मानता है एक कान के पर्दे के भीतर क्षत हो जाने से, 'सिर में शब्द वह स्रोतों के केन्द्र पर चोट लग जाने से शब्द वह स्रोत में क्षत हो जाता है। ऐसी अवस्था में कान से रक्त आता है यदि वह क्षत ठीक न हो तब वह विद्रधि का रूप धारण कर लेता है उस अवस्था में कभी-कभी पीत, रक्त, अरुण वर्ण का रक्त स्राव होता है इसको क्षत विद्रधि कहते हैं। द्वितीय दोष भेद से होती है परन्तु लक्षणों में कोई भेद नहीं होता।

लक्षण—

कान में चोषन वत पीडा होती है तथा धूआ सा कानों में प्रतीत होता है। इसका कारण तथा लक्षण इस प्रकार हैं।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुन ।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रहत्, प्रतोद धूमायनदाह चोषवान् ॥

७—पूति कर्ण

(Featıd dıscharge from the ear)

इसमें घनस्राव होता है जो पाक की शक्ल का होता है। इस में बहुधा दुर्गन्ध भी आती है, किसी-किसी अवस्था में कभी-कभी थोडा दर्द भी होता है। कभी कभी किसी में वेदना नहीं भी होती।

लक्षण—

स्थिते कफे स्रोतसि पित्ततेजसा-
विलाय्यमानेभृशसं प्रतापवान्।
अवेदनोवाऽप्यथवासवेदनो घनंस्रवेत्पूति-
च पूति कर्णक' ॥

८—कर्ण कंडू

कर्ण कंडू, कर्ण गूथक और कर्ण प्रतिनाह यह तीनों श्लेष्मा की विकृति के कारण से होते हैं। जब मनुष्य को प्रतिश्याय हो जाता है और उससे विकृति हुआ श्लेष्मा कानों की तरफ अपना मार्ग बना लेता है उससे कानों में मल सञ्चित होकर कानों में कण्डू करता है इसको कर्ण कण्डू कहते हैं।

९—कर्ण गूथक

प्रतिश्याय में विकृत हुये श्लेष्मा का जब कानों में पित्त की गर्मी के कारण पाक होकर वह कानों में खुश्क हो जाता है तब इसको कर्ण गूथक कहते हैं।

लक्षण—

कफेन कण्डू. प्रचितेन कर्णयोभृ श भवेत् स्त्रो-
तसि कर्ण संज्ञिते।
विशोषिते श्लेष्मणि पित्ततेजसा नृणा भवेत्-
स्त्रोतसि कर्णगूथक.।

१०—प्रतिनाह

कर्ण गूथक किन्हीं कारण विशेषों से द्रव होकर अपना मार्ग नासिका की तरफ बना लेता है तब इसको कर्ण प्रतिनाह कहते हैं। इसमें शखास्थि से लेकर अक्षि के नीचे और भ्रकुटि में नासिका के श्रगाटक तक आधे सिर में बड़ी वेदना होती है। जब तक यह कर्ण मल पूर्ण रूपेण नासिका द्वारा नहीं निकल जाता तब तक रोगी को शिर दर्द से शान्ति नहीं होती। यह स्राव घन तथा पीत कपर्द के वर्ण जैसा होता है। कभी कभी इसको वैद्य अर्ध्वावभेदक तथा सूर्यावर्त समझ बैठते हैं और उसकी चिकित्सा करते हैं परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होता यह मेरे अनुभव में आई हुई है। इसकी चिकित्सा 'चिकित्सा प्रकरण' में लिखी जावेगी। कर्ण मल यदि दोनों कानों से द्रव होकर नासिका के दोनों तरफ को निकलने का मार्ग बना लेता है तब ऐसी अवस्था में सारे सिर में दर्द होता है।

लक्षण—

सकर्णविट्को द्रवता यदागतो विलीयतो घ्राण-
मुख प्रपद्यते।
तदा स कर्णप्रतिनाह संज्ञितोभवेद्विकारः शिरसोऽ-
भितापन• ॥

११—कर्ण पाक

पित्त अथवा रक्त की विकृति से कर्ण पाली से लेकर सम्पूर्ण कान में छोटी छोटी फुन्सियां हो जाती हैं, इनमें से पतला पानी सा निकलता है, जहा जहा पर वह पानी लगता जाता है वहीं २ पर और अधिक फुंसियों को उत्पन्न कर देता है। इसमें मीठी मीठी खारिश भी होती है। मनुष्य ज्यों २ इसको खुजाता है त्यों २ इसमें से पानी निकल कर सारे कान को क्लेदित कर देता है और फिर इससे सम्पूर्ण कर्ण पक जाता है और गलने लग जाता है। इसकी प्रतिक्रिया शीघ्र न की जावे तो कर्ण पाली सूख कर झड़ने लग जाती है। इसमें शोथ भी हो जाता है।

लक्षण—

भवेत प्रपाकः खलु पित्त कोपतोविकोथविक्लेद-
करश्च कर्णयोः।

१२—कृमि कर्णक (warms in Ear)

इस रोग को विदेहाचार्य तो सन्निपातिक मानते हैं परन्तु सुश्रुत इसमें मौन हैं। अष्टाङ्ग हृदय के मत से भी विदेह के मत की पुष्टि होती है।

वातादि दुपितं श्रोत्रं मासासृक् क्लेदजा रुजम्।
खादन्तोजन्तवः कुर्युस्तीवा स कृमि कर्णकः ॥
अ० हृ० उ० १७

यदातु मूर्च्छन्त्यथवाऽपिजन्तवः-
सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपिमक्षिकाः-
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणोनिरुच्यते
भिषग्भिरद्यैः कृमिकर्णको गदः।
सु० उ० २०

१३—परिपोटक

कर्णपाली पर अकस्मात् लाल वर्ण का शोथ वायु से हो जाता है जिसमें स्फुरन वत पीड़ा होती है इसको परिपोटक कहते हैं। यह अधिकतर बच्चों को ही होता देखा गया है।

सुकुमारे चिरोत्सर्गात्सहसैव प्रवर्धिते,
कर्णेशोफः सरुक् पाल्यामरुणः परिपोटवान्,
परिपोट स पवनात्।

१४—उत्पात

भारी आभरणों के भार से कर्ण पाली पर एक काले वर्ण का स्फोट या पिटिका हो जाती है जो पित्त तथा शोणित की विकृति के कारण से होती है। जब इसका पाक हो जाता है तो इसमें से पानी सदृश क्लेद निकलता है।

लक्षण—

उत्पातः पित्तशोणितात्। गुर्वाभरण भाराद्यैः-
श्यावोरुग्दाह पाकवान् श्वयथुः स्फोट पिटका-
रागोषाक्लेद सयुतः। अ० हृ० उ० १७

१५—उन्मत्थक (गल्लिर)

वात तथा कफ से कर्ण पाली पर शोथ हो जाता है। इसमें किसी प्रकार की वेदना नहीं होती अपितु कण्डू होती रहती है यह स्थिर तथा स्तब्ध होता है इससे वर्ण में भी कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात् कान के प्रकृत वर्ण की तरह से ही इसका वर्ण होता है।

पाल्या शोफोऽनिलकफात्सर्वतो निर्व्यथः स्थिर।
स्तब्धः सवर्णः कण्डूमानुन्मन्थो गल्लिरश्च सः ॥
अ० हृ० उ० १७

१६—दुःख वर्धन

कर्ण के ठीक प्रकार से विद्ध न होने पर कण्डू दाह पाकरुक युक्त जो शोथ होता है उसे दुःख वर्धन कहते हैं। इसको सन्निपातिक मानते हैं।

दुर्विद्धे वर्धिते कर्णे सकण्डू दाह पाकरुक्।
श्वयथु सन्निपातोत्थः सनाम्ना दु.ख वर्धनः ॥
अ० हृ० उ० १७

१७—परिलेही

कर्ण पाली पर एक छोटी पीटिका कफ, रक्त तथा कृमियों के कारण हो जाती है इसमें कण्डू तथा वेदना होती है इसमें क्लेद होता है। इसको यदि उपेक्षा करदी जावे तो यह पाली को खा जाती है।

वफासृक् कृमिजा. सूक्ष्माः सकण्डूक्लेदवेदना ।
लेहाख्या. पिटकास्ताहि लिह्यः पालीमुपेक्षिता ॥
अ० हृ० उ० १७

१८—तन्त्रिका

कृशा दृढाचतन्त्रीवत् पाली वातेन तन्त्रिका ।
अ० हृ० उ० १७

कृश और सख्त तन्त्री की तरह से जो कर्ण पाली हो जावे उसे तन्त्रिका रोग कहते हैं यह वायु से ही होती है ।

१९—पिप्पली

एकोनीरुगनेकोवा गर्भे मासाकुर. स्थिर. ।
पिप्पली पिप्पली मानः ॥
अ० हृ० उ० १७

गर्भास्था से ही पिप्पली सदृश एक तथा अनेक मांसाँकुर जिसके कान में हो उसको पिप्पली कहते हैं । इसमें किसी प्रकार की कोई वेदना नहीं होती यह यदि बच्चे के पैदा होते ही शस्त्र द्वारा काट दिये जावें तो ठीक हो जाते हैं अन्यथा इनकी कोई चिकित्सा बड़े होने पर नहीं की जाती है यह शस्त्र कर्म से ही ठीक हो सकते हैं ।

२०—कूचिकर्णक

गर्भेऽनिलात्स कुचिका शष्कुली कूचि कर्णकः ।
अ० हृ० उ० २७

गर्भावस्था में वायु से सकुचित की हुई कर्ण शष्कुली को कूचिकर्णक कहते हैं । यह असाध्य होती है ।

२१—विदारिका

सवर्ण. सरुजः स्तब्धश्वयथु स उपेक्षित ।
कटुतैलनिभंपकः सवेल्क्रच्छ्रेण रोहति-
सङ्कोचयति रूढाचसाभ्रुव-
कर्णशष्कुलीम् सन्निपाताद्विदारिका ।
अ० हृ० उ० १७

वेदना युक्त कर्ण के वर्ण सदृश वर्ण वाली स्तब्ध शोथ कान पर हो जाती है, इसकी उपेक्षा करने पर जब यह पक जाती है तो इसमें से कटु तैल के वर्ण सदृश का स्राव निकलता है । यह चिकित्सा करने पर बड़ी ही कठिनता से ठीक होती है । इसके ठीक हो जाने पर कर्ण शष्कुली सुकड़ जाती है । यह सन्निपात से मानी गई है, इसको विदारिका कहते हैं ।

२२—पालीशोष

सिरास्थ कुरुते वायुः पालीशोषतदाह्वयम ।
अ० हृ० उ० १७

सिरा में ठहरा हुआ वायु पाली को पतली (सूखा) कर देता है । इसको पाली शोष करते हैं ।

२३—कर्णशोफ (Inflemmation of the ear)

कान पर एक प्रकार की सोजिस हो-जाती है जिसमें किसी प्रकार की कोई वेदना तथा कण्डू नहीं होती, इसको कर्ण शोफ कहते हैं । गल्लिर में और इसमें केवल इतना ही भेद है कि गल्लिर में कण्डू होती है इसमें नहीं होती । देखिये आयुर्वेद-रोग के निदान तथा नाम करण में कितना सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद करके उस रोग का नामकरण करता है । यही आयुर्वेद की विशेषता है जो शायद दूसरों में नहीं पाई जाती ।

२४, २५ कर्णार्श (Piles of the ear) और कर्ण रक्तार्श (Bloody piles of the ear)

इन दोनों के लक्षण अर्श निदान गत होने के कारण पृथक् नहीं बताये गये ।

२६, २७ कर्णार्बुद (Tumour of the ear) और कर्ण रक्तार्बुद (Cancer of the ear)

इन दोनों के लक्षण अर्बुद तथा रक्तार्बुद सदृश होने के कारण पृथक नहीं लिखे गये ।

अट्ठाईसवाँ कर्ण रोग दो प्रकार की विद्रधि है जो पीछे बता आये हैं उससे ही पाठक जानलें ।

कर्ण रोगों पर कुछ स्वअनुभूत योग

कर्ण शूल की चिकित्सा —

लहसुनार्द्रक शिग्रूणास्वरसो मूलकस्य च ।
कदल्यास्वरस: श्रेष्ठ: कदुष्ण: कर्ण पूरणे ॥

—हम लहसुन तथा आर्द्रक इसको गर्म कर के कर्ण शूल में कई वार प्रयोग करके देख चुके हैं, इससे तुरन्त कर्ण शूल शान्त हो जाता है। एक वार एक स्त्री के कान में अत्यन्त वेदना हो रही थी उसके कान में १ वर्ष के बच्चे का मूत्र गर्म करके डाल दिया गया उससे तुरन्त शूल बन्द हो गया परन्तु यह एक बार ही प्रयोग करके देखा है।

२६९—कुष्ठ दीपिका तैल तो अनेकों वार प्रयोग करके देखा गया है इससे ८० प्रतिशत लाभ होता है।

कुष्ठ दीपिका तैल

विधि—कुठ की एक लकड़ी को नूतन रेशमी वस्त्र से लपेट ले इसको तिल तैल में भिगो कर आग लगादे, इससे बूंद बूंद करके तैल टपकेगा, उसको शीशी में भर कर रख लेना चाहिए, कर्ण शूल वाले के कान में गरम करके डाले तत्क्षण शूल शान्त हो जाता है। कई एक को तो एक बार डालने से ही लाभ हुआ है कुछ एक को तीन चार वार डालने से लाभ हुआ है।

२७०—अर्क (मदार) के पीले पके हुए पत्र को घी से चुपड़कर अग्नि पर गरम करके उसका स्वरस निकाल कर उसी समय कान में डाल दें। तीव्र कान की वेदना शीघ्र शान्त हो जाती है परन्तु यह स्वरस ताजा ही समय पर काम देता है देर का रखा हुआ काम नहीं देता। ऐसा अनेक बार ग्राम सेवा संघ के धर्मार्थ औषधालयों में ग्रामों के अन्दर प्रयोग करके देखा गया है।

पूति कर्ण में हडतालादि तैल—

२७१—वर्किया हड़ताल	६ माशे
गन्धक आँवलासार अशुद्ध	६ माशे
तिल तैल	८ तोला

—लेकर पकाले जब तैल से धूंआ निकलने लग जावे तब उतार कर लौह दण्ड से ½ घण्टा तक लौह कढाई में खूब मर्दन करे बाद में शीशी में भर कर रखले। यह पूति कर्ण की अव्यर्थ औषधि है। यह कर्ण कण्डू, कर्ण पाक पर भी अत्यन्त लाभ करता है।

कृमि कर्णक—

१७२—इस रोग के रोगी के कान को वचा के क्वाथ में ½ रत्ती तुत्थ डाल कर अच्छी तरह से साफ कर डाले बाद में इस मलहम को लगावे।

कज्जली	१ तोला
कत्था	६ माशे
तुत्थ	१ माशा
रस कपूर	१ माशा
कम्पिलक (कबीला)	१ तोला
तिल तैल	४ तोला
मोम	२ तोला

—इसके मलहम से कृमि कर्ण, कोथ तथा क्लेद निश्चित ठीक हो जाते हैं।

कर्ण शूल

लेखक-कविराज नंदकिशोर जी वैद्य वाचस्पति, ज्वालामुखी

> प्रिय कवि० नदकिशोर जी वैद्य वाचस्पति ज्वालामुखी एव इतस्ततः के भूभाग में पर्याप्त सिद्धि प्राप्त सफल चिकित्सक हैं। आपने कर्ण शूल पर अपना १ योग प्रेषित किया है।
>
> —आचार्य हरदयाल वैद्य

प्राय' बालकों को अकस्मात कान में जोर की शूल हो जाती है यह विशेषतया रात्रि को होती है।

कारण—

१—कान में पिड़िका उत्पन्न होने से,

२—चोट लगने आदि से वायु कुपित हो जाने के कारण।

लक्षण —

समीरणः श्रोत्रशेताऽन्यथाचरन्। समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ॥
करोति दोषैश्च यथास्वमावृत्त । सकर्ण शूल कथितोदुराचरः ॥

चिकित्सा:—

२७३—प्रतिदिन जलने वाले तैल के दीपक में ३ माशा मेंथी और २ तोला पानी —डालकर उबालें। ५-७ बूंद शेष रहने पर कोष्ण होने पर २-४ बूंद कान में डाल दें। अथवा—

एक कौली में १-२ छटांक चूल्हे की गर्म २ राख डालकर इसके ऊपर पानी के छीटे दें। कौली के मुख पर मलमल या अन्य पतला कपड़ा लगाकर नीचे की ओर गांठ लगादें। इस कौली को कान पर इस प्रकार रखें कि कौली से निकल रहे वाष्प कान के भीतर जाती रहें, ठण्डा होने पर पुन गर्म २ राख डाल लें। इस प्रकार ३-४ बार करें। इसे "भस्म मल्ली का सेक" कहते हैं। इस दूसरे प्रकार मे आध से एक घटे के भीतर कर्ण शूल शांत हो जाता है। यदि सुविधा हो तो यह दोनों उपचार साथ साथ ही करने चाहिए। आयुर्वेद प्रचारार्थ यह सुगम उपाय रोगियो को इस भांति समझा देना चाहिए कि दूसरे रोगियों का उपचार वह स्वयं ही कर सके।

कर्ण रोग

लेखिका—श्रीमती यशोदादेवी जी वैद्या, नाथद्वारा

सन्मानार्ह श्रीमती पण्डिता यशोदादेवी वैद्या नाथद्वारा में सफल चिकित्सा कार्य कर रही हैं। प्रायः ही आयुर्वेदीय पत्रों में आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के लिये येन केन समय प्राप्त करके उन्होंने कर्णेन्द्रिय विवेचन पर अन्वेषणा पूर्ण लेख भेज कर हमें अनुगृहीत किया है। लेख उपादेय और सुंदर भाषा में पूर्ण हुआ है। श्रीमती वैद्या को हम बधाई देते हैं कि उन्होंने महिला रत्न होते हुए पुरुष समाज का पथ प्रदर्शित करने में सफल प्रयास किया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

कर्णेन्द्रिय—

जिस प्रकार विधाता ने मनुष्यों के कर्म करने के लिए पांच कर्मेन्द्रियों का सृजन किया है, उसी प्रकार ज्ञान संपादन के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियों को भी बनाया है। मानव शरीर में रसास्वादन के लिए जिस प्रकार जिह्वा की उपयोगिता है, उसी प्रकार प्रकृति के छोटे बड़े समग्र पदार्थों के निरीक्षण के लिए नेत्रों की तथा शब्द ज्ञान के लिए दोनों कर्णों की सार्थकता है।

कर्ण रचना—

कर्ण, मुख में कपोलों के दोनों ओर रहते हैं, इनकी रचना नेत्रों से कम आश्चर्य जनक नहीं है, इसी से शरीर विद्या के विशेषज्ञों ने मनुष्य के कर्णों पर विशेष विचार किया है। प्रधानतः कर्ण तीन भागों में विभक्त किये हुए हैं।

१—बाह्य कर्ण

२—मध्य कर्ण

३—अन्तस्थ कर्ण

बाह्य कर्ण कान की नली के आगे झिल्ली (परदे) पर जाकर समाप्त होता है, इस झिल्ली के दूसरी ओर से मध्य कर्ण का आरम्भ होता है, और भीतर की ओर आधी इञ्च तक चला जाता है, मध्य कर्ण का अधिक भाग शखास्थि के भीतर रहता है। कान की झिल्ली को वैज्ञानिक भाषा में "कर्ण पटल" कहते हैं, इसका निरीक्षण कर्ण दर्शक यन्त्र के बिना होना असम्भव है। यह पट सीधा न होकर टेढ़ा रहता है, और बीच का भाग भीतर की ओर दबा ऊपर और नीचे के किनारे आगे की ओर उभरे रहते हैं, दबा हुआ स्थान नाभि कहलाता है। झिल्ली में जो चमकती रेखा दिखलाई देती है, वह एक अस्थि है और उसे 'मुग्दरास्थि" कहते हैं। कभी कभी यह शोथ की दशा में अस्पष्ट हो जाती है। इस में छिद्र होने पर कान बहने लगता है।

मध्य कर्ण—

यह एक छोटी सी कोठरी है जो आध इञ्च के लगभग है। इसमें तीन अस्थियां रहती हैं—१-मुग्दरास्थि २-नेहाई-यह एक ओर मुग्दर से जुड़ी रहती है और ३—रकाब के समान होने से "रकाबास्थि" कही जाती है। इस अस्थि का चौड़ा भाग एक छिद्र द्वारा अन्तस्थ कर्ण से मिला रहता है। इस प्रकार बाह्य कर्ण से अन्तस्थ कर्ण तक

अस्थियों की एक शृङ्खला सा बनी रहती है। यदि वाह्य कर्ण के पट में किसी प्रकार की झनझनाहट या कम्पन हो तो वह अन्तस्थ कर्ण तक पहुँच जाती है। इस मध्य कर्ण से एक नली गले में जाकर खुलती है परन्तु जब गले के भीतर कुछ शोथ उत्पन्न हो जाता है तो नली का मुख बन्द हो जाने से तथा नलिका के शोथ युक्त होने से एवं मध्य कर्ण में वायु के न पहुंच ने से बधिरता उत्पन्न होती है। मध्य कर्ण का सारा आन्तरिक भाग श्लेष्मल कला से ढका रहता है। जहां मध्य कर्ण का अन्त होता है, वहाँ से अन्तस्थ कर्ण का आरम्भ होता है यही श्रवण यन्त्र का मुख्य भाग है, इसकी रचना बड़ी ही विचित्र और गूढ़ है।

अन्तस्थ कर्ण—

भी तीन भागों से बना हुआ है, इसमें—

१—कर्ण कुटी २—कोक्लिया ३—अर्द्ध चन्द्राकार नलिका इनकी दीवारें शाखास्थि से बनी रहती हैं।

कर्ण कुटी:—इसके एक ओर कोक्लिया और दूसरी ओर अर्द्ध चन्द्राकार नलिका है। सारे यन्त्र में सबसे अधिक फूला हुआ भाग यही दिखाई देता है, जिसमें होकर श्रावणी नाड़ी सूत्र कर्ण के भीतर प्रवेश करते हैं। वाहर की ओर एक बड़ा छिद्र होता है, रकाव नामक अस्थि का चौड़ा भाग इसी छिद्र में रहता है, इस छिद्र का आकार अण्डे के समान होता है। इसके आगे एक दूसरा और छिद्र होता है, जिसके द्वारा उपर्युक्त नाड़ियों का सम्बन्ध रहता है। इस कुटी के पिछले भाग में पाच छिद्र होते हैं, जिनके द्वारा अर्द्ध चन्द्राकार नलियां कुटी में आकर खुलती हैं। कुटी के भीतर भी झिल्ली के बने हुए कोष्ट रहते है जिन्हें पूर्व कोष्ठ तथा पश्चात् कोष्ठ कहते हैं।

कोक्लिया—इसकी आकृति शङ्ख के ऊपर के पतले भाग के अनुसार होती है। इसका ऊपर का सिरा नोकीला और पतला होता है, ऊपर के भाग को शिखर और नीचे के भाग को तल कहते हैं। इसमें बीच में एक स्तम्भ होता है जिसके चारों ओर कोक्लिया की नली पूरे ढाई चक्कर खाती हुई नीचे से ऊपर को चली जाती है। यह अस्थि और झिल्ली दोनों ने मिलकर इस नली को दो भागों में बांट दिया है, इसके बीच के हिस्से को पूलक कहते हैं, इन दोनों नलियों में द्रव्य सा भरा रहता है।

अर्द्ध चन्द्राकार नलिया—

यह तीन होती हैं। दिशा का ज्ञान करना इनका कर्म है। कोक्लिया व कर्णकुटी की भांति ये नलिकाएँ भी झिल्ली की बनी हुई हैं जो शखास्थि द्वारा निर्मित नलिकाओं के भीतर रहती हैं। अस्थि नलिकाएँ झिल्ली नलिकाओं की उपेक्षा कहीं अधिक मोटी होती हैं। झिल्ली कृत नलिका और अस्थि कृत नलिका में कुछ दूरी रहती है जिसमें एक द्रव्य भरा रहता है उसे बहिर्लसिका और नलिका के भीतर का लिंफ अन्तर्लसिका कहलाता है। ये दोनो नलिकाए कुटी के पूर्व कोष्ट में खुलती हैं। भीतर की वह नलिका जिसमें अन्तर्लसिका भरा हुआ है झिल्ली कृत है, उसके बाहर अस्थि नलिका है। झिल्ली कृत नलिका के भीतर चारों ओर एक कला रहती है। झिल्ली कृत नलिका के बाह्य वरण और भीतरी कला के बीच में जो वस्तु रहती है वह यहाँ एक अंकुर का रूप धारण कर लेती है। यहां की श्लैष्मिक कला के सैलों का आकार लम्बा हो जाता है और अन्तर्लसीका की ओर रहने वाले ऊपरी सिरे से कड़े बालों के समान सूक्ष्म सूत्र निकलते हैं। इन सूत्रों के बीच में तथा चारों ओर गाढ़ा पदार्थ रहता है जिसमें केल्सियम कार्बोनेट के कुछ कण पाये जाते हैं। इन सारी रचनाओं को कुपोला नाम दिया गया है। अंकुर के दूसरी ओर से श्रवण नाड़ी के सूत्र प्रवेश करते हैं और उनकी शाखायें उन सेलों में जिनके ऊपर से सूत्र निकलते हैं फैल जाती हैं। इस प्रकार इन अर्द्ध चन्द्राकार नलिकाओं के विशेष सेलों का नाड़ी द्वारा मस्तिष्क से सम्बन्ध हो जाता है। कर्ण कुटी के पूर्व और पश्चात् कोष्ठ की रचना भी कुछ ऐसी ही है, यहाँ भी इस प्रकार के अकुर मिलते हैं जिनके सूत्र में सेल उपस्थित हैं। तीनों दिशाओं का ज्ञान अकुर की नाड़ी द्वारा होता है और हमारे शिर के घुमाने के साथ ही अन्तःलसीका

कर्ण रचना और उसके भाग
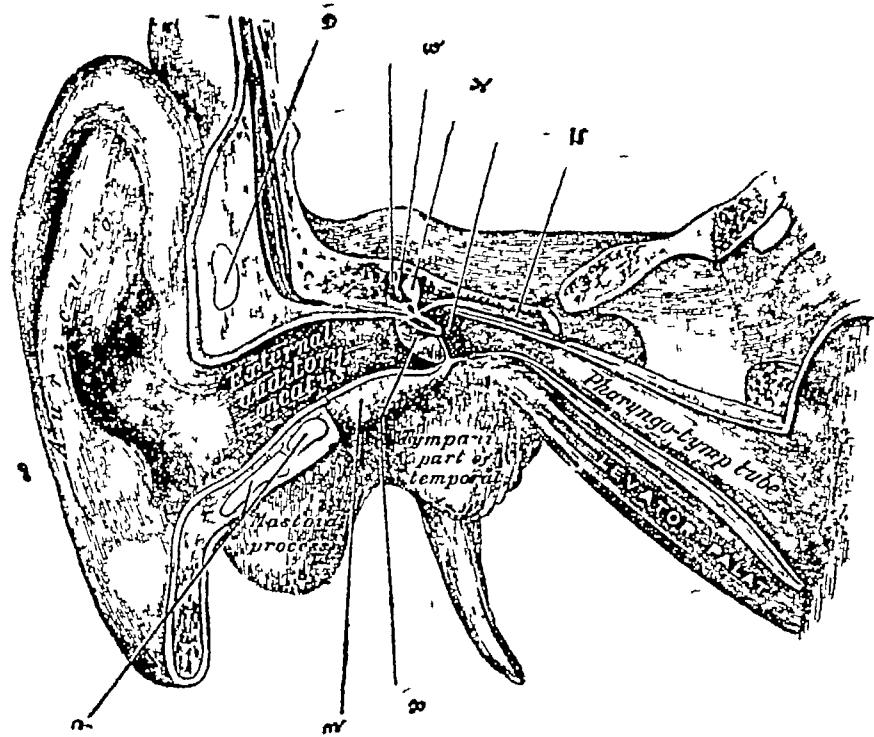
१—कर्ण पाली
२—वाह्य कर्ण वर्हिद्वार का मृदु अस्थि निर्मित भाग
३—वाह्य कर्ण वर्हिद्वार का अस्थि भाग
४—कर्ण पटह
५—मुद्गर
६—नेहाई
७—वाह्य कर्ण गत मृदु अस्थि
८—कर्ण पट विस्तारक पेशी

की गति भी उसी ओर होती है। इसके विकृत होने पर दिशा ज्ञान नहीं होता तथा जी मिचलाना, वमन, शिर का घूमना प्रारम्भ हो जाता है।

कोर्टीयन्त्र—कोकिल्या की दो नलियों का वर्णन किया जा चुका है, इसमे एक पतली तीसरी नलिका और होती है जिसे मध्य नलिका कहते हैं, यह त्रिकोणाकार है। इसकी बाहरी दीवार कोकिल्या की दीवार से बनी रहती है। ऊपर की छत और नीचे की फर्श दोनों झिल्लियों से बनी है। यह दोनों झिल्लिया कोकिल्या के फलक के सिर पर जुड़ी रहती हैं। इसका फलक के साथ ऊपर जाकर अन्त हो जाता है और नीचे की ओर पश्चात् कोष्ट से मिली रहती है। कई नली के फर्श को बनाने वाली झिल्ली पर कई प्रकार के सेल रहते हैं। इस फर्श के लगभग बीच में कोर्टीयन्त्र रहता है। इस यन्त्र को देखने से ज्ञात होगा, कि झिल्ली के ऊपर जो अङ्ग है वह दो प्रकार के स्तम्भों से बना है। नीचे की ओर यह चौड़े बीच में पतले ऊपर जाकर फिर चौड़े हो जाते हैं। ये दोनों प्रकार के स्तम्भ एक दूसरे की ओर झुकते हैं और अन्त में ऊपर की ओर एक दूसरे को ढक लेता है। स्तम्भों के बीच में जो स्थान है सुरङ्ग का रूप धारण कर लेता है। इन स्तम्भों की ओर झुकते हुए लोमश सेल रहते हैं। जिस के ऊपर के सिरे से बाल के समान सूक्ष्म सूत्र निकलते हैं। श्रवण नाड़ी के एक भाग से अनेक सूत्र आकर इन सेलों में फैल जाते हैं। इनके अतिरिक्त कोर्टी यन्त्र में और भी कई प्रकार के सेल रहते हैं। भिन्न भिन्न वर्णित वस्तुओं का नाड़ियों से सम्बन्ध रहता है। नाड़ियों के भीतर आने और बाहर निकलने के लिये विशेष मार्ग होते हैं। इस प्रकार सभी परस्पर में अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए ऊपर बढ़ते हैं।

शब्द श्रवण—

शब्द वायु की कम्पनाओं से उत्पन्न होता है। वायु में तरंगे उत्पन्न होकर हमारे कर्ण पटल के द्वारा भीतरी कक्ष में पहुँचती है और वहां से श्रवण नाड़ी उन तरंगों से उत्पन्न हुई उत्तेजनाओं को मस्तिष्क [illegible] जाती है। तब हम शब्द का अनुभव करते हैं। ये वायु के कणों में किसी कारण से हलचल या [illegible] आ जाने से उत्पन्न होती है। श्रवण से ज्यादा [illegible] रखने वाला भाग ज्यादातर कोक्लिया का है।

निदान

मिथ्या आहार विहार और कर्ण में वायु के [illegible] करने या नाड़ियों, नलियों में किसी प्रकार की शोथ आदि होने से कर्ण रोग उत्पन्न होते हैं।

सुश्रुत में अठ्ठाईस प्रकार के कर्ण रोग लिखे हैं कर्ण शूल, प्रणाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्ण स्राव, कर्ण गूथ, कृमि कर्ण, प्रतीनाह, दो प्रकार की कर्ण [illegible] कर्ण पाक, पूति कर्ण, वात, पित्त, कफ, सन्निपात सात प्रकार का अर्बुद, चार प्रकार का शोफ।

शार्ङ्गधर कार ने अठ्ठारह प्रकार के कर्ण रोग [illegible] हैं, जैसे—वात, पित्त, कफ, सन्निपातज, रक्तज, [illegible] विद्रधि, कर्ण शोथ, कर्णार्बुद, पूतिकर्ण, कर्णार्श, हल्लिका, बाधिर्य, तन्त्रिका, कर्ण कण्डू, कृमि कर्ण, कर्ण नाद। माधवाचार्य ने पचीस प्रकार कर्ण रोग लिखे हैं।

मुख्य-मुख्य रोगों के लक्षण—

कर्ण शूल—

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरः
समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः।
करोति दोषैश्च यथा स्वमावृत.
सकर्णशूलः कथितो दुराचरः॥

जब वायु कर्ण में प्रविष्ट होकर अपने मार्ग छोड़ कुमार्ग गामी होती है तब कान के चारों ओर [illegible] प्रकट होने लगते हैं और कर्ण कफ पित्त रक्तादि दोषों से युक्त हो जाते हैं तब वे चिकित्सा के योग्य नहीं रहते।

प्रणादः—

यदातु नाड़ीषु विमार्ग मागत'

सएव शब्दाभिवहा सुतिष्ठति ।
शृणोति शब्दान् विविधास्तदानरः
प्रणाद मेन कथयन्ति चामयम् ॥

कुमार्ग गामी वायु जब नाड़ियों में जाकर शब्द-वाहिनी नाड़ियों में स्थित हो जाता है तब मनुष्य अनेक प्रकार के शब्दों को सुनता है उसे प्रणाद रोग कहते हैं,

बाधिर्य—

सएव शब्दाभि वहा यदा शिरा
कफानु यातो व्यनु सृत्य तिष्ठति ।
तदा नरस्या प्रतिकार सेविनो
भवेतु बाधिर्यमशस्त्रयं खलु ।

वही वायु जब कफ युक्त हो शब्द नाड़ियों में ठहर जाती है तब कुत्सित आहार विहार शील पुरुष के कान में बधिरता आजाती है ।

कर्णक्ष्वेड —

कफ वात रुधिर से युक्त होकर वायु कर्णक्ष्वेड रोग को उत्पन्न करती है इसमें बासुरी के बजने का सा शब्द होता है ।

कर्ण स्राव—

शिरोऽभिघाताटथवा निमजतो ।
जले प्रपाकादथवा पिविद्रधे ॥
स्रवेत्तु पूयं श्रवणोऽनिलावृतः ।
सकर्ण सस्राव इति प्रकीर्तित ॥

शिर में चोट लगने से, जल में डूबने से अथवा विद्रधि के पक जाने से बादी के कारण कानों में पीव झरने लगता है ।

कर्ण प्रतिनाह—

कर्ण गूथक पतला होकर नासिका की ओर जब मुख कर लेता है इसे कर्ण प्रतिनाह कहते हैं ।

कृमि कर्ण—

यदातु मूर्च्छन्त्यथवापि जन्तव. ।
सृजन्त्य पत्या न्यथवापिमक्षिका ॥
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरूच्यते ।
भिपग्भिराद्यैं कृमि कर्णकस्तुस. ॥

जब कान में कीड़े पड़ जाते हैं अथवा छोटी २ मक्खियाँ बैठ जाती हैं तब यह रोग होता है ।

कर्ण पाक—

पित्त के कोप से जब कान पक जाता है तब कानों में कोथ और वेदना होने लगती है, पित्त के तेज से कफ स्रोत में स्थित हो जाता है इससे रोगी बड़ा दुखी होता है ।

कर्ण हल्लिका—

पतङ्ग, कनखजूरा, गिजाई के घुसने से बेचैनी व्याकुलता और नोंचने का सा दु.ख होता है उसे कर्ण हल्लिका कहते हैं। रोगी को इसके निकलने में आराम मिलता है ।

कर्ण रोग में अनुभूत चिकित्सा—

इसमें घृत पान रसायन है । व्यायाम, कुस्ती, शिर स्नान निसिद्ध है।ब्रह्मचर्य और मित भाषण उपयोगी हैं ।

औषधि—

२७४—बेल — अरड़
आक — सफेद सोंठ
कैंथ — धतूरा
सहजना — असगन्ध
वस्त गंधा — अरणी
मषवेणु — समभाग

—इनको काजी में पकाकर नाड़ी स्वेद की रीति से योजित करें । इससे कर्ण शूल नष्ट होते हैं ।

२७५—नीम के पत्ते औटाकर बफारा दें । यह कान की पीड़ा को लाभदायक और व्रण को मल से शुद्ध करता है ।

२७६—पके इन्द्रायण के फलका छिलका मीठे तैल में मिलाकर कान में टपकाने से बहिरापन दूर होता है ।

२७७—रात्रि के समय महावर पानी में भिगोकर प्रात· काल छानकर गुनगुना कान में टपकाने से कान की

(शेषांश पृष्ठ १६० पर देखें)

कर्ण रोग (Ear diseases)

लेखक–पं मदनगोपाल शास्त्री वैद्य भूषण भिषगाचार्य ओझा, अमरावति।

प्रियवर प० मदनगोपाल जी शास्त्री वैद्य भूषण अपने विषय के विशेष मर्मज्ञ हैं। आपने कर्ण रोगों पर विस्तार पूर्ण विवेचन किया है। इस विवरण के द्वारा कर्ण रोगों का एव श्रवण यन्त्र और तत् सम्बन्धित अवयवों का सारात्मक वर्णन हुआ है। इसके साथ यदि लेखक महोदय प्रत्येक कर्ण रोग की चिकित्सा भी साथ-साथ दे देते तो लेख सर्वाङ्ग पूर्णता से ओतप्रोत होता। आशा है वह भविष्य में यथा अवसर इधर भी प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

आयुर्वेदिक यत्र तत्र मौक्तिक (प्रयोग) बिखरे हुए को एकत्र कर (लेख प्रयोग रूपी) मौक्तिक रेशमी सूत्र में (विशेषाङ्क मे) पिरोकर (संग्रहार्थ) विद्वज्जनोंके समक्ष (शुभ्र मुक्तामाल) है। श्री वैद्य कृष्णगोपाल जी गुप्त सम्पादक 'प्राणाचार्य' जी की आज्ञानुसार यह लेख निबन्ध संग्रह किया है—वैद्य बन्धु इस शुभ्र मुक्ता माल मे अवश्य प्रसन्न होंगे। कर्ण रोग अनेक प्रकार का है इससे बचने के लिये मनुष्यों को शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिए।

बाह्य कर्ण की क्रिया व रचना का संक्षिप्त रहस्य

कर्ण की संक्षिप्त रचना—

शरीर विद्या विशारदों ने कान को तीन भागों में विभाजित किया है। कान का बाहरी *शुक्तिकाकार भाग कर्ण शष्कुली* (Pinna) कहलाता है। इसी का निचला मुलायम भाग *कर्ण पाली* कहलाता है। कान में भीतर जाती हुई जो नलिका दिखाई देती है वह कुछ भीतर जाकर एक मजबूत झिल्ली के पर्दे द्वारा पूर्णतः बन्द हो जाती है। कर्ण शष्कुली और कर्ण की इस नलिका का उपर्युक्त पर्दे तक का भाग *वहिः कर्ण* (External ear) कहलाता है। यह कर्ण का पहला भाग है।

वहिः कर्ण के आखिरी सिरे पर स्थित उपर्युक्त पर्दे को *कर्ण पटह* (Tympanic membrane) कहते हैं। पटह का मध्य भाग किञ्चित् भीतर दबा रहता है। कर्ण पटह पर ध्यान पूर्वक देखने से एक श्वेत रेखा दीखती है, यह स्वस्थावस्था में श्वेत और चमकदार दिखाई देता है। कान को साधारणतया देखने से यह पटह नहीं दिखाई दे सकता, उसको देखने के लिये कर्ण दर्शक यन्त्र (Auroscope) की सहायता लेनी पड़ती है। पटह के दूसरी ओर मध्य कर्ण (Middle ear) स्थित है। इस का अधिकांश भाग सखास्थि में रहता है। इसमें मुद्गर, निहाई और रकाब नामक तीन बहुत ही छोटी अस्थियां हैं जिनमें मुद्गर (Malleus) का एक सिरा *कर्ण पटह* से लगा है और दूसरा सिरा *निहाई* (Incus) से तथा रकाब (Stapes) का एक सिरा निहाई से और दूसरा अन्त. कर्ण के एक छिद्र से लगा रहता है अर्थात् ये अस्थियां परस्पर मिल कर एक ऐसी शृङ्खला बना देती हैं जिनके द्वारा *कर्ण पटह* अन्त कर्ण से सम्बन्धित

हो जाता है। मध्य कर्ण में एक नलिका निकल कर गले में जाकर खुलती है इसको श्रुति सुरङ्गा (Eustachian tube) कहते हैं। यह सुरङ्गा और मध्य कर्ण श्लेष्मल कला से घिरे हैं। मुख, नासिका और गले की खराबी का उपसर्ग इसी मार्ग द्वारा मध्य कर्ण में पहुँच कर उसमें भी शोथ पैदा कर देता है। इसी सुरङ्गा के द्वारा मध्य कर्ण में वायु प्रविष्ट होकर कर्ण पटह के दोनों ओर की वायु का दबाव समान रहता है जिससे कर्ण पटह अपनी स्वाभाविक स्थिति में रखती है और उसमें समुचित प्रकार से कंपन हो पाता है। कर्ण का तीसरा भाग *अन्तः कर्ण* (Internal ear) कहलाता है। यह श्रवण नाड़ी से बना है और शंखास्थि में रहता है। शब्द जन्य लहरें बहिःकर्ण में होकर कर्ण पटह पर टकराती हैं। जिससे पटह में भी तद्रूपकम्पन होता है, यह कम्पन उपर्युक्त तीनों कर्णास्थियों द्वारा अन्तःकर्ण तक पहुँचा दिया जाता है। जहां से मस्तिष्क में श्रवण नाड़ी द्वारा कम्पन का ज्ञान पहुँचने से शब्द का ज्ञान होता है। यही श्रवण क्रिया का संक्षिप्त रहस्य है। कर्ण रोगों की संख्या २८ है। यथा—

कर्ण शूल प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एवच।
कर्ण स्राव. कर्ण कंडू कर्ण गूथस्तथैवच ॥१॥
कृमि कर्ण प्रतीनाहो विद्रधिर्द्विविधस्तथा।
कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥२॥
तथार्बुद सप्तविध शोफश्चापि चतुर्विधः।
एते कर्णगतारोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥३॥
सु० अ० २०

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथाचरः समन्ततः—
शूलमतीव कर्णयो.।
करोतिदोषैश्चयथास्वमावृत. सकर्णशूलः—
कथितो दुराचर. ॥४॥
यदातुनाडीपुविमार्ग मागत सएव—
शब्दाभिवहासु तिष्ठति।
शृणोतिशब्दान्विविधांस्तदा नर.प्रणादमेनं—
कथयंति चामयम् ॥५॥

सएव शब्दाभिवहा यदाशिरा. कफानुयातो—
ह्यनुसृत्यतिष्ठति।
तदानरस्याप्रतिकारसेविनो भवेत्तु—
बाधिर्यमसशयखलु ॥६॥
श्रमात्क्षयाद्रूक्षकषाय भोजनात्समीरणः—
शब्दपथे व्यवस्थित.।
विरक्तशीर्षस्यचशीतसेविन.करोति—
हिक्ष्वेडमतीवकर्णयो ॥७॥
शिरोऽभिघातादथवानिमज्जतोजले—
प्रपाकादथवापि विद्रधे।
स्रवेत्तु पूयंश्रवणोऽनिलावृतः सकर्णसंस्राव—
इति प्रकीर्तितः ॥८॥
कफेनकडू प्रचितेन कर्णयोर्भृशं भवेत्स्रोतसि—
कर्णसंज्ञिते।
विशोषिते श्लेष्मणिपित्ततेजसानृणां—
भवेत्स्रोतसिकर्णगूथक ॥९॥
सकर्णगूथो द्रवता यदागतो विलायितो—
घ्राणमुखंप्रपद्यते।
तदासकर्णप्रतिनाहसज्ञितो भवेद्विकार.—
शिरसोऽभितापनः ॥१०॥
यदातुमूर्च्छन्त्यथवापिजंतव सृजन्त्यपत्यान्यपि—
वापिमक्षिका।
यदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुद्ध्यतेभिषग्भिराद्यै.—
कृमिकर्णकस्तुस ॥११॥
क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथादोषकृतोऽपर.।
सरक्तपीतारुण मस्रमास्रवेत्प्रतोद धूमायनदाह—
चोषवान् ॥१२॥
भवेत्प्रपाक खलु पित्तकोपतोविकोथ—
विक्लेदकरश्चकर्णयो।
स्थितेकफेस्रोतसिपित्ततेजसाविलप्य—
माने भृशसंप्रतापवान् ॥१३॥
अवेदनो वाप्यथवासवेदनो घनंस्रवेत्पूति—
सपूति कर्णकः ॥१४॥

प्रदिष्टलिंगान्यर्शांसि तत्वतस्तथैवच शोफार्बुद-
लिंगमीरितम्।
मयापुरस्तात्प्रसमीक्ष्ययोजयेदिहैव-
तानि प्रयतो भिषग्वर: ॥१५॥

कर्ण शूल

जब अपने कारणों से प्रकुपित दोषों (पित्त, कफ, रक्त) द्वारा आवृत होकर कर्ण गत वायु उलटी गति मे चलने लगता है तो जिस दोष मे वह आवृत रहता है उस दोष के लक्षणों से युक्त कष्ट साध्य शूल को उत्पन्न करता है। इसी को कर्ण शूल कहते हैं। पिढिका आदि उत्पन्न करने के कारण रक्त को भी यहां पर दोषों में मान लिया गया है। सुश्रुत ने शल्य शास्त्र की दृष्टि से रक्त को भी दोष माना है। कर्ण शूल में—मूर्च्छा, दाह, ज्वर, कास, श्वास और वमन ये उपद्रव मरने वाले रोगी को होते हैं। कर्ण शूल को पाश्चात्य मतानुसार Otalgia या Pain in the ear कहते हैं। यह वास्तव मे एक लक्षण है जो कान के विविध रोगों में अधिकतर देखा जाता है निम्न लिखित कर्ण रोगों में कर्ण शूल होता है—

१—कर्ण गत तीव्र विचर्चिका (Acute eczema) में जलन युक्त पीड़ा होती है। परन्तु बहुत तीव्र नहीं होती।

२— Furunculosis में बहुत तीव्र और कौंचने फाड़ने जैसी पीड़ा होती है जो प्रायः रात में नींद भी नहीं लगने देती।

३—मध्य कर्ण के तीव्र सपाक शोथ में भी बहुत तीव्र पीड़ा होती है जो कभी-कभी रोगी को दात की पीड़ा की भाति प्रतीत होती है किन्तु मध्य कर्ण के चिरकालीन शोथ में अधिक तीव्र नहीं होती और विस्तृत स्थान में प्रतीत होती है और कभी कभी बीच-बीच में मन्द भी हो जाया करती है।

४—कभी-कभी शखास्थि में अथवा मस्तिष्कावरण तथा करोटी की अस्थियों के बीच में किसी प्रकार का शोथ, पाक या विद्रधि हो जाने से भी कान तीव्र पीड़ा प्रतीत होती है। यह पीड़ा एक स्थान में प्रतीत होती है जो शिर के एक पार्श्व होती हुई ग्रीवा तक फैल जाती है। सब से प्रकार की और असह्य नाड़ी शूलवत् पीड़ा कर्ण गत और अन्तः कर्ण के तीव्र शोथ में होती कभी २ जैसे—ऊपरी जबड़े के सड़े हुए दात ग्रसनिका (Pharynx) और स्वर यन्त्र (L ynx) के दुष्ट अर्बुद के कारण भी कान में प्रतीत होती है किन्तु ऐसी दशाओं में कान के देखने से कोई विकार दिखाई नहीं देता। नासा के बन्द हो जाने तथा श्रुति सुरंगा (Eustachian tube) के ग्रसनिका की ओर स्थित सिरे में हो जाने से भी कान में पीड़ा होती है। यदि या स्पर्शना क्षमता (Tenderness) मूलिक स्थान में हो तो उसी स्थान (Mastoid) में शोथादि की सम्भावना समझनी चाहिये। यदि पीड़ा कान के ऊपर और पीछे की ओर हो अथवा पूर्व कपाल (Frontal Bone) की अस्थि में तीव्र पीड़ा हो तो यह समझना चाहिए कि पीड़ा का कारण करोटि (Skull) में स्थित है। मध्यम आयु तथा उससे अधिक अवस्था के लोगों में प्रायः कभी-कभी ऐसा होता है कि वे कर्ण शूल की शिकायत करते हैं किन्तु कान तथा उसके आस पास के अङ्गों की परीक्षा करने पर कोई विकृति नहीं प्रतीत होती, ऐसी दशा में कर्ण पाली के मूल में नीचे की ओर स्थित *शङ्खास्थि* और नीचे जबड़े की अस्थि की सन्धि (Temporo mandibular joint) की सन्धि शोथ के लिये परीक्षा करनी चाहिए। बच्चों में कर्ण शूल की परीक्षा कान को छूने या धोने पर बच्चा रोवें या अपना हाथ बार-बार कान के समीप ले जाय और शिर को इधर उधर पटके तो यह समझना चाहिए कि उसके कान में पीड़ा हो रही है। यदि आंको-

न्यूमोनिया के कारण बच्चे में कर्ण शूल उत्पन्न हुआ हो तो कभी-कभी बच्चे का शिर कुछ पीछे की ओर झुका भी रहता है।

कर्णनाद

इसे Noises in the ear तथा Tinnitus भी कहते हैं। वायु कान के छिद्र में स्थित होकर अनेक प्रकार के स्वर जैसे-भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदि उत्पन्न कर देता है, उसे कर्णनाद कहते हैं। पाश्चात्य मतानुसार इस रोग को *टिनिटस* कहते हैं और दो भागों में मानते हैं यथा-

१—जिसे केवल रोगी ही सुन सकता है।

२—जिसको रोगी तथा दूसरे लोग भी सुन सकते हैं। उसमें भी प्रथम प्रकार का कर्ण नाद (केवल रोगी को ही सुनाई पड़ने वाला नाद) भी दो प्रकार का होता है- एक तो शिर के रोगों के कारण दूसरा-कर्ण आदि रोग के कारण होने वाला नाद। कर्ण गत रोगों से उत्पन्न कर्ण नाद याने सीटी बजाने की भांति या सिकारी देने की तरह अथवा गाने की तरह देर तक सुनाई देता है और उसकी तीक्ष्णता सुनाई देने के पूरे समय में एक ही तरह की रहती है और शिर रोगों के कारण होने वाला कर्ण नाद मानसिक विकृति का प्रारम्भिक लक्षण है फिर कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे यह कर्ण नाद स्पष्ट शब्दों के रूप में सुनाई पड़ता है। कभी-कभी कर्ण गत रोगों के कारण उत्पन्न कर्ण नाद भी शब्दों का रूप धारण कर लेता है और जब कभी ऐसा हो तो रोगी की मानसिक दशा की सावधानी के साथ जांच करने की आवश्यकता के लिये इसको एक प्रकार का सकेत ही समझना चाहिए। कान में प्रतीत होने वाला नाद मध्य कर्ण के *सपाक* और *अपाक* दोनों प्रकार के शोथों से उत्पन्न हो सकता है। यह *नाद* भी दो प्रकार के हो सकते हैं।

१—हृदय की गति के साथ-साथ धड़कन की भांति सुनाई देने वाला नाद जो हृदय तथा रक्त वाहनियों की विकृति विशेष के कारण अथवा ग्रन्थि जन्य *शब्द प्रवाह* के किसी दोष के कारण सुनाई देता है।

२—*अन्तः कर्ण* गत विकृति के कारण सुनाई देने वाला नाद जो सिसकारी देने की भांति या सीटी बजाने की भांति अथवा भोजन बनाने के पात्र में उबाल आने पर जैसा शब्द होता है उसी तरह का शब्द सुनाई देता है। कभी-कभी गान वाद्य की तरह यथा बांसुरी, हारमोनियम आदि की तरह ऊंचा सुरीला स्वर भी सुनाई देता है। गाने की तरह के नादों के अधिकतर रात्री में ही या प्रातः काल सोकर उठने के बाद सुनाई देने की शिकायत रोगी करता है। कर्ण नाद से रोगी की नींद बिलकुल रुकती तो नहीं किन्तु बहुधा

(शेषांश पृष्ट १८६ का)

पीड़ा और कान का बहिरापन दूर होता है।

२७८—प्याज का रस भी कान में टपकाना अत्यन्त लाभदायक है।

२७९—बकरी, ऊंट का मूत्र भी गुनगुना करके कान में टपकाना लाभदायक है। स्त्री के दूध की धार भी कान पीड़ा को शान्त करने में समर्थ है।

२८०—चाक सूनी की नई पत्तिया और सेंधा नमक पीस कर लेप करने से कर्ण सूजन मिटती है।

२८१—कान में कीड़े पड़ने पर सभालू के पत्तों का रस टपकावे।

२८२—बकरी के मूत्र में सेंधानमक औटाकर सहता २ डाले तो कर्णशूल में आराम होता है।

२८३—मूली के जड़ का रस मधु और तैल के साथ टपकाकर डाले तो बहिरापन दूर हो।

२८४—बड़ी सीप का चूर्ण तैल में पकाकर कान में डालने से कान का व्रण अच्छा होता है।

२८५—समुद्र फेन, सुपारी की राख और कत्था को पीसकर कान में डाले तो कान से पीव का बहना बंद हो जाता है।

इससे नींद आने में कठिनाई अवश्य होती है। मस्तिष्क या नाड़ी विकार वाले रोगियों में कर्ण नाद कभी-कभी इतना दुःख दायक और असह्य हो जाता है कि वे आत्महत्या तक करने का प्रयत्न कर लेते हैं। यदि रोगी ऐसे कर्ण नाद की शिकायत करे जो उसके कर्ण गत रोग से सापेक्षतया अधिक तीव्र हो तो रोगी का *रक्त भार* नापना चाहिए और एल्ब्यूमिन के लिये मूत्र की परीक्षा करनी चाहिए। ऐसे कर्ण नाद जो रोगी को तथा दूसरे व्यक्तियों को भी सुनाई देते हैं वे प्रायः टान्सर टेम्पनी और टान्सरप्लेटि नामक पेशियों के सकोच के कारण उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी कुछ औषधियों के अधिक मात्रा में या अधिक समय तक सेवन करने से भी कर्ण नाद उत्पन्न होता है यथा—किनाइन इत्यादि से, परन्तु ऐसी औषधियों का कुछ समय तक सेवन बन्द कर देना चाहिए। कर्ण नाद अपने आप शान्त हो जाता है।

कर्ण बाधिर्य (Deafness)

जिस समय केवल वायु अथवा कफ युक्त वायु शब्द वाहिनी नाड़ियों में प्रवेश करता है तब मनुष्य को शब्द सुनाई नहीं देता उसे बाधिर्य कहते हैं। वाग्भट ने कर्ण नाद की उपेक्षा करने से भी बाधिर्य की उत्पत्ति बतलाई है यथा—

श्लेष्मणाऽनुगतोवायुर्नादो वसमुपेक्षितः।
उच्चैः कृच्छ्राच्छ्रुतिं कुर्याद्बधिर त्वक्रमेणच ॥

बधिरता दो प्रकार की होती है यथा—

१—जन्म जात (Gongenital) बधिरता- इसमें जन्म जात फिरङ्ग के कारण या स्वभावत अन्त. कर्ण के श्रवण यन्त्र का प्रधान अङ्ग (Labrynth) अथवा मस्तिष्क गत श्रवण केन्द्र जन्म से ही पूर्व रूप से विकसित नहीं हुआ रहता। ऐसे रोगियों को बोल चाल के शब्दों का तनिक भी श्रवण ज्ञान नहीं होता। उनकी श्रवण शक्ति की परीक्षा घण्टे या सीटी की आवाज से चाहिए।

२—उपलब्ध बधिरता (Aquired deafness) इस प्रकार का बहरापन मध्यकर्ण जेलिन्ध (कर्ण या शब्द वाहिनी नाड़ी Lavditory nerve or acoustic nerve) में शोथ विकृति होने से उत्पन्न होता है और जो बच्चे बोलना न सीखे हों और उन्हें सुनाई देना अकस्मात् बन्द हो जाय तो वे बहरे और गूंगे (Deaf-mote) हो जाते हैं। ऐसी बधिरता मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis), स्कालेयट ज्वर पाषाणगर्दभ (Mumps), रोमान्तिक (Measles), विस्फोटयुक्त ज्वर आदि तीव्र रोगों कारण और कभी-कभी मस्तिष्कावसाद (Conossion of the brain) में उत्पन्न है। इसलिये बधिरता की साध्यासाध्यता की दृष्टि बाधिर्य के रोगी के पारिवारिक इतिहास (जात फिरंग आदि के लिये) का पता लगाना और यह भी पता लगाना चाहिए कि बधिरता उत्पन्न होने के पूर्व बच्चा बोलना या रोना था, कुछ दिन पूर्व तक कर्ण स्राव होता था या तीव्र रोग के बाद तो बहरापन प्रारम्भ नहीं हुआ? मस्तिष्कावरण और मध्य कर्ण के शोथ के कारण तथा विशेष प्रकार के शोथ यथा—(Broncho pneumonia) जन्य मध्य कर्ण शोथ के कारण उत्पन्न होने वाली बधिरता की साध्यासाध्यता कुछ आशाजनक होती है। कभी-कभी मध्य कर्ण का ग्रसनिका गत द्वार बन्द होने से या मध्य कर्ण में श्लेष्म या गूथ आदि भर कर उसमें पैदा कर देने से अथवा बहिः कर्ण में गूथ एकत्रित होने से भी भारीपन के साथ बधिरता उत्पन्न हो जाती है। मध्य कर्ण या उसके के बन्द होने के निम्न कारण हो सकते हैं। श्रुति सुरङ्गा के ग्रसनिका गत द्वार पर या उसके समीप किसी प्रकार का शोथादि होना या नासा द्वारा श्रुति

न्यूमोनिया के कारण बच्चे में कर्ण शूल उत्पन्न हुआ हो तो कभी-कभी बच्चे का शिर कुछ पीछे की ओर झुका भी रहता है।

कर्णनाद

इसे Noises in the ear तथा Tinnitus भी कहते हैं। वायु कान के छिद्र में स्थित होकर अनेक प्रकार के स्वर जैसे-भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदि उत्पन्न कर देता है, उसे कर्णनाद कहते हैं। पाश्चात्य मतानुसार इस रोग को *टिनिटस* कहते हैं और दो भागों मे मानते हैं यथा-

१—जिसे केवल रोगी ही सुन सकता है।

२—जिसको रोगी तथा दूसरे लोग भी सुन सकते हैं। उसमें भी प्रथम प्रकार का कर्ण नाद (केवल रोगी को ही सुनाई पड़ने वाला नाद) भी दो प्रकार का होता है- एक तो शिर के रोगों के कारण दूसरा-कर्ण आदि रोग के कारण होने वाला नाद। कर्ण गत रोगों से उत्पन्न कर्ण नाद याने सीटी बजाने की भांति या सिकारी देने की तरह अथवा गाने की तरह देर तक सुनाई देता है और उसकी तीक्ष्णता सुनाई देने के पूरे समय में एक ही तरह की रहती है और शिर रोगों के कारण होने वाला कर्ण नाद मानसिक विकृति का प्रारम्भिक लक्षण है फिर कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे यह कर्ण नाद स्पष्ट शब्दों के रूप में सुनाई पड़ता है। कभी-कभी कर्ण गत रोगों के कारण उत्पन्न कर्ण नाद भी शब्दों का रूप धारण कर लेता है और जब कभी ऐसा हो तो रोगी की मानसिक दशा की सावधानी के साथ जांच करने की आवश्यकता के लिये इसको एक प्रकार का सकेत ही समझना चाहिए। कान में प्रतीत होने वाला नाद मध्य कर्ण के *सपाक* और *अपाक* दोनों प्रकार के शोथों से उत्पन्न हो सकता है। यह *नाद* भी दो प्रकार के हो सकते हैं।

१—हृदय की गति के साथ-साथ धड़कन की भांति सुनाई देने वाला नाद जो हृदय तथा रक्त वाहिनियों की विकृति विशेष के कारण अथवा अस्थि जन्य *शब्द प्रवाह* के किसी दोष के कारण सुनाई देता है।

२—*अन्तः कर्ण* गत विकृति के कारण सुनाई देने वाला नाद जो सिसकारी देने की भांति या सीटी बजाने की भांति अथवा भोजन बनाने के पात्र में उबाल आने पर जैसा शब्द होता है उसी तरह का शब्द सुनाई देता है। कभी-कभी गान वाद्य की तरह यथा बांसुरी, हारमोनियम आदि की तरह ऊंचा सुरीला स्वर भी सुनाई देता है। गाने की तरह के नादों के अधिकतर रात्री में ही या प्रातः काल सोकर उठने के बाद सुनाई देने की शिकायत रोगी करता है। कर्ण नाद से रोगी की नींद बिलकुल रुकती तो नहीं किन्तु बहुधा

(शेषांश पृष्ट १८६ का)

पीड़ा और कान का बहिरापन दूर होता है।

२७८—प्याज का रस भी कान से टपकाना अत्यन्त लाभदायक है।

२७९—बकरी, ऊंट का मूत्र भी गुनगुना करके कान में टपकाना लाभदायक है। स्त्री के दूध की धार भी कान पीड़ा को शान्त करने में समर्थ है।

२८०—चाक सूनी की नई पत्तियां और सेंधा नमक पीस कर लेप करने से कर्ण सूजन मिटती है।

२८१—कान में कीड़े पड़ने पर सभालू के पत्तों का रस टपकावे।

२८२—बकरी के मूत्र में सेंधानमक औटाकर सहता २ डाले तो कर्णशूल में आराम होता है।

२८३—मूली के जड़ का रस मधु और तैल के साथ टपकाकर डाले तो बहिरापन दूर हो।

२८४—बड़ी सीप का चूर्ण तैल में पकाकर कान में डालने से कान का व्रण अच्छा होता है।

२८५—समुद्र फेन, सुपारी की राख और कत्था को पीसकर कान में डाले तो कान से पीव का बहना बंद हो जाता है।

इसमे नींद आने में कठिनाई अवश्य होती है। मस्तिष्क या नाड़ी विकार वाले रोगियों में कर्ण नाद कभी-कभी इतना दुःख दायक और असह्य हो जाता है कि वे आत्महत्या तक करने का प्रयत्न कर लेते हैं। यदि रोगी ऐसे कर्ण नाद की शिकायत करे जो उसके कर्ण गत रोग से सापेक्षतया अधिक तीव्र हो तो रोगी का *रक्त भार* नापना चाहिए और एल्ब्यूमिन के लिये मूत्र की परीक्षा करनी चाहिए। ऐसे कर्ण नाद जो रोगी को तथा दूसरे व्यक्तियों को भी सुनाई देते हैं वे प्रायः टान्सर टेम्पनी और टान्सरप्लेटि नामक पेशियों के सकोच के कारण उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी कुछ औषधियों के अधिक मात्रा में या अधिक समय तक सेवन करने से भी कर्ण नाद उत्पन्न होता है यथा—क्विनाइन इत्यादि से, परन्तु ऐसी औषधियों का कुछ समय तक सेवन बन्द कर देना चाहिए। कर्ण नाद अपने आप शान्त हो जाता है।

कर्ण बाधिर्य (Deafness)

जिस समय केवल वायु अथवा कफ युक्त वायु शब्द वाहिनी नाडियों में प्रवेश करता है तब मनुष्य को शब्द सुनाई नहीं देता उसे बाधिर्य कहते हैं। वाग्भट ने कर्ण नाद की उपेक्षा करने से भी बाधिर्य की उत्पत्ति बतलाई है यथा—

श्लेष्मणाऽनुगतोवायुर्नादो वसमुपेक्षित. ।
उच्चै. कृच्छ्राच्छ्रुतिं कुर्याद्बधिरं स्वक्रमेणच ॥

बधिरता दो प्रकार की होती हैं यथा—

१—जन्म जात (Gongenital) बधिरता- इसमें जन्म जात फिरङ्ग के कारण या स्वभावत अन्त कर्ण के श्रवण यन्त्र का प्रधान अङ्ग (Labrynth) अथवा मस्तिष्क गत श्रवण केन्द्र जन्म से ही पूर्व रूप से विकसित नहीं हुआ रहता। ऐसे रोगियों को बोल चाल के शब्दों का तनिक भी श्रवण ज्ञान नहीं होता। उनकी श्रवण शक्ति की परीक्षा घण्टे या सीटी की आवाज से करनी चाहिए।

२—उपलब्ध बधिरता (Aquired deafness)- इस प्रकार का बहरापन मध्यकर्ण लेब्रिन्थ (अन्तः कर्ण या शब्द वाहिनी नाड़ी Lavditory-nerve or acoustic nerve) में शोथ मूलक विकृति होने से उत्पन्न होता है और जो बच्चे अभी बोलना न सीखे हों और उन्हें सुनाई देना अकस्मात् बन्द हो जाय तो वे बहरे और गूंगे (Deaf-mote) हो जाते हैं। ऐसी बधिरता मस्तिष्कावरण शोथ (Meningitis), स्कालेट ज्वर, पाषाणगर्दभ (Mumps), रोमान्तिक (Measles), विस्फोटयुक्त ज्वर आदि तीव्र रोगों के कारण और कभी-कभी मस्तिष्कावसाद (Conossion of the brain) में उत्पन्न होती है। इसलिये बधिरता की साध्यासाध्यता की दृष्टि से बाधिर्य के रोगी के पारिवारिक इतिहास (जन्म जात फिरग आदि के लिये) का पता लगाना चाहिए और यह भी पता लगाना चाहिए कि बधिरता उत्पन्न होने के पूर्व बच्चा बोलना या रोना जानता था, कुछ दिन पूर्व तक कर्ण स्राव होता था या किसी तीव्र रोग के बाद तो बहरापन प्रारम्भ नहीं हुआ? मस्तिष्कावरण और मध्य कर्ण के शोथ के कारण तथा विशेष प्रकार के शोथ यथा—(Broncho pneumonia) जन्य मध्य कर्ण शोथ के कारण उत्पन्न होने वाली बधिरता की साध्यासाध्यता कुछ आशाजनक होती है। कभी-कभी मध्य कर्ण का ग्रसनिका गत द्वार बन्द होने से या मध्य कर्ण में श्लेष्म या गूथ आदि भर कर उसमें अवरोध पैदा कर देने से अथवा बहिः कर्ण में अत्यधिक गूथ एकत्रित होने से भी भारीपन के साथ बधिरता उत्पन्न हो जाती है। मध्य कर्ण या उसके द्वार के बन्द होने के निम्न कारण हो सकते हैं। श्रुति सुरङ्गा के ग्रसनिका गत द्वार पर या उसके समीप किसी प्रकार का शोथादि होना या नासा द्वारा श्रुति

सुरङ्गा में पानी जाना अथवा नासा गत, मुख गत या ग्रसनिका गत किसी व्रणादि का स्राव या मैल श्रुति सुरङ्गा में प्रवेश करना—इन कारणों से कर्ण पटल (Tympanic membrane) के पीछे की वायु का दबाव कम हो जाने से पटल भीतर की ओर दब जाता है और बाहर की ओर से देखने पर तनिक प्याले जैसा बीच में गहरा प्रतीत होता है। ऐसी दशा में बहिः कर्ण में यदि पूय हो तो उसे निकालना चाहिए और यदि मध्य कर्ण में किसी प्रकार का अवरोध हो तो (Eustachian catheter) मध्य कर्ण में नासा द्वारा प्रवेश करने के लिये धातु मय नाड़ी यन्त्र द्वारा प्रधमन करने या कारणानुसार अन्य समुचित उपचार द्वारा बधरिता की चिकित्सा करनी चाहिए। इन उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अपतन्त्रक (Hysteria), लघु मस्तिष्क के बाहर का अर्बुद (Extracerebellar tumor), चिरकालीन रक्ताल्पता (Chronic anaemia), अन्त. कर्ण गत रक्ताधिक्य (Congestion of the labrynth), तम्बाकू (Tobacco) और किसी बाहरी द्रव्य का बहिः कर्ण या मध्य कर्ण में पड़ जाना आदि कारणों से भी बधिरता उत्पन्न होती हुई देखी जाती है।

कर्ण क्ष्वेड

पित्तादि दोषों से युक्त प्रकुपित वायु जब कानों में बांसुरी की आवाज जैसा शब्द उत्पन्न करता है तो उसे कर्ण क्ष्वेड कहते हैं। कर्ण नाद और कर्ण क्ष्वेड में भेद—कर्ण नाद केवल वात जन्य होता है किन्तु कर्ण क्ष्वेड पित्तादि युक्त वायु से उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त इसमें केवल बांसुरी की तरह आवाज सुनाई देती है।

कर्ण स्राव (Otorrhea)

शिर में चोट लगने से, जल में डूबने या डूब कर स्नान करने से, कान के बल गिरने से अथवा कान में फोड़ा होने से वायु प्रकुपित होकर कान में से पूय (पीव) या कभी कभी पानी की तरह पतला द्रव भी बहाता है उसे ही कर्ण स्राव कहते हैं। कान का स्राव गाढ़ा पतला पूय युक्त पानी जैसा दुर्गन्ध युक्त या गन्ध हीन किसी भी प्रकार का हो सकता है। कर्ण स्राव भी एक लक्षण है। यह निम्न लिखित रोगों के कारण होता है—

१—बहिः कर्ण की विचर्चिका (Eczema of the external ear) में कर्ण स्राव पानी जैसा या गोंद की तरह चिपचिपा होता है। प्रायः गाढ़ा पूय युक्त स्राव बहुत कम होता है। किन्तु बहुत पुरानी विचर्चिका में कभी-कभी गाढ़ा पूय युक्त स्राव भी आ सकता है और कर्ण गत उपकला के सड़ने से उसमें हलकी दुर्गन्धि भी हो सकती है।

२—बहिः कर्ण गत पिडिका (Eorunculosis of the meatus) में कर्ण स्राव के पूर्व पीड़ा भी अधिक रहती है। स्राव गाढ़ा थोड़ा और पूय मय होता है। कान के भीतर ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि स्राव कान की बहुत गहराई से या श्रुति पटल (Tympanic mambrane) का भेदन करके नहीं आ रहा है बल्कि बहि. कर्ण की दीवार के बाहरी भाग के एक स्थान से आ रहा है।

३—तीव्र मध्य कर्ण शोथ (Acute otitis Media) में प्रारंभ में स्राव कुछ पतला रहता है। किन्तु धीरे २ पूय युक्त गाढ़ा और तार दार हो जाता है।

४—चिरकालीन मध्य कर्ण शोथ (Chronic otitis media) में कभी कभी इतना कम कर्ण स्राव होता है कि कान केवल गीला मात्र बना रहता है किन्तु अधिकतर दशाओं में स्राव पर्याप्त मात्रा में होता हुआ देखा जाता है यहां तक कि कभी कभी रात्रि में कान के समीप का बिस्तरा या तकिया भी भीग जाता है। स्राव अधिकतर पूय युक्त और बहुत दुर्गन्धि युक्त होता है किन्तु कभी कभी पानी जैसा

पतला और गन्धहीन भी हो सकता है। कर्ण गत Polypus मॉस वृद्धि या रोहन धातु Granulation के कारण बहुधा रक्त मिश्रित स्राव भी होता है। कभी कभी स्राव में कान की सड़ी अस्थियों के टुकड़े भी साथ आते हैं जिनसे एक विचित्र प्रकार की गन्ध आती है।

५—रक्त स्रावी मध्यकर्ण शोथ (Otitismedia haemorrhagica में) बहिः कर्ण द्वारा एक बार या अनेक बार रक्त स्राव होता है। इस प्रकार का स्राव प्रायः इन्फ्लुएञ्जा में या इन्फ्लुएञ्जा के बाद, कभी कभी वृक्क के रोगों के उपद्रव के रूप से तथा अज्ञात कारणों से भी देखा जाता है।

६—करोटितल का भग्न (Fracture of tha base of the skull) इसमें यदि भग्न शखास्थि में भी हुआ हो तो कान से रक्त स्राव होता है और कभी कभी इसके बाद थोड़ी या अधिक मात्रा में पानी जैसा (किन्तु अपेक्षा न्यून गुरुता वाला) स्राव अर्थात् मस्तिष्क सुपुम्ना द्रव (Cerebro-Spinal Fluid) भी आता है।

७—बहि कर्ण या मध्य कर्ण के घातक अर्बुद (Malignant disease of the middle ear or of the meatus) में, स्राव थोड़ा पतला और प्रायः पतला बहुत दुर्गन्ध युक्त होता है। भा० प्र० ने (अथवा सुश्रुत ने) कान से जो स्राव निकलता है उसको दो भागों में विभक्त किया है। एक को तो *पूतिकर्ण* कहते हैं जिसमें कान से दुर्गन्ध युक्त स्राव आता है। दूसरा कर्णस्राव कहलाता है जिसमें शेष सब प्रकार के स्रावों का समावेश होता है और उसमें प्रायः पीड़ा भी होती है। इस प्रकार मध्य कर्ण तथा बहिं कर्ण के घातक अर्बुद तथा मध्यकर्ण शोथ के चिर कालीन प्रकार में निकलने वाला स्राव प्रायः पूति कर्ण और शेषस्राव, कर्णस्राव कहे जा सकते हैं। कर्ण स्राव और पूति कर्ण को पाश्चात्य शालाक्य शास्त्र की दृष्टि से Otorrhoea अथवा Discharge from the ear कहते हैं।

कर्ण कण्डू

कफ से मिला हुआ वायु कान में खुजली उत्पन्न करता है उसे ही कर्ण कण्डू कहते हैं। कान में खुजली दो कारणों से उत्पन्न हो सकती है।

१—कान की गन्दगी से।

२—कान में उकौत या विचर्चिका Eczema होने से। इसलिए कर्ण कण्डू को पश्चात्यमतानुसार Eczema of the ear कहा जा सकता है।

कर्ण गूथक

पित्त की उष्णता से कान की श्लेष्मा सूख जाने से कान में (विष्ठा की तरह) मैल उत्पन्न हो जाता है। इसलिये इस रोग को कर्ण गूथक कहते हैं। कर्ण गूथ को पाश्चात्य मत से wax or cerumen कहते हैं। बहिः कर्ण कुहर (External Auritory meatus) के मुख्यतः तरुणास्थि निर्मित भाग की दीवार में बहुत सी सूक्ष्म ग्रन्थियां होती हैं जिन्हें Cerum in ousglands कहते हैं। इनसे एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ निकलता है जो बहिः कर्ण को भी किंचित चिपचिपा बना देता है। बाहर से उड़कर कान में जाने वाली धूल, रोये आदि उस चिप चिपे स्राव से चिपकते जाते हैं और कालान्तर में काफी परिमाण में एकत्रित हो जाते हैं इस को कर्ण गूथ कहते हैं। इसके अतिरिक्त आसपास की श्लेष्मिक कला के कुछ छिलके भी गूथ में शामिल रहते है। कभी कभी उपर्युक्त ग्रन्थियों का स्राव सामान्य से कुछ कम हो जाता है ऐसी दशा में कान सूखा सा रहता है और उसमें से श्लेष्मिक कला के कुछ छिलके निकलते हैं तथा कान में हलकी खुजली भी मालूम होती है। कभी कभी इन ग्रन्थियो में सामान्य से अधिक स्राव भी होने लगता है। यह विकृति प्रायः ग्रसनिका के नासा पश्चिम भाग (Nasopharynx) गत विकृति के कारण और बच्चों में विशेषत. Adenoids के कारण होती है। यहां से उपसर्ग श्रुति सुरङ्गा की ग्रन्थियों में होता हुआ इन Ceruminous Glands में भी पहुंच जाता है। इस विकृति के परिणाम स्वरूप अधिकाधिक गूथ

बहि. कर्ण में एकत्रित हो जाता है और धीरे धीरे कर्ण कुहर को बन्द कर देता है। कालान्तर में यह गूथ सूखकर कड़ी और काली हो जाती है। कर्ण कुहर के गूथ द्वारा अवरुद्ध हो जाने से बधिरता, अपना शब्द अधिक सुनाई देना किन्तु दूसरे का या बाहरी शब्द बहुत ही कम सुनाई देना अर्थात् Autophonia (कर्ण नाद) आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं और साथ ही कभी कभी शिर के बगल में नाड़ी शूलवत् पीड़ा भी होती है। संभव है उत्पन्न होते ही वाग्भटोक्त कर्ण प्रतिनाह इन्हीं लक्षणों का समूह हो यथा—

"वातेन शोषितः श्लेष्मा स्रोतो लिम्पेत्ततोभवेत्।
रुग्गौरवं पिधान च स प्रतिनाह भजित. ॥

कर्ण प्रतिनाह

कान का मैल पतला होकर मुख और नाक में उतरता है उसे कर्ण प्रतिनाह कहते हैं। इससे आधे मस्तक में पीड़ा होती है अर्थात् आधा शीशी रोग उत्पन्न करता है।

क्रिमि कर्ण (Worms in the Ear)

जिस समय कान में क्रिमि (कीड़े) पड़ जाय अथवा मक्खी अण्डा रक्खे तब कृमि के लक्षण होते हैं उसे क्रिमि कर्ण रोग कहते हैं। वाग्भटाचार्य ने कृमि कर्णक का लक्षण कुछ अधिक सुस्पष्ट लिखा है यथा—

वातादि दूषित श्रोत्र मासा सृक्क्लेदजारूजम्।
खादन्तोजन्तव. कुर्युस्तीव्रासक्कृमिकर्णकः ॥
सम्भवत।

ठीक सफाई न करने से मध्यकर्ण के चिरकालीन शोथ में या बहि. कर्ण के Rodent ulcer में कीड़े पड़ जाने पर उन्हें कृमिकर्णक कहते हैं।

कर्ण विद्रधि

कान में दो प्रकार की *विद्रधि* होती है।

१—क्षत (घाव) जन्य या अभिघात (चोट) जन्य। इन दोनों विद्रधियों का समावेश आगन्तुज में होता है इसी से ये दोनों एक ही गिनी जाती है।

२—*वातादि दोष जन्य*-इन विद्रधियों के होने पर कान से, लाल, पीला, और अरुण वर्ण का स्राव होता है तथा सुई कोंचने जैसी पीड़ा, धुआं निकलने जैसा दाह और अग्नि के ताप जैसी गर्मी कान में प्रतीत होती है। कर्णविद्रधि को पाश्चात्य कर्ण रोग विज्ञान में Furuncolosis or Absces or boil of the External maatos कहते हैं इसका मुख्य लक्षण तीव्र पीड़ा है जो कभी कभी अपनी तीव्रता के कारण नींद नहीं लगने देती। कान को छूने से या कुछ दबाने से पीड़ा अधिक हो जाती है। पीड़ा होने के कुछ ही दिन बाद थोड़ी सी गाढ़ी पूय निकलती है, ज्वरादि लक्षण प्राय: बहुत कम या नहीं रहते। पूय के निकलने पर पीड़ा कुछ कम हो जाती है। कर्ण कुहर को देखने पर किसी स्थान पर लालिमा और पीडना उभरना दिखाई देती है। प्राय: बहि. कर्ण की पश्चिम भित्ति पर ही अधिक तर होती है और पूर्व भित्ति पर बहुत कम होती है।

कर्ण पाक

प्रकुपित पित्त के कारण कान में कोथ (दुर्गन्ध युक्त सड़न) और गीलापन उत्पन्न होता है, इससे ही कर्ण पाक रोग उत्पन्न होता है। कर्ण पाक को Herpes of the external ear कह सकते हैं। यह कान की ठीक सफाई न करने से अथवा यदि शरीर के किसी भाग में Herpes हुई हो तो खुजलाने आदि के द्वारा उस का उपसर्ग कान में भी जाने से उत्पन्न होती है।

पूति कर्ण

कर्ण विद्रधि के पक जाने से या कान में पानी भर जाने से कान से दुर्गन्धित पूय बहा करती है इसको ही पूतिकर्ण रोग कहते हैं। इसमें सदा दुर्गन्धित ही स्राव होता है। यही कर्ण स्राव से भेद है।

परिपोटक

बहुत दिनों तक भारी वस्तु को कर्ण पाली के छिद्र में डाले रहने से कोमलता के कारण कर्ण पाली में सहसा शोथ पैदा हो जाता है। कर्ण पाली तनिक फट जाती है,

उसमें पीड़ा और जकड़ाहट हो जाती हैं और उसका रङ्ग काला या कालिमा लिये हुए लाल हो जाता है। इस रोग को *परिपोटक* कहते हैं।

उत्पात

कान में भारी आभूषण पहनने से, चोट के लगने से, कान खींचने से, रगढ लग जाने से, रक्त पित्त के कुपित होने से, कान की पाली में जलन और पीडा युक्त सूजन होती है और यह पक जाती है। हरी, नीली अथवा लाल सूजन, दाह, पीड़ा होवे और कभी २ रक्त भी बहता हो इसको उत्पात रोग कहते हैं।

उन्मथक

कर्ण पाली को बलात बढ़ाने से उसमें वायु प्रकुपित हो जाता है और कफ के साथ मिलकर, जकड़ाहट, खुजली और अल्प पीडा युक्त शोथ पैदा करता है इसको उन्मथक रोग कहते हैं। यह कफ वात जन्य होता है।

दुखः वर्धन

ठीक तरह से न छेदे हुए कान को बढ़ाने से खुजली जलन और पीड़ा युक्त त्रिदोषज जो शोथ होता है और पक भी जाता है इसको दुखः वर्धन कहते हैं।

परिलेही

कफ, रक्त, कृमि ये तीनों प्रकुपित होकर सरसों के समान आकार वाली तथा फैलने वाली फुन्सियाँ कर्ण पालि में उत्पन्न कर देते हैं। इसमें खुजली और जलन भी होती है। ये फुन्सियां चारों ओर फैलकर कर्ण पाली और कर्ण शष्कुली (कान का बाहरी तरुणास्थिमय सूर्पाकार भाग) को खाकर मांस हीन कर देती है इस रोग को परिलेही कहते हैं।

कर्णार्बुद

सात प्रकार के होते हैं यथा—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, मांसज, मेदज, और सिराजन्य ।

कर्ण शोथ

चार प्रकार का होता है यथा—वातज, पित्तज, कफज रक्तज। चरकोक्त लक्षण—

नादोऽतिरुक् कर्ण मलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चास्रवण चवातात् ॥ शोथः सरागोदरणं विदाहः सपीत-पूति स्रवणं चपितात् ॥१ वैश्रुत्य, कण्डू, स्थिरशोथ, शुष्क, स्निग्ध, स्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च ॥ सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात् स्रावश्च तत्राधिक दोष वर्ण ॥२॥

च० चि० अ० १६

पनसिका

कान के भीतर व्रण होने को पनसिका रोग कहते हैं।

पाषाण गर्दभ

कान के क्षुद्र रोग के अन्तर्गत रोग विशेष को पाषाण गर्दभ कहते हैं।

चिकित्सा

कर्ण शूल में

२८६—कान में तैल डालकर ऊपर से महीन छना हुआ समुद्र फेन छोड़ दे, तत्काल शाँति मिलेगी अथवा गरम गरम गौ मूत्र को कान में छोड़े शीघ्र लाभ होगा और थोड़ा सा कपड़छन सेंधानमक ऊपर से कान में छोड़दे अथवा दीपिका तैल कान में छोड़े।

कर्णनाद, बाधिर्य, कर्ण स्राव में

२८७—अपामार्ग क्षार तैल, तथा क्षार तैल सर्जी का क्षार तैल, बिल्व तैल, दशमूल तैल। बधिरता नाशक बिन्दु; कर्ण बिन्दु।

पूति कर्ण में

२८८—कान में गौमूत्र छोड़े।

कर्ण स्राव में

२८९—जम्बाद्य तैल

कर्ण गूथ

२९०—कान में तैल डालकर मैल नरम होने पर शलाका से निकाल ले।

क्रिमिकर्ण

२९१—सरसों का तैल कान में छोड़े। एक बीजदार

अच्छे पके हुए बैंगन को सुखाकर चूर्ण पीस कर रखले फिर एक शराव (सकोरा) में रखी हुई अग्नि पर चूर्ण को थोड़ा सा छोड़कर ऊपर से दूसरा शराव शीघ्र ढकदें, उस छिद्र पर एक नली लगाकर कान में प्रवेश करादें। इससे लाभ होगा।

कर्ण पालि में

२६२—शतावर्यादि तैल कान में छोड़े।

कान बहना, दर्द और दाह पर

२६३—काली सज्जी का चूर्ण बहुत बारीक पीस कर कपड़ छन करके कान में डाले और बिजौरे नीबू का रस उसमें निचोड़ देवे यह कर्ण स्राव में तो बहुत ही गुण कारक है।

अथवा—

२६४—हरड़ आंवला
मजीठ लोध
तिन्दुक प्रत्येक समभाग
—लेकर इन वस्तुओं को गौमूत्र में मिला कर प्रति दिन कान धोवे।

कर्ण रोगों का सामान्य यत्न

सब प्रकार के कर्ण रोगों में सामान्य रूप से घृत पान करना श्रेष्ठ है और रसायन है। तथा परिश्रम और शिर पर जल डाल कर स्नान नहीं करना चाहिये तथा ब्रह्मचर्य से रहें। विशेष बोलना भी नहीं चाहिए। ये उपाय कर्ण रोगों में हितकारक है।

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
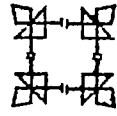
मुखरोग विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में सामूहिकरूपेण समस्त मुख रोगों का
चिकित्सोपक्रम सहित सुन्दर वर्णन हुआ है ।

मुखरोग निदानम्

लेखक-श्री कविराज आयुर्वेदाचार्य नानकचन्द्र जी वैद्य शास्त्री (देहली)

परम माननीय मित्रवर प० श्री नानकचन्द जी आयुर्वेदाचार्य महोदय को आयुर्वेद जगत भली प्रकार जानता है। आप लाहौर के प्रतिष्ठित वैद्यों और अनुभवी अध्यापकों में से हैं। आपने अद्यावधि सैकड़ों लेख लिखे होंगे। साथ ही अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थों के लेखक और टीका कार हैं।

मेरे विशेष निवेदन पर आपने चिकित्सोपक्रम सहित **मुखरोग निदान** पर विवेचना पूर्ण सुन्दर लेख पाठकों की भेंट किया है। प्रत्येक स्थल पर आयुर्वेद के मान्य ग्रन्थों के उद्धरणों और सुस्पष्ट तथा सुबोध वर्णन शैली के कारण लेख की उपादेयता और भी बढ गई है। आयुर्वेद की विशेषता प्रदर्शित करने के कारण लेखक धन्यवादार्ह हैं।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

ऊर्ध्वजत्रू शब्द से ग्रीवा से ऊपर होने वाले रोगों का ही ज्ञान होता है। इसमें शिर, नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख आदि में उत्पन्न व्याधियों का ही समावेश किया गया है। अत. यहाँ मुख रोगों का वर्णन करेंगे। मुख रोगों का वर्णन करते हुए आयुर्वेद में भिन्न मत दृष्टि-गोचर होते हैं। यथा सुश्रुत में—

मुखरोगा. पञ्चषष्टि सप्तस्वायतनेषु।

अष्टांग संग्रहे तु—

वक्त्रे सर्वत्र चेत्युक्ता पञ्चसप्ततिरामया.।

चरकेऽपि.—

संस्थान दूष्याकृति नामभेदाच्चैते चतुः षष्टि विधाभवंति।

इसी प्रकार शार्ङ्गधर ने "चतु. सप्तति" ७४ स्वीकार किये हैं तथा अष्टांग संग्रह में गण्ड स्थान को भी एक संस्थान मान कर मुख रोगों के आठ आयतन कहे हैं। अतः यहाँ आयतनानुसार संख्या को दर्शाते हैं।

यदाहभोज·—

दन्तेष्वष्टावोष्टयोश्च मूलेषुदशपञ्च च।
नवतालुनि जिह्वायाँपञ्च सप्तदशामयाः॥
कण्ठेत्रयः सर्वसरा एकषष्टिश्चतुः पराः॥ इति

अष्टाङ्ग संग्रहेऽपि—

ओष्टेगण्डेद्विजेमूले जिह्वायांतालुके गले।
वक्त्रे सर्वत्र चेत्युक्ताः पञ्चसप्तति रामयाः॥
एकादशैकोदश च त्रयोदश तथाचषट्।
अष्टातथादशाष्टौ चक्रमात्॥ इति

अर्थात् सुश्रुताचार्य ने सात आयतन मान कर जैसे ओष्ठों में ८, दन्तमूल में १५, दन्तों में ८, जिह्वा में ५, तालु में ६, कण्ठ में १७, सर्व सर में ३ इस प्रकार ६५ कहे हैं। परञ्च वाग्भट ने दन्तों में १०, ओष्ठों में ११, मूल में १३, तालु में ८, जिह्वा में ६, कंठ में १८, सर्व सर ८, गंड में १ इस प्रकार ७५ स्वीकार किये हैं। इनका भेद यथा स्थान पर दर्शाया जावेगा।

निदान यथा अष्टाङ्ग संग्रहे—

मत्स्य माहिष वाराहपिशितामकमूलकम्।
मासमूपदधिक्षीर सूक्तेक्षुरसफाणितम्॥
अवाक् शय्यांच भजतो द्विषतो दन्तधावनम्।

धूमछर्दन गडूसानुचित च सिराव्यधम् ॥
क्रुद्धाः श्लेष्मोल्वणा दोषाः कुर्वन्त्यन्तर्मुखे गदान् ।

माधवेऽपि—

आनूपपिशित क्षीर दधि मत्स्याति सेवनात् ।
मुखमध्येगदान् कुर्यु. क्रुद्धा दोषः कफोत्तरा. ॥

अर्थात् मत्स्यादि अनूपजीवों के मास का अधिक सेवन करने से, माषसूपका, क्षीर, दधि, फाणित आदि के अधिकतर सेवन से, शिर नीचे की हुई शय्या पर सोने से, दांतुन को न करने से, धूम, वमन गंडूष तथा अनुचित क्रम से शिराव्यंध करने कफाधिक्य दोष मुख में रोगों को उत्पन्न कर देते हैं।

ओष्ठगतानाह—

तत्रौष्ठ प्रकोपा वातपित्त श्लेष्म सन्निपात-
रक्तमांस मेदोभिघातनिमित्ता. ।
इति स्पष्टम्

अष्टांग सग्रह में निम्न तीन रोग ओष्ठों में अधिक वर्णन किये हैं।

१—'तत्रखण्डौष्ट इत्युक्तो वातेनोष्टो द्विधा कृत' अर्थात् वात से ओष्ट द्विफाड हो जाते हैं उसे "खंडोष्ट" कहते हैं। आंग्ल भाषा में 'हेअरलिप' (Hare lip) कहते हैं।

२—'खजूर सदृशं चात्र क्षीणे रक्तेऽर्बुदभवेत्'। इसे Epithelioma कहते हैं।

३—'जलबुद्बुद वद्वात कफादोष्टे जलार्बुदम्' अर्थात् वात कफ से जल के बुलबुले के समान को जलार्बुद कहते हैं। इसे Mucous cyst कहते हैं। यह तीनों भेद वाग्भट ने अधिक कहे हैं।

१—वातिक माह

कर्कशौ परुषौस्तब्धौ कृष्णौतीव्ररुगन्वितौ ।
दाल्येते परिपाट्येते ह्योष्टौ मारुत कोपतः ॥

वात कोप से ओष्ट खरदरे, कठिन, स्तब्ध, कृष्णवर्ण तीव्र पीड़ा युक्त, दलनवत्, पाटनवत् पीड़ा हो उसे Cracked वा Chapped lips कहा है।

२—पैत्तिक माह

आचितौपिडकाभिस्तु सर्षपाकृतिभिर्भृशम् ।
सदाह पाक संस्रावौ नीलौ पीतौ च पित्ततः ॥

अर्थात् पित्त से ओष्ट सरसों के सदृश बहुत सी पिड़काओं से व्याप्त तथा दाह, पाक और स्राव से युक्त नील और पीत वर्ण के होते हैं।

३—कफजमाह

सवर्णाभिस्तुचीयेते पिडिकाभिरवेदनौ ।
कण्डूमन्तौकफाच्छ्वनौपिच्छिलौशीतलौ गुरू ॥

अर्थात् कफ प्रकोप से दोनों ओष्ट त्वचा समान वर्ण युक्त पिड़िकाओं से व्याप्त तथा वेदना रहित कंडु युक्त कफ से शोथ, पिच्छिल, ठंडे तथा भारी होते हैं।

४—सन्निपातिकमाह

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छुक्लौतथैवच ।
सन्निप तेन विज्ञेयावनेक पिडिका चितौ ॥

अर्थात् सन्निपात से ओष्ट कभी काले कभी पीत और कभी श्वेत होते हैं और अनेक प्रकार की पिडकाओं से व्याप्त होते हैं। पित्तज, कफज और सन्निपातज ओष्ट प्रकोप को प्राय. आंग्ल भाषी Herpes labialis रोग कहते हैं।

५—रक्तजमाह

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभि समाचितौ ।
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवत. शोणित प्रभौ ॥

अर्थात् रक्त दूषित ओष्ट खजूर के समान पिडकाओं से युक्त, शोणित स्राव करते हैं तथा रक्त वर्ण होते हैं।

६—मांसजमाह

मांस दुष्टौ गुरु स्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ।
जन्तवश्चात्रमूर्च्छन्ति सृक्कस्योभयतो मुखात् ॥

अर्थात् मांस प्रकोप जनित ओष्ट भारी, स्थूल, मांसवत् पिडकाओं से व्याप्त अर्थात् मांस उभरा हुआ

प्रतीत होता है तथा मुख से दोनों तरफ ओष्टों में कृमि हो जाते हैं। रक्तज और मांसज ओष्ट प्रकोप को आंग्ल भाषा में Epithelioma कहा है।

७—मेदोजमाह

मेदसाघृतमण्डाभौ कडूमन्तौ स्थिरौ मृदू।
अच्छस्फटिकसङ्काश मास्राव स्रवतो गुरू॥

अर्थात् मेद से ओष्ट घृत मड के समान, कडू युक्त, स्थिर तथा कोमल, शुद्ध स्फटिक के समान श्वेत स्राव को करते हैं। इसे प्रायः Macrocheilia कहा है।

८—क्षतजमाह

क्षतजाभौ विदीर्येत पाट्येते चाभिघातनः।
ग्रथितौच समाख्याता वोष्टौ कंडूसमन्वितौ॥

अर्थात् अभिघात से ओष्ट क्षत के सदृश फटे तथा छिले हुए, गठीले और कडू युक्त होते हैं। क्षतज ओष्ट प्रकोप में कफ रक्त का अनुबन्ध भी जानना चाहिए। यदुक्तं भोजे—

क्षतावभिहतौ वापि रक्त वोष्टो सवेदनौ।
भवत. सपरिस्रावौ कफ रक्त प्रदूषितौ॥
इति स्पष्टम्

यहां अभिघात जनित वायु का भी अनुबन्ध माना गया है।

दन्तमूल गतान् पञ्चदशानाह

दन्तमूलगतास्तु-शीतादो, दन्तपुप्पुटको, दन्तवेष्टकः।
शोषिरो, महाशौषिर', परिदर, उपकुशो-
दन्तभ्रं दर्भो, वर्धनोऽधिमांसो, नाड्य पञ्चेति॥

वाग्भट में दन्तवेष्टक और परिदर नहीं वर्णन किये हैं। दन्त विद्रधि अधिक है। इसी लिए वाग्भट ने दन्तमूल में १३ रोग कहे हैं जो पीछे दर्शाये गये हैं।

१—शीताद

शोणित दन्त वेष्टेभ्यो यस्याकस्मात प्रवर्तते।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम्।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणित सम्भवः॥

अर्थात् जिस व्यक्ति के दन्तमूल से अकारण रक्त स्राव हो, मसूड़ों से दुर्गन्ध आवे, काले, नीले और कोमल (पिलपिले) हों, फटते हों तथा पक जायें वह कफ रक्त से शीताद रोग जानो। शीताद रोग को Bleeding or spongy gums कहते हैं। यह रोग मुख को भली प्रकार दातुन आदि से साफ न करने पर हो जाता है।

२—दन्त पुप्पुटक

दन्तयो स्त्रिपु वा यस्य श्वयथु' सरूजो महान्।
दन्त पुप्पुट को ज्ञेयः कफ रक्त निमित्तज॥

अर्थात्—जिस व्यक्ति को दो या तीन दांतों के मसूड़ो में पीड़ा युक्त शोथ हो जाये वह रोग कफ रक्त के कारण से जानना चाहिए। इसको (Gum boil) कहते हैं। यह, दन्त व्याधि से अल्पाकार युक्त होता है। प्रायः मसूड़े में छिद्र करके बाहर निकलता है।

३—दन्तवेष्ट

स्रवन्ति पूय रुधिर चला दन्ताभवन्ति च।
दन्त वेष्ट. सविज्ञेयो दुष्ट शोणित सम्भवः॥

अर्थात्—जिसके दन्त मूल से रक्त तथा पूय का स्राव हो और दाँत हिलने लगे उसे दुष्ट रक्त से पैदा हुआ दन्तवेष्ट रोग जानना चाहिए। इस व्याधि को Pyorrhoea alveolaris या Suppurative Gingivitis कहते हैं।

४—शौषिर

श्वयथुर्दन्त मूलेषुरुजावान् कफ रक्तज.।
लालास्रावी सविज्ञेयः कण्डूमान् शौषिरोगद॥

अर्थात्—कफ रक्त से उत्पन्न, लाला स्राव, कण्डू युक्त दन्त मूल में जो शोथ हो तथा पीड़ा युक्त हो उसे शौपिर कहते हैं।

५—महाशौषिर

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ।
दन्तमांसानि पच्यन्ते मुख च परिपीड्यते ॥
यस्मिन् स सर्वजो व्याधिर्महा शौषिर संज्ञका ।

अर्थात्—दन्त वेष्टों से दांत जिसमें हिलने लगे और तालु फटने लगे, मसूड़े गलजायें, मुख में पीड़ा हो वह त्रिदोषज महाशौषिर रोग होता है ।

६—परिदर

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्टीवति चाप्यस्टक् ।
पितास्टक् कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरोहिसः ॥

अर्थात्—जिसमें मसूड़े गलने लगें, पुनः २ रक्त थूके उसे पित्त रक्तकफ से होने वाली परिदर व्याधि जाने ।

७—उपकुश

वेष्टेषुदाहः पाकश्च तेभ्योदन्ताश्चलन्ति च ।
आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्द वेदना ॥
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते ।
यस्मिन्नुपकुशः सस्यात् पित्त रक्त कृतो गदः ॥

अर्थात्—जिस रोग में मसूड़ों में दाह और पाक हो, दांत हिलने लग जायें, दवाने से रक्त निकलने लगे, मन्द पीड़ा हो, रक्त स्राव होने पर मसूड़े फूल जायें, मुख से दुर्गन्ध हो जाये वह पित्त रक्त जन्य उपकुश जानना चाहिए ।

८—वैदर्भ

घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान् ।
भवन्ति चचलादन्ता. सवैदर्भोऽभिघातजः ॥

अर्थात्—दन्त मूलों में घर्षण करने पर शोथ हो जाये, दांत हिलने लग जायें, वह वैदर्भ नामक रोग अभिघात जनित जानना । शौषिर से लेकर "दन्तवैदर्भ तक यह सब दन्त वेष्टों के विविध भेद हैं । इन्हें Gingivitis कहते हैं । महा शौषिर के लक्षण तन्त्रान्तर में भी मिलते हैं यथा वाग्भटे—

स सन्निपात ज्वरवान् सपूय रुधिर स्रुतिः ।
तथाचभोज–विवृद्धमनिष्टांदंतान्ताल्वोष्टपिहारयेत्।
महा शौषिर मित्येतत् सप्तरात्राद्धि हन्त्य सून् ॥

इन लक्षणों पर ध्यान देने से प्राय. इसे Gangrenous stomatitis or cancrum oris मानते हैं । इसमें गण्डस्थल में या मसूड़ों मे व्रण बन जाता है जो जिह्वा तालु आदि पर फैलता है । इसमें तीव्र ज्वर होता है और रोगी ७ या १० दिनके भीतर मर जाता है Text book of the practice of Medicine by F. W. Price.-This rare disease occurs in children. It occurred in two men. A sloughing ulcer developes in the inside of the cheek or on the gums, perforates the cheek or spreads to the tongue, chin jawbone Cancrum oris is accompained by severe constitutional symptoms, the patient being prostrated with a high temperature and rapid pulse Death generally occurs between seven and ten days of the disease.

९ – वर्धन

मारुते नाधि को दन्तो जायते तीव वेदन. ।
वर्धन. समतो व्याधिर्जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥

अर्थात्—मारुत से तीव्र पीड़ा करने वाला अधिक दांत कभी कभी उत्पन्न होता है, वह रोग वर्धन कहा है । दांत निकल आने पर पीड़ा शान्त हो जाती है । इसे "अधि दन्त या खलु वर्धन भी कहते हैं ।

'दान्तोऽधिकोऽधिदन्ताख्य. सचोक्त' खलवर्धनः ।

वाग्भट

अंग्रेजी में Extra tooth-कहते हैं । कई व्यक्ति इसे अकलदाढ़ (Wisdom tooth) भी कहते हैं । चिकित्सा में इसे उखाड़ने का भी आदेश किया है—"उद्धृत्याधिक दन्त तुततोऽग्निमवचारयेत् ।

१०—अधिमास

हानध्ये पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथोमहारूजः ।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमासकः ॥

अर्थात्—निचले जबड़े के पिछले दांत के समीप तीव्र पीड़ा युक्त लाला स्राव युक्त अत्यन्त शोथ होता है उसे अधिमास कहते हैं। यह Impacted wisdom tooth कहलाता है।

११—दन्त नाडी

दन्तमूलगतानाड्य पञ्चज्ञेया मयेरिताः ।

यह पञ्च नाड़ी दांतों के मूल में वातादि दोष युक्त तीन, सन्निपात की चतुर्थ, शाल्यज पञ्चमी जानें। यह १५ रोग दांतों के कहे हैं।

करालादाण माह

"शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्त समाश्रितिः ।
करालान्विकरान् दन्तान् करालोनस सिध्यति ॥

अर्थात्—वायु दांतों में कुपित होकर दांतों को विषमावस्था में तथा विकट कर देती है उसे कराल रोग कहते हैं। वह सिद्ध नहीं होता। कराल व्याधि को सुश्रुत ने नहीं कहा और माधव ने पढ़ा है यदि न पढ़ें तो सुश्रुत की पञ्च दश संख्या में हानि हो जाती है।

दन्तगतानाह

दन्तगतालु, दालान, क्रिमिदन्तको, दन्तहर्षो, भञ्जानक, शर्करा, कपालिका, श्यावदन्तको हनुमोक्षश्चेनि। अष्टांग सग्रह में करालादि तीन रोग अधिक वर्णन किये हैं यथा—

१—करालस्तु करालाना दशनानाँ दफानामां समुद्भव ।

२—चाल-चालश्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथै ।

३—दन्तभेदोयथा—दन्तभेदेद्विजास्थोदभेदरुक् स्फुट नान्विता ।

१—दालन

दाल्यन्ते बहुधा दन्ता यस्मिंतीव्र रुगन्विताः ।
दालनः सतित्तेयः सदागतिनिमित्तज ॥

अर्थात् जिस रोग में वात प्रकोप के कारण दांतों में अत्यन्त पीड़ा हो और फटने लगे उसे दालन व्याधि जानना। इस व्याधि को शीत दन्त भी कहते हैं यथा—

अष्टाङ्ग संग्रहे-वातादुष्णासहा दन्ताः शीतस्यर्शाधिकव्यथाः ।
दाल्यते इव शूलेन शीताख्योदालन वृतः ॥

इसे Toothache या Odontodynia कहते हैं।

२—कृमि दन्त

कृष्णश्छिद्री चलः स्रावी ससरम्भीमहारुजः ।
अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥

अर्थात् जो दांत काला हो, छिद्र हो जाये, हिलने लगे, स्राव तथा शोथ युक्त हो, बिना कारण ही जिसमें पीड़ा है वह वात जन्य कृमि रोग जानना। इस रोग को (Dental caries) कहते हैं। दांतों को खाना खाने के बाद भली प्रकार साफ न करने से उसमें लगे हुए खाद्य के सड़ जाने पर अम्ल उत्पन्न होकर दन्त पीले हो जाते हैं पुनः इसमें कृमि पड़ जाने से शूलादि उपद्रव हो जाते हैं।

३—दन्तहर्ष

दशनाः शीतमुष्णं च सहन्ते स्पर्शन नच ।
यस्यतं दन्त हर्ष तु व्याधिविद्यात् समीरणात् ॥

अर्थात् जिसके दन्त उष्ण तथा शीत और स्पर्श का सहन नहीं करते उस रोग को दन्त हर्ष कहते हैं। इसे वातज जानना। यह दन्त हर्ष Odontitis है। माधव ने इसे 'पित्तमारुत कोपेन' ऐसा लिखा है।

४—भञ्जनक

वक्त्रं वक्रंभवेद्यास्मित् दंतभगश्चतीव्र रुक् ।
कफ वातकृतोव्याधिः सभञ्जनक सज्ञित ॥

जिसमें मुख टेढ़ा हो जाय दांत टूट जाये तीव्र पीड़ा हो, वह कफ वात जन्य भञ्जनक नामक रोग है।

५—दन्त शर्करा

शर्करेवस्थिरीभूतो मलो दन्तेपु यस्यवै ।
सादन्तानां गुणघ्नी तुविज्ञेया दन्तशर्करा ॥

दन्त शर्करा को Tarter कहते हैं। इसमें दन्तों में फैली हुई चीजों के सड़ने पर खनिज पदार्थ, प्रायः Calcium phosphate उनकी जड़ों में जम जाता है।

६—कपालिका

दलन्ति दन्त वल्कानि यदा शर्करयासह।
ज्ञेयाकपालिका सैव दशनाना विनाशिनी॥

अर्थात् जब शर्करा के साथ दांतों के छिलके उतरने लगते हैं तब दांतों का नाश करने वाले वही कपालिका कहे जाते हैं। 'दन्तवल्क' दांतों के आवरण, को Enaml कहते हैं। देह में जितने पदार्थ हैं उनमें से दान्त का वल्क सबसे कठिन होता है। दंतों को यह ढके रखता है इसी से कठिनतर द्रव्यों को भी चर्वण कर सकते हैं। दांतों की सफाई न करने से उन पर मैल जम जाता है। इससे आवरण की मजबूती नष्ट हो जाती है फिर आवरण गल कर निकलने लग जाता है।

७—श्यावदन्तक

"योऽसृग मिश्रेण पित्तेनदग्धोदन्त स्त्ववशेषत्।
श्यावतां नीलता वाऽपिगतः सश्यावदन्तक॥

अर्थात्—जो दांत रक्त मिश्रित पित्त से दग्ध होकर कृष्ण या नीलवर्ण हो उसे श्यावदन्तक कहते हैं।

८—हनुमोक्ष

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धिर्विसंहतः।
हनुमोक्ष इतिज्ञेयो व्याधिरर्दित लक्षणः॥

अर्थात्—'तैस्तैर्भावैः' उच्च स्वर से बोलने से, कठिन पदार्थों के चर्वण करनेसे, हंसने से, जृम्भा से इन हेतुओं से हनुसन्धि च्युत हो जाती है इसे (Dislocation of the lower jaw) कहते हैं यह प्रायः वातव्याधि में अर्दित रोगों के लक्षण युक्त होता है। हनुमोक्ष वास्तव में दन्त रोग नहीं है इस लिए माधव में नहीं कहा। माधव ने दन्तविद्रधि का वर्णन किया है। (दन्तविद्रधि.) यथा—

दन्तामांसे मलैः सास्रैर्बह्यिन्तः श्वयथुर्गुरु।
सदाहरुक् स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्त विद्रधि॥

इति स्पष्टम्। भोज ने हनुमोक्ष के लक्षण इस प्रकार कहे हैं। यथा—

वाताभिघाताजन्तोर्हि हनुसन्धिर्विमुच्यते।
निरस्त जिह्वः कृच्छ्रेण भाषितं तत्र गच्छति॥

भोज ने भी इस व्याधि को वात से ही माना है।

जिह्वागतासु—

कण्टका स्त्रिविधा स्त्रिभिर्दोषैः, अलास, उपजिह्विका, यह रोग जिह्विका के है।

१—वात कण्टक

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदन प्रकाशा।

२—पित्तेन

"पित्तेन पीता परिदह्यतेच चिता सरक्तैरपि कण्टकैश्च।

३—कफेन

कफेनगुर्वी बहुला चिता च मांसोद्गमैः शाल्मलि-
कण्ट काभैः।

अर्थात् – वात कोप से जीभ फटी हुई, सोई हुई तथा शाक पत्र के समान खरदरी होती है। पित्त से पीत वर्ण, दाहयुक्त तथा रक्ताङ्कुर से युक्त होती है। कफ से भारी स्थूल तथा सिम्बल के कांटों के समान मांसाकुरों से व्याप्त होती है। 'प्रसुप्ता'-रसस्वादन विहीनेत्यर्थ.

जिह्वा कण्टक (Chronic superficial glossitis) कहते हैं।

वातकण्टक—Cracked or fissured tongue.

पित्तज—Redglanzed tongue.

कफज—Ichthyosis कहते हैं।

४—अलास

जिह्वातलेयः श्वयथुः प्रगाढ़ः सोऽलास सज्ञः कफरक्तमूर्तिः।
जिह्वांस तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले तुजिह्वा भृशमेति पाकम्।

अर्थात् जिह्वा के तल भाग में कफरक्त जनित गम्भीर शोथ हो जाता है उसे अलास कहा है। उसके बढ़ जाने पर जिह्वा स्तम्भित होकर अत्यन्त पाक को प्राप्त हो जाती है इसे Sublingual abscess कहते हैं। बढ़ने पर शोथ अधोभाग पर अधोहनु उपत्वचा शोथ (Submaxillary cellutitis) उत्पन्न करता है। इसे कई आचार्य स्तम्भ से वात, शोथ वृद्धि से कफ तथा पाक से पित्त मान कर अलास को त्रिदोषज नहीं मानते हैं।

५—उपजिह्विका

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वा मुन्नम्यजातः कफ रक्त योनिः।
प्रसेक कण्डू परिदाहयुक्ता प्रकथ्यतेऽसावुपजिह्वकेति ॥

अर्थात् जिह्वा के अग्र भाग के आकार की जिह्वा को ऊपर उठाकर कफ रक्त जन्य, लाला, कण्डू युक्त शोथ उत्पन्न हो जाती है वह उपजिह्वा कहलाती है। इसे Ranula कहते हैं। इसमें जिह्वा तल में श्लेष्म द्रव (Glairy mucoid fluid) का सञ्चय होने से उत्सेध होता है। चरक इसे कफ जन्य कहते हैं।

यस्यश्लेष्मा प्रकुपितो जिह्वामूलेऽवतिष्टते ।
आशुसंजनयेच्छोथ जायतेऽस्योपजिह्वका ॥ इति

वाग्भट ने इसी को अधिजिह्व कहा है—

अधिजिह्व. सरुक कडू वाक्याहारविघातकृत्। इति

तालुगतानाह

१—गलशुण्डिका, २—तुण्डिकेरी, ३—अध्रुष, ४—मांस कच्छप, ५—अर्बुद, ६—मांस सघातः, ७—तालुपुप्पट, ८—तालुशोष, ९—तालु पाक।

१—गलशुण्डिका

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घ. शोफो-
ध्मात वस्ति प्रकाशः।
तृष्णा कास श्वास कृत् सम्प्रदिष्टो व्याधिर्वैद्यैः कण्ठ
शुण्डीति नाम्ना।

अर्थात्—कफ तथा रक्तसे तालु मूल से उत्पन्न शोथ, फूली हुई वस्ति के समान, तृष्णा, कास और कास करने वाला लम्बा शोथ होता है वह वैद्यों द्वारा गलशुण्डी कहलाता है। वाग्भट ने इसमें कास, वमन तथा गलावरोध भी लिखा है यथा—

कण्ठोपरोध तृट् कास वमिकृत गलशुण्डीकेतिः
इसे Elongated urrila कहते हैं।

२—तुण्डिकेरी

शोफः स्थूलतोद्दाह प्रथकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डि-
केरीमतातु।

कफ और रक्त से उत्पन्न शोथ, पीड़ा दाह तथा पाक युक्त दीर्घ (बड़ा) शोथ को तुण्डि केरी जानना।

अष्टांग सग्रहेऽपि-"हनुसन्ध्याश्रितः कण्ठे कार्पा-
सी फल सन्निभ.।
पिच्छिलो मन्दरुक् शोफः कठिनस्तुण्डिकेरिका ॥

इसका समावेश वाग्भट ने कण्ठ रोगों में किया है। इसे (Enlarged Tonsils) कहते हैं।

३—अध्रुष

शोफः स्तब्धो' लोहित स्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः-
सोऽध्रुषो रुग् ज्वराद्य.।

अर्थात्—तालु देश में रक्त के हेतु से रक्त वर्ण की कठिन शोथ, पीड़ा तथा ज्वर युक्त हो तो उसे अध्रुष जानें। इसे प्राय. Palatitis माना है।

४—कच्छप

"कूर्मोऽरसन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगोज्ञेयकच्छप·
श्लेष्मणा स्यात्। इतिस्पष्टम्

५—अर्बुद

"पद्माकार तालुमध्येतुशोफविद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तं
लिंगम्॥ इतिस्पष्टम्।

कच्छप को (Sarcoma) तथा अर्बुद को तालुका (Cancer) कहते हैं।

तथाचभोजेऽपि-"उपर्यंत भवेन्नद्धो यथा पद्मस्य-
कर्णिका।

पार्श्वतरमाकुरैर्दीर्वैर्नामा चाप्य वसीदति ॥
श्लेष्म रक्त समुत्थानं तत्तालव्वर्बुद संज्ञितम् ॥

६—मास सघात

"दुष्टमासं श्लेष्मणा नीरुज च तालवन्तः स्यंमांस सघात माहु' । इतिस्पष्टम् ।

७—तालु पुप्पुट

नीरुक् स्थायी कोलमात्र. कफातस्यान्मेदोयुक्तात् पुप्पुटस्तालु देशे ॥ स्पष्टम् ।

मास सघात को Adenoma of the palate और तालु पुप्पुट को Epulis of the palate कहा है ।

८—तालु शोष

शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासो वातात्तालु शोष. सपित्तात् ।

अर्थात्—पित्त युक्त वात के कारण तालु में अधिक शोष (सूखना) होता है तथा श्वास युक्त तालु शोष कहाता है । इसमें तालु फटने सी पीडा होती है ।

'केचित्तु-तालुशोषस्तु पित्तात्" पठन्ति पित्त-स्यापि शोषकत्वादिति ।

भोजस्तु वातादेव पठति यदुक्तं-तालुशोषोभवेद्वातात ॥

९—तालुपाक

"पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थं घोरं तालुन्येन तालुपाक वदन्ति ॥

अर्थात्—पित्त कुपित होकर तालु में अत्यन्त पाक कर देता है उसे तालु पाक कहते हैं। इसे आंग्ल भाषा में Ulceration of the palate कहा है ।

कण्ठगतास्तु—

रोहिण्य पञ्च, कण्ठशालूकम्, अधिजिह्वो, वलयो,वलास, एकवृन्दो. वृन्द , शतघ्नी, गिलायु', गलविद्रधि', गलौघ, स्वरघ्नो, मांसतानो, विदारी चेति सप्तदश ।

तत्रपञ्चाना रोहिणीना सामान्य सप्राप्ति माह—

गलेऽनिलः पित्तकफौ चमूर्च्छितौ प्रदूष्य मास च तथैव शोणितम् ।
गलोप सरोध करै स्तथाऽङ्कुरैर्निहन्त्यसून् व्याधिरिय हि रोहिणी ॥

अर्थात्—कण्ठ में वात, पित्त तथा कफ पृथक् २ तथा तीनों मिलकर माँस तथा रक्त को दूषित कर कण्ठ के रोकने वाले अकुरों को उत्पन्न करते हैं जो प्राणों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं उस व्याधि को रोहिणी कहते हैं। दोषानुसार इसका मारक काल—

"सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति, त्र्यहाच्छ्लेष्म समुद्भवा ।
पञ्चाहात् पित्त सम्भूतासप्ताहात्पवनोत्थिता ॥

सर्वरोहिण्य सन्निपातजाः, उत्कर्ष होने से वातादि का व्यपदेश किया गया है ।

अन्येतु-"पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितं"
इति पठित्वा सुश्रुते एक दोषजत्वमध्याहु' ।
भोजेऽप्युक्त-'वात पित्तकफारक्तमेकश सर्व-
शोऽपिना । कण्ठ यदा निषेवन्ते" इत्यादि ।
'सन्निपातजायास्तु जन्म नैवा साध्यत्वम्
तदुक्तभोजेन-तालु शुष्यतिकण्ठश्चवातेनायाभ्यतेयदा ।
कण्ठेऽस्यान्न प्रसज्येत सप्ताहात् स जहात्यसून ।
उष्यते चूष्यते पित्तान धूष्यपरिदह्यते ॥
अङ्गारै रिव जह्यात् स प्राणनाशुचतुर्दिनात्-इति ।
कफादन्तर्वहि. शोथ श्वास. कण्ठश्चवाध्यते ॥
यस्य सोऽसून् त्यजेद्रोगी त्र्यहाद्रोहिणीपीडित ।
लक्षण पित्त रोहिण्या तुल्य शोणित जन्मन-
सर्वदोषकृतायातु सर्व लिंग समन्विता ॥
असाध्यां ता विजानीयाद्रोहिणी सन्निपातजाम्
एषा सद्यो मारयति तिस्र आद्या क्रिया विना"
इति ।

भोजे— 'अन्यासद्योमारयति । इति पाठ. ।

यदि ऐसा स्वीकार करें तो रक्तजा में भी असाध्यत्व होता है परन्तु यह साध्य कही है—

यदुक्तं 'लेल्याश्चतस्रो रहिण्यः।

यह सुश्रुत ने कहा है तथा—

साध्यावा रोहिणीर्नातुहितं शोणित मोक्षणम्।

(सु० चि० अ० २२)

इससे रक्तजा की चिकित्सा का आदेश किया है। वास्तव में देखा जाय तो रोहिणी जन्म से ही असाध्य स्वीकार की गई है यथा भोजतु—

"तिस्त्र आद्याः क्रियांविना" इत्यभिधानं त्रिदोषज-
त्वेनप्राधान्यमभिप्रेत्य।

खरनादेनापि सन्निपातजाया एवं सद्यो-
मारकत्वमुक्तम्॥

रोहिणी को Diphtherial inflamation of the throat यह विकार वैसीलस डिफ्थीरिया (B. Diphtheria) नामक क्रमि से होता है। इसमें गले में एक झिल्ली बनती है जो स्वरयन्त्र और नासा में फैल कर श्वासावरोध करती है इसमें ज्वर प्रायः १०४° तक हो जाता है। नाडी तेज तथा हृदय क्षीण होता है। योग्य चिकित्सा यदि प्रारम्भ में न की जाये तो यह मारक हो है।

१—वातज रोहिणी

जिह्वां समन्ताद्भृशवेदनाये मांसांकुरा. कण्ठनिरोधिनःस्यु'।

ता रोहिणी वातकृतां वदन्ति

वातात्मकोपद्रव गाढ युक्ताम्।

अर्थात जिह्वा के चारों तरफ अत्यत वेदना युक्त कण्ठ रोकने वाले मांसांकुर उत्पन्न हो जायें और जो वात के अधिक उपद्रव युक्त हो वह वातज रोहिणी होती है।

२—पित्तज रोहिणी

क्षिप्रोन्द्रमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजास्यात्।

३—कफज

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा—
सा कफ सम्भवा वै॥

४—त्रिदोषा

गम्भीरपाकाऽप्रतिवार वीर्या त्रिदोष लिङ्गा—
त्रय सम्भवा स्यात्॥

५—रक्तजा

स्फोटाचिता पित्त समानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा—
रुधिरात्मिकेयम्॥

इति स्पष्टार्थ।

इनका विवेचन ऊपर विशेष रूपेण किया गया है।

६—कण्ठशालूक

कोलास्थिमात्र. कफ सम्भवो यो ग्रथिर्गले—
कंठक शूकभूतः।

खर. स्थिरः शस्त्र निपात साध्य स्तं कंठशालूक—
मिति ब्रुवन्ति॥

अर्थात् बड़े बेर की गुठली के समान जो गले में कांटे सी कफ से गांठ उत्पन्न हो जाती है वह खरदरी, अचल, शस्त्र से काटने योग्य होती है उसे कंठ शालूक कहते हैं। चरक में—

अन्तर्गलेघुघुरिकान्वितं च शालूक मुश्छ्वासनिरोधकारि।

अर्थात् सोते समय घुघुर शब्द गले में करता है तथा श्वास रुकता है। अष्टाग सग्रहेतु—

दोषैः कफोल्बणैः शोफ. कोलवद् ग्रथितोन्नतः।

इति स्पष्टम्।

इसे Adenoides कहते हैं।

७—अधिजिह्व

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वा प्रवन्धोपरि रक्तमिश्रात्।
ज्ञेयोऽधिजिह्व खलुरोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम्॥

जिह्वा मूल में जिह्वाग्ररूप (समान) रक्त मिश्रित कफ से उत्पन्न शोथ को अधि जिह्वा जाने वह यदि पाक को प्राप्त हो जाये तो त्याज्य कहा है। अष्टांग संग्रहे-

अधिजिह्वः सरुक् कंडू वाक्याहारभिघातकृदिति।

उपजिह्व का अधिजिह्वक में भेद चरकाचार्य ने

कहा है यथा—

जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विका स्यात्कफा-
दधस्तादधिजिह्विकाच ।

अर्थात् जिह्वा के ऊपर होने वाला उपजिह्वक तथा नीचे होने वाली अधिजिह्वक होता है। इसे Epiglotitis कहते हैं।

८—वलय

वलास एवायतमुन्नतं च शोफं करोत्यनगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवारवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥

अर्थात् केवल कफ ही फैल कर ऊँचे शोथ को उत्पन्न करके अन्न की गति को बाधकर (रोक कर) तब सब प्रकार से न रुकने वाला तथा त्याज्य रोग वलय कहा है। चरक ने 'वलय' 'विडालिका' को ही माना है (च० चि० अ० १२)।

वाग्भट ने 'गलौघ' को ही वलय रोग माना है केवल वलय में पीड़ा और शोथ की अल्पता होती है यथा—

वलये वातिरुक शोफ स्तदेवाय तोन्नतरिति स्पष्टम् ॥

९—वलास

गलेतुशोफं कुरुतः प्रदुष्टौ श्लेष्मानिलौ-
श्वासरुजो पयन्नम् ।

मर्मच्छिदं दुस्तरमेतदाहुर्वलास सञ्ज्ञ-
निपुणा विकारम् ॥

अर्थात् कफ तथा वात दुष्ट होकर प्राणायतन हृदय को वाधा करते हुए श्वास तथा पीड़ा से युक्त शोथ उत्पन्न करते हैं ऐसे भयङ्कर रोग को 'वलास' कहते हैं।

१०—एक वृन्द

वृत्तोन्नतोयः श्वयथुः सदाहः कण्ड्वन्वितो-
ऽपाक्यामृदुर्गुरुश्च ।

नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्वलास-
क्षतज प्रसूत. ॥

अर्थात् गोल तथा उन्नत, दाह युक्त, कण्डु युक्त, न पकने वाला, कोमल तथा भारी शोथ जो गले में हो जाये वह कफ रक्त से उत्पन्न व्याधि एक वृन्द कहलाती है।

११—वृन्द

"समुन्नत वृत्तममंद दाह तीव्र ज्वरं वृन्द मुदा हरन्ति ।

तचापिपित्तक्षतज प्रकोपाद् विद्यात्सतोंद पवना त्मकन्तु ॥

अधिक उठा हुआ, गोल, दाह तथा तीव्र ज्वर युक्त को वृन्द कहते हैं। उसे पित्त रक्त के कोप से जानना, यदि उसमें तोद हो वातात्मक जाने।

उक्तञ्च–"वृन्दमेव पवनानु विद्ध सतोद स्यात् ।

सत्तरह रोग कण्ठ गत् कहे हैं परन्तु वृन्द सहित अठ्ठारह होते हैं।

उच्यते–"एक वृन्दस्यावस्था त्रिदोष एवं वृन्द."
तुल्य स्थाना कृतितो न सख्यातिरेक ।

यद्यपि एक वृन्द कफ रक्तज है और 'वृन्द' पित्त रक्तज कहा है और वृन्द को तोद युक्त होने से वातिक माना है। तब भी एक वृन्द की अवस्था विशेष होने से वृन्द उसी में अन्तर्भाव हो जायेगा।

भोजेऽप्ययमेक वृन्द एव पठित. । यदाह—
"श्लेष्मरक्त समुत्थान मेक वृन्द विजायेत् ॥
तुल्यस्थानाकृतिर्वृन्दो वृन्दजो रक्त पित्तज" इति ।

१२—शतघ्नी

"वर्तिघना कण्ठ निरोधिनी या चितातिमात्र विशित प्ररो हे ।

नानारुजोच्छ्राय करी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीव शतघ्न्यसाध्या ॥

अर्थात्—घन (कठिन) वर्ति जो कण्ठ को रोध करने वाली जो अधिकतर मांसाकुरों से भरी हुई अनेक प्रकार की पीडाओं को उत्पन्न करने वाली त्रिदोष से शतघ्न रूप शतघ्नी होती है। अर्थात् कण्ठ को रोकने वाली शिला के समान शतघ्नी प्राय. हरी होती है।

भोजेयुक्त —"शंकुनेव गले विद्धा शतद्वयेपान सिध्यति" इति ।

१३—गिलायु

"ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्र.स्थिरोऽल्परुक्स्यात कफ रक्त मूर्ति ।

संलक्ष्यते सक्तमिवाशिनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायु संज्ञ ॥

गले में कफ रक्त से उत्पन्न आवले की गुठली समान स्थिर, अल्प पीड़ा युक्त गांठ हो जो अन्न रुके हुए की तरह प्रतीत हो वह शस्त्र से सिद्ध होने वाला रोग गिलायु होता है ।

१४—गलविद्रधि

सर्व गलं व्याप्य समुत्थितोय' शोफो रुजो यत्रच सन्ति सर्वा ।

स सर्व दोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्य खलु सर्वजस्य ॥

जो शोथ समग्र कण्ठ में विस्तार युक्त उत्पन्न हो जिसमें तीनों दोष के समान पीड़ा हो, वह त्रिदोष जन्य विद्रधि के तुल्य लक्षणों युक्त गल विद्रधि जानना चाहिए ।

१५—गलौघ

शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वातगते निहन्ता ।

कफेजज्ञातो रुधिरान्वितेन गले गलौघ परि-कीर्त्यतेऽसौ ।

अर्थात् अन्न जल के मार्ग को रोकने वाला तीव्र ज्वर युक्त, उदान वायु का रोधक, कफ रक्त से उत्पन्न शोथ कंठ में होता है वह गलौघ कहलाता है इससे श्वासावरोध भी होता है ।

१६—स्वरघ्न

योऽतिप्रताम्यन् श्वसिति प्रसक्त —

भिन्नस्वर. शुष्क विमुक्त कठ ।

कफोयदिग्धेष्वनिलाथनेपुज्ञ`यः स रोगः-

श्वसनात् स्वरघ्ना, ॥

जिस रोग से मनुष्य बड़ी कठिनता से श्वास ले, अधिकतर मोह को प्राप्त होता हुआ सूखे गले से बोलने में अशक्त होता है, वायु के मार्ग कफ से लिप्त हों उसे वातज स्वरघ्न रोग जाने ।

१७—मांसतान

प्रतानवान् यः स्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधकुरुते क्रमेण ।

स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत-

सर्वकृतो विकार' ॥

जो फैलने वाला शोथ विशेष कष्ट दायक क्रम से गल को रोकने वाला, नीचे को लम्बमान् प्राण नाशक त्रिदोष से उत्पन्न मांसतान रोग होता है ।

१८—विदारी

सदाहतोद श्वयथु सरक्त मन्तर्गले-

पुतिविशीर्ण मांसम् ।

पित्तेनविधात् वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्–

सतुयेन शेते ॥

दाह तथा पीड़ा और रक्त सहित दुर्गन्ध तथा मांस के फटने जैसी जो शोथ कंठ के भीतर होती है परन्तु जिस तरफ मनुष्य अधिक सोता है उसी ओर प्रायः पित्तज विदारी जानो ।

भोजेश्युक्त

पितेनजातोवदनेविकारः पार्श्वेविशेषात् सतुयेनशेते ।

स्नायुप्रतान प्रभवो विशेषाद्दाह प्रपाक प्रचुरोविदारी ॥

इति ।

सर्वसरास्त्रयोऽभिधीयते

सर्वसरास्तु वातपित्तकफ शोणित निमित्ता' ।

सर्वसर—"मुखगतौष्टादि समस्थानापापकतया–

सर्वसरत्व ज्ञेयमिति" ॥ (मधुकोश)

"सर्वस्मिन् मुखे ये भवन्तिते सर्वसरारिति" । (उल्हण)

सर्वमुखेपुसरतीति सर्वसर. । (आठम)

मुखपाको भवेद्वाताद् पित्तात्तद्वत्कफादपि ।
रक्ताच्च सन्निपाताश्चेति ॥ (शार्ङ्गधर)
मुख पाक को (Stomatitis) कहते हैं ।
स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद् यस्याचितं सर्वसरः—
स वातात् ।

रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचित-
चापि स पित्त कोपात् ॥

अर्थात् जिसका मुख पीड़ा युक्त पीड़िकायों (फुसियों) से व्याप्त हो वह वातज होता है । जिसका मुख रक्त वर्ण, दाह युक्त, छोटी छोटी पिडिकाओं से व्याप्त हो वह पित्त जन्य है ।

कण्डूयुतैरल्परुजैः सवर्णैर्यस्याचित चापि स कफात् ।
रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित् प्रदिष्टो मुख-
पाक सञ्ज्ञः ॥

कण्डू से युक्त, अल्प पीड़ा, त्वचा समान वर्ण छालों से व्याप्त हो वह कफ जन्य है । रक्त से पित्त के समान चिन्ह युक्त मुख पाक होता है अत. वह एक ही माना है यहां पित्तोदित—

मुखस्य पित्तजे पाकेदाहोषौ तिक्तवक्त्रता ।
क्षारोक्षितं क्षतसमा व्रणास्त द्वच्च रक्तजे ॥
(अष्टाङ्ग संग्रह)

अर्थात् पित्तजनित मुख पाक में दाह, उष्णता तथा मुख का स्वाद तिक्त होता है तथा क्षार से छिड़के हुए व्रणों (छालों) के समान होते हैं वैसे ही रक्तज जानना चाहिए । पित्तान्तर्गत रक्तज मुखपाक मान कर तीन ही स्वीकार किया है ।

असाध्यानाह

ओष्टप्रकोपेवर्ज्याः स्युर्मांसरक्त त्रिदोषजाः ।
दन्तमूलेपु वर्ज्यौच त्रिलिंग गतिशौषिरौ ॥
दन्तेपु चन सिध्यन्ति श्यावदालन भञ्जनः ।
जिह्वारोगेवलासस्तु तालेकेस्त्वर्बुदं तथा ॥
स्वरघ्नोवलयो वृन्दो वलाशश्च विदारिका ।
गलोघामांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥

असाध्याः कीर्तिताह्येते रोगानवदशैवतु ।
तेपुचापिक्रियां वैद्यः प्रत्या ख्याय समाचरेत् ॥
इति स्पष्टम् ।

मुख रोगों की चिकित्सा

मुख रोगों की चिकित्सा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक होता है कि रोगी किसी संकीर्ण रोग से आक्रांत तो नहीं । क्या आमाशय में होने वाले कफ जनित मन्दाग्नी से अथवा हृद्रोग से ग्रस्त तो नहीं । मुख रोग प्रायः कफ तथा रक्त की दुष्टी से ही होते हैं

यथा—चोक्तम्—"मुखदन्तमूलदशनच्छदेपु रोगा
कफास्त भूयिष्ठा." इति ।

अत. वैद्य को युक्त है कि सर्व प्रथम दुष्ट रक्त का स्राव कराके पश्चात् कफ के नाश करने वाले उपचार करें ।

वातिक ओष्ट प्रकोप—में उष्ण स्नेह, उष्ण परिषेक, उष्ण द्रव्यों का प्रलेप, तथा घृत पान, मास सात्म्य को मांस रस का पथ्य, अभ्यङ्ग, स्वेद तथा लेपादि प्रयोग करना हित होता है । जैसे—

२९५—घृत तैल
वसा मज्जा

—इनमें से यथा लाभ लेकर उसमे मोंम मिलाकर उष्ण करके वातिक ओष्ट रोग में अभ्यङ्ग करे तथा इन्हीं से नाड़ी स्वेद करायें । मस्तिष्क में वात हर द्रव्यों से पकाये हुये तैल की मालिश करें और उसी तैल की नस्य तथा स्वेदन करें ।

लेपार्थ—

२९६—तैल घृत
राल मोंम
रास्ना गुड़
लवण गेरु

समान भाग

—लेकर पकालें फिर इसका लेप ओष्टों पर करने से फटना तथा ओष्ट व्रण नष्ट हो जाते हैं ।

प्रतिसरण—

२६७—जोवान राल
गुग्गुल देवदारु
मुलहठी समान भाग
—इनका चूर्ण कर ओष्ट पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

पैत्तिकोष्ट प्रकोप—इसमें जोंक लगाकर रक्त स्राव करादें, पश्चात् विरेचन देदें। तिक्तद्रव्य साधित घृत का पान व भोजन कराना हित होता है। शीत द्रव्यों के चूर्ण से प्रतिसारण करें तथा लेप करें। यथा—

२६८—सारिवा लाला
मुलहठी प्रत्येक समभाग
—लेकर दूध में पीस कर मिश्री मिला कर प्रलेप करें।

२६६—क्षीरकाकोली खस
चन्दन प्रत्येक समभाग
—लेकर दूध में मिला कर प्रलेप करें तो शीघ्र लाभ होता है।

३००—निशोथ हरीतकी
प्रत्येक समभाग
—लेकर एकत्रित करके मधु मिला कर खायें।

३०१—त्रिफले के क्वाथ में १ तोला निशोथ पीसकर खाने से लाभ होता है। वैद्य को रोगी का बला-बल देख कर ही उक्त प्रयोगों का अनुभव करना चाहिए।

कफजोष्टे—इसमें रक्तस्राव करने के पीछे शिरो विरेचन, धूम, स्वेद, कवलादि प्रयोग कराना चाहिए।

३०२—त्रिकटु सज्जीखार
जौंखार समान भाग
—लेकर मधु मिलाकर ओष्टों में प्रतिसारण करे अर्थात् घर्षण करें।

३०३—जिसे ओष्ट शूल को विवर्ण, पिच्छिल स्राव युक्त कण्डू और तीव्र पीड़ा हो ऐसे स्थान पर दो पलाश के नरम पत्ते लेकर उनको मसल और उन पत्तों की फेन निकाल ओष्ट मे लगावे परन्तु पहिले ओष्टों का लेखन कर लेना चाहिए पीछे उक्त लेप से शीघ्र लाभ होता है। जीवन्ती के कल्क में समान भाग दूध, तैल, शहद तथा राल का चूर्ण अष्टम भाग मिलाकर पकालें फिर एक बार लगाने से ही ओष्ट के व्रण तथा मुखपाक को लाभ होता है।

मेदजोष्टे—

मेद जनित ओष्ट रोग में स्वेदन, भेदन, तथा दूषित मांस को निकाल कर सेक करें, पश्चात्

३०४—प्रियङ्गु त्रिफला
लोध समान भाग
—इनको पीसकर मधु मिश्रित कर लेप करें तथा केवल त्रिफले के चूर्ण को मधु मिलाकर लेप करने से भी लाभ हो जाता है।

क्षतजोष्ट—

क्षतजोष्ट में पहिले स्वेदन कर पश्चात् लेखन करना तथा दबाकर उसे साफ करके सौ बार पानी से धोये घृत मे लेप करदें लाभ होगा।

दन्त रोगों में सामान्य चिकित्सा इस प्रकार करे।

३०५—तेजबल पिप्पलामूल
मजीठ कुटकी
मुस्तक माल कङ्गनी
लोध दारु हल्दी
देवदारु कुठ
समान भाग
—इन सब द्रव्यों को चूर्ण कर दांतों को भली प्रकार मलें इस चूर्ण से खुजली, रक्त स्राव, दांतों का हिलना और पीड़ा नष्ट हो जाती है।

शीतादे—

शीताद रोग मे सर्व प्रथम घृत पान कर जोंक लगावें, पीछे त्रिफला का क्वाथ कर उसका गण्डूष धारण करावें।

२०६—प्रियङ्गु मुस्तक
त्रिफला का चूर्ण घृत
मधु समान भाग
—लेकर दोषानुसार लेप करें तो शीघ्र लाभ होता है।
तथा—

२०७—कासीस लोध
पिप्पली मैनसिल
प्रियङ्गु तेजवल
समान भाग
—इनके चूर्ण को मधु में मिलाकर लेप करें तो दुर्गन्धित पूतिमांस को नष्ट करता है। तथा—

२०८—पाठा लोध
मजीठ पित्त पापड़ा
कुठ तेजवल
दोनों हल्दी समान भाग
—इन सबको एकत्र कर चूर्ण बनाकर दांतों पर मलने से कष्ट, पीड़ा, रुधिर का गिरना और समस्त दंत रोग नाश हो जाते हैं।

दन्त पुप्पुट—
व्याधि के आरंभ में ही रक्त मोक्षण कर देना चाहिए शिरो विरेचन, नस्य तथा स्नेहपान हित होता है।
तथा—

२०९—तिल चीता
सरसों श्वेत समान भाग
—इनको पीस कर गरम जल में डालकर कवल धारण से दांतों की शोथ दूर हो जाती है।

दंतवेष्ट—
इस रोग में—

२१०—लोध पतंग
मुलहठी लाख
समान भाग
—इनके चूर्ण को मधु मिलाकर मसूड़ों को खूब मलो इससे रक्त स्राव व पीड़ा नष्ट होती है।

चलदन्ते—
२११—वटादि पञ्चक्षीरी वृक्षों की छाल का क्वाथ कर उसमें मधु, घृत, मिश्री मिलाकर कुल्ले करे तथा मौलसिरी की छाल को पीसकर दांतों पर मले तथा इसकी दातुन नित्य चबा चबाकर किया करें।

२१२—मुस्तक हरड़
त्रिकुटु वाय विडङ्ग
नीम के पत्ते समान भाग
—इन सबको पीसकर गौ मूत्र में भावना दे गोली चार रत्ती की बनाकर रात को सोते समय मुख में रखने से दन्तों के हिलने को शीघ्र लाभ हो जाता है।

शौशिरे—
इस रोग में रक्त स्राव के अनन्तर—

२१३—लोध मुस्तक
रसौत समान भाग
—इनका चूर्ण शहद मिलाकर लेप कराना चाहिए और पञ्चक्षीरि वृक्षों का गंडूष करना चाहिए।

दंतशूले—
२१४—मधु पिप्पली
—इनमें घृत मिलाकर मुख में धारण करने से शीघ्र नाश हो।

२१५—हींग कायफल
कसीस सज्जी
कूठ की छाल समान भाग
—इन सबको पीसकर मुख में रखने से दांत की पीड़ा शीघ्र दूर होती है।

शारिवा मुलहठी
कमल अनन्त मूल
अगरू चन्दन
समान भाग
—इनके कल्क में दशगुणा दुग्ध डालकर घृतपान करें।

इसको नस्य लेने से दन्त पीडा शांत होती है।

परिदरे—

इस व्याधि में रोगी वमन, विरेचन से देह शुद्ध कर के इसमें प्राय. शीताद में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिए। अथवा—

३१६—कठूमर के पत्तों से दांतों के व्रणो को घिस कर रक्त निकालकर पश्चात् त्रिकटु को लवण मिलाकर दांतों को शनैः शनैः रगड़ना चाहिए।

३१७—पिप्पली श्वेत सरसों
फिटकिरी सोंठ
जलवेतस प्रत्येक समभाग

—लेकर इनको पीस कर गरम जल से मिलाकर कवल धारण करावें।

३१८—परवल के पत्ते नीम के पत्ते
त्रिफला प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ करके दन्तों को धोना चाहिए।

दतनाड़ी—

दन्त नाड़ी में नाड़ी व्रण के समान कर्म करना चाहिए। जिस दन्त में नाड़ी व्रण हो उसे निकाल देना चाहिए। नाडी का व्रण यदि नीचे के दात में हो तो उस दात के मांस को शस्त्र से काट कर साफ करके उसमें क्षार भर दे अथवा उष्णशलाका से उसे दाह देदे। ऐसे दात को यदि निकाला जायेगा तो पूय की गति हन्वस्थि में हो जायेगी अत. समूल दांत को न उखाड़ना ही हितकर होता है। यदि ऊपर का दाँत उक्त रोग से ग्रस्त हो तो उसे निकालने से रक्त स्राव अधिक होने से भयङ्कर रोग होजाते हैं अर्थात् रोगी 'काणा' होजाता है अर्थात् 'अर्दित' हो जाता है अत. हिलते हुए ऊपर के दात को भी नहीं निकालना चाहिए।

३१९—धोने के लिये चमेली के पत्ते, मैनफल, गोखरू और खैर इनके क्वाथ से दांतों को धोना युक्त है।

तैल प्रयोग—

३२०—चमेली के पत्ते मैनफल
कटेरी गोखरू
लोध खैर
मजीठ मुलहठी

—इनके क्वाथ से तैल सिद्ध कर लेने से और इसके प्रयोग से दन्त नाड़ी की गति नष्ट हो जाती है।

दंतहर्ष—

३२१—घृत तैलादि का स्नेह अथवा निशोथ के कल्क से पकाया हुआ घृत का उष्ण कवल धारण करने से दन्त हर्ष को नष्ट करता है अथवा क्वाथ का कवल भी हितकर होता है।

दत शर्करा—

३२२—दांतो में लगी हुई शर्करा को शनैः २ शस्त्र से साफ कर लाख के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर रगड़ने से लाभ हो जाता है।

कृमि दत—

जिस दांत में कीड़ा लगा हो उसमें गुड भरदें पश्चात् एक शलाका लेकर गरम करके उस स्थान को दाह करदें। फिर उसमें अर्क दुग्ध भर देने से कृमि नष्ट हो जायेगा।

३२३—हींग को कुछ गरम करने दांत में रख देने से कृमि नष्ट हो जाता है। यदि अधिक पीड़ा हो तो—

३२४—बड़ी कटेरी भूमि कदम्ब
छोटी कटेरी प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ करके तैल मिलाकर कुल्ले करने से पीड़ा शान्त हो जाती है अथवा—

३२५—नीली काकजघा
थूहर दुधी

—इनमें से किसी जड़ को चबाकर दांत में रखने से कृमि दन्त नष्ट होता है अथवा—

३२६—बिजौरे नीबू की जड़ बाकुची मूल
प्रत्येक समभाग

—लेकर पानी में पीस कर वत्ती बनालें इस वत्ती को दांत में रख कर चबावे। इस प्रकार करने से दांत का कृमि नष्ट होकर पीड़ा शान्त हो जाती है।

हनुमोक्ष—

३२७—हनुमोक्ष में अर्दित रोग में कही हुई क्रिया करनी चाहिए। दन्त तथा मुख रोगों में *'हरिमेदादि तैल'* का प्रयोग सर्व सुलभ है अत. उसका प्रयोग सर्वथाहित होता है। इसी प्रकार *'स्वल्प खदिर वटी'* अथवा *'महाखदिरादि वटी'* यह दोनों सिद्ध प्रयोग हैं इनके प्रयोग से प्राय: मुख के सभी रोग नाश हो जाते हैं।

जिह्वा गत रोगोपक्रमः—

३२८—जिह्वागत रोगों में सर्व प्रथम रक्त मोक्षण हित होता है। गुडूची, पिप्पली, नीम आदि तिक्त द्रव्यों से कवल धारण करना चाहिए।

परवल	कुटकी
त्रिकटु	पाठा
सैंधव	प्रत्येक समान भाग

—लेकर चूर्ण कर मधु में मिला जिह्वा पर लेप करना युक्त है।

३२९—वायविडङ्ग	पिप्पली
रसौत	प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ करके जिह्वा को धोना चाहिए। जो पिच्छिला घात के ओष्ट में वर्णन की है वह भी हित है।

पित्तज जिह्वा रोग में प्रथम जिह्वा को घिसकर रक्त निकालना चाहिए पश्चात—

३३०—घृत	मधु
शर्करा	मुलहठी

—आदि मधुर द्रव्यों के प्रतिसारण, कवल तथा नस्य का प्रयोग हितकर है। कफज जिह्वा के कांटों को लेखन कर पीछे पिप्पली युक्त मधु से रगड़ना चाहिए। श्वेत सरसों, सैंधव लवण मिलाकर कवल धारण करावें। परवल, नीम, वैंगन, यवक्षार आदि के यूष से भोजन करें।

उपजिह्वा—

उपजिह्वा का लेखन कर क्षार से रगड़ना, शिरोविरेचन, गंडूष आदि से उपचार करें।

३३१—त्रिकटु	यवक्षार
हरड़	चित्रक

प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण बनाकर जिह्वा का प्रतिसारण करें। अथवा इन उक्त द्रव्यों का तीव्र पाक करके कवल धारण कराने से सुख होता है।

अथवा अडूसे का क्वाथ बनाकर उसमें—

३३२—मधु	सैंधव
गृहधूम	मालती के पत्ते
कुलथी	प्रत्येक समभाग

—लेकर सबका क्वाथ बना मिलाकर जिह्वा को कण्ठ तक घर्षण करने से लाभ होता है।

तालुगत रोगोपक्रमः—

कण्ठ शुण्ठी रोग में कफ नाशक द्रव्यों के रस से गण्डूष धारण करना हितकर है।

३३३—कुठ	काली मिर्च
वच	सैन्धव
पीपल	पाठा
मुस्तक	प्रत्येक समभाग

—लेकर मधु में मिलाकर कण्ठ में घिसने से लाभ होता है। गलशुण्डी को अंगुली तथा अंगूठा मिलाकर कंठ से खींच कर मण्डलाग्र शस्त्र से न अधिक न हीन छेदन कर

त्रिकटु	सैंन्धव
वच	प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण को मधु में मिलाकर रगड़ने से शुण्ठी

नष्ट होती है। अथवा शुण्डी पर थूहर के दूध का फाया बनाकर लगाने में लाभ होता है। अथवा—

३३४—वच अतीस
पाठा रास्ना
कुटकी नीम

—इनका कवल धारण करावे। यवक्षार डालकर मूंग का यूष खाने को दें।

धूमार्थ वर्ति—

३३५—हिंगोट अपामार्ग
दन्ति सरलकाष्ट
देवदारु प्रत्येक समभाग

—इनके यथा-लाभ पञ्चांग को लेकर वर्ती बनाकर धूमपान कराने से कफज रोग नाश होते हैं।

तुण्डीकेरी, अध्रुष्य, कच्छप, माँससंघात, तालुपुप्पुट में उक्त चिकित्सा ही करनी चाहिए। तालुपाक में पित्त नाशक विधि करनी चाहिए तथा तालुशोष में स्वेद, स्वेदन करना चाहिए जिससे वात का नाश हो।

गलरोगोपक्रमः—

३३६—साध्य रोहिणी में शोणित मोक्षण करना तथा वमन, गण्डूष तथा नस्य कर्म करना हित होता है। *वातज रोहिणी* में रुधिर निकाल कर सैन्धव से घर्षण करे, कुछ गरम स्नेह से पुन. कवल धारण करे।

पित्तज रोहिणी में रुधिर निकाल कर—

३३७—चीनी मधु
प्रियगु प्रत्येक समभाग

—लेकर इनके चूर्ण से घर्षण करे। अथवा—

३३८—मधु पतङ्ग
खाण्ड प्रत्येक समभाग

—ले मिलाकर प्रतिसारण हित है तथा मुनक्का, फालसे इनका क्वाथ कर कवल धारण करावें।

३३९—कफज *रोहिणी* में गृह धूम, कुटकी के चूर्ण से प्रतिसारण करे। तथा—

श्वेत कोयल विडङ्ग
दन्ति सैन्धव
प्रत्येक समभाग

—लेकर इनके कल्क से तैल पाक कर नस्य में प्रयोग करें।

रोहिणी, कण्ठशालूक, तुण्डीकेरी, गलायु, विद्रधि और वृन्द आदि रोगों में—

३४०—गोरोचन रसौत
गेरू मुलहठी
पतङ्ग मधु
लोध्र प्रत्येक समभाग

—इनका क्वाथ कर पीछे मधु मिला कर गण्डूष धारण कराना चाहिए।

कण्ठ शालूक में स्राव करा कर उपर्युक्त चिकित्सा करना तथा एक बार जौ का भोजन बना कर घृत मिश्रित खिलाना चाहिए।

उपजिह्विक की तरह अधिजिह्विक की चिकित्सा करनी चाहिए अर्थात् जिह्वा को ऊपर उठा कर खेंचकर मण्डलाग्र शस्त्र से काट ले तथा त्रिकुट्वादि तीक्ष्ण द्रव्यों से घर्षण करें। एकवृन्द में स्राव कराके शोधन करें। गिलायु को शस्त्र से छेदन कर सिद्ध करें।

कण्ठ विद्रधि जो मर्म स्थल पर न हो और पककर तैयार हो तो उसे शस्त्र से छेदन करें।

३४१—दारु हरिद्रा नीम छाल
रसौत इन्द्र जौ
समान भाग

—इनका क्वाथ मधु मिश्रित पिलाना चाहिए। अथवा

३४२—कुटकी अतीस
देवदारु पाठा
मुस्तक कुड़े की छाल
समान भाग

—इनका गौ मूत्र में क्वाथ बनाकर पीने से कण्ठ रोगों को नाश करता है अथवा—

३४३—मुनक्का कुटकी
त्रिकटु दारू हल्दी
त्रिफला मुस्तक
पाठा रसौंत
मूर्वा तेजबल

समान भाग

—इन सबका चूर्ण कर मधु मिलाकर गल रोगों में (जो वात, कफ, रुधिर से उत्पन्न होते हैं) यह तीनों योग हितकर हैं।

सितादि घृत—

३४४—मिश्री १ माशा
तमाल पत्र ५ माशा
काली मिरिच २ भाग

—इनके कल्क से सिद्ध किए घृत से नस्य देने पर गल ग्रह नष्ट होता है।

कायफलादि पेण्ट—

३४५—कायफल १ माशा
पानी चार सेर

—में पकावें जब सेर भर शेष रहे तो उसे छान लें पुनः उसे पकावें जब पावभर रह जाय तो उसके ठण्डे हो जाने पर पावभर मधु मिलालें और १ माशा पिपर मिण्ट मिलाकर शीशी में रखलें। इसको रुई के फोये से गले में पेन्ट करदें। इसे दो बार दिन में गले में लगाने से, गले के शुण्ठी आदि भयङ्कर रोग नष्ट हो जाते हैं तथा कास, श्वास श्वासावरोध आदि सब थोड़े समय में नष्ट हो जाते हैं।

यवक्षारादि वटी—

३४६—यवक्षार तेजबल
पाठा रसौंत
दारु हल्दी पिप्पली

समान भाग

—इन सबको पीस कर मधु में चार २ रत्ती की गोली बनाकर मुख में धारण करने से सर्व गल रोग नष्ट हो जाते हैं।

सर्व सर मुख रोगोपक्रम—

३४७—वातिक सर्व सर मुख रोग में सैन्धव आदि प्रतिसारण, वातघ्न तैल से कवल धारण तथा नस्य दें। स्नैहिक धूम्रपान कराना चाहिए। मुख पाक रोग में, शिरावेध, शिरोविरेचन, काय विरेचन तथा मधु, मूत्र, घृत, क्षीर इनसे कवल धारण करना चाहिए।

३४८—चमेली के पत्ते गिलोय
मुनक्का जवासा
दारु हल्दी त्रिफला

समान भाग

—इनका क्वाथ बनाकर मधु मिला गण्डूष धारण कराने के मुख पाक को नाश करता है।

चर्वणार्थ—

३४९—मुख पाक में साधारणतया चमेली के पत्तों का चर्वण करना हित होता है। अथवा—

३५०—काला जीरा कूठ
इन्द्र जौ समान भाग

—इन को एकत्र मिलाकर तीन दिन तक चबाने से मुख-पाक, व्रण, क्लेद और मुख की दुर्गन्ध को नष्ट करते हैं।

मुखधावने—

३५१—परवल निम्ब
जामुन आम्र
चमेली के नवीन पत्ते समान भाग

—इन पञ्च पल्लवों का क्वाथ बनाकर मुख को धोने के लिये दे तो मुख पाक में लाभ होता है।

(शेषांश पृष्ठ २१७ पर देखिये)

बाल-मुखपाक (Stomatitis)

लेखक--पं० सोमदेव शर्मा सारस्वत साहित्यायुर्वेदाचार्य, ए० एम० एस०
मेडीकल कालेज (लखनऊ)

माननीय श्री प० सोमदेव जी शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य आयुर्वेद जगत के माने हुए सुलेखक हैं। आपकी गणना सुयोग्य अध्यापकों में है। इस समय भी आप मेडीकल कालिज में आयुर्वेद के व्याख्याता हैं। अध्ययन कार्य की सम्पूर्णता इसी में निहित है। इसके अतिरिक्त आप योग्य चिकित्सक एवं अच्छे टीकाकार हैं। आपके द्वारा आयुर्वेद प्रकाश नामक प्राचीन एव रहस्यपूर्ण रस ग्रन्थ पर संस्कृत और हिन्दी में टीका हुई है। जिसे सर्वप्रियता प्राप्त है।

आपने अपने बाल-मुखपाक नामक लेख में सतुलनात्मक विवेचन में पर्याप्त प्रतिभा का परिचय है। लेख सक्षिप्त होने पर भी उपादेयता की चर्म सीमा को स्पर्श करता है।

आचार्य हरदयाल वैद्य

युवा एव वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा यह रोग, छोटे बालकों में बहुत अधिकता से होता है। इस रोग में ओष्ट, दन्तमूल, दन्त, जिह्वा, तालु, गला और गले का प्रारम्भिक भाग, यह --̇ मुख के सात अङ्ग रोग की अवस्थानुसार थोड़े अथवा बहुत आक्रांत हो जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मुख ही इसमें आक्रांत हो जाता है और सब मुख में फैलने के कारण ही (सर्वस्मिन् मुखे सरतीति सर्वसर·) 'सर्वसर' नाम से भी आचार्यों ने इस रोग को पुकारा है। जैसा कि माधव निदान की मधुकोश टीका के रचयिता के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट होता है--

ꣻ सर्व सरा मुख पाका उच्यन्ते।

--̇ (अ) मुख गतोष्ठादि सप्त स्थानव्यापकतया सर्वसरत्वं ज्ञेयम्। (माधव निदान मधुकोश टीका)

(आ) सर्वसर इति ओष्ठगलताल्वादि सर्वस्थान व्यापकः।

(अष्टाङ्ग हृदय, उत्तरस्थान अ० २१ शिवदासकृत टीका)

ꣻ सुश्रुत संहिता के व्याख्याकार डल्हण तथा शार्गंधर संहिता के व्याख्या कार आठ मल्ल का भी यह मत है। यथा--

१-सर्वस्मिन् मुखेये भवति ते सर्वसराः (डल्हण)

२-सर्व मुखेषुसरतीति सर्वसरः (आठमल्ल)

(माधव निदान-मधुकोषव्याख्या)

इस रोग के विषय में प्राचीन आचार्यों के निम्न-लिखित मत हैं—

१-आचार्य विदेह—

यह केवल एक ही 'रक्तज मुखपाक' मानते हैं।

२-सुश्रुति मुनि—

सुश्रुति मुनि (१) वातज (२) पित्तज (३) कफज (४) रक्तज के भेद से ४ प्रकार का मुखपाक, मानते हैं। यथा—

सर्व सरा स्तु वात पित्त कफ शोणित निमित्ताः।
(सुश्रुत निदान अ० १६)

३-आचार्य वाग्भट तथा शार्ङ्गधर—

यह दोनों आचार्य १-वातज, २-पित्तज, ३-कफज ४-रक्तज, ५-सन्निपात भेद से ५ प्रकार का मुख पाक मानते हैं।

४-आचार्य माधव आदि—

यह १-वातज, २-पित्तज ३-कफज भेद से तीन ही प्रकार का मुख पाक मानते हैं। यह विदेह के रक्तज भेद को पित्तज मुखपाक के ही अन्तर्गत मानते हैं।

वास्तव में आचार्य माधव आदि ने सुश्रुत संहिता के आधार पर ही ३ भेद लिखे हैं, क्योंकि सुश्रुत मुनि ने मुख पाक के पहिले चार भेद लिख कर फिर आगे स्पष्ट रूप से निर्देश कर दिया है कि 'रक्तज' भेद स्वतन्त्र नहीं है किन्तु पित्तज भेद के ही अन्तर्गत है। यथा—

रक्तेन पित्तोदित एक एवे कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाक संज्ञः।
सुश्रुत निदान अ० १६

लक्षण

वातज मुखपाक—वायु दोष से होने वाले इस वातज मुखपाक के छालों में सुई चुभने के समान पीड़ा हुआ करती है।

पित्तज मुखपाक—पित्त दोष से उत्पन्न होने वाले छाले लाल रङ्ग के हुआ करते हैं यह लाल मुखपाक (लाल छाले) कहा जाता है।

कफज मुखपाक—कफ दोष से उत्पन्न होने वाले छालों में पीड़ा नहीं होती है परन्तु खुजली रहती है और इनका रङ्ग जीभ आदि की श्लैष्मिक कला के रङ्ग के समान होता है जो प्रायः सफेद होता है यह श्वेत मुखपाक (सफेद छाले) कहा जाता है। यह लाल (पित्तज) मुखपाक की अपेक्षा अधिक कष्ट कर होता है।

एलोपैथिक मत

पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सक ३ प्रकार का मुखपाक मानते हैं। यथा—

१-साधारण मुखपाक—(Simple stomatitis)

२-श्वेत मुखपाक—(Thrush or Parasitic stomatitis)

३-भीषण मुखपाक—(Cancrumoris or gangrene stomatitis)

ज्ञातव्य—इन उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त 'पारद जनित मुखपाक (Mercurial stomatitis) नाम का एक भेद और माना जाता है, परन्तु वह अधिकतर फिरङ्गोंपदंश के रोगियों को ही होता है, केवल बच्चों को वह नहीं होता है इसलिये उसका वर्णन यहा नहीं किया है।

तुलनात्मक विवेचन

प्राच्य तथा पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र में दिये गये लक्षणों पर विचार करने पर निम्नलिखित समानता प्रतीत होती है।

१-साधारण मुखपाक (Simple stomatitis या पित्तज तथा रक्तज मुखपाक (लाल छाले)

२-श्वेत मुखपाक—(Thrush) या कफज मुखपाक (सफेद छाले)।

३-भीषण मुखपाक—(Cancrumoris or gang

मुख गुहा में जिह्वा तथा गल शुण्डिका
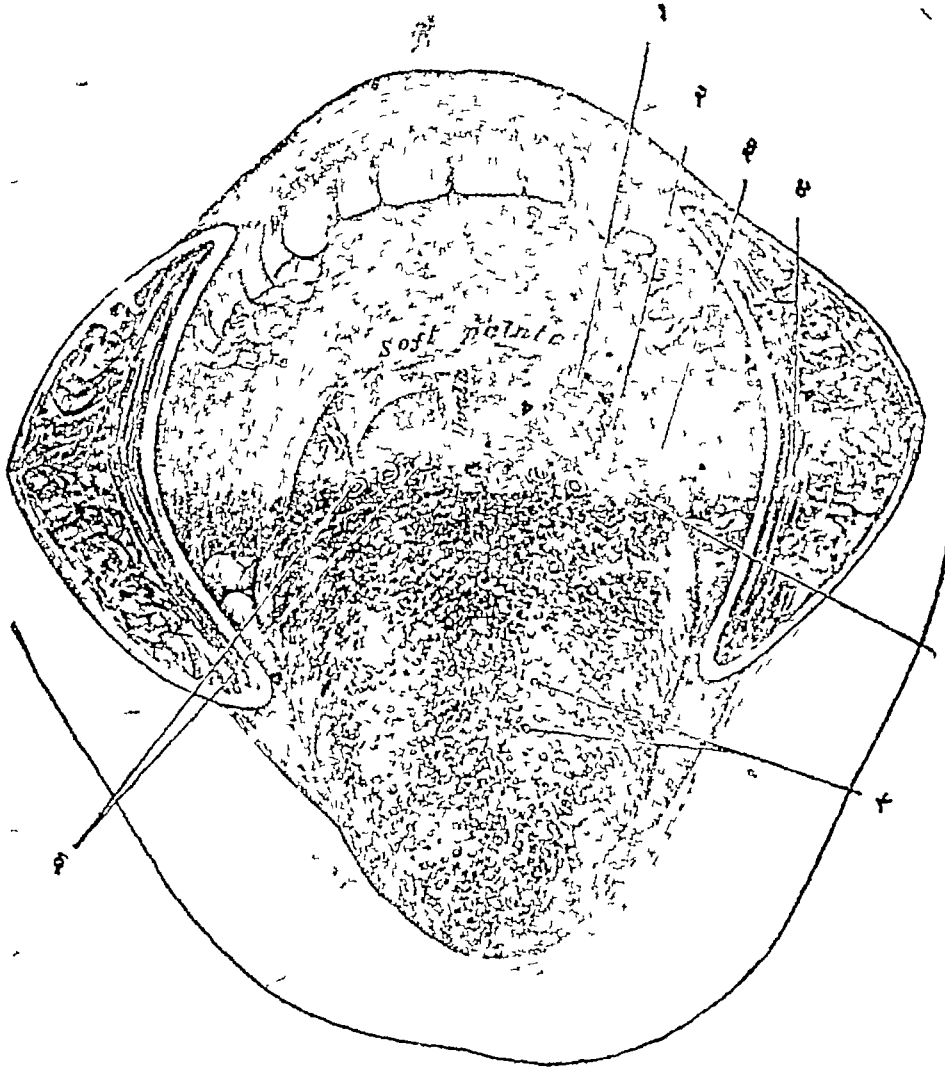
१—तालु की महराव
२—गल शुण्डिका
३—तालु एवं सयुक्तामहराव
४—कपालिका पेशी
५—छत्रिकांकुर
६—स्रातवेष्टितांकुर

दाँई नासिका गुहा की बाह्यदीवार जिसमें कि तीन शुक्तिकायें काट दी गई है।
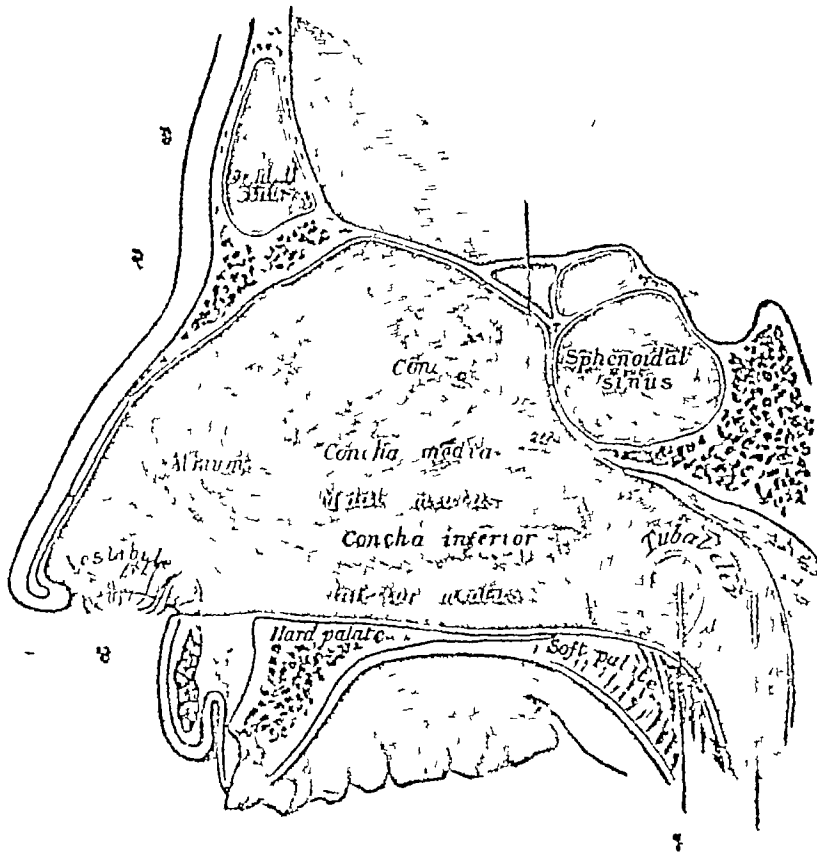
१— कण्ठ कर्णी नली का छिद्र
२ - नासास्य
३—ललाट काटर
४— नासारंध्र

rene stomatitis) या सन्निपातज मुखपाक (वातज मुखपाक भी इसके अन्तर्गत आ जाता है)।

अवान्तर भेद

इनमें से पित्तज (या रक्तज) मुखपाक (Simple stomatitis साधारण मुखपाक) के निम्नलिखित दो भेद हो सकते हैं।

(अ) दांत निकलने से पहिले होने वाला मुखपाक—

जिन बच्चो का पालन पोषण ठीक न होने के कारण कोष्ठबद्धता आदि अन्य रोग होते रहते हैं, उनके दाँत निकलने के समय मुखपाक हो जाया करता है, ऐसे बच्चे बहुत कृश और कम जोर होते हैं।

(आ) दाँत निकलने के पश्चात् होने वाला मुखपाक—

दांतों की स्वच्छता न रखने के कारण, जिन बच्चों के दाँतों में कृमि पड़ जाते हैं तब उन कृमियों से भी मुख-पाक हो जाता है।

लक्षण

मुख पाक में मुख की भीतरी झिल्ली तथा मसूड़ों में शोथ हो जाता है, पीडा रहती है और मोटे मोटे व्रण हो जाते हैं, तीव्र दशा में कपोल तल, जिह्वा, तालु आदि सब स्थानों पर शोथ, छाले और व्रण हो जाते हैं। मुख से लालास्राव होता रहता है, थूक बहुत आता है और कभी कभी ज्वर भी हो जाता है।

चिकित्सा

३५४—यदि रोग का कारण कोष्ठबद्धता हो तो उसकी चिकित्सा के प्रारम्भ में और आगे भी आवश्यकता पड़ने पर एरण्ड तैल (Casteroil) या किसी दूसरे विरेचक प्रयोग से पेट साफ करके अग्निकुमार रस अथवा अष्टांग लवण का व्यवहार कोष्ठबद्धता नष्ट करने के लिए प्रतिदिन करना चाहिए तथा मुख में खदिरादि वटी रखनी चाहिए। भोजन लघु और सुपाच्य देना चाहिए। छाले दूर हो जाने पर भी अग्नि दीपन चिकित्सा करता रहे जिससे कोष्ठबद्धता न होने पावे।

३५५—यदि दांतों में मैल जमने से कृमि पड़ने के कारण यह रोग हुआ हो तो दांतों और मुख को साफ रखें तथा भोजन में सावधानी रखें और तरल पदार्थ खावें तथा भोजन करने के पश्चात्—

३५६—पञ्च वल्कल या त्रिफला के क्वाथ के ठंडा होने पर उसमें शहद डाल कर कुल्ला करके मुख को साफ करें।

३५७—टङ्कणक्षार को शहद में मिला कर छालों पर लगावें अथवा (Boro glycrine) दिन में दो तीन बार लगावें।

यदि व्रण हो गये हों तो—

३५८—चमेली के पत्ते — गिलोय के पत्ते
मुनक्का — जवासा
दारुहल्दी — हरड़
बहेड़ा — आंवला

प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ (काढ़ा) बनावे और ठंडा होने पर

(शेषांश पृष्ठ २१४ का)

३५२—दार्वी का धनी भूत कषाय मधु मिलाकर प्रयोग करने से मुख रोग, रक्त दोष तथा नाड़ी व्रण नाश हो जाता है।

यष्टी तैल—

३५३—मुलहठी	४ तोला
नील कमल	३० फल
तिल तैल	१ प्रस्थ
गाय का दूध	२ प्रस्थ

—इन सबको पकाकर रात्रि में नस्य लेने से मुख का स्राव और देह के दोष दूर होते हैं और इसकी मालिश करने से—

"वयु: स्वर्णत्वमश्यं क्रमशोऽभ्येङ्गन जन्तूनाश्"

इति ॥

शहद मिलाकर गण्डूष × धारण करें।

३५६—इरिमेदादि तैल के कुल्ला करें और उसको छालों पर लगावे।

३६०—फिटकरी खैर की छाल
कीकर की छाल प्रत्येक समभाग

—लेकर क्वाथ का गण्डूष धारण करे।

३६१—८० ग्रेन पोटासियम क्लोरास को एक पाव पानी में डालकर कुल्ला करावें और १० ग्रेन की मात्रा में दिन में तीन या चार वार पिलावें।

३६२—व्रणों पर ४% या ६% काष्टिक लगाना चाहिए।

३६३—Chromic Acid का ५% लोशन भी लगाया जाता है।

कफज अथवा श्वेत मुख-पाक (Thrush)

कारण तथा लक्षण—यह रोग सदैव बोतलों के द्वारा दूध पीने वाले बच्चों को विशेष रूप से होता है। दूध पिलाने के पश्चात् बोतल को साफ न करने से उसमे विशेष प्रकार के कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं जो बढ़ कर मुखपाक रोग को उत्पन्न कर देते हैं। मुख में सर्व प्रथम जीभ पर फिर कपोलों के अन्दर तालु और कंठ में भी श्वेत छोटे-छोटे छाले पड़ जाते हैं। जो धीरे धीरे बढ़ कर मिल जाते हैं जिन से सम्पूर्ण मुख शोथ ग्रस्त ज्ञात होता है, परन्तु इसमें साधारण मुखपाक की भांति लाला स्राव नहीं होता है।

चिकित्सा

दूध पिलाने वाली बोतल को सदैव स्वच्छ रखना चाहिए।

३६४—मुखपाक रोग हो जाने पर Sodium sulphite solution १ ड्राम लेकर १ औंस पानी में घोल कर उससे मुख को स्वच्छ करें तथा बालक के साधारण स्वास्थ्य का ध्यान रखें।

३६५—कोष्ठबद्धता होने पर प्रारम्भ में तथा पीछे भी आवश्यकता पड़ने पर एरण्ड तैल देकर रेचन कराना चाहिए।

३६६—यदि अतिसार हो तो श्ट्यादि (चातुर्भद्र) चूर्ण देना चाहिए और भोजन करने के पश्चात् लवण भास्कर चूर्ण दें।

३६७—शरीर दुर्बल होने पर मांडूर वटक दें।

३६८—२½ तोला शहद में १० से २० रत्ती तक टङ्कण क्षार मिलाकर छालो पर लगावें।

सूचना

यदि बच्चा गाय बकरी आदि का दूध पीता हो तो उस दूध मे चूना का नितरा हुआ (Lime water) पानी थोड़ा सा मिला कर देना चाहिए। यदि बच्चा केवल माता का दूध पीता हो तो दूध पीने के पहिले और पीछे माता के स्तनों को भली भांति धो देना चाहिए।

सन्निपातज अथवा भीषण मुखपाक
(Gangrene stomatits)

कारण

इस रोग का यथार्थ कारण अब तक भली भांति ज्ञात नहीं हुआ है। जिन बच्चो का भरण पोषण ठीक नहीं होता है तथा स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों पर ध्यान नहीं दिया जाता, उन बच्चो को दो से पांच वर्ष तक की अवस्था में यह रोग अधिक हुआ करता है। रोमान्तिका तथा खसरा और आन्त्रिक ज्वर आदि बालकपन के छूत वाले रोगों के कुफल स्वरूप में यह रोग उत्पन्न होता है।

लक्षण

यह रोग प्रायः ३ से ६ वर्ष तक के बालकों में हुआ

× औषधि के क्वाथ आदि पदार्थों को मुख में इतना भरकर धारण करें, कि वह मुख में घूम सके, गण्डूप कहलाता है।

करता है। इस रोग का प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है। मसूरिका, लाल ज्वर, कुकुर खांसी (हूपिंग कफ) आदि रोगो के पश्चात् मुख में कपोलों के भीतरी पृष्ठ पर डिफ्थीरिया की भांति एक छोटा व्रण बन जाता है जिसके बीच में मृततन्तु होते हैं और उसके चारों ओर साधारण प्रदाह होता है तथा उसमें से सड़ा हुआ भाग प्रथक् होता जाता है। यह व्रण शीघ्रता से आगे पीछे तथा अन्दर से बाहर की ओर बढ़ने लगता है, यहा तक कि ७ से १० दिन में कपोल के आर पार हो जाता है और कभी–कभी सड़ाँयद बढ़ कर बाहर नेत्रो तक और मुख के अन्दर जीभ, दांत, जबड़ा तथा कपोल की हड्डी तक पहुंच कर फैल जाती है। जब कपोल के भीतर एक बड़ा व्रण दृष्टिगोचर होता है तब उसकी चिकित्सा की चिन्ता होती है। कपोल अधिक कठोर होता है अन्य शारीरिक लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। यद्यपि ज्वर साधारण होता है परन्तु सान्नि-तिक रूप धारण कर लेता है। ज्वर और दुर्बलता आदि लक्षण बहुत तीव्र हो जाते हैं। नाड़ी बहुत तीव्र चलती है, कभी-कभी अतिसार तथा फुफ्फुस प्रदाह भी हो जाता है और रोगी ७ से १० दिन के अन्दर मर जाता है। साध्यावस्था में व्रण २ या ४ दिन में स्वय भरने लगता है तथा ज्वर आदि शारीरिक लक्षण कम होने लगते हैं और रोगी १० या १२ दिन में अच्छा हो जाता है।

चिकित्सा

३६९—*एलोपैथिक*—सड़ांयद (सड़ने की क्रिया) रोकने के लिये पोटोसियम परमेंगनेट से मुख के व्रण युक्त भाग को शुद्ध करें और गर्म सेंक तथा पुल्टिस के प्रयोग से सड़ा भाग निकाल दें। रोग होते ही उस स्थान पर + कार्बोलिक एसिड (Carbolic acid) २% या स्ट्रोंग न्याइट्रिक एसिड (St ong nitric acid) अथवा स्ट्रोंग सिल-वर सोल्यूशन (Strong silver solution) लगावें। कार्बोलिक एसिड का प्रयोग उत्तम माना जाता है। नाइट्रिक एसिड लगाने के कुछ मिनट पश्चात् स्ट्रोंग सोल्यूशन आफ कार्बोनेट आफ सोडा से वह स्थान धो देना चाहिए। सड़ा हुआ भाग निकल जाने पर टिंचर फैरी-पर-क्लोराइड लगावें।

ज्ञातव्य

रोगी पूर्ण विश्राम करे तथा खाने के लिए दूध तथा अन्य पोषक पदार्थों का उपयोग करे। बल बढ़ाने के लिए औषधि के रूप में टिंचर फैरी पर क्लोराइड अथवा आयुर्वेदिक किसी लोह घटित प्रयोग का सेवन करे तो शीघ्र लाभ होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

३७०—त्रिफला पाठा
मुनक्का गिलोय
दारु हल्दी चमेली के पत्ते

समान भाग

—इनका क्वाथ करें और ठण्डा होने पर शहद मिलाकर मुख धोने के लिए प्रयोग करें।

३७१—भोजन के पश्चात् कुठेरादि गण की औषधियों का प्रयोग करें।

३७२—वातज मुख में—

छोटी पीपल सेंधानमक
इलाइची समान भाग

—इनको पीसकर चूर्ण बनाके उससे प्रतिसारण (घर्षण)

(शेषांश पृष्ठ २२३ पर)

+ इन औषधियों को लगाते समय सावधानी रखें कि कहीं रोग सहित स्थान के अतिरिक्त अन्य स्वस्थ श्लेष्मिक कला न जल जाय, इसके लिये तैल लगावें तथा पोटासियम कार्बोनेट का गाढा सोल्यूशन लगावें तो विकृति दूर हो जायगी मुख को शुद्ध करने के लिये फार्मेलिन (Phormalin) की टिकिया चार चार घटे बाद व्यवहार में लावें।

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक

दन्त विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में दन्तोत्पत्ति एवं रोग वर्णन के साथ २
उपादेय चिकित्सा का संग्रहणीय प्रयत्न हुआ है।

(६)

लेखक का संक्षिप्त परिचय

(१) *जन्म*—जन्म १ जनवरी १९२२ ई०।
(२) *जन्म भूमि*—रियासत पटियाला।
(३) *पितृ नाम*—श्रीसन्तराम जी।
(४) *धर्म*—वैदिक।
(५) *जन्म जाति*—अग्रवाल।
(६) *वैद्यकउपाधि*—वैद्य वाचस्पति (श्रीमद्दयानन्द आयुर्वेद महाविश्वविद्यालय लाहौर।

(६) *परिवार*—आप की माता जी का शिशु अवस्था में ही स्वर्गवास हो गया था और आपके पिता जी कुछ वर्षों के पश्चात् सन्यासी हो गये। आप की धर्म पत्नी श्रीमती इन्द्रादेवी जो कि देहली के एक प्रसिद्ध आर्य घराने की सुपुत्री है और हिन्दी प्रभाकर व मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त हैं। वे भी आपके साथ सहायक के रूप में स्त्री वैद्या का कार्य करती हैं।

(७) *सार्वजनिक जीवन*—आप ने अपनी अधिकतर शिक्षा अपने ही परिश्रम से लाहौर में रह कर प्राप्त की है। आपने वैद्यक कार्य भी लाहौर में ही प्रारम्भ कर दिया था। पाकिस्तान बनने के पश्चात् आप को पुनः अपने ही परिश्रम से खड़ा होना पड़ा।

आपकी विद्यार्थी जीवन से सार्वजनिक कार्यों में रुचि रही है। आप ने लाहौर में अपने विद्यार्थी काल में राष्ट्र भाषा और आयुर्वेद के लिये पर्याप्त क्रियात्मक आंदोलन किया। आप ने लाहौर में वैद्यक शिक्षा के अपने प्रथम वर्ष में ही चिकित्सा कार्य में भी बहुत सफलता प्राप्त की, परिणाम स्वरूप आप प्रथम वर्ष से ही पञ्जाब विश्वविद्यालय से स्वीकृत एक बडे प्रतिष्ठित कालेजियेट होस्टल (अग्रवाल आश्रम) में एक आयुर्वेदिक डिस्पैन्सरी का सञ्चालन भी बड़ी योग्यता व सफलता के साथ करने लग गये थे। जो कि समस्त भारत वर्ष में एक सर्व प्रथम उदाहरण था, क्यों कि वर्तमान समय में भी सरकारी विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित समस्त स्कूलों और कालेजों आदि में तथा उनके बोर्डिंगों तथा होस्टलों मे ऐलोपैथिक डिस्पैसरियों का ही सर्वत्र प्रसार है, जो कि विद्यार्थियों के जीवन में बाल्यावस्था से ही विदेशी (अंग्रजी) चिकित्सा पद्धति की छाप का एक प्रमुख कारण बन जाती है। अतः इस विचार को दृष्टि में रखते हुए आप विद्यार्थियों और उनके संरक्षकों के द्वारा पञ्जाब में एक बड़ा भारी आन्दोलन प्रारम्भ करना चाहते थे, किन्तु पाकिस्तान बन जाने के कारण आप का वह उत्साह अब निराशा में परिवर्तित हो गया।

सदस्य और परीक्षक—आप श्रीमद्दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय (लाहौर) अमृतसर की प्रबन्ध उपसमिति के, डी० ए० वी० कालेज प्रबन्ध कर्ता सभा के सदस्य एवं निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल के आजीवन सदस्य हैं और इन दोनों संस्थाओं के आप परीक्षक भी हैं।

आप आयुर्वेद के अच्छे शुभचिन्तकों में से हैं आपके उत्साह पूर्ण कार्य प्रशंसा के योग्य हैं। आपके द्वारा भविष्य में आयुर्वेद की अच्छी उन्नति होने की सम्भावना है। आपके द्वारा प्रस्तुत लेख उच्चगम्भीरता एवं पर्याप्त नूतनता के साथ पूर्ण हुआ है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

दन्त रोग चिकित्सा

(१) दन्त वेष्ट शोथ (२) रक्तस्राव (३) दन्त पूय

लेखक कविराज भारतभूषण वैद्य वाचस्पति, भारत औषधालय, शकूरबस्ती (देहली)

वैद्य समाज तथा ऊर्ध्वजत्रुजरोग

प्राणाचार्य के ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक के प्रधान सम्पादक आदरणीय श्री युत हरदयाल जी वैद्य वाचस्पति का आदेश पत्र प्राप्त हुआ और लेख लिखने के लिए इस विशेषांक का उद्देश्य तथा एक विस्तृत विषय सूची भी प्राप्त हुई जिसे पढ़कर हर्ष तथा विषाद दोनों हुए।

प्रथम-हर्ष तो इसलिए हुआ कि वास्तव में यह वैद्यों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगा क्योंकि हमारा बहुसंख्यक वैद्य समाज ऊर्ध्वजत्रु रोगों के निदान और उन की उपयोगी चिकित्सा करने में सर्वथा अनभिज्ञ सा ही है, इसी कारण बहुसंख्यक वैद्य बन्धुओं को तथा उनके आयुर्वेद भक्त रोगियों को विशेषतः शल्य चिकित्सा आदि आदि के लिये परमुखापेक्षी होना पड़ता है और कई अवस्थाओं में तो उनमें से प्रायः अधिकतर रोगी सदा के लिए ऐलोपैथी चिकित्सकों के पास ही जाने प्रारम्भ हो जाते हैं।

अभिप्रायः यह है कि, हमारा वैद्य समाज जनता में केवल सीमित औषधि चिकित्सा पर ही आश्रित होने के कारण एकांगी चिकित्सक रूप में विद्यमान और प्रसिद्ध है। इसलिये यदि कोई वैद्य आधुनिक साधनों के साथ उपयोगी (औषधि तथा शल्य) निदान चिकित्सा आदि करता भी है तो उसे जनता में विश्वास प्राप्त करने में पर्याप्त समय लग जाता है।

यह ठीक है कि यह त्रुटि ऐलोपैथी चिकित्सकों में भी है, वैद्यों की अपेक्षा इत बहुत ही न्यून अर्थात् इस प्रकार की ५ प्रतिशत त्रुटि छोटे मैडीकल स्कूलों से शिक्षित ऐलोपैथी चिकित्सकों में भी पाई जाती होगी अर्थात मेडीकल स्कूलों के भी प्रायः सभी एलोपैथी चिकित्सक दैनिक आवश्यकतानुसार सामान्य शल्य चिकित्सा तथा ऊर्ध्वजत्रु रोगादि चिकित्सा तो कर ही लेते हैं।

अत: वैद्य समाज को शरीर के विशेष २ रोगों का अथवा दैनिक साधारण व्याधियों का यह भी केवल एकांगी (औषधि) चिकित्सक बनने की अपेक्षा ऐलोपैथी की तरह शरीर के (ऊर्ध्वजत्रुगत और शाखा प्रशाखा, अङ्ग प्रत्यङ्ग, आदि) समस्त भागों के स्थूल तथा सूक्ष्म, नये-पुराने रोगों का निदानादि तथा उनकी उपयोगी चिकित्सा के सिद्धांतों का और शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में दैनिक व्यवहारार्थ तो क्रियात्मक-कर्माभ्यास का ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

वैद्यों की इस त्रुटि को पूर्ण करने के लिये नि० भा० आ० महामण्डल को शीघ्रातिशीघ्र विशेष स्नात-

कोत्तर विद्यालय (Post graguate college) का प्रबन्ध करना चाहिये, और उसके लिये सुयोग्य एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक शल्य चिकित्सकों की सेवा का प्रबन्ध करना चाहिये। स्मरण रहे कि शल्य चिकित्सा को अपनाने के कारण ही आज एलोपैथी का सितारा चमक रहा है।

दूसरे इस विशेषाक के लिए भेजी हुई विस्तृत विषय सूची को पढ़कर कुछ विषाद भी हुआ, विषाद इस लिये कि ऊर्ध्वजत्रु रोगों की संख्या तथा उनके भेदोपभेद इतने अधिक हैं कि, उन सबको इस एक विशेषांक में संकलन करना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव सा है। निसन्देह प्रधान सम्पादक महोदय गागर में सागर भरने का विशेष गुण रखते हैं, किन्तु ऊर्ध्वजत्रु रोगों का विषय ही बहुत विस्तृत है इस के तो एक २ भागांतर्गत (दांत, आख, कान, नाक, कण्ठ, शिर और अन्य मस्तिष्कीय) व्याधियों पर तो आयुर्वेद मे अब पुन. बड़े बड़े विस्तृत ग्रंथो की आवश्यकता है।

आशा है प्राणाचार्य के सचालक महोदय इस पर गंभीरता पूर्वक विचार करके दांत, नाक, कान, कण्ठ शिर; और अन्य मस्तिष्क आदि सम्बन्धी भागों के पृथक् २ विशेषांक निकालकर आयुर्वेद के साहित्य की वास्तविक अभिवृद्धि करेंगे। जैसे कि, कृष्णगोपाल धर्मार्थ औषधालय कालेड़ा, बोगला वालों ने नेत्र रोग विज्ञान नामक हिन्दी में बृहद्ग्रंथ प्रकाशित कर वैद्यों के लिए ठोस उपयोगी साहित्य बढ़ाने का प्रयत्न किया है। किंतु दुख है कि उसमें भी आयुर्वेदिक शैली और साहित्य को सम्मिलित नहीं किया गया। उक्त प्रकार के पृथक् पृथक् विशेषांकों के लिये आयुर्वेदिक तथा हिन्दी प्रेमी एलोपैथी सुयोग्य अनुभवी चिकित्सकों एव विशेषज्ञों की सेवा का प्रबन्ध करना चाहिए।

किन्तु फिर भी विशेषत ऊर्ध्वजत्रु रोगाक के प्रधान सम्पादक आदरणीय पं० हरदयाल जी और प्राणाचार्य के संचालक महोदय धन्यवाद के पात्र हैं कि, जिन्होंने एक विशेषांक के द्वारा इस बड़ी त्रुटि की ओर वैद्य समाज का ध्यान आकर्षित करने का यथा शक्ति क्रियात्मक प्रयत्न किया है। आशा है प्राणाचार्य के पाठक गण इस विशेषाक से अवश्य लाभ उठायेंगे।

जैसे मैं अपने लेखारम्भ में ऊपर निवेदन कर चुका हूँ कि ऊर्ध्वजत्रुगत विभिन्न भागों के रोगो पर तो पृथक २ बड़े बड़े ग्रंथों की आवश्यकता है जो कि आयुर्वेदिक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए उभयात्मक ढङ्ग से परिपूर्ण हों। अत. यहा मैं केवल दांतों के उक्त तीनो रोगों के सम्बन्ध में तथा दांतों के शरीर शास्त्र पर सक्षेप में कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।

दन्त रचना विज्ञान

(Dental anatomy)

कुछ प्राणियो को छोड़ कर दांतों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में प्राय प्रत्येक प्राणी का प्राकृतिक रूप में एक सा ही है और इनका स्थान भी मुख है ? क्यों कि प्रत्येक प्राणी मुख से किसी न किसी रूप में खाद्य पदार्थ

(पृष्ठ २१९ का शेषांश)

करें अथवा वायु नाशक पदार्थों से सिद्ध किये गये तैल का कवल धारण करें और नस्य लें।

३७३—पित्तज, रक्तज, कफज और सन्निपातज मुखपाक में इन दोषों के नाशक द्रव्यों का प्रयोग करें। जैसे पित्तज मुखपाक में उदुम्बसार को जल में मिलाकर कुल्ला करें। कफज में खदिरादि तैल लगावें।

३७३—खदिरादि वटी एक एक मुख में डालकर दिनमें पाच सात बार चूसें।

भक्षण कर उदर पूर्ति करता है। अतः दांतो का मुख्य स्थान मुख है और मुख में भी मनुष्य के ऊपर नीचे के दो हनु (जबड़े) हैं, ये दो पृथक २ अस्थियों से बने हुए हैं। जिसे ऊर्ध्वहन्वस्थि और अधः हन्वस्थि कहते हैं।

ऊपर नीचे की इन्हीं दोनों हन्वस्थियों में मनुष्य के दांत लगे हुए होते हैं।

दांतों की सम संख्या और सम आकृति के कारण प्रत्येक जबड़ा प्राकृतिक रूप में दो बराबर-बराबर भागों में विभक्त हैं। अर्थात्—नाक तथा ओष्ट की मध्य रेखा के इतस्ततः दांया और बायां (अथवा दक्षिण तथा वाम) भाग कहा जाता है। इस प्रकार दोनों जबड़ों के चार भाग हुए।

मनुष्य की बाल्यावस्था में २० और पूर्ण आयु में कुल ३२ दांत होते हैं। इनके स्थान तथा कार्य के अनुसार पृथक-पृथक नाम रक्खे गये हैं। (१)—अस्थायी दांत अथवा दुग्ध दन्त और (२)—स्थायी दन्त। इनका पृथक-पृथक वर्णन निम्न प्रकार से हैं—

१—अस्थायी दन्तों का संक्षिप्त वर्णन

(क) *अस्थायी दन्त*—(Temporary teeth) अथवा Deciduous teeth) इन्हें दूधिया दन्त या दुग्ध दन्त (Milk teeth) भी कहते हैं। ये संख्या मे २० होते हैं। ऊपर नीचे के प्रत्येक हनु (जबड़े) में दस-दस और प्रत्येक आधे हनु में पांच-पाच दन्त होते हैं।

(ख) *उद्गम तथा पतन काल*—सामान्यतः अस्थायी दन्त छटे मास से निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं और लगभग ढाई वर्ष में २० के २० पूर्ण हो जाते हैं और प्रायः सर्व प्रथम अधो हनु के दो कर्त्तनक दाँत निकलते हैं, फिर ऊर्ध्व हनु के कर्त्तनक। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से ऊपर नीचे के दांतों का उद्गम क्रम चलता रहता है। तत्पश्चात् लगभग छुठे वर्ष के बाद पतन काल भी प्रारम्भ हो जाता है। जो कि लगभग १२ वर्ष की आयु पर्यन्त रहता है और साथ ही साथ स्थायी दन्त (Permanent teeth) भी निकलते रहते हैं।

(ग) *नाम, भेद तथा संख्या*—दांतों की रचना, स्थान तथा कार्य को दृष्टि में रखते हुए अस्थाई अवस्था में इन को निम्न तीन मुख्य विभागों मे विभक्त किया गया है।

१—*कर्त्तनक या राजदंत*—(Incisors) अर्थात् ये दांत पदार्थ को काटने का कार्य करते हैं इसलिये इन्हें कर्त्तनक संज्ञा दी गई है और दूसरों की अपेक्षा ऊपर के दांत कुछ बड़े दिखाई देते हैं एवं सामने होते हैं। जो मुख की शोभा के द्योतक हैं अत. इन का दूसरा नाम राजदन्त भी है। ऊपर नीचे के दोनों जबड़ों में इनकी कुल संख्या आठ होती है। प्रत्येक हनु के आधे भाग में दायें-बायें दो-दो होते हैं।

२—रदनक या भेदक (Cuspids or Canines)—अर्थात्—ये दांत पदार्थ को विभिन्न भागों में तोड़ने का कार्य करते है, इसलिए इनको रदनक संज्ञा रक्खी गई है। बोल चाल की साधारण भाषा मे इन्हे सूआ भी कहते हैं। ऊपर-नीचे ये संख्या मे कुल चार होते हैं। प्रत्येक हनु के आधे भाग में दायें बायें एक-एक होता है।

३—*पश्चिम चर्वणक*—(Molars)-बोल चाल की साधारण भाषा में इन्हें बड़ी दाढ़ें भी कहा जाता है किसी २ के मत से बाल्यावस्था में ये (इनसे पहले के) अग्र चर्वणकों (Premolars or Bicuspids) के स्थान पर ही उत्पन्न होते हैं।

इनका कार्य पदार्थ को चबाने का होता है। इस लिए इनको चर्वणक संज्ञा दी गई है। बाल्यावस्था में ये ऊपर नीचे संख्या में कुल आठ होते हैं। अर्थात् प्रत्येक हनु के आधे भाग में दो-दो होते हैं। इन सब का संक्षिप्त वर्णन निम्न दो कोष्ठों में दिया जाता है।

दाँत की आँतरिक रचना लम्बाई की ओर

से किया हुआ परिच्छेद
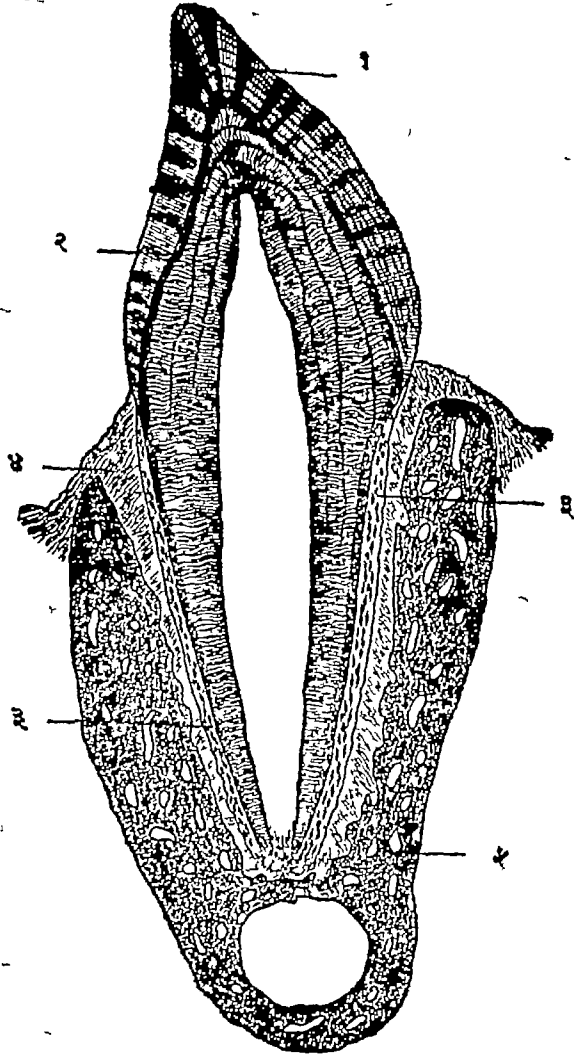
१—एनेमल
२—दन्तीय
३—संयोजक
४—दतीय अस्थि वेष्ट (दन्तावरण)
५—अधो हन्वस्थि का भाग

अस्थायी दन्त गणना-संक्षिप्त कोष्ठ

ओष्ठ मध्य रेखा

	दक्षिणहनु अर्द्ध भाग				वाम हनु अर्द्ध भाग			
ऊर्ध्व हनु		प० च०	र०	क०	क०	र०	प० च०	ऊर्ध्व हनु
५	=	२	१	२	२	१	२	५
५	=	२	१	२	२	१	२ =	५
अधो हनु		प० च०	र०	क०	क०	र०	प० च०	अधो हनु
१०								१०

ओष्ठ मध्य रेखा

टिप्पणी—खड़ी मध्य रेखा से दायें-बायें (दक्षिण-वाम) गणना प्रारम्भ कीजिये और प्रत्येक प्रकार के दात का प्रथम अक्षर दिया गया है। जैसे सर्वप्रथम क० से अभिप्राय कर्त्तनक दातो की सख्या से है। दो अक सख्या का द्योतक है।

अस्थायी दन्त उद्गम या दन्त निकास क्रम

(Eription or Dentition of the temporary teeth)

अस्थायी और स्थायी दांतों की रचना प्रारम्भ और पूर्ण उत्पत्ति तथा पतन तक कौन २ सी क्रिया, कितने कितने समय तक होती है। इसका ज्ञान होना भी दन्त चिकित्सक के लिए आवश्यक है। सबसे प्रथम प्राय. निम्न हनु के कर्त्तनक दांत ही निकलने प्रारम्भ होते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वहनु के कर्त्तनक आदि आदि। इस प्रकार ऊपर नीचे का सम (या विषम) उत्पत्ति क्रम चलता रहता है। आयुर्वेद शास्त्र तथा जन विश्वास के अनुसार ऊपर के दांतों का पूर्व जन्म एक उत्पात माना जाता है। दन्त उत्पत्ति क्रम (निकास से पतनावस्था तक) प्राय. निम्न ५ भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१— दन्त रचना अन्त क्रिया काल (Calcification)- यह दन्त रचना की सबसे प्रारम्भिक क्रिया है। यह भिन्न २ दांतों में भिन्न २ समयों में प्रारम्भ होती है। हन्वास्थि के इतस्तत और ऊपर जो दन्त पुप्पुट (मसूढ़ा) है उसके अन्दर दात के सर्व प्रथम उद्गम स्थान पर दन्त रचना क्रम एक प्रकार की रसायनिक प्रक्रिया द्वारा अथवा एक विशेष प्रकार के दन्त बीजों (Special dental germs) की उत्पत्ति के पश्चात् प्रारम्भ होता है। इन दन्त बीजों (कीटाणुओं) की सख्या अस्थायी तथा स्थायी दांतों के लिए भिन्न २ होती है।

२—दन्त दर्शन अथवा प्रकट काल (Eroption)- यह वह काल होता है जब उपरोक्त प्रारम्भिक रचना क्रम के पश्चात् दात मसूड़े से बाहर दिखाई देते हैं इसके पश्चात् रचना क्रम प्रारम्भ रहता है।

३—दन्त रचना पूर्ण काल (Completion of calcification)--यह वह समय है जबकि दांत पूर्ण रूप से बाहर प्रकट होकर वृद्धि क्रम बन्द कर देते हैं।

४—दन्त पतनारम्भ काल (Decalcification)- यह वह समय है जब कि दन्त मूल मे

दांतों की पतनारम्भ क्रिया होती है।

५—दन्तपूर्णपतन-काल (Sheeding of tooth)

क्योंकि यह [illegible] है [illegible] दन्तमूल विशीर्ण होकर गिर [illegible] हैं।

अस्थायी दांत

उद्गम तथा पतन काल दर्शक संक्षिप्त कोष्ठक

	नाम दांत	कर्तनक प्रथम	कर्तनक द्वितीय	प्रथम पश्चिम चर्वणक	रदनक	द्वितीय पश्चिम चर्वणक
१	दन्त रचना अन्तः क्रिया काल	लगभग ४ मास	लगभग ५ मास	लगभग ५ मास दन्तदर्शन काल पश्चात्	लगभग ५ मास दन्तदर्शन काल पश्चात्	लगभग ५ मास दन्तदर्शन काल पश्चात्
२	दन्त प्रकट या दन्त दर्शन काल	६ से ८ मास	६ से ९ मास	१० से १४ मास	१७ से १८ मास	१८ से २० मास
३	दन्त रचना पूर्ण काल	१७ से १८ मास	१४ से १६ मास	१८ से २० मास	२४ मास	२० से २४ मास
४	आन्तरिक पतनारम्भ क्रियाकाल	५ वर्ष	५ वर्ष	६ से ७ वर्ष	१० वर्ष	७ से ८ वर्ष
५	पूर्ण पतन काल	७ वर्ष	८ वर्ष	१० वर्ष	१२ वर्ष	११ से १२ वर्ष

टिप्पणी—उपरोक्त कोष्ठक में वर्णित यह साधारण काल है। इसमें न्यूनाधिकता हो सकती है। श्री डाक्टर घाणेकर जी आयुर्वेदाचार्य M. B. B. S. के मत में "साधारणतया एक वर्ष के बालक के ६ दांत, डेढ़ वर्ष के शिशु के १२ दांत, दो वर्ष के शिशु के १६ दांत और ढाई वर्ष के शिशु के २० दांत होने चाहिए।"

स्थायी दांतों का संक्षिप्त वर्णन

(क) *स्थायी दांत या पुनर्दन्त*(Permanant teeth)

मनुष्य के ये दूसरी प्रकार के दांत हैं जो कि पुनर्दन्त कहलाते हैं। ये लगभग छटे-सातवें वर्ष अस्थायी दांतों के उखड़ने पर क्रमशः उनके ही स्थान पर निकलना प्रारम्भ होकर लगभग १८ से २५ वर्ष तक की आयु तक पूर्ण होते हैं। और मनुष्य के स्वास्थ्य के अनुसार प्रायः आजीवन (आयु पर्यन्त भी) स्थिर रहते हैं। उद्गम काल भिन्न २ दांतों का भिन्न २ होता है। ये संख्या में उपरोक्त अस्थायी दांतों से १२ अधिक होते हैं। इन १२

अधिक दांतों का पुनर्जन्म भी नही होता। इनकी उत्पत्ति प्रथम बार ही होती है। स्थायी दात कुल (बत्तीस) होते हैं। ऊपर-नीचे प्रत्येक हनु में १६-१६ और प्रत्येक हनु के दायें-बायें आधे आधे भाग में आठ आठ होते है।

(ख) *नाम, भेद तथा संख्या*—ऊपर वर्णित अस्थायी दात तीन प्रकार के होते हैं और किसी किसी के मत में उनमें अग्र चर्वणक (छोटी दाढ़ें) नहीं होतीं, एव पश्चिम चर्वणक दांतों (बड़ी दाढ़ें) की सख्या भी चार कम होती है। अर्थात् ऊपर नीचे के हनु में कुल आठ बडी दाढ़ें होती हैं और वे भी छोटी दाढ़ों के स्थान पर होती हैं। स्थायी दांतो की गणना नाम तथा भेद के अनुसार निम्न प्रकार से होती है। प्रत्येक आधे हनु के आठ-आठ दात अधोलिखित चार-चार प्रकार के ही होते हैं।

(१) *कर्त्तनक या राजदन्त*—ये ऊपर-नीचे प्रत्येक हनु के आधे-आधे भाग में दो-दो होते हैं। ओष्ट खोलने पर ये मध्य रेखा के इतस्तत. दिखाई देते हैं। दीखने में चपटे और ऊपर से तीखे मालूम होते हैं। इनकी कुल सख्या आठ होती है।

(२) *रदनक या भेदक*—यह प्रत्येक हनु के आधे-आधे भाग में ऊपर-नीचे दोनों ओर एक एक होता है। इनका स्थान प्रत्येक आधे हनु के दोनों कर्त्तनक दांतों के पश्चात् तीसरे नम्बर पर होता है। यह दूसरे दांतो की अपेक्षा कुछ नोंकीला सा होता है। इनकी कुल सख्या चार होती है।

(३) *अग्र चर्वणक* (Bicuspids or Premolars) ये प्रत्येक हनु के आधे आधे भाग मे ऊपर नीचे दोनों ओर दो-दो होते हैं। इनकी कुल संख्या आठ होती है। बोल चाल की साधारण भाषा में इनको छोटी दाढ़ें भी कहा जाता है। ये अपने से पहले के दांतों की अपेक्षा कुछ मोटे और इनका ऊपर का भाग चपटा होता है। ऊपर के चपटे भाग में प्राय दो-दो गढ़े तथा दो-दो उभार से भी होते हैं। इनका कार्य खाद्य पदार्थों को चबाने का होता है अत इनकी चर्वणक सज्ञा रक्खी गई है। इनका स्थान मुख में रदनक नामक दांत के पश्चात् कुछ अन्दर की ओर चौथे और पांचवे नम्बर पर होता है। ओष्ठ खोलने पर ये स्पष्ट दिखाई नहीं देते क्योंकि कपोलो से कुछ ढके रहते हैं।

(४) *पश्चिम चर्वणक*—ये ऊपर-नीचे प्रत्येक हनु के आधे २ भाग मे दोनों ओर तीन-तीन होते हैं। इन की कुल सख्या १२ होती है। ये अपने से पहले के सब दांतो की अपेक्षा अधिक मोटे और ऊपर से अधिक चपटे से होते हैं। इनके ऊपर के चपटे भाग में कुछ गढ़े तथा प्राय. चार उभार भी होते हैं। ताकि खाद्य पदार्थों की चर्वण क्रिया सम्यक् प्रकार से हो सके। इनका स्थान हनु के अन्तिम भाग में छटे-सातवे और आठवे नम्बर पर होता है। हम इन्हें केवल ओष्ट खोलने पर नहीं देख सकते क्योंकि ये कपोलों से पूर्णतया ढके हुए होते हैं। इनकी उत्पत्ति प्रथम बार ही होती है।

बुद्धिदत—इन पश्चिम चर्वणकों (बड़ी दाढ़ें) में से अन्तिम तृतीय चर्वणक को साधारणतया बुद्धि दत अथवा अक्कल दाढ़ भी कहने की प्रथा है। इन्हें अंग्रेजी में (Third Molars अथवा Wisdom teeth) कहते हैं। इन तीसरी अन्तिम दाढ़ों को बुद्धि दन्त कहने का यही कारण हो सकता है। क्योंकि इसका उत्पत्ति काल १८ से २५ वर्ष की आयु तक है और मनुष्य इस आयु में पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कर चुका होता है। प्राय. वह अपने कर्तव्य अकर्त्तव्य को पहचानने की बुद्धि को धारण कर लेता है। अत. इन अन्तिम तृतीय चार बडी दाढ़ों को बुद्धि दन्त या अकल दाढ़ भी कहने की प्रथा है।

स्थायी दन्त गणना—संक्षिप्त कोष्ठक

ओष्ठ मध्य रेखा

	दक्षिण हनु अर्द्ध भाग				वाम हनु अर्द्ध भाग				
ऊर्ध्व हनु	प० च०	अ० च०	र०	क०	क०	र०	अ० च०	प० च०	ऊर्ध्व हनु
८	३	२	१	२	२	१	२	३	८
८	३	२	१	२	२	१	२	३	८
अधो हनु	प० च०	अ० च०	र०	क०	क०	र०	अ० च०	प० च०	अधो हनु
१६									१६

ओष्ठ मध्य रेखा

अर्थात्—क० $\frac{२+२}{२+२}$ + र० $\frac{१+१}{१+१}$ + अ० च० $\frac{२+२}{२+२}$ + प० च० $\frac{३+३}{३+३}$ कुल= $\frac{१६}{१६}$ सर्व योग ३२

टिप्पणी—कोष्ठ की गणना समझने के लिए पूर्व लिखित अस्थायी दांतो के संक्षिप्त कोष्ठक वाली टिप्पणी को पढ़िये।

स्थायी दन्त उद्गम या निकास क्रम
(Dentition of the permanent teeth)

जैसा कि पूर्व अस्थायी दन्तों के उत्पत्ति क्रम में ५ अवस्थाओं का वर्णन किया गया है, किन्तु स्थायी दन्तों के लिये केवल उत्पत्ति काल क्रम का ही आधुनिक अन्वेषणों द्वारा कुछ अनुमान लगाया गया है, यह अनुमान काल कुछ न्यूनाधिक भी हो सकता है। ५ में से पतनकाल की दो अवस्थाओं का अनुमान लगाना असम्भव सा है, क्योंकि स्थायी दांतों की वास्तविक अवधि तो मनुष्य की आयु पर्यन्त होनी चाहिए। परन्तु यदि कोई मनुष्य दन्त रक्षा के नियमों का पालन नहीं करता तो उसके दांतों का युवावस्था में भी दन्तपूय आदि रोगोत्पत्ति के साथ-साथ पतन आरम्भ हो जाता है। उत्पत्ति क्रम की तीन अवस्थाओं की व्याख्या तो अस्थायी दांतों के प्रकरण में की जा चुकी है, यहां केवल निम्न संक्षिप्त कोष्ठक ही दिया जायगा।

नाम दांत	प्रथम पश्चिम चर्वणक	कर्त्तनक	अग्र चर्वणक प्रथम	अग्र चर्वणक द्वितीय	रदनक	द्वितीय पश्चिम चर्वणक	तृतीय पश्चिम चर्वणक
१—दन्त रचना अन्त. क्रियाकाल	उत्पत्ति से एक मास पूर्व	प्रथम वर्ष	४ वर्ष	५ वर्ष	३ वर्ष	५ वर्ष	६ वर्ष
२—दन्त प्रकट या दन्त दर्शन काल	६ से ७ वर्ष	७ से ८ वर्ष	१० से ११ वर्ष	११ से १२ वर्ष	१२ से १३ वर्ष	१३ से १६ वर्ष	१७ से २२ वर्ष
३—दन्त रचना पूर्ण काल	७ से ९ वर्ष	८ से १० वर्ष	११ से १२ वर्ष		१२ से १६ वर्ष	१६ से १७ वर्ष	२२ से २५ वर्ष

स्थायी दांतों का पृथक-पृथक नामकरण तथा गणना

यदि ध्यान से देखा जाय तो मनुष्य का समस्त शरीर दांये-बांये दो बराबर-बराबर भागों में विभक्त है। इसकी विभाजन रेखा को हम साधारणतया *मध्य रेखा* (Median line) का नाम दे सकते हैं। जो कि नाक और चिबुक (ठोडी) को मिला कर शिर के ऊपर मस्तक एव नाभि से निम्न प्रदेश तक भी स्पष्ट प्रतीत होती है। इस प्राकृतिक चिह्न से समस्त शरीर दो बराबर-बराबर भागों में विभक्त हुआ प्रतीत होता है। जैसा कि इस सम्बन्ध में पहले भी कुछ सकेत किया जा चुका है। इस मध्य रेखा के अनुसार दांतों का उत्पत्ति स्थान (अर्थात् ऊर्ध्व और अधो हन्वस्थि) भी बराबर-बराबर भागों में विभक्त हो जाता है। सामने के दोनो बडे कर्त्तनक दांतों को पृथक-पृथक करने वाले रिक्त से स्थान (विरल) को ही हम हन्वस्थि की *मध्य रेखा* के नाम से पुकारते हैं। जिसे ओष्ट खोलने पर आप भली भाति देख सकते हैं। इसी मध्य रेखा के दाऐ-बांये (ऊपर नीचे के दोनो हनुओं में) दोनो ओर

$\frac{८+८}{८+८}+\frac{८+८}{८+८}$ कुल ३२ दात होते हैं।

प्रत्येक हन्वस्थि में मध्य रेखा के दांये या बांये जो आठ दांत हैं, आधुनिक शारीर शास्त्र में उनकी एक-दो-तीन-चार आदि क्रम से पृथक-पृथक नामों सहित भी गणना की गई है एव पृथक-पृथक आकृति वर्णन भी की गई है। ये आठ दांत ही ऊर्ध्व-अध दोनों हनुओं में (दाँये-बाये), चार प्रकार की आकृतियों में और चारों स्थानों (भागों या पक्षों) में स्थित हैं। ये आठों दांत आकृति में चार प्रकार के और सख्या में चार-चार होते हैं। अतः कुल सख्या ८×४=३२ बनती है। जैसे—

(१) ऊपर का दाँया प्रथम कर्त्तनक।

(२) नीचे का दांया प्रथम कर्त्तनक।

(३) ऊपर का बांया प्रथम कर्त्तनक।

(४) नीचे का बाया प्रथम कर्त्तनक। इनकी पृथक २ नाम गणना निम्न प्रकार से की जाती है—

(१) मध्य कर्त्तनक अथवा प्रथम कर्त्तनक (Central incisors or firstincisors)-यह मध्य रेखा के निकट वर्त्ती प्रथम दात है।

(२) द्वितीय कर्त्तनक (Second incisors or lateral incisors)-यह मध्य रेखा के बाईं ओर द्वितीय नम्बर पर स्थित है।

(३) रदनक या भेदक (Canines or cuspids)-यह मध्य रेखा से बांई ओर आगे तृतीय नम्बर पर स्थित है।

(४) प्रथम अग्र चर्वणक (First Bicuspids or First Premolars)-यह मध्य रेखा से आगे चतुर्थ नम्बर पर स्थित है।

(५) द्वितीय अग्र चर्वणक (Second Bicuspids or Second premolars)-यह मध्य रेखा से आगे पांचवे नम्बर पर स्थित है।

(६) प्रथम पश्चिम चर्वणक (First molars)-यह मध्य रेखा से आगे छटे नम्बर पर होता है।

(७) द्वितीय पश्चिम चर्वणक (Second molars)-यह मध्य रेखा से सातवें नम्बर पर स्थित है।

(८) तृतीय पश्चिम चर्वणक या बुद्धिदन्त (Third molars or wisdom teeth)-यह हनु के अन्तिम भाग में अर्थात् मध्य रेखा से आगे आठवें नम्बर पर स्थित है।

उपरोक्त आठ प्रकार के दांतों का पृथक-पृथक स्वरूप

आधुनिक शारीर शास्त्र वेत्ताओं ने आठ प्रकार के ही नहीं अपितु ३२ के ३२ दांतों का एक दूसरे से पृथक पृथक पहचानने के लिये अनेक प्रकार के सूक्ष्म चिह्नों का वर्णन किया है। परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म प्रकार की वह विवेचना साधारणतया दन्त चिकित्सा के लिये काम नहीं आती। अतः यहां पर संक्षेप में केवल कुछ ऐसे स्थूल स्वरूप का वर्णन किया जायगा जो कि, दन्त चिकित्सा

क्षेत्र में सामान्यत. लाभप्रद हो सके अर्थात् जिससे आठों प्रकार के दांतों की एक दूसरे से पृथकता एवं ऊपर नीचे के तथा दाये या बाये ओर के (मुख से बाहर पड़े हुए) दांतों को भी पहचान की जा सके ऐसे स्थूल स्वरूप का उल्लेख करने का प्रयत्न किया जायगा। एक दूसरे से इस पृथक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होने से विशेषतः पीड़ित दांत की उत्पाटन क्रिया करने और तत्पश्चात् नये कृत्रिम दांतो के लगाने में अथवा पीड़ित दांतों में औषधि लगाने, उन्हें साफ करने और भरने आदि के कार्यों में दन्त चिकित्सक को अत्यन्त सुगमता रहती है। इसलिये दन्त चिकित्सा करने के लिये इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है।

१—दांतों के ऊर्ध्व भाग का पृथक २ सामान्य वर्णन तो पूर्व किया जा चुका है। जो कि चिकित्सा के लिये एवं कृत्रिम दन्त स्थापन क्रिया के लिये आवश्यकीय है।

२—प्रत्येक हनु के दांये या बांये ओर के दांतों की स्थूल रूप में सब से मुख्य यह पहचान है कि प्रत्येक दांत की मध्य रेखा की ओर की धारा दूसरी ओर की धारा से कुछ बड़ी होगी। इस धारा को पहचान कर मनुष्य के ३२ के ३२ बाहर इकट्ठे पड़े हुए दांतों को आप पूर्ववत् ही जोड़ कर रख सकते हैं। यह पहचान प्रायः कृत्रिम दन्त बनाने के लिये आवश्यक है।

३—कर्त्तनक, रदनक, अग्र और पश्चिम चर्वणक इन मुख्य ४ प्रकार के आठों दांतो को एक दूसरे से पृथक-पृथक पहचानने के लिये तीसरी पहचान दन्त मूल की संख्या का स्मरण रखना आवश्यक है। दन्त मूलों की संख्या में केवल ऊपर-नीचे पश्चिम चर्वणकों में और कुछ ऊर्ध्व अग्र चर्वणकों की मूलों में भेद है। वह इस प्रकार है कि—

(क) ऊर्ध्व-अधः कर्त्तनको, रदनकों तथा द्वितीय अग्र चर्वणकों की मूल एक-एक ही होती है।

(ख) ऊर्ध्व-"प्रथम, अग्र चर्वणकों" की मूलों में नीचे की मूलों से केवल यह भेद है कि ये प्रायः दो मूल वाले होते हैं। किन्तु इनमें भी कोई-कोई एक मूल वाला भी होता है और नीचे के प्रथम अग्र चर्वणको में केवल एक मूल ही होती है।

(ग) ऊपर के और नीचे के पश्चिम चर्वणकों में मुख्य भेद यह है कि ऊपर के पश्चिम चर्वणकों में प्रायः तीन-तीन मूलें होती हैं और नीचे के पश्चिम चर्वणकों मे प्रायः दो-दो मूलें होती हैं और नीचे के मूल मध्य रेखा की ओर एक दूसरे के सन्मुख होते हैं एवं ऊर्ध्व पश्चिम चर्वणकों में दो मूल तो कपोल की ओर को और एक मूल अन्दर तालु प्रदेश की ओर स्थित होता है।

टिप्पणी—दन्त मूलों के झुकाव, नोकीले और चपटेपन आदि का सूक्ष्म विवेचन लेख के बहुत बढ़जाने के भय से नहीं किया गया।

(घ) ऊपर और नीचे के दांतों में एक सामान्य भेद यह है कि ऊपर के दांत नीचे के दांतों की अपेक्षा कुछ बड़े होते हैं और नीचे के दांत कुछ छोटे होते हैं।

दन्त रचना

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो चुका है कि ८ प्रकार के दांतों की आकृति, स्थान तथा कार्य के अनुसार चार मुख्य भेद हैं, इन भेदों के अनुसार ही उनके नाम भी रक्खे गये हैं। किन्तु इन सब प्रकार के दांतों में भेद होते हुए भी कुछ बातें ऐसी भी हैं, जो कि सब दांतों में समान रूप में हैं। वे बातें रचना से सम्बन्ध रखती है। दन्त रचना यहां दो प्रकार से सक्षेप में वर्णन की जायगी।

१—दन्त बाह्य रचना विभाग

२—दन्त रचना और सगठन।

१–दन्त बाह्य रचना विभाग

रचना के अनुसार प्रत्येक दांत के तीन निम्न विभाग हैं—

१—दन्त बाह्य भाग (दन्ताग्र या दन्त शिखर) (Crown)— यह दांत का वह बाह्य भाग है जो श्वेत और चमकीला होता है और दन्त-वेष्ट (दन्तपुप्पुट या दन्त मांस) से ऊपर निकला रहता है। दांतों का यही भाग सदा बाहर दिखलाई दे सकता है।

२—दन्त ग्रीवा (Teeth neck)–दन्त का यह वह सूक्ष्म विभाग है कि जहाँ दन्त शिखर तथा दन्त मूल परस्पर मिलते हैं। यह मिलाप अर्थात् संधि (ग्रीवा) स्थान कुछ सकुचित भी होता है। इस सन्धि स्थान को आंग्ल भाषा में Cervix, Gingival margen और या Cervical margen भी कहते हैं।

३—दन्त मूल (Roots of the teeth)—यह प्रत्येक दांत का वह अन्तिम निम्न भाग है, जो कि दन्तोदूखल (जबड़े के गड्ढे Alveolus of teeth) में गड़ा हुआ होता है। भिन्न-भिन्न दांतों की दन्त मूलों की सख्या के सम्बन्ध में पीछे लिखा जा चुका है।

४—दन्त पुप्पुट या दन्त वेष्ट (Gums)—इसका वर्णन चिकित्सा के साथ किया जायगा।

२-दन्त रचना और सङ्गठन
(The dental histology)

दांत चिकित्सक के लिये दांतों के सम्बन्ध में उपरोक्त सब बातों के ज्ञान के अतिरिक्त उसे दांत की वास्तविक रचना और सङ्गठन के सम्बन्ध मे भी कुछ न कुछ अवश्य ज्ञान होना चाहिए। ताकि वह रोगी की ठीक-ठीक चिकित्सा कर सके और पूछने पर रोगी को कुछ समझा भी सकें। आधुनिक शारीर वेत्ताओं ने दांत के सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थों को पृथक-पृथक समझने का प्रयत्न किया है, उस समस्त सूक्ष्म विवेचना को तो यहां लिखना अत्यन्त कठिन है किन्तु फिर भी कुछ आवश्यक आवश्यक बातों पर तो सक्षेप में अवश्य प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा। यदि एक दांत को शिखाग्र से मूल पर्यन्त मध्य में काटा जाय तो उसमें निम्न मुख्य पदार्थों का सङ्गठन मिलता है—

१—दन्त वल्क या दन्त कवच (Enamal)।

२—दन्त प्रस्तर (Cementum)।

३—दन्त प्रस्तर छादक झिल्ली (Peridental membrane or Pericementum)।

४—दन्त सार (Dentin)।

५—दन्त मध्य प्रणाली (Pulp) या दन्त पोषक प्रणाली।

६—धमनी, शिरा, वात तन्तु इत्यादि।

७—दन्त वेष्ट या मसूढ़ा (Gums)।

दांत के चित्र की सक्षेप में निम्न प्रकार से व्याख्या दी जाती है—

१—*दत वल्क या दत कवच*—यह मनुष्य के दांत के मसूड़े से ऊपर के भाग में अर्थात् दन्त शिखर पर इतस्तत. श्वेत रूप में लिप्त होता है। यह एक प्रकार के चमकदार पदार्थ से ढका हुआ होता है और यह मानव शरीर में सब से कठोर पदार्थ समझा जाता है। यह दांतों को चमकीले बनाये रखता है और यदि मनुष्य स्वास्थ्य के नियमों का ठीक पालन करता रहे तो वृद्धावस्था तक भी दांतों की यह प्राकृतिक चमक विकृति नहीं होने पाती अपितु दांत गिर भी नहीं सकते। अत यह दांतों का सर्व प्रथम रक्षक होने के कारण इसका दन्त कवच भी नाम रक्खा गया है और इसका चमकीलापन दांतों की शोभा को बढ़ाता है दांत रुचि कारक अर्थात् सुन्दर प्रतीत होते

हैं अतः संस्कृत में दांतों को रुचक भी कहा जाता है।

इस दन्त कवच का आधुनिक विज्ञान ने निर्माण क्रम के अनुसार सूक्ष्म विवेचन भी किया है। सूक्ष्म विवेचन के सम्बन्ध मे इतना ही संक्षेप मे लिखना पर्याप्त है कि यह जिस पदार्थ से बनता है वह आठ सूक्ष्म पदार्थों का संगठन होता है और उनका दन्त कवच के निर्माण में पृथक-पृथक कार्य होता है। दन्त कवच बनने का क्रम इसके निम्न भाग से प्रारम्भ होता है, जो कि दांत के चौथे दन्तसार नामक पदार्थ की रक्षा भी करता है। दांत के इस प्रथम भाग में कोई धमनी या वातिक तन्तु आदि नहीं होते, इसलिये यदि दांत का यह श्वेत कवच किसी प्रकार टूट जाय तो मनुष्य को किसी पीड़ा आदि का ज्ञान नहीं होता और टूटने के पश्चात् पुन. स्वय इसकी उत्पत्ति भी नहीं होती।

दन्त वल्क या दन्त कवच का वर्ण श्वेत होना ही आवश्यक नहीं। इस का वर्ण प्राय मनुष्य की प्रकृति के अनुसार पृथक-पृथक होता है यथा कफ प्रधान प्रकृति वाले मनुष्य के दन्त कवच का भाग अधिक श्वेत होगा इत्यादि।

इस का वर्ण अपथ्य करने से भी परिवर्तित हो जाता है। अम्लता प्रधान वस्तुओं का सेवन करने वालों का तो यह श्वेत भाग प्राय. सर्वथा नष्ट होकर सम्पूर्ण दांतों का पतनारम्भ हो जाता है। क्योंकि कवच जैसा यह अत्यन्त कठोर पदार्थ तेजाबी पदार्थों में शीघ्र विकृत हो जाता है और वृद्धावस्था में स्वभावत. इसका वर्ण कुछ पीताभ सा भी हो जाता है।

२–दंत *प्रस्तर* (Cementum)— यह भी एक कठोर पदार्थ है जो कि दांत की स्वस्थावस्था में दांत को ग्रीवा से लेकर मूल पर्यन्त दन्तसार नामक दांत के अन्तिम पदार्थ के ऊपर एक तह के रूप में चढ़ा हुआ होता है जो कि दन्त कवच की तरह ही दन्तसार की रक्षा भी करता है और दांत को अपने अन्तर्गत तन्तुओं से हन्वस्थि के साथ ठीक स्थान पर जकड़े रखता है। सूक्ष्म विवेचन के अनुसार प्रायः इसका चार प्रकार के पदार्थों से निर्माण होता है और इन चार प्रकार के पदार्थों का संगठन भी अनेक सूक्ष्म पदार्थों से होता है।

३–दंत *प्रस्तर छादक झिल्ली* (Peridental mambrane or pericementum)—यह एक सूक्ष्म तन्तुमय झिल्ली है जो कि दन्त प्रस्तर के ऊपर ग्रीवा से मूल तक लगी रहती है और उसे दन्तोदूखल से जोड़ती है तथा दन्त प्रस्तर की रक्षा भी करती है। यह प्राय आठ प्रकार के तन्तुओं से बनी हुई है, जिस में छोटी-छोटी धमनियां और वातिक तन्तु आदि भी होते हैं।

४–दंत *सार*(Dentin)—दांत का यह सबसे अन्तिम भाग ही कहना चाहिऐ, क्यों कि दांत की शेष पोषण प्रणाली और धमनी आदि का स्थान इसी के मध्य में होता है। यह भी एक प्रकार के कुछ पदार्थों का ही समुदाय है और दन्त रचना एवं आकृति व उस के स्थायित्व या अस्थायित्व एवं उसकी विकृति एवं अविकृति पर निर्भर होता है। दांत की स्वस्थावस्था में इसका दन्त शिखर तो दन्त कवच से और दन्त मूलीय भाग दन्त प्रस्तर और उसकी छादक झिल्ली द्वारा सुरक्षित रहता है।

यह वर्ण कुछ श्वेताभ अथवा कुछ पीताम्भ सा होता है। यह बनावट में कुछ लचकदार परंतु साधारण अस्थि से तो कुछ कठोर किन्तु दन्त कवच और दन्त सार से कुछ मृदु होता है। इसका निर्माण अनेक प्रकार के तन्तुओं से हुआ है। रासायनिक दृष्टि से यह लगभग ७ प्रकार के पदार्थों का संगठन है। इसके अन्दर अनेक छोटी-छोटी रक्त प्रणालियां और वातिक तन्तु आदि होने के कारण दांत में पीड़ा, शीतलता अथवा उष्णता आदि का भी आभास होता है।

५–दंत *मध्य प्रणाली या दंत पोषक प्रणाली* (Dental pulp)—दांत का यह सर्वथा मध्य रिक्त

भाग होता है। इसका सर्व प्रथम कार्य अपने इत-स्ततः दन्त सार का निर्माण करना और दूसरा काम पीड़ा आदि का अनुभव करना एव इसका तीसरा काम अपने अन्तर्गत धमनियों, सिराओं आदि द्वारा समस्त दांत का पोषण करके दात की रक्षा करना है। यह इसका संक्षिप्त वर्णन है।

६—मनुष्य के प्रत्येक दाँत का छठा स्थूल और आवश्यक भाग यही है। क्योंकि शरीर के अन्य भागों की तरह दात के इस छठे भाग में भी दांत की मुख्य २ धमनियों, केशिकाओं, सिराओं, लसिका वाहनियों और वात सूत्र इत्यादि का समावेश होता है जो कि दांत के लिये भी शरीर के अन्य भागों की तरह ही समस्त आवश्यक पोषक पदार्थों का प्रदान तथा अन्य क्रियायें करते हैं और अनेक कारणो द्वारा इन्हीं के विकृत होने से दाँतों के प्राय: अधिकतर रोग होते हैं। दन्त चिकित्सकों के लिए इसका सूक्ष्म विवेचन जानना आवश्यक है। क्यों कि इनमें से कई एक वात तन्तुओं और धमनी आदि की शाखा प्रशाखाओं का शरीर के नेत्र व मस्तिष्क आदि से पर्याप्त घनिष्ठ सम्बन्ध समझा जाता है। विशेषतः उत्पाटन क्रिया के लिये इन सब का अधिक से अधिक ज्ञान होना परमावश्यक है। लेख बहुत बढ़ गया है अत इस छठे भाग का विस्तृत वर्णन पाठकों की सेवा में फिर कभी रक्खा जायगा। सुश्रुत के १० वें और १६ वें अध्याय में दन्तमूल गत वातज, पित्तज, कफज, सन्निपात (त्रिदोषज) और शल्यज केवल इन पांच नाड़ियों का लक्षण सहित वर्णन किया है।

७—दंत वेष्ट (Gums)—का वर्णन आगे किया जायगा।

दन्त रोग सामान्य वर्णन

मनुष्य और गर्भवती माता के दूषित आहार विहार के सेवन से अथवा किसी आघातादि आगन्तुक कारणों से दांतों के उपरोक्त भागों में भिन्न २ प्रकार के अनेकों रोग उत्पन्न हो जाते हैं एवं कई बार किसी तीक्ष्ण अम्लता (तेजाब) प्रधान औषधि के लग जाने से भी दांत रोग ग्रस्त हो जाते हैं। दांतों के उपरोक्त छः विशेष भागों के अतिरिक्त हन्वस्थि, दन्तोदूखल और बाह्य दन्त वेष्ट (अथवा दन्त मांस या दन्त पुप्पुट या दन्त मसूढ़ों) में भी अनेक प्रकार के रोग होते हैं। दाँतों के इन सब प्रकार के रोगों का पूर्ण रूप में वर्णन करने के लिये और उनकी चिकित्सा लिखने के लिये एक बृहद् ग्रंथ की आवश्यकता है और बृहद् ग्रन्थ को लिखने के लिये पर्याप्त समय तथा अनेक प्रकार के साधनों, अनुभव और लेखन योग्यता की भी विशेष आवश्यकता है। अतः यह काम किसी संस्था अथवा किसी सर्व साधन सम्पन्न व्यक्ति का ही है।

सामान्य चिकित्सा सिद्धान्त

वैद्य का कर्तव्य है कि, सर्व प्रथम शरीर के अन्य रोगो की तरह दन्त रोगों को भी उसी प्रकार का महत्व देकर, प्रथम उनका भलीभांति निदान करे। तत्पश्चात् चिकित्सा करे। दुःख है कि हमारे वैद्य बन्धु चिकित्सा की ओर प्रायः ध्यान ही नहीं देते। हमारे विचार में दन्त चिकित्सा या तो ऐलोपैथी (अंग्रेजी) चिकित्सकों का, या शल्य चिकित्सकों (सर्जनों) और या केवल दन्त चिकित्सकों का ही काम है। परन्तु हमारी यह धारणा सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में अवश्य मिथ्या है। विशेषकर उन वैद्यों के लिये जो कि, औषधि चिकित्सा के साथ-साथ कुछ न कुछ शल्य चिकित्सा का भी क्रियात्मक अनुभव रखते हों और यदि शल्य चिकित्सा का सामान्य अनुभव नहीं रखते तो जैसा कि मैंने लेखारम्भ में निवेदन किया है कि हम वैद्यों को इस ओर शीघ्रातिशीघ्र ध्यान देना चाहिए, ताकि आप एक वैद्य के रूप में ही प्राय. प्रत्येक प्रकार के रोगी से और सामान्य जनता से अधिक से अधिक सम्पर्क बढ़ा सकें। यदि कुछ समय के लिये यह भी मान लिया जाय कि

आपका शल्य कर्म में सामान्य अनुभव भी नहीं है अथवा इस काम की ओर रुचि नहीं है तब भी आप केवल एक औषधि चिकित्सक के नाते से ही अनेक प्रकार के दन्त रोगों की चिकित्सा ऐलोपैथी और केवल दन्त चिकित्सकों की अपेक्षा अधिक कर सकते हैं। क्यो कि आजकल प्राय. ऐलोपैथी चिकित्सक औषधि चिकित्सा अथवा पथ्य पालन करवाने की अपेक्षा दांतों को निकलवाने पर ही अधिक बल देते हैं और दूसरे आजकल के जो केवल दन्त चिकित्सक हैं, जिनको अंग्रेजी में (Dental surgen & Maker) कहा जाता है, ये तो प्राय दांतों के निकालने का और उनके स्थान पर कृत्रिम दात लगाने का ही काम करते हैं। कोई-कोई उच्च शिक्षा प्राप्त (Dental surgen & maker) (दन्त औषधि शल्य चिकित्सक और दन्त निर्माता) तो चाहे औषधि चिकित्सा भी करता हो। किन्तु इस प्रकार के विशेष दन्त चिकित्सकों की सख्या भारतवर्ष में बहुत ही न्यून है और जो हैं उन तक एक सर्व साधारण की पहुंच ही नही होती। अत. वैद्य समाज को दोषानुसार दन्त रोग चिकित्सा तथा उनकी आयुर्वेदोक्त स्वास्थ्य चर्या विधि के प्रचार की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। यहां पर निम्न सामान्य तीनरोगों का ही सक्षेप में वर्णन किया जायगा।

दन्त वेष्ट या दन्त मांस (Gums)

दन्त वेष्ट को साधारण बोल चाल की भाषा में मसूढ़ा कहा जाता है। किन्तु इसके लिये अनेक हिंदी लेखकों ने 'मसूढ़ा' शब्द का ही अधिकतर प्रयोग किया है और बहुतो ने इसे दन्त मास या दत वेष्ट सज्ञा दी है। सुश्रुत के अनुसार भी इसे दत वेष्ट या दत मास ही कहा जा सकता है। दत वेष्ट को सुश्रुत में एक स्वतंत्र रोग भी माना है।

दत वेष्ट—दाँत का एक मासल भाग है, जो कि मुख के दूसरे मांस की अपेक्षा कठोर है और यह अनेकों कठोर बारीक-बारीक तन्तुओं, धमनियों, सिराओं और केशिकाओं आदि से ओतप्रोत है। वर्ण में कुछ रक्ताभ होता है। दांत के मध्यवर्ती तथा दन्त प्रस्तर छादक झिल्ली की धमनियों, सिराओं और तन्तुओं आदि का इस भाग से विशेष सम्बन्ध रहता है एव यहीं से आगे मुख की अन्य प्रधान नाड़ियों आदि का सम्बन्ध होता है और कई एक का दृष्टि नाड़ी तथा मस्तिष्कीय नाड़ियों से भी विशेष सम्बन्ध है। सक्षेप में यही है कि, जिस प्रकार दन्त शिखाग्र के श्वेत भाग की रक्षा आवश्यक है इसी प्रकार इस दन्त वेष्ट को भी रक्षा करना परम आवश्यक है। इन दोनों का परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध है।

मेरे इस लेख के शोर्षक के तीनों रोगो अर्थात् १—दन्त वेष्ट शोथ, २—रक्त स्राव और ३—दन्त पूय का इसी दन्त वेष्ट की विकृति से सम्बन्ध है। इन तीनों रोगों की उत्पत्ति का भी यही क्रम है और समय से पूर्व दांतों के पतन के यही तीन क्रमश. मुख्य कारण और पूर्व रूप हैं। किन्तु इसकी विकृति से दन्त पतन ही नहीं अपितु कई बार दन्त वेष्ट की विकृति के द्वारा हन्वस्थि और समस्त मुख मण्डल भी भयानक रोग से ग्रस्त होकर मनुष्य को मृत्यु तक भी हो जाती है। इसकी विकृति शरीरस्थ दोषों की विकृति के अनुसार भी होती है और कई एक स्थानीय कारणों द्वारा भी होती है। जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

दन्त वेष्ट शोथ, रक्त स्राव और दन्त पूय निदान तथा चिकित्सा

दन्त वेष्ट शोथ (Gingivitis)

मसूढ़े की इस सूजन को साधारणतया बाह्य और अन्त' दो भागों मे विभक्त किया गया है। इन के कारणों और लक्षणों में भी थोड़ा २ अन्तर है—

(क) दन्त वेष्ट बाह्य शोथ के प्रायः निम्न लिखित विशेष कारण होते हैं—

१—दन्त शिखाग्र धारा की लम्बाई के कारण अथवा

इतस्तत: फैलाव में विषमता के कारण दन्त वेष्ट पर अनुचित रूप से दबाव पड़ना।

२—दन्त मैल अर्थात् दांतों की अस्वच्छता।

३—खाद्य तन्तुओं का दन्त वेष्ट में प्रवेश।

४—पारद तथा मल्ल मिश्रित औषधियों आदि का दुरुपयोग।

५—खाद्य पदार्थों को सम्यक न चबाने से आमाशय का खराब हो जाना और कोष्ठ बद्धता आदि का रहना।

६—किसी वात व्याधि, मोतीझरा या विषम ज्वर आदि में चिरकाल तक ग्रस्त रहना। यह शोथ उपदंश और सोजाक से भी हो जाती है।

७—दन्त कृमि द्वारा बनी हुई दांत खोड़ में भरवाये हुए किसी पदार्थ का विकृत हो जाना।

८—आघातादि का लगना।

९—दन्त उत्पादन क्रिया काल की असावधानी।

१०—कृत्रिम दांतों की प्लेट, कमानियो या कठोर ब्रुश का लगना इत्यादि।

लक्षण

दन्त वेष्ट सूज कर रक्त वर्ण मय कुछ उभरा हुआ और मृदु हो जाता है। किसी-किसी में दबाने से रक्त भी निकल आता है। हर समय पीड़ा होती रहती है। विशेष कर किसी पदार्थ के खाते समय, शीतल अथवा अत्यन्त उष्ण पदार्थ के लगने पर और रात्रि समय अथवा दोषानुसार अधिक वेदना प्रतीत होती रहती है।

टिप्पणी—सुश्रुत के १६ वें अध्याय में पैंसठ प्रकार के मुख रोगों में दन्त रोगों का इस प्रकार वर्णन किया गया है। दन्त मूल में १५ रोग और दांतों में आठ होते हैं। वाग्भट की सख्या में कुछ भिन्नता है अर्थात् दन्त मूल में १३ और दांतों में १० रोग माने हैं। इन दन्त मूल गत रोगों में नव्य शरीर शास्त्र के अनुसार वर्णित वास्तविक मूल से लेकर उसके बाहर (दन्त वेष्ट) पर्यन्त रोग संक्षेप में आ जाते हैं और दांतों के रोगों से अभिप्राय: दन्त शिखाग्र क दन्त वल्कल से दन्त सार तक के रोगों से है। किन्तु इनका विस्तृत विवेचन और चिकित्सा का वर्णन नहीं मिलता।

(ख) दन्त वेष्ट अन्तर्झिल्ली शोथ (Stomatitis)—यह मसूढ़े के अन्दर की झिल्ली की शोथ कहलाती है। इसके भी दोषानुसार अनेक कारण और लक्षण होते हैं। यहां पर सामान्य कारणों और लक्षणों का वर्णन किया जायगा।

कारण

तम्बाकू (सिगरेट, हुक्का, सिगार, गाँजा आदि) का अधिक प्रयोग, नाक और गले की शोथ का मुख की ओर बढ़ जाना (नाक की शोथ से ऊपर के मसूढ़े प्रभावित होंगे), अम्लता (तेजाबी) या क्षारीय पदार्थों का अधिक सेवन, कास, श्वास, मोतीझरा, अधिक उष्ण पदार्थों का सेवन, दांतों की मैल का अन्त: प्रवेश, बाल्यावस्था का दन्तोद्भेद काल। मुख का स्वच्छ न रहना, आमाशय विकार और कोष्ठ बद्धता आदि तथा उपरोक्त बाह्य कारणों की जीर्णावस्था होने पर वे भी इस अन्त. शोथ का कारण बनते हैं। किसी-किसी में उपदंश और सुजाक भी कारण होते हैं।

लक्षण

मसूढ़ा और मुख की झिल्ली रक्ताभ हो जाती है। छोटे-छोटे व्रण भी हो जाते हैं। प्रारम्भ में मसूढ़ा शुष्क सा प्रतीत होता है पश्चात् दन्त ग्रीवा के निकट रक्त पर्याप्त भरा हुआ मालूम होता है। फिर रक्त स्राव होने लगता है और मसूढ़े का वर्ण नीला और लाल दिखाई देता है। इसकी तीसरी अवस्था में रोग के बढ़ जाने पर पूय का निकलना भी आरम्भ हो जाता है। मुख में दुर्गन्ध आने लग जाती है। भोजन खाना भी कठिन हो जाता है। भूक कम लगती है। कोष्ठबद्धता हो जाती

है और पीड़ा भी बढ़ जाती है। अन्त में दांत हिल जाते हैं।

चिकित्सा

शोथ का कारण तथा दोषानुसार सम्यक विवेचन कर के तदनानुसार गण्डूष के लिये क्वाथादि की और भक्षण के लिये औषधि की योजना करनी चाहिए। अधिकतर वात पित्त प्रधान शोथ के रोगी होते हैं और कफ रक्त दोष के कम। आरम्भिक शोथ चिकित्सा न करवाने से कुछ दिनों के पश्चात् यह रक्त स्राव या दन्त पूय और या विद्रधि का रूप भी धारण कर लेता है, इनमें से विशेषतः दन्त विद्रधि के लिये शल्य कर्म की आवश्यकता होती है। मैंने औषधि चिकित्सा में निम्न प्रकार की औषधियों का अनुभव किया है। सर्व प्रथम प्रकृति के अनुसार कोई विरेचन देकर रोगी की कोष्ठ शुद्धि कर लेनी चाहिए।

(क) गण्डूषीय औषधिया—

३७५—स्फटिक	२ माशा
जल	१ छटांक

—की मात्रा में मिलाकर गण्डूष करावें। स्फटिका के साथ थोड़ा सेंधा लवण भी मिला सकते हैं। वातज शोथ के लिए जल को कुछ गर्म कर लेना चाहिए।

३७६—कीकर त्वक	२ तोला
सिरस त्वक	२ तोला
जल	१ सेर

—में पकावें, २ पाव शेष रहने पर लगभग डेढ़ तोला फिटकिरी मिला कर गण्डूष करवायें। यह पारद विष जन्य शोथ के लिये विशेषकर उपयोगी है।

३७७—कारबोलिक एसिड (Carbolic acid)—यह एक अंग्रेजी औषधि है। रोगानुसार इसके भिन्न भिन्न शक्ति के घोल बना कर गण्डूष के तौर पर उपयोग करवाना चाहिए। इसकी मात्रा आधा सेर जल के लिये २० बूंद से एक तोले तक अथवा अधिक भी हो सकती है। यह अत्यन्त कृमि नाशक और पीड़ा नाशक है। इसके गण्डूष करने वाले रोगी को भली भांति सावधान कर देना चाहिए कि वह गण्डूष करता करता कहीं निगल न जाय। अतः नीचे मुख करके गण्डूष करे। क्यों कि यह एक तीक्ष्ण तेजाब है। मैं इसको सामान्य व्रणों पर भी लगाया करता हूं।

३७८—निम्ब पत्र क्वाथ के गण्डूष भी अच्छे उपयोगी हैं।

टिप्पणी—प्रत्येक प्रकार का गण्डूष रोगानुसार दिन में ३ से ६ बार करवाना चाहिए।

(ख) प्रलेपार्थ औषधिया—

३७९—सौभाग्य भस्म	१ माशा
ग्लैसरीन	२॥ तोला

—दोनों को मिलाकर गण्डूष करने के पश्चात् रुई की फुरेरी से मसूड़ों पर लगाना चाहिए।

३८०—पिष्ट लवण	१ माशा
सर्षप तैल	१ तोला

—दोनों को मिलाकर अंगुली से दिन में दो तीन बार मसल कर लगाना चाहिए।

३८१—लवंग तैल (Clove oil) रूई की फुरैरी से मसूढ़ो पर लगाना शोथ हर और पीड़ा हर भी है। इसको रुई में लगाकर दन्त खोड़ की पीड़ा में भी लगाया जा सकता है। इसी प्रकार अहिफेनार्क, कर्पूरार्क और हिंगु जल का भी फुरैरी से प्रयोग अच्छा लाभ करता है।

एलोपैथी मिश्रित निम्न प्रलेप (Paste) भी अच्छा है—

३८२—टिंचर आयोडीन	टिंचर एकोनाइट
टिंचर बिनजाइन (टिंचर लोबान)	टिंचरकेटिक्यो
टिंचर मर्रह	प्रत्येक २–२ ड्राम
सत पोदीना (मैंथल)	५ रत्ती
सत अजवायन (थाइमोल)	५ रत्ती

शुद्ध कपूर (भीमसैनी)	५ रत्ती
लौंग तैल	२० बूंद
कारबोलिक एसिड	२० बूंद
ग्लैसरीन	५ ड्राम

—एक ड्राम ६० बूंद का होता है। इन सब चीजों को मिलालें।

(ग) *पुल्टिश सेक—*

३८३—दोषानुसार गुड़ के हल्वे की पुल्टिश और हल्दी नमक सर्षप तैल की पुल्टिश मुख के बाहर बांधनी भी लाभदायक है।

३८४—शुष्क सेक के लिये बालू और लवण की गर्म पोटली का व्यवहार करना चाहिए। रबड़ की अथवा शीशे की बोतल में गर्म जल भर कर सेक देना भी हितकर है।

(घ) *शस्त्र क्रिया (शल्य कर्म)—*

३८५—वात पित्त और रक्त दोष जन्य शोथ में कई बार विशेष रक्तस्राव करवाना पड़ता है। साधारण रक्त तो लवण और तैल के प्रलेप को अगुली द्वारा मसलने से भी निकल जाता है। किन्तु यदि फिर भी लाभ न हो तो अवस्था को देख कर शल्य कर्म द्वारा एकत्रित दूषित रक्त का स्राव करा देना चाहिए। तत्पश्चात् रोगी को स्फटिका जल के गरारे करवा देने चाहिए और स्फटिका के १० प्रतिशत घोल की फुरैरी व्रण पर भी लगा देनी चाहिए। यह औषधि व्रण रोपक, वेदना शामक और कृमि नाशक भी है। इसके अतिरिक्त एक्रीफ्लेवीन नामक ऐलोपैथिक औषधि का मैथेलेटिड स्पिरिट में १—२ प्रतिशत घोल की फुरैरी भी व्रण पर लगा सकते हैं।

(ङ) *सेवनीय औषधिया—*

एकाध मसूड़े की शोथ के नये रोगी को तो प्राय. औषधि सेवन करवाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसके लिये तो साधारण बाह्य उपचार ही पर्याप्त होता है।

विरेचनार्थ—नये दन्त रोगी को तो प्रारम्भ में एक दो बार यथावश्यकता विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि करा देनी चाहिए। किन्तु जीर्ण रोगी के लिये निरन्तर कुछ दिन तक किसी साधारण रेचन औषधि की योजना करनी आवश्यक है। ताकि उसकी पाचक अग्नि ठीक हो जाय। क्यों कि जीर्ण दन्त रोगियों को दन्त वेष्ट शोथादि दन्त रोगों के साथ-साथ अग्नि मांद्य और न्यूनाधिक कोष्ठ बद्धता भी प्रायः रहती ही है। इसलिये मैं प्राय त्रिफला अथवा निम्न योग प्रयोग करवाया करता हूँ।

३८६—निशोथ	१ तोला
मुलहठी	१ तोला
गुलाब पुष्प	६ माशा
सनाय की पत्ती	६ माशा
मुनक्का (बीज रहित)	१२ नग
मिश्री	२ तोला
अभया	६ माशा

—इन सातों औषधियों को पृथक-पृथक महीन पीस कर फिर उसमें बादाम तैल ६ माशा मिला कर रखलें। मिश्री को चूर्ण रूप में डालने की अपेक्षा इसकी चाशनी बना कर भी डाल सकते हैं, क्योंकि कई रोगी अवलेह को अधिक रुचि से खाते हैं।

मात्रा—३ से ६ माशा रात्रि को दूध या गर्म पानी से देवें।

इन दो औषधियों के अतिरिक्त तीसरी आरोग्य वर्द्धिनी वटी भी जीर्ण कोष्ठ बद्धता वाले दंत रोगियों को दिया करता हूं। यह शोथ हर और एक अच्छी कृमि नाशक (Anti septic) भी है।

मात्रा—१ से २ रत्ती कोष्णोदक जल से प्रात' या सायंकाल दें।

अन्य औषधिया—

३८७—गन्धक रसायन ६४ भावना (योग रत्नाकर)

मात्रा—२ से ४ रत्ती दिन में दो बार।

अनुपान—दूध मिश्री (धारोष्ण दूध अधिक अच्छा रहता है)।

यह औषधि रक्त विकार के लिये अत्युत्तम है। पाचकाग्नि को भी ठीक करती है। त्रिदोष हर है। एक मास से अधिक निरन्तर सेवन नहीं करवाना चाहिए।

३८८—महावात विध्वसन रस (रस चण्डांशु)-यह वातज और वात कफज दन्त शोथ और वेदना के लिये बहुत उपयोगी है।

मात्रा—१ से २ रत्ती दिन में एक दो बार।

अनुपान—मधु।

३८९—सूतशेखर रस (योग रत्नाकर)-यह औषधि आयुर्वेद में एक विशेष चमत्कार रखती है। मैंने इसको वातज और वातपित्त प्रधान वेदना पीड़ित रोगियों के लिये विशेष उपयोगी पाया है। दन्त पीड़ा, दन्त वेष्ट शोथ के जीर्ण रोगियों में इसका अवश्य प्रयोग करवाता हूं। एक तो मसूढ़ों के सूजने पर, नये रोगियों की वेदना को दूर करने के लिये भी मैं इसका और महावात विध्वंस रस का प्रयोग करवाता हूं। कई बार इसको मैंने ऐलोपैथी की एस्प्रीन या एस्प्रो (Asprin or aspro) आदि क्षणिक वेदना शामक औषधियों से भी अधिक प्रभावक पाया और नवीन रोगियों को तो इस की २ से ६ मात्रा में ही स्थायी लाभ हो जाता है। साथ साथ किसी प्रलेपक औषधि की भी योजना करनी अधिक लाभप्रद रहता है। सूतशेखर रस मन्दाग्नि, अम्लपित्त एव विशूचिकादि के लिये भी अत्युत्तम है किन्तु दुःख यह है कि इसमें स्वर्णयोग होने के कारण आप इसे सर्वत्र प्रयोग न कर सकेंगे। तथापि आयुर्वेद का प्रभाव दिखाने के लिये हमें इस प्रकारकी मंहगी औषधियों को निर्धन रोगियों को लागत मात्र मूल्य में भी देने से नहीं हिचकना चाहिए।

मात्रा—½ रत्ती से १ रत्ती दिन में १ से २ बार।

अनुपान—मधु या दूध मिश्री।

३९०—यदि रोगी में रक्त विकार का विशेष दोष समझें तो उसे सारवाद्यासव अथवा किसी अन्य रक्त शोधक क्वाथ का सेवन करवाना चाहिए।

दन्त रक्त स्राव और दन्त पूय

जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है कि दन्त वेष्ट, दन्त स्राव और दन्त पूय ये तीनों रोग *प्रायः क्रमशः* एक दूसरे के उत्पादक हैं और मसूढ़े के रोग ग्रस्त होने पर क्रमशः संक्षेप में ये तीन अवस्थायें आती हैं। इन तीनों अवस्थाओं को भी साध्य, कष्ट साध्य और असाध्य चिकित्सा के लिये तीन ही अवस्था क्रम समझने चाहिए। अतः यहां पर इन दोनों रोगों के कारणों को पुनः दोहराने की आवश्यकता नहीं और इनके मुख्य लक्षण तो इनके नाम से ही समझ लेने चाहिए। इनकी चिकित्सा में मेरे विचार से जो थोड़ा बहुत अतर है वह पाठकों की सेवा में नीचे दिया जाता है।

दन्त रक्त स्राव चिकित्सा

दन्त शोथ के पश्चात् इस दूसरी अवस्था की चिकित्सा के सम्बन्ध में गण्डूष, प्रलेप तो मसूढे (दन्त वेष्टीय) शोथ में बतलाये हुए उपयोगी हैं। उन में से जो जो अधिक लाभप्रद समझें उस का प्रयोग करवावें और खाने पीने की ऊपर वर्णित औषधियों में से जो जो उपयुक्त समझें उन-उन का उपयोग करवावें।

रक्त स्राव और दन्त पूय रोग में यदि साथ में मसूढ़े पर शोथ न हो तो फिर पुल्टिस अथवा किसी सेकादि की भी कोई आवश्यकता नहीं। इस के प्रलेप के लिये अन्य प्रलेपक औषधियों के अतिरिक्त एक और निम्न ऐलोपैथी प्रलेप को भी मैंने अच्छा उपयोगी अनुभव किया है। यह प्रलेप दन्त पूय में भी अच्छा हितकर है—

३९१—टिं० एकोनाइट १ ड्राम
टिं० केटचु १ ड्राम

टिं० मर्र्ह　　　　१ ड्राम
टिं० आयोडीन　　　　१ ड्राम

—इन सब को मिलाकर शीशी में रख लेवें। रोगी के मसूढ़ों पर रूई की फुरैरी से लगावें।

दन्त पूय चिकित्सा

दन्त पूय चिकित्सा के लिये केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शोथ और पीड़ादि को दृष्टि में रखते हुए पूर्वोक्त औषधियों में से जिस जिस औषधि को अच्छा समझें सेवन करवायें। इसके लिए तिल तैल के गण्डूष का कुछ कुछ देर धारण करना भी हितकर है। इसके अतिरिक्त रस तन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह का दन्त प्रभाकर मञ्जन अच्छा उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह मसूढ़े के उक्त तीनों रोगों में भी लाभप्रद है। दन्त वेष्ट शोथ प्रकरण में लिखित नम्बर ४ प्रलेप की १-१ बूंद सूचीवेध पिचकारी (सीरिंज) द्वारा प्रत्येक दाँत के मसूढ़े में भी प्रविष्ट करना चाहिए।

पथ्यापथ्य—इस प्रकार के दन्त रोगियों को पथ्यापथ्य अवश्य समझा देना चाहिए। अन्यथा आपकी चिकित्सा रोग साध्य होने पर भी निरर्थक सिद्ध होगी। विशेषतः—इस प्रकार के दन्त रोगियों के लिये कठोर, तेजीवी, अम्ल, तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन अधिक उष्ण अथवा अधिक शीतल जल, दूध आदि का सेवन और मांस भक्षण तथा दातुन करना भी अपथ्य है।

दन्तवेष्ट (Pyorrhoea Alveolaris)

लेखक—कविराज कृष्णमूर्ति वत्स वैद्य वाचस्पति (काँगड़ा)

पाचन संस्थान में सब से पूर्व मुख का स्थान है और खाया हुआ भोजन मुख में दांतों द्वारा चबाया जाता है तब ही वह इस योग्य होता है कि उस पर अन्य शारीरिक या पाचक द्रव अपनी क्रिया कर सकें । यदि दांत ठीक प्रकार से काम न करते हों अथवा इन में कोई रोग होजाय तो मनुष्य का आमाशय सबसे पहले विकृत होता है तदनु बहुत से अन्य रोग हो जाते हैं । प्रकृति ने इन दांतों की रक्षा के लिये इनके चारों ओर एक वेष्ट (Gum) चढ़ा रखी रही है जिसे आम बोल चाल मे 'मसूड़ा, बोलते हैं ।

'दन्त वेष्ट, वास्तव में इन्हीं वेष्टों का रोग है । यह रोग आज कल बड़े व्यापक रूप से फैल रहा है और कोई घर इससे बचा हुआ नहीं है ।

कारण तथा सम्प्राप्ति

सुश्रुत ने इस रोग को 'दुष्ट शोणित संभव', कहा है और इस प्रकार आधुनिक वार्तों से जो कि औपस-र्गिक (Infections) मानते हैं पूर्णतया मिलाप खाता है । इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कारण भी हैं जो हमें आधुनिक सभ्यता अथवा रहन सहन से मिले हैं । जैसे मांस भक्षण, दाँतुन के स्थान पर ब्रश करना । मांस भक्षण से हमारे दन्त वेष्ट छिन्न हो जाते हैं और मांस कण उन में फंसे रह कर सड़ने लग जाते हैं यह कण साथ वाले माँस को भी गला देते हैं जिससे वहां पर व्रण बन जाता है और सड़ने लगता है । शनैः शनैः सारा दन्त वेष्ट इससे आक्रांत होजाता हैं, अन्त में दंतमूल तक दत वेष्टों की जकड़ ढीली हो जाती हैं और वह हिलने लग जाते हैं । इसी प्रकार ब्रश का भी बाल आदि दांतों में फंस कर व्याधि को जन्म देता है ।

पूर्व रूप—दत वेष्ट रोग के व्यक्त होने के पूर्व जो अवस्था बनती है उसे शीताद (Spongy gums) कहते हैं । इस अवस्था में मसूड़े गल जाते हैं । उन से रक्त बहता है । मुख से दुर्गन्ध आती है । मसूड़े काले, पीले आदि हो जाते हैं ।

> शोणितं दन्तवेष्टभ्यो यस्याकस्मात् प्रवर्तते ।
> दुर्गन्धीनि सकृष्णादि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥
> दन्तमासानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम ।
> शीतादो नाम स व्याधि कफ शोणित संभवः ॥

यह सारे लक्षण आधुनिक (Gingivitis) नामक व्याधि मे मिलते हैं । दूसरे शब्दों में इस अवस्था के पैदा हो जाने पर दत वेष्ट का होना संभा-वित होता है ।

लक्षण

> स्रवन्ति पूय रुधिरं चलादन्ता भवन्ति च ।

दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥

जिसके दाँतों से रक्त तथा पूय बहता हो दांत हिलते हों उसे दन्त वेष्ट कहते हैं।

१—मुख से अत्यंत दुर्गंध आती है।

२—दांत हिलते हैं।

३—दंत वेष्ट (Gums) पिलपिले, काले श्याव पीले और ढीले हो जाते हैं।

४—दंत वेष्टों को दबाने से उन में से पूय स्राव होता है। दांतों से रक्त स्राव भी होता है।

५—दांत हिलने लग जाते हैं।

६—पूय तथा रक्त के आमाशय में चले जाने से आमाशय काम नहीं कर सकता है और रोगी क्षुधामान्द्य अनुभव करता है।

७—कदाचित आमाशय व्रण (Gastric ulcer) भी हो जाता है।

८—मुख से लालास्राव होता है।

९—यदि रोगी का (Xray) ऐक्सरे लिया जावे तो अस्थि दंत मूल तथा दंतावरण खाया हुआ मिलता है।

उपद्रव

१—आमाशयिक व्रण।

२—दृष्टिमांद्य यह दो उपद्रव हो जाते हैं।

चिकित्सा

रोग के हो जाने पर तो चिकित्सा बहुत कम अवस्थाओं में लाभ करती है। वैसे दो प्रकार की है।

१—Preventive-सब से आवश्यक दांतों की सफाई है। दोनों समय दांतुन करना चाहिए। दाँतुन करते समय यह ध्यान रखें कि दांतुन की रगड़ दंत वेष्ट को न लगे। यदि ब्रुश करने वाले हों तो ब्रुश की सफाई का विशेष ध्यान रखें।

२—खाना खाने के बाद मुख को भली प्रकार साफ करें।

यदि रोग हो जाय तो दातुन के साथ ऐसे चूर्ण प्रयुक्त करें जिन में—

अकरकरा	अजवायन
पोदीने का सत	नीम के पत्ते
तुत्थ भस्म	बादाम के छिलके की स्याही
कबाब चीनी	फिटकिरी
खड़िया	कार्बोलिकाम्ल

—पड़े हुए हों। मुख से दुर्गन्ध को दूर करने के वास्ते उदजनएकाम्लजिद (Hydrogen peroxide) के गरारे करवाने चाहिए। कदाचित—

सत अजवायन	सत पोदीना
कपूर	लवङ्ग तैल
एला तैल	सत लोहबान

—डाल कर बनाया हुआ तरल बहुत लाभ करता है। जब शीताद अवस्था हो तब ही चिकित्सा करने से लाभ होता है। बाद में यदि दांत हिलने लग जाएं तो दाँत निकलवाने के अतिरिक्त और कोई बस नहीं रहता।

पायोरिया

लेखक—वैद्य श्रीरामकिशोरसिंह, सप्तरश्मि आरोग्य मन्दिर सरथा

> *योग्य लेखक ने पायोरिया के सम्बन्ध में उचित प्रकाश डाला है। पायोरिया की उत्पत्ति और उसकी चिकित्सा वांछनीय पद्धति पर पूर्ण हुई है।*
>
> *—आचार्य हरदयाल वैद्य*

मानव शरीर में दंत पंक्ति एक अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी अङ्ग है।

मनुष्य के मुख में सोलह दांत ऊपर और सोलह दांत नीचे होते हैं। इनका काम भोजन को काटना और चबाना होता है। जिससे भोजन अत्यन्त सूक्ष्म भागों में विभक्त होकर पेट में पहुंचता है और भली भांति पचता है।

भेद

ये दांत तीन प्रकार के होते हैं। सामने वाले दांत काटने के काम आते हैं। सर्व प्रथम यही उगता भी है। इनके नीचे का भाग चिपटा या कई प्रकार का होता है। इन दांतों के पीछे दोनों ओर एक-एक नुकीले दांत होते हैं। सारे मुख में ऐसे चार दांत होते हैं। इनका काम काटना और चीरना है। इनके पीछे डाढ़ें होती हैं। जिनके ऊपर का भाग चौड़ा और चिपटा होता है। इनका काम भोजन को अच्छी तरह चबाना है।

दाँतों से लाभ

दाँतों के रहने से अन्न में स्वाद मिलता है। पाचन शक्ति बनी रहती है। मुख की शोभा स्थिर रहती है। कपोलों पर झुर्रियां पड़ने नहीं पाती हैं और मुख से बातें स्पष्ट निकलती हैं।

हानि

दांतों के न रहने से तथा विकार युक्त होने से सब अङ्गों में विकार आ जाता है। फिर भी ऐसे उपयोगी दांतों की ओर से प्रायः हम सब असावधान से रहा करते हैं। परम सौभाग्य की बात यह है कि अभी तक हमारे देश में प्रातः काल कुल्ला दतवन करने की प्रणाली शेष है। जिससे हमारे दाँतों की बहुत कुछ रक्षा होती रहती है और हमारा स्वास्थ्य कुछ कुछ सुधरा हुआ है। जिसके बल पर अपने जीवन को किसी प्रकार ढोये जा रहे हैं।

रोग का कारण

प्रथम—विलायती सभ्यता के प्रभाव से ऊंची ऊंची कक्षाओं के छात्र, छात्रा, ऊंचे-ऊंचे अफसर एवं अमीर उमराव के अलावा फैशन परस्त मध्यम और निम्न श्रेणी के व्यक्ति भी विदेशी ढङ्ग से बनी पाउडर और ब्रश से दांतों को नष्ट करने में लगे हैं।

इन ब्रशों से दाँतों के मसूढ़ों में सूराख हो जाते हैं जो आगे चल कर धीरे-धीरे पायोरिया उत्पन्न कर देता है।

हमारी भारतीय सभ्यता में प्राचीन काल से नीम,

बबूल, बड़, पाकर, पीपर, महुआ, चिरचीरी, बेल, गूलर, मदार, आम आदि के दतवन करने का विधान चला आ रहा है जो ससार में सर्व श्रेष्ठ है। इन सबों का दतवन दांतों की रक्षा के लिये अद्वितीय है।

द्वितीय—हमारा खान पान कृत्रिम हो गया है। जैसे-जैसे संसार सभ्यता की ओर सरक रहा है; वैसे वैसे मशीनों का आविष्कार होने के कारण खाने-पीने के पदार्थों में प्राकृतिक गुणों का सर्वथा विनाश कर उपयोग में लाया जाने लगा है। जैसे गन्ना (ईख) प्राकृतिक गुण ईख चूसने में ही है। नहीं तो आगे बढ़ कर राव (भीठा) या साफ गुड़ खाने को मिलता है।

लेकिन मनुष्य ने अपने असाधारण बुद्धि कौशल के द्वारा उस से रस निकाल कर गुड़ शक्कर बनाया, फिर भस्मों के आविष्कार द्वारा निस्सार सफेद चीनी बनाया। पहले भी चीनी बनती थी लेकिन सार तत्व ललाई को रख कर। आज भी ग्रामीण खडसारों में सेवार के सयोग मे बनाई जाती है। वह प्राण तत्व सार सयुक्त रहती है। लेकिन ये मिल वाली सफेद चीनी, उजला विष है।

सफेद चीनी बनने से ईख का कैलशियम जो लाल कण होता है वह नष्ट हो जाता है। सफेद चीनी पुन: उस चूने के अश को प्राप्त करना चाहती है अत. उसे पाने का प्रयत्न चीनी हमारी दांतों से करती है। इसका परिणाम वहीं होता है जो भट्टी में मुट्ठी भर बारूद फेंकने से होता है।

दांतों में कैलशियम परपूर परिणाम में प्राप्य है। चीनी का जब हमारे दातों से सम्पर्क होता है तो उसमें से कैलशियम खैंच लेती है और वह कैलशियम विहीन दांत पायोरिया का शिकार हो जाता है।

सफेद चीनी के स्थान पर ग्रामीण खण्डसार की भगही चीनी, मीठे फल, पिण्ड खजूर, गुड़, शहद से काम चला सकते हैं जो मानव शरीर और दान दोनों के लिये लाभदायक है।

जिस प्रकार गुड़ को मशीनों द्वारा सफेद चीनी बना कर चौपट कर दिया है उसी प्रकार दाल, चावल, गेंहू, सरसों, नारियल, तिलों और तीसी को भी हानि कारक बना दिया है।

चावल दाव के यन्त्र (ढेकी ऊखल) में बनाने से शुद्ध तत्व मय रहता है। गेंहूँ दाल हाथ चक्की में पीसने दलने से शुद्ध तत्व पूर्ण प्राप्त होता है और तैल कण्ट के कोल्हू में बैलों के सहारे निकालने से शुद्ध तत्व मय मिलता है।

आज कल पानी भी लोहे के बल टप में रहने, शहरों में कल के द्वारा निकालने और भूमि में लोहे के नल के साथ शोल मय बने रहने से प्राण तत्व विहीन हो जाता है। पानी मिट्टी, तांबे के वर्तन में ही शुद्ध रहता है।

इस प्रकार प्रत्येक प्राण तत्व विहीन पदार्थों के प्रयोग से दात विकार ग्रस्त होता रहता है और भी सभी प्रकार के पदार्थों को बेढंगे तरीके से पका कर अनावश्यक पदार्थ लाल मिर्च, गरम मसाला, प्याज, लहसुन वगैरह डालकर अत्यन्त जायकेदार बना डालते हैं।

आज कल हम लोग मुलायम से मुलायम जायकेदार मे जायकेदार और ऐसे पदार्थों को खाना पसन्द करते हैं जो मुख में जाते ही गले के नीचे विना प्रयास अर्थात् विना मुख को चलाये ही गले के नीचे उतर जाते हैं जिससे दांतों के चलने का सुअवसर ही नहीं देते हैं। क्यों कि चबाने के झन्झट में कौन पढे। इससे दाँतों का व्यायाम भी चौपट होता जा रहा है। यो तो हम लोग शारीरिक व्यायाम छोड़ ही चुके हैं।

दाँतों के न चलाने से पाचन क्रिया या मुख पदार्थ लार (सालवा) मुख के अन्दर ग्रास में मिल नहीं पाता है और इसके अभाव के कारण कब्ज होने लगता है। कब्ज होने से मल का कुछ अंश आंतों से चिपक कर सड़ने लगता है और उसका जहरीला गैस ऊपर

की ओर उठ या फैल कर दांतों और मसूढ़ों की जड में पीप उत्पन्न कर पायरिया को उत्पन्न करता है।

तृतीय—एक बार के भोजन में अनेक तत्व वाले पदार्थों के रहने से, अनेक प्रक्रिया में गुजरे हुए पदार्थों (मास मछली) के होने से, शौच के समय मुंह को खोले रहने, सर में कपड़ा नहीं बांधने से, दांतों की जड़ें नित्यप्रति कमजोर पड़ती रहती है। साथ ही साथ चाय, कहवा, शराब, बर्फ, सोडा वाटर, लेमन, तम्बाकू, खैनी बाड़ी आदि के सेवन मे भी रक्त विषैला एव भयङ्कर हो जाता है। जिससे मसूढ़े कमजोर पड़ जाते हैं। बार-बार मसूढ़ों में दर्द उत्पन्न होता रहता है और रक्त स्राव शुरू हो जाता है।

माँस कभी भी शुद्ध नहीं प्राप्त होता है। इसमें यूरिया यूरिक एसिड आदि कई विषै ऐसी है जो मास से कभी भी पृथक नहीं किये जा सकते हैं।

बर्फ आदि का पानी या शरबत, कुल्फी, आइसक्रीम खाते पीते हैं। उस समय प्यास बुझने के बदले कुछ क्षणो के बाद बढ़ती है। प्राय. लोग बाद में जी भर कर पानी पीते देखे जाते हैं। शरीर की भीतरी गर्मी में अचानक जब ठण्ड पहुंचती है तो गर्म और सर्द के सयोग से जल भाप बन कर बाहर निकलता है। इसी भाप के कारण सर्दी मालूम होकर प्यास लगती है जिससे मन्दाग्नि और खाने के समय ठण्ड से मसूढ़ों का रक्त ठिठुर कर पुन चाय, कहवादि के प्रयोग से निर्बल होकर पायोरिया का आवास हो जाता है।

इसका मुख्य सार यह है कि मनुष्य अपनी जिह्वा लोलुपता के वश होकर अपने दांतों को खो बैठता है। जो शरीर का एक प्रधान अङ्ग है।

पायोरिया रोग का कारण एलोपैथी के विद्वान लोग कीटाणुओं को बतलाते हैं और उसे मारने के चक्कर मे पड़ कर जहरीली औषधियों का प्रयोग कर के शरीर के सारे स्नायु जाल (नर्वस सेटर्स) को नष्ट कर डालते हैं। जिससे और भी अनेक बीमारिया आमन्त्रित हो जाती हैं।

साथ ही साथ पायोरिया का दूषित पीव और रक्त दांतों की जड़ों और मसूढ़ों में भीतर प्रवेश कर जाता है और बाहर से उसका निकलना भी डाक्टर लोग बन्द कर देते हैं। जिससे रोग और भी उग्र रूप धारण करने में सफलीभूत होता है।

इतना ही नहीं पारा, आर्सेनिक, कोकीन आदि विषाक्त औषधियों के प्रयोग के कारण और अधिक विष शरीर में जमा हो जाने से मनुष्य सदैव के लिये रोगी बन जाता है। अन्त में उखाड़ डालने से पाचन शक्ति हमेशा के लिये जाने का रास्ता पकड़ लेती है। साथ ही साथ दांतों के उखड़वाने के द्रव्य पदार्थ औषधि एव खींचा तानी में शिर मे समस्त नासा जाल विकृत हो जाता है और मानसिक दुर्बलता अपना प्रमुख अड्डा बना डालता है।

इसलिये दांतों को उखड़वाना और ब्रश एवं टूथ पाउडर से दांतों को धोना सर्वथा हानिकर है। अत इससे बचते हुए ही दांतों की रक्षा परमावश्यक है।

डेंटिस्ट डाक्टरों की आजकल भरमार हो रही है। ये पायोरिया चिकित्सा स्थानीय सफाई से शुरू करते हैं और सफाई कराते-कराते अन्त मे उखड़वाने के लिये व्यक्ति विवश हो जाता है और दांत डाक्टर की राय के अनुसार उखड़वा डालता है। इस प्रकार एक दाँत उखड़ा कि उसके बगल वाले दांतों की जड़ें खोखला एव कमजोर बन जाती हैं और धीरे-धीरे सारे दांत निकलवाने पड़ते हैं। इन डाक्टर को सोचना चाहिए कि रोग क्यों और कहां से विकार उत्पन्न हुआ है।

ब्रश किसी न किसी जानवर के केश के बनाये जाते हैं। केस (बाल) दो कारणों के जीवधारियों के शरीर में पाये जाते हैं। एक—बाल उगे अङ्गों की रक्षा के लिये, दूसरे बाल के रूप में शरीर का विकार बाहर उत्सर्ग

होता है।

ये बाल ब्रश में लगकर पाउडरों को लेकर दाँतों के साथ जूझते हैं। रगड़ लगती है जिससे एक प्रकार की गैस उत्पन्न होती है और वह दांत के कैलशियम को जलाती है एवं अशतः अशत दांतों की जड़ों को निखाड़ता और अम्लता उत्पन्न करता है। इसीकारण ब्रश भी त्याज्य है।

परहेज

जिह्वा लोलुपता को रोकना चाहिए। वैसे पदार्थों को जो आसानी से सटके जा सकें, एवं तीता, चटपटा, खट्टा, जायकेदार, शराब, मास, वर्फ, चाय (तुलसी चाय को छोड़कर), बीड़ी, सिगरेट, खानी तम्बाकू को त्यागना चाहिए। क्यों कि ये मुख के जायके (सालवे) को बनने नहीं देते हैं एव रही सही सालवे को भी नष्ट कर डालते हैं और दांतों के व्यायाम को नहीं होने देते हैं। चूंकि खाद्य पदाथ जल्दी से गले की नीचे सरक जाता है।

पथ्य

अत ऐसे पदार्थों का खाना हितकर है जो दांतों को व्यायाम दें अर्थात् देर तक चवाने से उचित मात्रा में सालव तैयार हो सके एव तैयार सालवा को उद्रान्त कर सके। अत शुद्ध सात्विक आहार जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है करना चाहिए एव गाजर, मूली, नीबू, सन्तरा, अगूर सभी तरह के साग जिनमें कैलशियम हो खाना चाहिए। बिना छने हुए आटे की रोटी, माड़मार चावल का भात, तरकारी, सभी प्रकार की हरी चटनी, बिना खटाई और लाल मिर्च के, डाल सकते हैं एव ककड़ी, किसमिस, खजूर, दूध, मट्ठा आदि।

चिकित्सा

सर्व प्रथम सूर्य रश्मि को लेता हूं और सप्त रश्मि आरोग्य मन्दिर सरथा, पो० हरनौत द्वारा परीक्षित प्रयोग लिखता हूं। पीली और हरी शीशी का जल सम मात्रा से मिलाकर २॥ तोला की मात्रा से प्रति दिन ६ से ८ मात्रा तक सेवन करना चाहिए। सवेरे ब्राह्म मुहूर्त में उठकर एक गिलास जल चुस्की द्वारा पीना चाहिए। फिर शौच के लिये टहलते हुए कुछ दूर जाना चाहिए। शौच के समय बतीसी को चढ़ाये रहना चाहिए और नासिका के दाँये स्वर को चलने देना चाहिए। शिर में कोई अगोछा या कपड़ा बांधे रहना चाहिए। प्रातः कर्म से छुट्टी पाकर भली भांति कुल्ला कर ऊपर बताई हुए दतवनों से दांतों को साफ करना चाहिए और चौथाई नीबू की फांक से दांतों को खूब मलना चाहिए। पुनः आधे तोले सेंधव नमक जो हरी बोतल में तैयार किया गया हो और हरी बोतल में तैयार नीम या मेंहदी के तेल में मिलाकर मञ्जन करना चाहिए।

पुन., बबूल या गूलर की छाल के काढ़े से कुल्ला करना चाहिए। इसके बाद दांतो की कसरत करनी चाहिए।

३६२—चूल्हे की जली हुई पीली मिट्टी को बारीक चूर्ण कर कपड़ा से छान कर दांतों को मांजने से दांत साफ और निरोग रहते हैं एव पायोरिया का विनाश होता है। हमारे देश की औरतें अभी भी इसे काम में लाती हैं। ग्रामों में शत प्रतिशत प्रचार है। उनके पास पायोरिया कभी भी नहीं फटकता है। इसके अलावे चूल्हे की राख से भी कुछ औरतें अपने दांतों को सुरक्षित रखती चली आ रही हैं। इसके प्रयोग के कारण स्त्री समाज में पायोरिया की शिकायत कम है।

३६३—गाय भैंस जो खेतों में चरती हैं उनके उपलों (गोइठों) को बन्द भूभल में जलाकर बारीक पीस कर कपड़ा में छान कर रखलें और उसे नित्य काम में लावें, दांत निरोग रहेंगे और पायोरिया को मिटा देगा।

३६४—कड़वे नीम के पत्ते को लाकर छाया में सुखा

कर उसे मिट्टी के बर्तन में डाल कर अग्नि पर रख कर इतना जलावें कि राख होने न पावे, बल्कि कोयला बन जाये। बस उस बर्तन को निकाल कर शीतल होने दें और उस कोलले को बारीक पीस कर कपड़ा से छान कर १० तोला सफूफ में २ तोला सूक्ष्म पिसा हुआ सेंधव नमक मिला कर बोतल या डिब्बों में रखें। यह पायोरिया का नाश करेगा एवं सुरक्षित रखेगा।

३६५—अपामार्ग की जड़ की दातुन करने से हर प्रकार के दन्त रोग दूर होकर दांत मोती सदृश चमकते हैं।

३६६—चंगेरी के पत्तों के रस को गुनगुना कर कुल्ला करने से पायोरिया का नाश होता है।

३६७—नौसादर और सोंठ को सम भाग लेकर बारीक पीस कपड़ छन कर, मञ्जन करें, दात साफ रहेंगे और पायोरिया का नाश होगा।

३६८—तुलसी के पत्तों का नित्य सेवन करें। पायोरिया का नाश होगा एवं दांत सुरक्षित रहेंगे।

३६६—नौसादर सोंठ
हल्दी नमक
प्रत्येक समान भाग

—लेकर कूट पीस कर रखले और सरसों का तैल मिला कर मञ्जन करे, पायोरिया का नाश हो जायगा एवं दांत साफ सुरक्षित रहेंगे।

४००—चना का साग खाने से भी पायोरिया का नाश होता है एवं अच्छे आदमी को चना का साग प्रयोग में लाने से कभी भी पायोरिया होने का भय नहीं रहता है।

पायोरिया नाशक योग—

४०१—फिटकिरी आग पर फूली हुई, छाया में सूखी हुई बबूल (कीकर) की कच्ची फली, भुनी हुई छोटी हर्र, कम भुना हुआ बहेड़ा, गेरू, मौलसिरी की छाल का चूर्ण, प्रत्येक २॥-२॥ तोला।

लौंग	१॥ तोला
कपूर	१ तोला
सेंधा नमक	१॥ तोला
समुद्री झाग	१॥ तोला
सफेद मिर्च	६ माशा
नीले थोथे की खील	४ रत्ती
अकरकरा	१॥ तोला
पिपरमेंट	६ माशा
मञ्जीठ	१॥ तोला

—सबको कूट पीस कर चूर्ण बनाकर नित्य प्रातः और सायंकाल लगातार मलते रहें अवश्य पायोरिया का नाश होगा।

अब जीवन रसायन शास्त्र की औषधियां लिखते हैं—

४०२—मैग्नेसिया फास ६X या १२X—दातों में वात जन्य शूल, दबाने और गरमी से आराम एवं शीत से तकलीफ, तीर मारने सी असह्य पीड़ा हो और दबाने से आराम मालूम पड़े तो प्रयोग करें।

४०३—काली फास—६X—वैसे दांत जिसमें थोड़ा दबाने से मसूढ़ों से रक्त चले, प्रयोग में लावें।

४०४—सिलिका १२X—शीत या गर्म किसी प्रकार से दर्द कम न हो और रात में बढ़े तो इसका प्रयोग करे।

४०५—नेट्रमयूर ६X—दातों के दर्द के साथ आंखों से पानी और मुंह से लार गिरे तो इसको प्रयोग में लावें।

४०६—काली सल्फ ६X—सायंकाल और गर्म कमरे में दर्द बढ़े और हवा में कम हो तो इसको प्रयोग में लावें।

होम्योपैथी औषधियाँ

४०७—दांतों में कीड़ा लग गया तो मरक्यूरियस ३०X या ६०X या २००X या १०००X को प्रयोग में लाना चाहिए।

४०८—सर्दी लगने से दांत में दर्द हो तो एकोनाइट ३०X, ६०X, २००X, १००० X को प्रयोग में लाना चाहिए।

४०९—मुंह में कुछ चीज डालने से दर्द बढ़ने लगे तो पटर्साटला, ३०X, ६०X, २००X या १०००X का प्रयोग करना चाहिए।

४१०—ठण्ड से बढ़े और गर्मी से घटे तो आरसेनिक गर्मी से बढ़े और ठण्ड से कम हो तो ब्राइयोनियां, साँस लेने से आराम और चिन्ता से बढ़े तो नक्स वोमिका ३०X, ६०X, २००X या १०००X का प्रयोग करना चाहिए।

३०X और ६०X का प्रयोग दिन में तीन चार बार करना चाहिए। २००X का प्रयोग दिन में एक बार सवेरे और १०००X का प्रयोग सप्ताह में एक बार करना चाहिए एक बूंद की मात्रा में।

जीवन रसायन शास्त्र की औषधियां

प्रति दिन ४ बार से ६ बार तक २॥ रत्ती की मात्रा से ४ रत्ती तक की मात्रा तक।

लहसुन का इन्जैक्शन प्रति तीसरे या पांचवे दिन देते रहने से कुछ समय में पायोरिया चला जाता है।

सूर्य नमस्कार करने से भी शरीर निरोग होकर पायोरिया चला जाता है।

कृमि दन्त

लेखक—कवि० पं० धनीराम शर्मा वैद्य वाचस्पति, पंजाब

प्रियवर कविराज प० धनीराम जी वैद्य वाचस्पति सदस्य आयुर्वेदिक व यूनानी बोर्ड पञ्जाव। आप पञ्जाव की राजधानी शिमला में स्वतन्त्र चिकित्सा के द्वारा प्रान्त भर में लोकप्रिय बने हुए हैं। आप वशानुगत अच्छे प्रवीण वैद्य हैं। आपने दन्त रोगों में प्रधान स्थान रखने वाले कृमि दन्त का विशेष चिकित्सा के साथ वर्णन किया है। लिखित चिकित्सा सद्यः फलप्रद होने से प्रयोक्ताओं को यश एव लाभप्रद होगी।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

मानव शरीर में दाँत एक महत्व पूर्ण और प्रमुख स्थान रखते हैं। दाँतों की विकृति केवल रूप को बिगाड़ने का केवल कारण मात्र ही नहीं होती वरन शरीर में बहु प्रकार की व्याधियों की उत्पत्ति का कारण भी बन जाती हैं। जिस से आंत्रों तथा आमाशय मे ऐसी व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं जिन के कारण शरीर के बाकी अङ्गों की गति विधि में अन्तर पड़ जाने के कारण जीवन दूभर हो जाता है।

यद्यपि दांतों की बहुत सी व्याधियां हैं किन्तु कृमि दन्त रोग ६५% होने के कारण इस लेख में उसके सम्बन्ध में ही विवरण दिया जाता है।

कृमि दन्तक दो प्रकार से आरम्भ होता है।

१—कृमि दन्तक अनामिल अर्थात् दांतों के बाहर के भाग से आरम्भ होता है, अनामिल के खाए जाने पर डण्टीन और सीमिण्टम को छेद कर पैरी ओसटीन में पहुँच जाता है। पैरी ओसटीन दांतों में जड़ की ओर एक छेद होता है जिस के भीतर रक्त की सूक्ष्म केशिकों दांतों को शुद्ध बनाने के लिये रक्त पहुँचाती हैं। यहा पहुँच कर यह कृमि दन्त को खोखला कर देता है किसी भी बाह्य वस्तु के इस छेद में पहुँचने पर दन्त पीड़ा होती है अर्थात् कृमि अथवा बाह्य पदार्थ जब दांतों की उन केषिकाओं के साथ स्पर्श करते हैं तब दांतों में भीषण वेदना होती है।

२—विरुद्ध आहार करने से आमाशय से जो अम्लीय रस की उत्पत्ति होती है उस से रक्त दूषित होता है इस रक्त का प्रभाव दन्त केशिकाओं द्वारा पैरोस्टीन सीमिण्ट तथा अनामिल तक कृमि पहुच कर खोड उत्पन्न कर देता है। इस में दन्त शूल पैरीस्टीन अर्थात् दन्त मूल में होता है। इसकी चिकित्सा दन्त विद्रधिवत् करनी चाहिए। इस कृमि का जन्म दांत की अस्वच्छता अथवा खाद्य पदार्थों को भली प्रकार न चबाने से होता है। कारण यह कि कम चबाने से आमाशय में अम्लीय रस अधिक उत्पन्न हो कर कृमि की उत्पत्ति तथा और रोगों का कारण भी बन जाता है।

दांतों का यदि विश्लेषण किया जावे तो पता चलता है कि प्रत्येक दांत चूने के नमक, चूने का फास्फेट, चूने के कार्बोनेट तथा फास्फेट आफ मैग्नेशिया आदि

दांत की आंतरिक रचना

लम्बाई की ओर से किया हुआ परिच्छेद
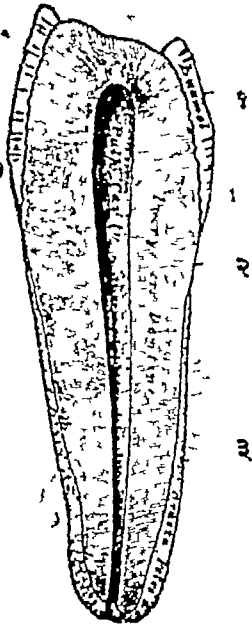
१—शिखर

२—ग्रीवा

३—मूल

दाढ़ की आंतरिक रचना

लम्बाई में किया परिच्छेद

१—शिखर

२—ग्रीवा

३—मूल

चश्मों के रोग विषयक चित्र
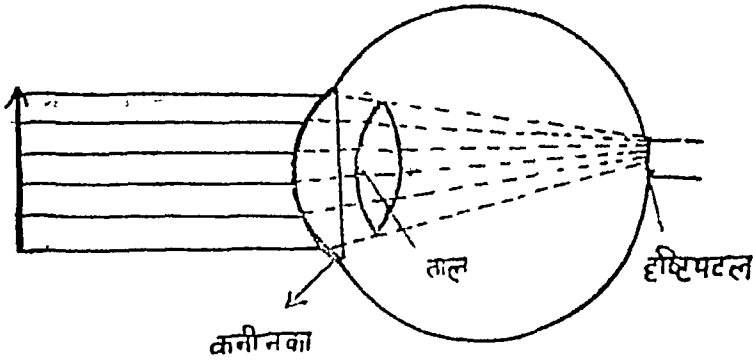
चित्र नं० १

चित्र नं० २
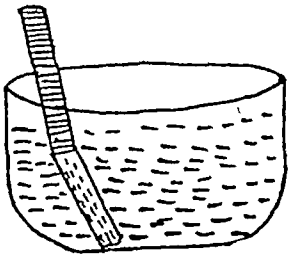
चित्र नं० ३
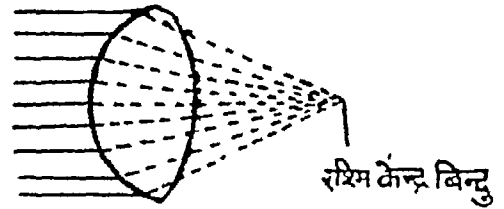
अधिक उन्नतोदर ताल

चित्र नं० ४
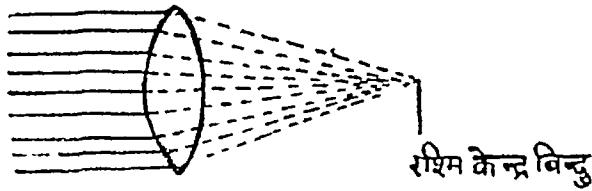
कम उन्नतोदर ताल

चित्र नं० ५

पदार्थों से बना होता है और यही वस्तुयें दांतों की शुद्धता का कारण भी हैं यदि इन के विरुद्ध ऐसी वस्तुओं का अधिक प्रयोग किया जाए जो इन की विपरीत भावना की हों तो उसका परिणाम दांतों के लिये हानि कारक होता है अथवा अधिक शीत, अधिक उष्ण, खट्टे, मीठे तथा मासादि वस्तुओं के छोटे २ भाग जो दांतों के साफ करने पर भी नहीं निकल पाते, के कारण कृमि उत्पन्न हो जाता है। शास्त्रकारों ने लिखा है—

अयोत्थिताग्र द्वौकालौ कषायं कटु तिक्तकम्।
भक्षयेदन्त पवनं दन्त मासान्य बाधयन॥
निहन्ति गन्ध वैरस्यं जिह्वादन्तास्यज मलम्।
विष्कृष्य रूचि माधत्ते सद्यो दन्त विशोधनम्॥
चरक।

किन्तु नवसभ्यतानुसार तो दांतुन की बजाय ब्रश करना अपनी शान समझते हैं जो अतीव हानिकर है।

कृमि दन्त में स्वभावत: वात दोष की प्रवृत्ति होती है यथा—

कृष्णाच्छिद्रश्चल स्रावी ससंरम्भो महारुज:।
अनिमित्त रुजो वातात्स ज्ञयः कृमि दन्तकः॥

यदि हम पुरातन रीति के अनुसार ठीक के दांतुन करें और दांतों को स्वच्छ रखें तो कृमि दन्तक नहीं हो सकता। दांतुन के लिए आवश्यक है कि एक स्थान पर बैठ कर ही जलपात्र साथ ले लिया जावे और यह ध्यान रखा जाय कि दांतुन करते समय दौंतुन का रस गले के अन्दर न जाए जिस से आमाशय तथा आंत्रियों में दातों के गन्दे प्रमाणु हानि पैदा न कर सकें और यह भी ध्यान रखा जावे जब दांतुन मुंह से बाहर निकाली जाए तो पुनः धोकर ही मुंह में डाली जाए।

कृमि दन्तक चिकित्सा

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नम चलं कृमि दन्तकम्।
तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेह गण्डूष धारणैः॥
भद्रदार्व्यादि वर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्चभोजनैः।
चलमुद्धृत्य च स्थान विदहेच्छुषिरस्य च॥
ततोविदारीयष्ठयह्व शृङ्गाटक केशुरुकैः।
तैलं दश गुणे क्षीरे सिद्धं नस्य हितं भवेत्।

कृमि दन्त अगर हिलता हो तो उखड़वाना ही उत्तम है। अगर दृढ़ हों तो उसे स्विन्न करे। चाकू से कुरेद कर कालिमा दूर करके हाईड्रोजन परआक्साईड से धोकर निम्न लिखित किसी औषधि को खोड़ में भर दें।

४११—सौभाग्य तथा मोम थोड़ा गर्म करके खोड़ में भर दें। अथवा—

४१२—रूमी मस्तगी खोड़ में भर दें। गटापार्चा जो इसी नाम से बाजार में मिल जाता है जरा गर्म करके खोड़ में भर दें। अथवा—

४१३—रीमेलगम थोड़ा सा ले १-२ रत्ती पारद डाल कर हाथ पर खूब मलें और खोड़ में भर दें। अथवा—

४१४—कपूर थोड़ा गर्म करके भर दें।

कृमि दंत के खोड़ में शूल होने पर निम्न लिखित पिचु अतीव लाभप्रद हैं

४१५—हींग को जल में रगड़ कर पिचु खोड़ में रखें।

४१६—सञ्जीवनी की गोली का पिचु दन्त शूल में शीघ्र लाभ करता है।

४१७—लवङ्ग तैल में कपूर मिलाकर रुई द्वारा खोड़ में रखें।

४१८—सिर्का में गन्धक रगड़ कर पिचु खोड़ में रखने से कृमि मर जाता है।

४१९—अञ्जीर के दूध का पिचु शीघ्र दन्त शूल को बन्द करता है।

४२०—अहिफेन का पिचु रखने से दन्त कृमि मर जाता है और शूल दूर हो जाता है।

धूम्र

४२१—कण्टकारी के बीजों को हुक्के द्वारा पीने से

(याद रहे धूम्र दांतों तक ही रहे गले में न जावे) ५ मिनट धूम्र मुंह में रखने से कृमि मर कर बाहर आ जावेगा।

४२२—एरण्ड बीज का धूम्र नाली द्वारा कृमि के खोड़ में दें कृमि मर कर बाहर आ जावेंगे।

दंत विद्रधि में अनुभूत योग

४२३—काली जीरी को गौ मूत्र में रगड़ कर लेप करने से शोथ उतर जावेगी कृमि दन्त शूल हट जायगा।

४२४—सत अजवायन, स्फटिका मलने से दर्द शीघ्र हटता है।

४२५—अरहर के पत्र का नमक डाल कर गर्म कवल ग्रहण करने से दन्त शूल को तुरन्त लाभ करता है।

४२६—सुद्द और विपखपरा का लेप अत्युत्तम है। इरिमेदादि तैल तथा खदिरादि तैल भी उत्तम हैं।

काशीसादि गुटिका

४२७—कसीस	हींग
स्फटिक	देवदार

प्रत्येक समभाग

—लेकर जल में रगड़ कर गोलियां बनालें। खोड़ में गोली चना प्रमाण रखने से शूल हट जाता है। या

४२८—अकरकरा	पिप्पली
माजू	प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण बना कर खोद में भरने से दर्द तुरन्त हट जायगा तथा कृमि मर जायगा।

मञ्जन नं० १

४२९—चमेली के पत्र	पुनर्नवा
पिप्पली	नांगा पीत
वच	सुद्द
अजमोद	हरड़
तिल	प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण कर दाँतों को मलें। दन्त कृमि, दन्त हर्ष के लिये अनुभूत है।

मञ्जन नं० २

४३०—तुत्थ और रीठे के छिलके की भस्म अन्तर धूम करके समान स्फटिक और खड़िया मिट्टी मिला कर मलने से दन्त शूल को हटा कर दांतों को दृढ़ करता है।

मञ्जन नं० ३

४३१—सफेद जीरा	सुद्द
हरड़	सिम्बल के काँटे
सुपारी की राख	प्रत्येक समभाग

—लेकर मलने से रक्त स्राव, विद्रधि, व्रण नष्ट होते हैं।

मञ्जन नं० ४

४३२—कुठ	लोध
देवदार	मुस्तक
मञ्जीठ	पाठा
कुटकी	ज्योतिष्मति
हल्दी	प्रत्येक समान भाग

—लेकर चूर्ण बना कर मञ्जन करे। यह दन्त कृमि, दन्त शूल, रक्त स्राव, दन्त हर्ष के लिये अनुभूत है।

मञ्जन नं० ५

४३३—शीतल चीनी	६ माशा
कबावे	२ तोला
जायफल	३ माशा
स्फटिक	२ तोला
कुलञ्जन	६ माशा
माजू	१ तोला
कत्था	१ तोला
कचूर	६ माशा
कपूर	३ माशा
एला	६ माशा

(शेषांश पृष्ठ २५३ पर देखें)

दन्त पतन

लेखक–कवि० नन्दकिशोर जी वैद्य वाचस्पति, ज्वालामुखी कांगड़ा

प्रिय कविराज नन्दकिशोर जी का संक्षिप्त परिचय कर्ण रोगों के अनुभूत स्तम्भ में दिया गया है।

आपका यह दूसरा लेख है। इसमें आपने विषय को प्रतिपादन और बोधमान बनाने का आदर्श प्रयत्न किया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

शीताद, शौषिर, दन्तहर्ष, दन्त शर्करा, और कपालिका यह पांच रोग ऐसे हैं जो कि (सबसे पूर्व) दांत गिरने से पहिले प्रत्येक मनुष्य को होते ही हैं अथवा यूं भी कह सकते हैं कि यह रोग दांत गिरने के पूर्व रूप हैं और क्रमश एक के बाद दूसरा हो जाता है। इसमें से शीताद और शौषिर कफ रक्तज हैं—तथा दन्त हर्ष, दन्त शर्करा और कपालिका पित्त वातज हैं। पहिले दो की गणना दन्तमूल रोगों में—अवशिष्ट तीन रोगों की दन्त रोगों में है। शीताद और दन्त हर्ष होने के पश्चात् ही शौषिर, दन्त शर्करा और कपालिका रोग होते हैं। इस प्रकार कपालिका को अमिश्र दन्त विकार समझना चाहिए क्योंकि इसके पश्चात् दन्त क्षरण होने लगता है और कभी-कभी तो दांतों के बड़े-बड़े टुकड़े टूट कर बाहर निकलने लगते हैं।

प्रधान कारण

दांतों को साफ न करना–आजकल प्रातः काल से रात तक खाने पीने का रिवाज पड़ गया है परन्तु खाने पीने के पश्चात् दांतों को साफ नहीं किया जाता है जिससे दांतों पर मल जम जाता है ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में ८-१० घण्टे के पश्चात् इन दांतों पर जमे अन्न आदि में परिवर्तन होने लगता है। उस समय दन्तावरण और दन्त वेष्टों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः दिन में एक बार तो दांतुन या ब्रश से दांत साफ कर लिये जाते हैं परन्तु दोनों समय भोजन के अतिरिक्त जब भी दूसरी चीजें खाई जाती हैं तब दांतुन कुल्ला आदि की उपेक्षा कर दी जाती है।

खांड का अधिक सेवन

अधिक मात्रा है खांड आदि मधुर पदार्थों का सेवन भी दांतों को दुर्बल कर देता है।

शीताद के लक्षण

दन्त वेष्टों के दुर्बल हो जाने पर कुल्ला करते समय कोई पदार्थ चबाते समय या अकस्मात् भी दन्त वेष्टों से २–४ बूंद रक्त निकल आता है यह अवस्था कई-कई वर्ष तक चली रहती है।

शोणित दन्तवेष्टभ्यो यस्याकस्मात् प्रवर्तते।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्तिच परस्परम्।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणित सम्भव॥

शौषिर के लक्षण

कुछ समय पश्चात् दांतों की जड़ों में तीव्र वेदना हो जाती है कभी-कभी थोड़ा सा शोथ भी हो जाता है। रोगी कोई वस्तु चबा नहीं सकता। कई रातें बिना नींद के ही बीत जाती हैं पीडा की तीव्रता के अनुसार दांत हिलते मालूम होते हैं एक सप्ताह के पश्चात् पीडा कम होने लगती है और ३-४ सप्ताह में शान्त हो जाती है। दांत फिर पहले की भांति दृढ़ हो जाते हैं। ५-६ मास या अधिक समय के पश्चात् फिर पहिले की भांति ही उसी दांत में पीड़ा उठती है। दांत पहिले की अपेक्षा अधिक हिलने लगता है इस बार पीडा पहिले से कुछ कम मालूम होती है। कभी कभी पीड़ा के वेग चलने लगे हैं। जो कि अकस्मात् प्रारम्भ होकर २-४ घण्टे के पश्चात् शान्त हो जाते हैं। उपचार से या पथ्य पूर्वक रहने से एक आध मास में यह पीडा बिलकुल शान्त हो जाती है परन्तु दांत पहले की भांति दृढ़ नहीं होते हैं और रोगी रुग्ण दांत से कठिन वस्तु नहीं चबा सकता है। इस प्रकार ३-४ बार होने पर दांत बहुत कमजोर हो जाते हैं। पहिले पहिल जब यह पीड़ा होती है तब तो रोगी कोई वस्तु नहीं चबा सकता है परन्तु फिर अभ्यास हो जाने के कारण दांत के हिलते होने पर भी कुछ चीजें चबा सकता है। इस व्याधि से दाढ़ें-विशेषकर ऊपर की दूसरी दाढ़ भी ग्रस्त होती हैं बाद में दूसरे दांत भी विकृत होने लगते हैं।

श्वयथु दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः।
लालास्रावी सविज्ञेय शौषिरोनाम नामतः॥

दन्त हर्ष

कठिन वस्तु की दांतुन, रेत या कोयले की दातुन प्रति दिन करना आदि कारणों से दन्तावरण (डैंटीन) के घिस जाने पर यह रोग होता है। रोगी बहुत ठण्डा या विशेष गर्म पानी नहीं पी सकता है। ठण्डी हवा लगने से भी दांतों में पीड़ा होने लगती है।

शीतरूक्ष प्रवाताम्ल स्पर्शानामसहाद्विजाः।
पित्त मारुत कोपेन दन्त हर्षः स नामतः॥

दन्त शर्करा

दन्तावरण के ऊपर का भाग घिस जाने पर वहां मल जम जाता है जिह्वा लगने से वह स्थान रूखा और खुरदरा सा मालूम होता है यह अवस्था थोड़े दिन ही रहती है।

मलो दन्तगेता वस्तु पित्त मारुत शोषितः।
शर्करेव खरस्पर्शा साज्ञेया दन्तशर्करा॥

कपालिका

यह शर्करा ही एक आध मास में टुकड़े बन कर निकलने लगती है।

कपालेष्विव दीर्यन्तु दतामा सैवशर्करा।
कपालिकेति विज्ञेया सदार्दतीनाशिनी॥

चिकित्सा

दन्त रोगों की प्रति बन्धक चिकित्सा करना ही उत्तम है क्यों कि रोग उत्पन्न होने पर यह बड़ी कठिनता से ही शान्त होते हैं। आजकल पाश्चात्य चिकित्सानुयायी तो दांत रोग हो जाने पर दांत निकलवा देना ही अच्छा समझते हैं। यदि दांत निकलवाना ही पड़े तो ऐसा प्रबन्ध करा लेना चाहिए कि दन्तोद्धरण के पश्चात् ५-७ बूंद से अधिक रक्त न बहे। यदि ऊपर का दात निकलवाने पर अधिक रक्त बहेगा तो निश्चय ही दृष्टि मान्द्य हो जायेगा। दांत का दर्द बहुत ही प्रबल होता है रोगी को रात दिन नींद नहीं आती है। रोगी सुविधानुसार किसी डाक्टर के पास पहुंच जाता है वह सबसे प्रथम यही सम्मति देता है कि "दात निकलवादो" ऐसा किया जाने पर रोगी को सौरी आयु भर दुःख उठाना पड़ता है। दांत का दर्द एक दांत निकलवा देने के कुछ मास या वर्ष बाद दूसरे दांत में होने लगता है और कई दांत निकलवाने पड़ते हैं। आजकल २५ वर्ष की आयु से ऊपर के मनुष्यों की जांच की जाए तो बहुत ही थोड़े ऐसे मिलेंगे कि जिन के दांत में कोई विकार प्रारम्भ न

हो चुका हो। यदि दांत निकलवा दे चुके मनुष्यों की जाच की जाये तो कोई बिरला ही ऐसा निकलेगा कि जिसकी दृष्टि उपर का दांत निकलवाने के पश्चात् मन्द न हुई हो और पढ़ने लिखने या दूसरे बारीक का काम करने वालों को ऐनक का आश्रय न लेना पड़ा हो। इसलिये उत्तम तो यही है कि—

४३५—दांतों को हर समय स्वच्छ रखें, थोड़ी सी मिठाई, चने या कोई दूसरी वस्तु खाने पीने के पश्चात् कुल्ला कर लिया करें और प्रातःकाल शनैः शनैः कीकर, तेजबल, अपामार्ग आदि दांतों को दृढ़ करने वाले पदार्थ की दांतुन कर लिया करें।

४३६—खांड और खट्टे पदार्थों का प्रयोग कम करें, यदि ऊपर वर्णित रोगों में से कोई रोग हो गया हो तो माठे पदार्थ विशेषतया खांड का प्रयोग कई दिन तक न करें। इससे दांतों का दर्द शीघ्र ही घटता चला जायेगा और हिलता दांत दृढ़ होता जायेगा।

४३७—रात के समय सर्षप तैल और लवण मिला कर दांतों पर मलना चाहिए।

औषधि चिकित्सा—दांतों में पीड़ा हो तो—

४३८—कत्था, अकरकरा मुख में रखें या मरिच, स्फटिका, कत्था, गेरू पीस कर दांतों पर मलें अथवा—

४३९—चील का कोयला और स्फटिका दांतों पर मलें। यदि दांतों में छिद्र बन गया हो तो अमृतधारा या इस प्रकार की दूसरी औषधि का पिच्चु दांत में रखें। यदि रोगी पीड़ा न सह सकता हो तो दांत पर आक का दूध लगाना प्रारम्भ करदे। ५-७ बार लगाने से दांत फटकर ६ मास में सारे का सारा दांत खिर करके निकल जायेगा। छिद्र होने पर आक के दूध का तूबा भीतर भी रखा जा सकता है परन्तु इस प्रयोग में यह ध्यान रखें कि दूध स्वस्थ दांतों को न लगे। इस प्रयोग से दांत निकलने या फटने में कोई कष्ट नहीं होता है।

४४०—यदि दांत हिलते हों तो बकुलत्वक चूर्ण दांतों पर मलना चाहिए।

४४१—दन्त हर्ष रोग में सिल्वर नाईट्रेट का १५-२० दिन प्रयोग करें यदि घिसे दन्तावरण पर चांदी का स्तर जम जाये तो भी दांतों में पानी लगना बन्द हो जाता है।

निम्न लिखित प्रयोग से दांत दृढ़ हो जाते हैं (परन्तु मैंने स्वयं इसका प्रयोग नहीं किया है)।

४४२—त्रिफला त्रिकुटा तूतिया तीनों लवण पतङ्ग।
वज्र दंत हो जात हैं माजूफल के सङ्ग॥

रक्त मोक्षण कराने से शीताद, शौषिरादि दन्त रोग शान्त हो जाते हैं। घृत तैलादि का विशेष प्रयोग करने से वात हर तथा वारिवेच के प्रयोग से दन्त रोग शान्त हो जाते हैं।

अपथ्य

खट्टे फल, ठण्डा जल, स्नेह रहित भोजन, दांतुन करना, चने आदि कठिन वस्तुओं का चबाना, दन्त रोगियों को उचित नहीं है। इसी प्रकार खांड का उपयोग करने से भी दन्त पीड़ादि जल्दी शान्त नहीं होते हैं।

(पृष्ठ २९० का शेषांश)

कीकर के कोंपल	२ तोला
सुपारी	२ तोला
तुत्थ भस्म	३ माशा
चोक	३ माशा

—लेकर चूर्ण कर मञ्जन करने से दन्त हर्ष, दन्त कृमि दन्त पूय, दन्त रक्त को नष्ट करता है।

मञ्जन नं० ६

४३४—त्रिफला त्रिकुटा तूतिया सैंधव और पतङ्ग।
दांत वज्र हो जात हैं माजूफल के सङ्ग॥

पथ्य

फलान्यमलानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्।
तथातिकठिन भोद्यं दन्त रोगी नभक्षयेता॥

दांत और दन्तमूल रोग

विज्ञान तथा चिकित्सा

लेखक--श्रीश शर्मा वैद्य-सुपरिण्टेण्डेण्ट-सुधाइन्स्टीट्यूट, भालोद

> श्रीश शर्मा वैद्य जी ने अपने लेख को सुन्दरीत्या व्यक्त करने का भरसक प्रयत्न किया है। लेख में अनेक बातें सम-हरणीय हैं। आप चिरकाल से दन्त रोगों के चिकित्सक हैं।
>
> —आचार्य हरदयाल वैद्य

परब्रह्म परमात्मा ने प्राणी सृष्टि में मानव शरीर रचना बड़ी ही विचित्रता से की है, इसमें दाँत शरीर के लिए बड़े ही महत्वपूर्ण और परमोपयोगी बनाये गए हैं। शरीर के प्रत्येक अवयव का पोषण या क्षय इन्हीं की अच्छाई-बुराई पर निर्भर है क्योंकि भोजन की प्रत्येक चर्वण क्रिया का सारा भार दांतों के स्वस्थ रहने पर अवलम्बित है।

दांतों के आने पर कष्ट, बिगड़ने पर उग्र कष्ट और टूट जाने पर महान कष्ट है। कहावत भी यथार्थ है कि दांत आते और जाते महा दु:खदाई हैं। इनकी स्वच्छता में अपनी भलाई है अर्थात् अपनी अच्छाई इसी में है कि इन्हें दन्तरक्षा विज्ञान की नियमावली में बाध कर आजीवन पर्यन्त न जाने दिए जांय-यही शरीर शास्त्र के तत्वज्ञों का निचोड़ है।

मानव शरीर की शोभा एवं सभ्यता दांतों ही से सम्बन्ध रखती है। दांतों से शरीर का पोषण होकर आभा-प्रभा ही नहीं बढ़ती अपितु साहित्य में मापण (शब्दोच्चारण शक्ति) और सङ्गीत में स्वर लहरी को पूर्ण सहायता मिलती है। बिना दांत का मुख उसी प्रकार का शून्य दिखाई देता है जैसे टूटे हुए किवाड़ों का द्वार।

दांत मानव कलेवर में उसी भांति सुशोभित हैं जिस भांति स्वर्ण आभूषण में हीरे की कणिकायें, अर्थात् मानव स्वर्ण शरीर में सुन्दर दन्त पंक्तियां हीरे की कणिकाओं वत् शोभा ही नहीं देती अपितु सौन्दर्य स्वास्थ्य की दृष्टि से एक एक दांत का मूल्य अच्छे उच्च कोटि के हीरे के मूल्य से कई गुना अधिक है।

सचमुच दांतों को हीरे कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं, क्योंकि दोनों में सामान्यता है। अशुद्ध हीरा विषाक्त है आचूषण से विष के से वेग होने लगते हैं। इसी तरह अशुद्ध दांतों से काटने पर विष का प्रभाव मालूम होने लगता है। कठोरता में भी दांत और हीरे मजबूत होते हैं। तभी तो हीरे को वज्र और दन्त चिकित्सा को दन्तवज्रीकरण कहते हैं।

वेदान्त और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से हीरा और कोयला समान हैं। दांत भी ऐसे रासायनिक पदार्थों के समिश्रण से तैयार हुए हैं जो कार्बन स्वरूप में भी कम कीमती नहीं होते और विशेषत. नेत्रांध रोगों में नेत्र

रोग नाशक एवं दृष्टि शक्ति बढ़ाने वाले उत्तम तत्व हो जाते हैं।

ऐसे निधि स्वरूप दन्त रत्नों को मानव जाति अपनी अवहेलना से खोकर आधुनिक विज्ञान के वेग में नकली पत्थर के दांत लगवा कर अपना सौभाग्य मानती है। आज कल प्राय बहुधा व्यक्ति दन्त रोगों से प्रपीड़ित ही देखने में आते हैं, भारत ही नहीं, अपितु पाश्चात्मिक यूरोप, अमेरिका जैसे साधन सम्पन्न देश भी दन्त रोगों के दुख समुद्र में गोते लगा रहे हैं, दन्त रोग वृद्धि से प्राय' लाखों प्राणी महान कष्टस्वरूप यमयातना भोग रहे हैं। मानव जाति के लिए कितनी लज्जा तथा कलङ्क की बात है यह दन्त रक्षा विज्ञान की कमी।

यही कारण है कि गौराङ्ग अंग्रेजदेव जब किसी भारतीय काले भील भूत भैरव के नैसर्गिक दन्त मुक्ताओं को देख कर स्पर्धा करते हैं और उनसे वैसे करने के साधन उनसे पूछ लेते हैं।

जन्म से लेकर मृत्यु तक दाँतों का शरीर से पूरा २ सम्बन्ध है और एक न एक दन्त रोग जीवन में होते ही देखे गए हैं। ऐसे बहुत कम स्त्री पुरुष दृष्टिगोचर होंगे जिनके सुन्दर दाँत हीरे की कणियों के सदृश श्वेत, चमकीले, बलिष्ठ तथा शृङ्गार रसिक कवियों के उदाहरण में आकर मुक्तावत् दन्त पंक्ति प्रतीक हों।

वास्तव में उनका सौन्दर्य उनके उपादानों पर और रक्षा पर निर्भर है। पूर्ण स्वस्थ दाँत वास्तव में पूर्ण सौओज ही है। सुन्दर दन्त पंक्ति मुक्ता मणिवत् मुख की शोभा प्रतीक एवं दीर्घायु जीवन का सौन्दर्य सुख है। इससे विपरीत गन्दे, रोगी दाँत रोग दरिद्रता, अल्पायुसूचक तथा प्रायः मुख श्री नष्ट करने वाले हैं।

दांत का अर्थ है, द+आंत=दांत। अर्थात् दांत ही दूसरी आंत है। आंत एक चक्की यन्त्र है और दांत उस चक्की यन्त्र में भोज्य पदार्थ की पिसाई करने वाले कंगूरे हैं। शरीर पोषणार्थ तथा सञ्चालनार्थ एव बल, वीर्य, बुद्धि, स्मृति आदि को परिपुष्ट करने वाले अनेकानेक स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ हैं, लेकिन उनको आंत रूपी चक्की यन्त्र में पिसाई होने के पूर्व दांत ही अच्छी तरह काट छांट करते हुए मरमम्त करते हैं। तभी वो भोज्य पदार्थ शरीर के लिए पूर्ण उपयोगी होता है, यदि दांत अच्छी पिसाई न करें तो दांतों का काम भी आंतो को करना होता है, फलतः आंत्र निर्बल और बेकार हो जाती हैं।

शरीर की आरोग्यता का आधार दांतों की दृढ़ता, स्वच्छता तथा भोजन को चर्वण क्रिया पर ही अवलम्बित है।

अच्छे प्रकार से चर्वण होने के समय लाला ग्रन्थियों से लार झर झर कर निकलने लगती है और उस भोज्य द्रव्य में मिल मिल कर एक रस स्वरूप होकर श्वेत सार भाग में परिणित हो जाती है। तब क्रमानुसार रस, रक्त, मासादि तन्तुयें पुष्ट होकर, उत्तरोतर बढ़ती जाती है। गन्दे रोगी दांतों से चबाया हुआ, अमृतमय भोजन भी दूषित होकर आमाशयादि यन्त्रों में पहुंच कर, परिपाक क्रिया में विषमता लाकर, विषाक्त फल फैलाता है, मन्दाग्नि, संग्रहणी, राजयक्ष्मादि रोग उत्पन्न कर, जीवन काल की इति श्री करता है।

दांतों के बिगड़ने से ही आंतों के रोग होने लगते हैं, जिसके दांत साफ नहीं ? उसकी आंतें साफ नहीं ?

दांतों की बनावट

शारीरिक प्रयोगशाला में दांत बड़े विचित्र तत्वों से बनते हैं, इनका उद्भव और नष्ट होने का क्रम प्राय' जीवन में होता रहता है। दांत मानव शरीर में बाल्यावस्था में आकर गिर जाते हैं, फिर अच्छे मजबूत स्थायी निकलते हैं। इनके उपादान, शरीर के प्रत्येक अवयव के उपादानों से कुछ भिन्नता रखते हैं, यहां तक कि अस्थियों के और दांतों के उपादानों मे बहुत सामान्यता होने पर भी विषमता है, क्यों कि अस्थियें तो शरीर की बनावट के साथ ही बन जाती है और दांत

तो बालक पैदा होने के बाद में आते हैं, फिर गिर जाते हैं, फिर आते हैं और फिर काल कारण पाकर गिरते रहते हैं, अतः सिद्ध हुआ कि इनकी बनावट का मसाला दूसरा ही है।

भोजन में, खटिक, फास्फोरस एवं खाद्योज (दूध, शर्करा, फल, सब्जियें इत्यादि) तत्वों की पूर्णता से दांत स्वस्थ, सबल तथा सुन्दर पैदा होते हैं। इससे विपरीत होने पर अपूर्ण कमजोर तथा नाना रोगों से प्रपीड़ित होते रहते हैं।

अब विशेष दांतों की दन्त कथा न लिख कर मूल विषय 'पायोरिया' (दन्तोलूखल पूयस्राव, दन्त मूल नाड़ी व्रण,) पर आते हैं। 'पायोरिया' अंग्रेजी भाषा का शब्द है, यह नाम सर्व व्यापक हो रहा है, यथार्थ में दन्त पुप्पुट, दन्त वेष्ट, शीताद, दन्त नाड़ी व्रण, दन्त मूल नाड़ी क्षतः, मसूढ़ों से मवाद, दन्तोलूखल पूयस्राव, इन सब नामों का समावेश पायोरिया नामान्तर्गत हो जाता है। अतः सर्व साधारण के व्यवहार्थ यह शब्द उपयुक्त है।

सम्प्राप्ति

दाँतों को अस्वच्छ रखना, शामिल भोजन, जल पान करना, होटलों की उग्र चाय, बर्फ, पान, बीड़ी, सिगरेट और दाँतुन का अभावादि।

विशेष आधुनिक सभ्यता ने अपनी मादकता का यहां तक रंग जमाया है कि मल त्याग के बाद गुदा प्रक्षालन करना ही ऐब नहीं समझा जाता, अपितु भोजन के आदि अन्त में दांत मुख धोना भी सभ्यता से विपरीत समझा जाता है। यही हाल गवार छोटी जातियों का है।

कारण

प्रातः सायं दाँत साफ न करने से तथा भोजन के पूर्व, पश्चात् मुख तथा दाँतों को सावधानी से न धोने के कारण भोज्य पदार्थ के छोटे-छोटे कण दन्त सन्धियों में रहने से, वो पदार्थ सड़ कर विषाक्त हो जाता है और लाला रस में मिल कर भीतर उतरता रहता है और बाहर दांतों पर और दन्त गह्वरों में आच्छादित हो जाता है। इस सड़े हुए पदार्थ रस को आधुनिक रसायनज्ञ 'लेक्टिक एसिड' कहते हैं।

लक्षण

दांतों की अस्वच्छता से वातादि दोष कुपित होकर दन्त मूल में वात विशेष से टीस, शूल, वेदनादि-पित्त से उष्णता, लाली, दुर्गन्धित रक्त तथा कफज दोष से जड़ता, भारीपन, स्तम्भता, कण्डू, श्वेत पीव और द्विदोष में द्विदोषज तथा त्रिदोष में त्रिदोषज भयङ्कर लक्षण प्रतीत होते हैं।

मुख से मल द्वार के समान दुर्गन्ध आती रहती है। एक दन्त मूल की नाड़ी के मुख पर साधारण क्षत में सहस्रों रोगाणु होते हैं। असल में इन रोगाणुओं को अपने खाने का पदार्थ यथार्थ रूप में मिलता है, जिससे रोगाणु देव दन्त गह्वर मन्दिर में अच्छी तरह अपना प्रभाव जमाते हैं। फेफड़े से दुर्गन्ध युक्त श्वास आती जाती है। जिससे यह विषाक्त वायु (गैस) रक्त में भी मिश्रित होती जाती है, यही उपरोक्त लिखे अनुसार मन्दाग्नि, संग्रहणी, क्षयादि का बीजोपवन है।

पायोरिया मिटने की निश्चयात्मक धारणा

सर्व साधारण में तथा बहुधा चिकित्सक गणों में यह भ्रम फैला हुआ है कि 'दन्त नाड़ी व्रण' (पायोरिया रोग) बिना दाँत निकलवाये ठीक ही नहीं हो सकता? किन्तु यह खयाल भ्रम मूलक है, इस सिद्धान्त के अनुभवी चिकित्सकों के विश्वास पर बेचारे दन्त रोगी अपनी अमूल्य निधि स्वरूप दन्त रत्नों को निकलवाकर नकली बन जाते हैं, दाँत और द्रव्य (फीस) दोनों चिकित्सक के अर्पण कर घर का रास्ता लेते हैं।

(शेषांश पृष्ठ २५९ पर देखें)

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
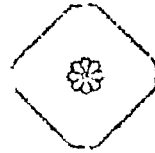
जिह्वा रोग विज्ञानीय स्तम्भ

इसमें जिह्वा के रोगों के सम्बंध में लाभ-
दायक विवरण पाठक पढ़ें गे।

(७)

मूकता

श्री कवि० पं० नित्यानन्द शर्मा वैद्य वाचस्पति, राजस्थान बूंदी

आप आयुर्वेद परिवार के होनहार उज्ज्वल रत्न हैं। दयानन्दायुर्वेद महाविद्यालय लाहौर के प्रथमोत्तीर्ण होने वाले स्नातकों में से हैं। विद्याध्ययन काल में अपनी कुशाग्र बुद्धि से जो प्रतिभा आपने प्राप्त की थी, अब राजस्थान में उसकी दीप्तिमान रश्मियें प्रसरित हो रही हैं। आप आयुर्वेद एव तत्सम्वन्धित पद्धतियों के प्रौढ पण्डित हैं। आयुर्वेदीय समाचार पत्रों का अवलोकन करने वाले पाठक आपकी ज्ञानगरिमा से पूर्ण परिचित हैं।

आपने अपने लेख में विषय को वोधगम्य वनाने का सफल प्रयत्न किया है। लोक और राज्य प्रशंसित एवं अनुरक्त तथा श्रद्धेय योग्य शिष्य को प्राप्त करके गुरुजनों को जो प्रसन्नता होती है उसे मैं पूर्ण रूपेण अनुभव करता हूँ।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

लेखक

रोग परिचय

बोलना कर्म जिह्वा का है। न बोलना अर्थात् मूकता का उल्लेख शास्त्रों में मुख रोगाधिकार में होना चाहिए था परन्तु प्रत्येक आयुर्वेद शास्त्र ने इसका उल्लेख वात रोगाधिकार में किया है। यह बात इस बात का प्रमाण है कि वैद्यों को भूत काल में शरीर शारीर का पूर्ण ज्ञान था और निदान चिकित्सा में उद्भट विद्वान थे तथा आयुर्वेद एक पूर्ण एव त्रुटि रहित चिकित्सा विज्ञान है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी रोगो का वर्गीकरण करते समय मूकता रोग को मुख रोगाधिकार में न रख कर स्नायु मण्डल या धमनी मण्डल (The nervous system) अधिकार में ही Aphasia नाम से इसका वर्णन करते हैं। क्योंकि जिह्वा यद्यपि बोलने का-शब्दाकार निर्माण का

राज अवयव अवश्य है परन्तु इस कर्म को गति देने वाला मुख्य स्थान मस्तिष्क है। मस्तिष्क का भाषण केन्द्र (Speech centre) है। यथा—

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्द वाहिनीः।
नरान्करोत्य वचनान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ॥

इसमें स्पष्ट है कि दुष्ट शब्द वाहिनी धमनी है अर्थात् मस्तिष्क के भाषण एवं श्रवण केन्द्रों को जाने और आने वाले वात तन्तु वा ज्ञान तन्तु-जिनको आधुनिक विज्ञान में मोटर व सेन्सरी (Motor and sensory nerves) कहते हैं-की विकृति से यह रोग होता है और इनको दूषित करने में दोष वायु तथा कफ होते हैं। कफ इनमें जड़ता उत्पन्न करता है तथा वायु विकृत होकर गति अवरोध करता है। शास्त्रकार ने इस मूकता को चार भागों में बाट दिया है—

(१) मूकता—इसमें बोलने और सुनने का सर्वथा अभाव होता है।

(२) अवचनात्—इसमें ईषद्वचन करता है।

(३) मिन्मिनान्—नासिका से कुछ गुनगुनाता है।

(४) गद्गदान्—लुप्तपद व्यञ्जन गुनगुनाता है।

किन्तु बोलना सुनना सर्वथा बन्द रहता है केवल दर्जे का फर्क है। आधुनिक विज्ञान भी इसके दो भेद करता है।

१-Aphasia—यह मूकता है।

२-Dysphasia—इसमें अवचनान्, मिन्मिनान्, गद्गदान् सब सम्मिलित हैं।

यह विकार गतिवाहक (Motor) तथा सावेदनिक (Sensory) दोनों प्रकार की शब्द वाहनियों मे होता है। गति वाहक शब्द वाहनियो की विकृति में व्यक्ति अपने विचारों को बोल कर अथवा लिखकर प्रकट करने में असमर्थ रहता है यद्यपि रोगी यह जानता है कि वह क्या कहना चाहता है परन्तु वह कह नहीं सकता है और जिह्वा की वाह्य नाडिया तथा मांस पेशियों की यान्त्रिक रचना भी बिल्कुल ठीक रहती है। सावेदनिक शब्द वाहनियों की विकृति में वाणी तथा लेख को धारण करने की शक्ति का लोप हो जाता है यद्यपि रोगी न तो अन्धा होता है और न बहरा। वह वाणी को सुनता है और लेख को देख सकता है किन्तु उनका स्वरूप उससे मस्तिष्क में या तो धुंधला बनता है अथवा सर्वथा नहीं बनता है।

वाणी अथवा लेख को उत्पन्न करने वाली गतियों का शासन सावेदनिक संस्कारों द्वारा नियन्त्रित होता है। जब हम बोलते हैं तो हम अपने शब्दों की श्रवण स्मृति से काम लेते हैं जिसके द्वारा अपने भाषण की ठीक शब्द रचना को नियन्त्रित करते हैं और जब हम लिखते हैं तो हम दर्शन स्मृति द्वारा अपनी रचना को ठीक प्रकार लेख बद्ध करते हैं। इसीलिये प्राय. अकेली गति वहक अथवा सांवेदनिक शब्द वाहनियो जन्य मूकता रोग नहीं देखने में आता है अपितु दोनों की सयुक्त विकृति जन्य ही मूकता रोग प्रायः होता है।

बाल्य कालान्तर, मस्तिष्क का वाणी केन्द्र वाम अर्द्ध मस्तिष्क की मूल के घोड़े के खुर की नालवत् क्षेत्र में स्थित रहता है इसके अन्तर्गत ये भाग भी होते हैं—

१—शङ्ख तोरणिका उत्तरा उभार।

२—कोणाकार परिधि उत्तरा वलित उभार (शब्द दर्शन)।

३—तृतीय सामने के वलित उभार का वाह्य सिर (भाषण)।

४—द्वितीय सामने के वलित उभार का वाह्य सिर (लेखन)।

५—लघु मस्तिष्क मूल का त्रिकोणाकार क्षेत्र।

यद्यपि इन विभिन्न केन्द्रों के विभिन्न कार्य वर्णित हैं तथापि ये केन्द्र परस्पर मस्तिष्क मूल के श्वेत पदार्थ में तन्तुओं द्वारा इतने गहरे गुथे हुए हैं कि एक ही प्रकार की नितान्त मूकता बहुत ही कम पाई जाती है। भाषण केन्द्र के सामने वाले भाग के दूषित होने

पर प्रधानतया गति वाहक (Motor) मूकता उत्पन्न होती है और पीछे वाले भाग के प्रभावित होने पर प्रधानतया संविदनिक (Sensory) मूकता उत्पन्न होती है।

तीन प्रकार की मुख्य केन्द्र गामी शब्द वाहनियां भाषण केन्द्र को जाती है।

१—दर्शन मूल के लघु श्रृङ्ग से कोणाकार एव परिधि उत्तरा वर्त्नति उभार तक अन्तर्गामी शब्द वाहनियां— इस मार्ग के प्रभावित होने पर 'शब्दान्धता' (Word blindness) उत्पन्न होती है अर्थात् लेख को ग्रहण करने में असमर्थता होती है।

२—शङ्खास्थि उभार के श्रवण तन्तु से शङ्खतोरणिका उत्तरा उभार तक अन्तर्गामी शब्द वाहनियां— इस मार्ग के प्रभावित होने पर शब्द बाधिर्य (Word deafness) उत्पन्न होती है अर्थात् वाणी को ग्रहण करने भी असमर्थता होती है।

३—बृहद् मस्तिष्क तल के एक थैलेमस (Thalamus) पिण्ड से शङ्ख तोरणिका उत्तरा उभार तक अन्तर्गामी शब्द वाहनियां— इस मार्ग की खराबी होने पर शब्द रचना को ठीक तरह नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है।

मूकता मस्तिष्क मूल तथा उनके समीप के श्वेत पदार्थ के दुष्ट होने पर ही उत्पन्न होती है, मस्तिष्क के गम्भीर भाग से नहीं। यह कफ है। इसीलिये आयुर्वेद शास्त्र में कहा "*आवृत्य वायु सकफो*" कितना सार्थक है।

लक्षण

गति वाहक (Motor)—

रोगी का बोलना बहुत कम हो जाता है। कुछ शब्द कह लेता है यथा—हे भगवान रोटी खिला इत्यादि। अत्यन्त न्यून मूकता में रोगी पदार्थ को पहचान ठीक लेता है जो उसके सामने लाया जाया है और उसका उपयोग वह सकेतो द्वारा बता सकता है। किन्तु वह उस पदार्थ का नाम नहीं बता सकता है। यदि आप उसको रुपया बतावें तो वह यह तो कह देगा कि यह वह वस्तु है जिससे चीजें खरीदी जाती हैं परन्तु वह इसका नाम नहीं बता सकेगा। पुनः उसको कहा जाय कि यह रुपया है तो वह अपना स्वीकृती सूचक सिर हिला कर मुस्करा देगा। अत्यन्त भावुकावस्था उत्पन्न होने पर उस प्रभाव में रोगी कुछ असम्बद्ध भाषण भी करने लग जाता है जो अन्यथा कभी स्वाभाविक अवस्था में असम्भव है। इन लक्षणों के *साथ सार्थ लेखन असमर्थता भी होती है जब कि उसकी* अगुलियों और हाथ की अन्य सब गतियां ठीक होती हैं। इसमें रोगी हकला भी सकता है एक बार बोले हुए शब्द को दोहराता है। इसी प्रकार एक ही शब्द को बार-बार लिखता है।

साम्वेदनिक दोष जन्य लक्षण (Sensory aphasia)

शब्द बाधिर्य में रोगी वास्तव में बधिर नहीं होता है। वह सब शब्दों को सुनता है किन्तु बोले हुए शब्दों को वह समझ नहीं पाता है और जब वह स्वयं ही बोलने का प्रयत्न करता है तो उसके शब्द टूटे फूटे होते हैं उसकी शब्द बाधिर्यता उसकी बोली हुई गलतियों का उसको ज्ञान नहीं होने देती हैं। वह गलत शब्दो का प्रयोग करता है और शब्दों को वाक्यों में मिला

(पृष्ठ २५६ का शेषांश)

क्या? दाँत निकलवाने से मसूढ़ों का मवाद या नाड़ी व्रतः मिट सकेगा? यह दाँत रोग ऐसे नहीं जो लवङ्ग तैल, पिपरमेंट, अमृतधारा तथा परमेंगनेट आफ पोटास के व्यवहार से मिट सकें।

पायोरिया रोग को मिटाने की सैकड़ों पेटेण्ट औषधियाँ बाजार में बिकती हैं, लेकिन विश्वस्थ कोई औषधि देखने में न आई। हाँ सफल चिकित्सक ही इसमें बाजी लेते हैं।

देता है। आंशिक शब्द बाधिर्य रोगी जब किसी वस्तु का नाम कहना चाहता है तो वस्तु अभिप्राय अतिरिक्त शब्द बोल जाता है जैसे वह खाड माँगना चाहता है परन्तु बोल जाता है लवण।

शब्दान्धता में रोगी देख सकता है किन्तु छपे हुए शब्दों का वह कुछ अर्थ ग्रहण नहीं करता है। कुछ नहीं समझता है। अकेली शब्दान्धता बहुत ही कम उत्पन्न होती है।

उग्र प्रकार की मूकता में मानसिक विकृति भी कुछ सीमा तक उत्पन्न हो जाती है। इसमें दक्षिणाङ्ग का पक्षवध हो जाता है। मानसिक विकार मूकता के अनुपात के अनुसार ही उत्पन्न होते हैं। सब से अधिक मानसिक विकार शब्द बाधिर्यता में होता है जबकि बोलने में शब्दों का ठीक चयन नहीं होता है। इसमें रोगी एकाग्रचित्त नहीं हो पाता है और रोगी शीघ्र ही थक जाता है और उकता जाता है।

सम्प्राप्ति

मस्तिष्क के भाषण क्षेत्र में किसी भी प्रकार का दोष उत्पन्न होने पर यह रोग उत्पन्न हो सकता है यथा—

१—जब मूकता का आक्रमण यकायक हो तो इसका सब से अधिक कारण मस्तिष्क मूल की वाम मध्य धमनी में रक्त ग्रंथी (Thrombosis) का निर्माण है।

२—उसी धमनी में रक्तावरोध अथवा वायु ग्रंथी का उत्पन्न होना भी यकायक मूकता उत्पन्न करने का कहीं २ कारण होता है।

३—मस्तिष्कार्बुद (Cerebral tumour)।

४—मस्तिष्क विद्रधि—शनैः-शनैः मूकता उत्पन्न करती है। जब विकार शङ्ख मूल को दूषित करता है तब शब्द बाधिर्य उत्पन्न होता है।

५—मस्तिष्क की तीन झिल्लियों में से सब से कठोर तन्तुमय झिल्ली के नीचे होने वाला रक्तार्बुद शनैः शनैः मूकता उत्पन्न करता है।

६—मस्तिष्क की चोट से भी यह उत्पन्न होता है। परन्तु वह असम होता है कभी हो जाता है कभी नहीं।

यह असम मूकता के आक्रमण निम्न लिखित रोगों में भी होते हैं।

१—वातिक शिरःशूल।
२—अपस्मार।
३—मस्तिष्क धमनी काठिन्य।
४—उन्मादो के सर्वाङ्गवध में।
५—मूत्रविष (Uraemia) में।

रोग विमर्श

इस रोग का अच्छा होना या न होना कारणों पर निर्भर करता है। धमनी, शिरा, केशिकाओं जन्य विकार में थोड़े समय तक रोग की गति विधि का निरीक्षण करना पड़ता है। यकायक कोई निर्णय नहीं कर देना चाहिए। इसमें कुछ समय बाद स्वतः रोग ठीक हो जाता है यद्यपि उसका पुनराक्रमण हो सकता है।

चिकित्सा

अर्बुद, रक्तार्बुद अथवा विद्रधि जन्य होने पर उस स्थान की शल्य क्रिया (Operation) करने से रोग ठीक हो जाता है। शेष में औषधियों के अतिरिक्त निम्न लिखित अभ्यास धैर्य से पर्याप्त समय तक कराते रहने से लाभ होता है यथा गतिवाहक विकार में—

१—रोगी को अपने आप बातचीत करने के लिये बार-बार प्रेरित एवं प्रोत्साहित किया जावे।

२—रोगी को वस्तुयें जैसे पुस्तक, पेन्सिल, शीशा, चाकू आदि बताकर उनके नाम पूछना चाहिए।

३—रोगी को अपने आप लिखने के लिये बार-बार प्रेरित करना चाहिए। सावेदिक विकार में—

४—रोगी को नाना प्रकार की आज्ञा देकर उनको उसके द्वारा कार्यान्वित कराने का प्रयत्न करना

चाहिए जैसे बैठाओ, खड़ा करो, हाथ ऊंचा उठवाओ आदि।

५—लिख कर पालनार्थ आदेश देना—यथा जीभ दिखाओ।

६—कठिन शब्दों को उच्चारित करने के लिये कहना—जैसे मस्तुलुङ्ग आदि।

७—किसी लेख की नकल करवाना।

८—बोल कर लिखवाना।

९—जोर से लिखे हुए को पढ़ना और उसका अर्थ समझाना।

औषधि चिकित्सा

इसकी दो ही औषधि हैं—

सारस्वतादि घृत (भाव प्रकाशोक्त)

योग—

४४३—शिग्रु (सहजन) बच
सेंधव धाय के फूल
पठानी लोध पाठा
प्रत्येक सम भाग

—लेकर कल्क बना कर घृत पाक विधि के अनुसार बकरी का दूध एवं घृत डाल कर घृत बनालें।

मात्रा—६ माशा प्रातः ६ माशा सायं काल दूध या सब्जी के साथ ४० दिन तक या इससे अधिक समय तक प्रयोग करना चाहिए।

कल्याणावलेह (चक्रदत्त)

योग—

४४४—हल्दी बच
कूठ पीपल
सोंठ जीरा
अजमोद मुलहठी
सेन्धव प्रत्येक समभाग

—लेकर कपड़ छन चूर्ण करके रखलें।

मात्रा—२ माशा, दिन में ३ बार। अल्प दोष में घृत के साथ, उससे अधिक में मधु के साथ, उग्र में आर्द्रक स्वरस के साथ लेहन देना चाहिए। इसका उपयोग ४० दिन तक करना चाहिए।

सहज मूकता (Congenital aphasia)

सहज शब्दान्धता प्राय: पाई जाती है। यह विकार कुल परम्परा गत भी देखा जाता है और प्राय बालकों (पुलिङ्ग) में पाया जाता है। इसका सर्व प्रथम ज्ञान उस समय होता है जब कि बालक को पुस्तक पढ़ना सिखाया जाता है। यद्यपि वह बालक बुद्धिमानी के साथ साफ़-साफ बोल सकता है और कण्ठस्थ वाक्यों को कह सकता है किन्तु वर्णाक्षरों को सीखने में उसे कठिनता आती है। उसको कोई लेख बता कर पढ़ना नहीं सिखाया जा सकता है। सहज शब्द बाधिर्य में बोले हुए शब्दों को ग्रहण करने की शक्ति में कठिनता होने के कारण बालक को नपुंसक समझ लिया जाता है। यदि उसके साथ बात चीत करने का प्रयत्न भी किया जावे तो वह खाली बिलबिलाता है। वह सुनता है इसके लक्षण उपस्थित होते हैं और वस्तुओं को देख कर उनका उपयोग भी सीख लेता है, उसकी चेष्टायें भी स्वाभाविक होती है परन्तु वस्तुओं का नाम नहीं ले सकता है। समुचित शिक्षण प्रबन्ध से शब्द बाधिर्य वाले बालक संतुलित मन वाले मनुष्य बन सकते हैं।

जिह्वा शोथ (Glossitis) तथा मुखपाक (Stomatitis)

रोगी विवरण

लेखक—कविराज रामलाल जी रावल वैद्य नङ्गलटोन

०प्रिय श्री कविराज जी १६१२ से चिकित्सा कार्य करते हैं। आप अच्छे अनुभवी चिकित्सक हैं। आपने ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के पाठकों के प्रति अपने हुए प्रत्यय अनुभव भेंट किये हैं। विपत्त की शरण लेने के लिये स्वय ही वे दुःखी है। ऐसे अनेक चिकित्सक होंगे परन्तु अपवाद की चिंता न करते हुए स्पष्ट सत्य को व्यक्त करने वाले आत्मा विरले ही होते हैं। ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के प्रकाशन का स्पष्ट अभिप्राय यही है कि वैद्य समाज अपनी त्रुटियों को अनुभव करता हुआ परमुखापेत्ती न रह कर स्वावलम्बन पथ का पथिक बने।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

भारत के खण्ड होने से पूर्व मैं पश्चिमी पञ्जाब में चिकित्सा कार्य करता था। फरवरी १६४४ में मेरे पास एक गांव से एक मुसल्मान आया और अपनी एक रोगिणी को देखने के लिये मुझे गाँव चलने को कहा। ११ बजे दिन के मैं उसके गांव गया। रोगिणी को देखा उसकी अवस्था निम्न प्रकार की थी—

ज्वर १०३° (कत्ता में), नाड़ी की गति १२० प्रतिमिनट तथा श्वास ३२ प्रतिमिनट, पेट, फुफ्फुस, हृदय, यकृत आदि में कोई विशेष विकार नहीं था परन्तु उसकी जिह्वा बहुत सूज रही थी। इस ओर भारत में तो कभी अवसर नहीं मिला परन्तु पञ्जाब में प्राय ऐसे भिक्षुक देखे जाते थे जो अपने नाक के छिद्रों को बन्द कर लेते थे और मुख भी जितना खुल सके खोल कर कोई चीज ऐसी प्रयोग करते थे जिस से मुख पत्थर से बन्द हुआ हुआ दृष्टिगोचर हो, नाक में भी पूरे फिट आने वाले पत्थर ही नजर आते थे और ऐसा प्रतीत होता था जैसे श्वास प्रश्वास के यह दोनों मार्ग पत्थर से सर्वथा बन्द हों। उन भिक्षुकों को भी यही दिखाना अभीष्ट होता था कि वह इतने सिद्ध हैं कि श्वास प्रश्वास का क्रमबन्द होने पर भी वह जीवित हैं। इस प्रकार वह सारे गाँव या शहर में फिर कर भिक्षा वृत्ति करते थे। ठीक इसी प्रकार उस रोगिणी की अवस्था थी, अन्तर यह था कि उसके नासिका द्वार खुले थे और श्वास प्रश्वास का क्रम सुव्यवस्थित रूप से चल रहा था। मुख की यह अवस्था थी कि जिह्वा सूज सूज कर मुख को खोलती गई अब मुख इस से अधिक नहीं खुल सकता था। ऐसा प्रतीत होता था कि मुख को भली प्रकार खोल कर उसे एक पत्थर से बन्द कर दिया है। मुख द्वारा वायु आ जा नहीं सकती थी, एक बूंद जल भी अन्दर नहीं जा सकता—यह रोग जिह्वा शोथ (Glossitis) था जो कि किसी कीटाणु जन्य विष का परिणाम था। आयुर्वेदिक चिकित्सा यहा काम नहीं दे सकती थी। हो सकता है ऐसी अवस्था में शिरा द्वारा रक्त मोचण या शोथ वाले स्थान पर जलौका लगाने से ऐसा रोग दूर होजावे परन्तु यह निश्चित नहीं है। हमें स्मरण है कि आज से २०-२५ वर्ष पूर्व फुफ्फुस आवरण या फुफ्फुस प्रदाह में प्राय. रक्त मोक्षण

कराया जाता था परन्तु इस उपचार से २-४ प्रतिशत रोगी ही लाभान्वित होते थे। प्राय: रक्त मोक्षण से दुर्बलता अधिक बढ़ जाती थी। जिस से रोगी रोग का मुकाबिला करने के अयोग्य होजाता था। अस्तु ! मैंने इस रोगिणी को M. B. 693 की एक एम्पुल का सूचीवेध दे दिया और वापस चला गया। सायं काल ५ बजे मैं फिर रोगिणी को देखने गया ज्वर उतर चुका था जिह्वा की शोथ का लेश भी नहीं था! रोगिणी सर्वथा स्वस्थ हो चुकी थी !! चरक भगवान के वाक्य "तवेद युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते" को समक्ष रख कर वैद्य होते हुए एलोपेथिक औषधि प्रयोग करने में लज्जा के स्थान पर मुझे रोगिणी को इतना शीघ्र रोग मुक्त हुआ देख कर बहुत प्रसन्नता हुई, हां आयुर्वेद की त्रुटि अवश्यमेव खटकी और अब भी प्राय इसका आभास होता रहता है।

दूसरी रोगिणी

मुख पाक (Stomatitis) के रोगी चिकित्सक को प्राय. देखने को मिलते रहते हैं। इस रोग के कई कारण होते हैं बच्चों को दन्तोद्भेद के समय प्राय यह रोग हो जाता है। अनुचित रूप में (न्यून या अधिक मात्रा में दुग्धादि आहारीय द्रव्य सेवन) पालन पोषण होने से भी बच्चे मुख पाक के शिकार बने रहते हैं, यदि माता मरिचादि तीक्ष्ण पदार्थों का अधिक सेवन करती हो अथवा विबन्ध, अतिसार, क्षय आदि रोगों से पीड़ित हो तो भी ऐसी माता का स्तन पान करने वाले शिशु इस रोग से आक्रान्त रहते हैं। बड़ों को यह रोग मद्य, मरिचादि तीक्ष्ण पदार्थ, तम्बाकू, चाय, गुड़ आदि का सेवन ज्वर, दन्तपूय, दन्तवेष्ट, गलशुण्डिका, ग्रहणी, पारदयोग सेवन, फिरङ्ग, दांतों की कृत्रिम प्लेट जो कि फिट न आती हो, सोते समय मुख खोल कर सोना आदि कई कारणों से होता है। मुख बेचारे की अवस्था भी विचित्र है मनुष्य की लालसा को पूरा करने के लिए भोज्य पदार्थों को अन्दर जाने की आज्ञा दे देता है और फिर इन से उत्पन्न हुए विकारों की सजा भी प्राय: सब से पूर्व इसे ही भोगनी पड़ती है अस्तु! उपरोक्त मुख पाक उत्पादक कारणों के अतिरिक्त जीवनीय द्रव्य न्यूनता (Hypo vitaminosis) भी इसका एक कारण होना सिद्ध हुआ है। इसकी कुछ सक्षिप्त व्याख्या आगे चल कर करूंगा। मुख पाक रोग में, मसूढ़े, ओष्ट, जिह्वा, तालु आदि मुख के अन्दर के सब भाग रोगाक्रान्त हो सकते हैं। जिह्वा शोथ युक्त तथा मैली होती है। लाला प्रसेक अत्यन्त अधिक मात्रा में होता है, बच्चे स्तन पान नहीं कर सकते और बड़ों को भोजन करते समय अत्यन्त कष्टानुभव होता है।-

मैंने ऊपर मुख पाक का थोड़ा सा विवरण दिया है इसका विस्तृत वर्णन चिकित्सा आदि मेरा आज का विषय नहीं है। मैंने तो केवल अपनी एक रोगिणी का विवरण आप महानुभावों के समक्ष रखना है अस्तु !

मेरे पास यहा १२ अक्टूबर को एक रोगिणी आई उसने बताया कि उसे मुखपाक की शिकायत प्राय: रहती है। पाच सात दिन आराम हो जाता है और पुन १०–१५ दिन यह कष्ट भोगना पड़ता है। कुछ खाया पीया नहीं जाता। क्षुधा नाश तथा विबन्ध भी इस रोग के होने के समय हो जाते हैं। दुर्बलता, सांस फूलना, सर चकराना आदि विकार प्रायः रहते हैं। जब इस रोग से कुछ आराम होता है तो दुर्बलता आदि में भी कुछ अन्तर पड़ जाता है आदि। मैंने रोगिणी को देखा उसकी जिह्वा बहुत से स्थानों पर फटी हुई तथा शोथ युक्त थी। जिह्वा के नीचे और गले के अन्दर बड़े-बड़े छाले बन रहे थे, ओष्ट तथा ओष्ट कोण बहुत फटे हुए तथा पूय युक्त हो रहे थे, मुख से दुर्गन्ध आती थी और मसूढ़े भी पूय युक्त थे। रोगिणी का यकृत ३ अंगुल बढ़ा हुआ, पेट थोड़ा शोथ युक्त हो रहा था। क्षुधा नहीं लगती थी और विबन्ध प्राय: रहती थी। चलने से सांस फूल जाता था, रक्त न्यूनता (Anaemia) के कारण हृदय स्पन्दन अधिक मात्रा में होता था। रोगिणी का एक छोटा बच्चा भी था

जिसे उसको स्तनपान कराना पड़ता था। रोगिणी की भली प्रकार परीक्षा करने पर मैंने इसे जीवनीय द्रव्य न्यूनता (Avitaminosis) रोग होना निश्चित किया। मुखपाक (Stomatitis), रक्त न्यूनता, (Anaemia), यकृति वृद्धि (Enlargement of the liver) आदि सबका कारण यही जीवनीय द्रव्य न्यूनता ही थी। जीवनीय द्रव्य ख २ (Vitamin B 2-Riboflavin) की न्यूनता से जिह्वा पर मैल होना (Furred tongue), जिह्वा शोथ (Inflamation of the tongue), फटना (Fissure), मुख के छाले (Stomatitis), ओष्ठों का रक्त वर्ण, शोथ युक्त होकर फिर फट जाना (Cheiliosis) आदि लक्षण होते हैं। इसी प्रकार जीवनीय द्रव्य ख७ (Nicotinic acid) तथा जीवनीय द्रव्य ग (Vitamin c) की न्यूनता से भी कई प्रकार के मुखपाक होते हैं। रोग निश्चय कर लेने पर मैंने उसका उपचार निम्न प्रकार प्रारम्भ किया—

१—हर दूसरे दिन (Vitamin B compley) - २ c. c का सूचीवेध।

२—(Yeast tablets) दो टिकिया भोजन करने के पूर्व प्रातः तथा सायं।

निम्न मिश्रण—

४४५—Soda bicarb	10 gr.
Tr cardco	20 m.
Sphamonarm	20 m.
Spt. chloroform	10 m.
Ext. taraxaci lqd	20 m.
Ext cascara sag lqd	20 m.
Aqua 1 z	

ऐसी एक-एक मात्रा प्रातः तथा सायं भोजनोपरान्त देने की व्यवस्था की।

दांतों पर मलने के लिये उसे पायोरिया नाशक मञ्जन दिया गया और विटामिन के ६ सूचीवेध के उपरान्त उसे ३ इन्जैक्शन L ver Ect. 2 c. c. के दिये इस प्रकार २२ दिन की चिकित्सा से रोगिणी सर्वथा स्वस्थ हो गई और पुनः उसे कोई कष्ट इस समय तक नहीं हुआ। अब वह खूब हृष्ट पुष्ट है।

मैं समझता हूं उपरोक्त रोगियों का विवरण देकर मैंने आयुर्वेद तथा आयुर्वेद प्रेमियों की कोई सेवा नहीं की प्रस्तुत ऐलोपैथी प्रचार से दोष का भागी बना हूं। परन्तु मेरे जैसे वैद्य मार्ग विचलित होकर ऐलोपैथी की ओर क्यों भागते हैं। इसका कारण यदि आज्ञा हुई तो फिर कभी निवेदन करूंगा। इस समय तो पूज्य गुरु वर श्री कवि हरदयाल जी की आज्ञा का पालन करते हुए यह थोडा अनुभव भेंट किया है। चिकित्सा कार्य में आयुर्वेद के भी कई चमत्कार अनुभव में आए हैं। यह भी फिर किसी समय को छोड़ता है।

जिह्वा की रचना
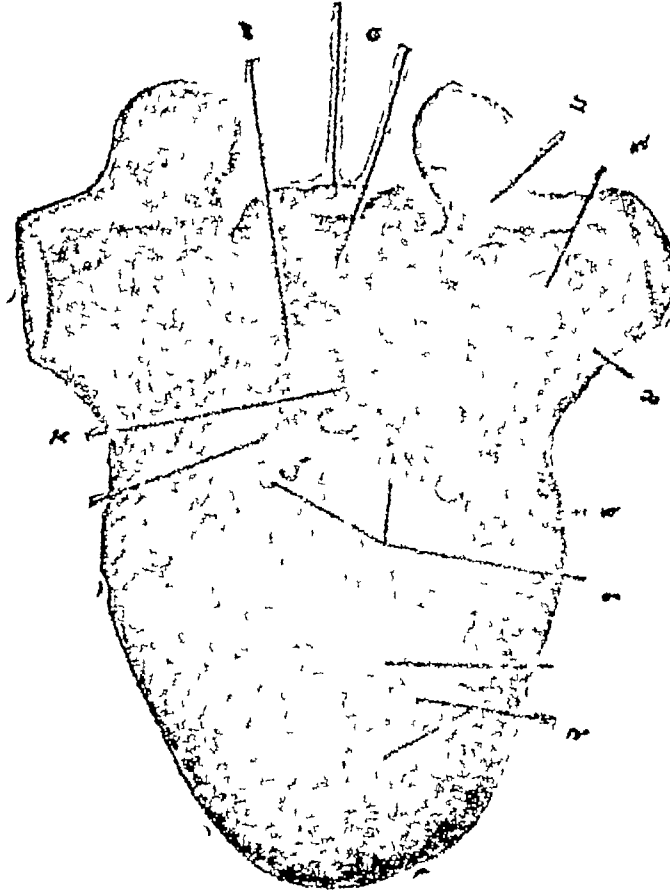
१ — खातिवेष्टिताकुर
२—छत्रिकाकुर
३—गल शुण्डिका
४—तालु एवं जिह्वा संयुक्ता महराव
५—गुप्त छिद्र
६—सूत्रांकुर
७—उपजिह्वा
८—तालु एव गलकोप सयुक्ता महरान
९—गल कोप वाला जिह्वा का भाग

जिह्वा रोग

लेखक—वैद्य पं० कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न, नाथद्वारा (राजस्थान)

प्रिय पं० कृष्णचन्द्र शास्त्री नाथद्वारा (राजस्थान) के प्रसिद्ध चिकित्सक हैं। आपने प्रांत में आपका उत्तम प्रभाव है। साहित्यिक क्षेत्र में भी आपकी अच्छी गमता है।

जिह्वा और उसके रोगों के सम्बध में आपने चिन्ता कर्षक विवेचन उपस्थित किया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

जिह्वा के कार्य

जिस प्रकार शरीर में मुख का प्रधान स्थान है उसी प्रकार मुख में जिह्वा का प्रधान महत्व है और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अन्तर्गत इसका ग्रहण किया जाता है। इसके द्वारा हम लौकिक अलौकिक सभी रसों का स्वाद ले सकते हैं और परम सन्तुष्टि का अनुभव प्राप्त करते हैं।

भोजन का ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिसका स्वाद यह न जान ले। इस परिज्ञान स्वाद के पहिचानने के अतिरिक्त यह बोलने तथा विचारों, भावों को व्यक्त करने का साधन भी है। इसके द्वारा हम छोटे को महान्, महान को छोटा, रोगी को निरोगी, निरोगी को रोगी, दुःखी, सुखी, मित्र शत्रु बना सकते हैं। अपनी मूर्खता एवं बहुज्ञता का परिचय दे सकते हैं।

यह मुख के पदार्थों को गले से नीचे उतारने का काम भी बड़ी सफलता से करती है। इसके द्वारा दन्त स्थित फसे हुए पदार्थ भी निकाले जाते हैं। इससे इसे एक कूर्चिका का नाम दिया जाय तो असङ्गत न होगा। यह सारे शरीर की अधिष्ठात्री और हमारे लिये नितान्त उपयोगी है। किन्तु फिर भी इसके स्वरूप का परिज्ञान सर्व साधारण से परे की चीज है।

जिह्वा की रचना

यह मुख के भीतर दाँतों से घिरी हुई निवास करती है। इसके ऊपर के हिस्से में तालु, नीचे के हिस्से में हनु का भाग रहता है। इसका अग्र भाग नुकीला, जड़ मोटी तथा चौड़ी होती है। साधारणतया रङ्ग गुलाबी सा होता है परन्तु जब शरीर में रक्त की न्यूनता हो जाती है तो इसका रङ्ग फीका भी पड़ जाता है। अजीर्णाक्रान्त रोगियों की जिह्वा मैल से आच्छादित और दुर्गन्धि पूर्ण हो जाती है। जिसके कारण रङ्ग श्वेत या भूरा सा दिखाई देने लगता है।

साराश यह है कि रोगों के अनुसार जिह्वा में अनेक रङ्गों के परिवर्तन होते रहते हैं। जिह्वा मांस के द्वारा बनी हुई है, उस पर मोटी श्लेष्मिक कला चढ़ी रहती है। वह कई मांस पेशियों द्वारा निम्न हन्वस्थि,

शिफा प्रवर्धन और कण्ठकास्थि से बधी रहती है। जिस मांस मे वह बनी है उसके सङ्कोच और विस्तार से वह छोटी, बड़ी, चौड़ी, पतली हो जाती है। जिन मांस पेशियों द्वारा वह अस्थियों से बधी है उसके सङ्कोच और विस्तार से वह मुख के बाहर निकल आती है और स्वाभाविक रीति से ही भीतर चली जाती है, तथा मुख के भीतर गमन शील होती है।

जिह्वा के ऊपर के पृष्ठ की श्लेष्मिक कला में अनेक छोटे बड़े दाने दिखाई देते हैं। ये दाने या उभार सौत्रिक तन्तु, नाड़ी सूत्र और रक्त केशिकाओं के इकट्ठे होने से बनते हैं। इन सब चीजों के ऊपर सैलों की कई तह चढ़ी रहती हैं। जिनका परिज्ञान चिकित्सकों को सरलता से हो सकता है।

मुख्यतः जिह्वा पर तीन प्रकार के दाने हुआ करते हैं जो नौ या दस बड़े बड़े दाने, जिह्वा मूल पर दिखाई देते हैं। ये दाने दो पक्तियों में रहते हैं जो पीछे जाकर एक दूसरे से मिल कर एक वृहत् कोष बनाते हैं। प्रत्येक दाने के चारों ओर एक खाई रहती है इस खाई के कारण ये दाने "खातवेष्टितांकुर" कहलाते हैं।

इसके अतिरिक्त खात की दीवारों मे दबे अनेकों छोटे सेल समूह होते हैं जिनको स्वाद दोष कहते हैं।

दूसरे प्रकार के दाने जिह्वा के किनारो और अगले सिरे पर पाये जाते हैं। ये छत्रिका नाम की वनस्पति के आकृति के अनुसार होने से "छत्रिकांकुर" कहलाते हैं। इनमें भी स्वाद दोष होते हैं।

तीसरे प्रकार के दाने पतले नोकीले होते हैं और जिह्वा में हर स्थान पर पाये जाते हैं ये बहुधा समान्तर पक्तियों में रहते हैं इनको सूत्राकारांकुर कहते हैं। इनमे स्वाद के पहिचानने की शक्ति कम होती है। जिह्वा की नोक, मूल तथा किनारों में स्वाद पहचानने की शक्ति अधिक होती है। शेष भाग उष्णता इत्यादि ज्ञान के लिए काम में आते हैं।

स्वाद कोष

यह प्राय खातवेष्टितांकुरों और छत्रिकांकुरों में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त कोमल तालु के नीचे के पृष्ठ और स्वर यन्त्र छद के पिछले पृष्ठ पर भी रहते हैं। स्वाद दोष में एक छिद्र होता है जिसको स्वाद रन्ध्र कहते हैं। स्वाद दोष में दो प्रकार की सेल होती हैं।

१—एक रसज्ञ सेलें जो बीच में मोटी और शिरों पर पतली होती हैं इनके ऊपर के सिरे से एक बाल जैसे तार निकलते हैं ये बाल स्वाद रन्ध्र में रहते हैं।

२—दूसरे प्रकार की सेलें रसज्ञ सेलों को सहारा देने वाली होती हैं इनके द्वारा स्वाद का परिचय व ज्ञान तब ही हो सकता है जब घुली हुई वस्तु के अणु मुख के रसों में घुल कर अणु रसज्ञ सेलों के बालों से टकराते हैं और स्पर्श से जो प्रभाव इन सेलों पर पड़ती है उसकी सूचना नाड़ी केन्द्रों द्वारा मस्तिष्क के स्वाद केन्द्रों को पहुंचती है। ये तार जिह्वा से पिछले १/३ भाग से जिह्वा कण्ठ नाड़ी द्वारा मस्तिष्क में पहुचते हैं। अगले २/३ भाग के मौखिक नाड़ी द्वारा मस्तिष्क को जाते हैं। इस प्रकार दोनों नाड़ियों के तार स्वाद केन्द्र में पहुँचते हैं।

जिह्वा के द्वारा षट् रसों का भिन्न भिन्न रूप से स्वाद लिया जाता है जैसे मीठा स्वाद जिह्वा के आगे के नोंक से, कडुआ पिछले भाग से, तीखा दोनों किनारों से, लवण का अगली नोक से अनुभव किया जाता है।

जिह्वा निदान

मिथ्या आहार के सेवन करने, दोषों के कुपित होने आदि अनेक कारणों से जिह्वा में छः प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं वह इस प्रकार है—१—वातज, २—पित्तज, ३—कफज, ४—आलस, ५—अधिजिह्व, ६—

उपजिह्व ।

वातज—

जिह्वानिलेन स्फुटिता प्रसुप्तावभेच्चशाकच्छादन प्रकाश ।

वात से कुपित होने से जीभ फट जाती है उसका रस जाता रहता है और शाक के पत्ते की भांति जिह्वा खरदरी हो जाती है ।

पित्तज—

पित्तेन पीता परिदह्यतेच दीर्घैः सरक्तै रपि कण्ठकैश्च ।

पित्त के दोष से रसना पीली हो जाती है। उसमें जलन होने लगती है और लाल लम्बे-लम्बे काटे जीभ पर दिखाई देने लगते हैं ।

कफज—

कफेन गुर्वी बहुला चिताच् मासोच्छ्रयैः शल्मलि कंठकाभैः ।

कफ से जीभ भारी तथा मांस के ऊंचे-ऊंचे सेमर के से कांटों से व्याप्त हो जाती है ।

अलास—

जिह्वातलेय. श्वयथु' प्रगाढ सोऽलास सञ' कफ रक्त मूर्ति ।
जिह्वासतुस्तम्भयति प्रवृद्धोमूलेन्च जिह्वाभृशमेतिपाकम् ॥

इसमें जीभ पर कफ रक्त के द्वारा बड़ी भारी सूजन हो जाती है। इससे इसको अलास संज्ञा दी है यह रोग अधिक बढ़ने पर जिह्वा को स्तम्भित कर देता है और जिह्वा की जड़ पक जाती है ।

अधिजिह्वा रोग—

जिह्वागुरूप. श्वयथुः कफातु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्व खलु रोग एव विवर्जयेच्चागतपाकमेनम् ।

रक्त कफ से जीभ के ऊपर अग्र भाग का शोथ उत्पन्न हो जाता है और यह पकने पर असाध्य हो उठता है। अतः सफल चिकित्सक इस प्रकार के रोगी को त्याग दे ।

उपजिह्वा रोग—

जिह्वागुरूपः श्वयथु. सजिह्वा मुन्नम्यजातः कफरक्तमूर्तिः ।
लालाकरः कण्डुयुत सचोप. सातूप जिह्वापठिता भिषग्भिः ॥

कफ रक्त से जीभ टेढ़ी हो जाती है सूजन बढ़ जाता है। लार बहती है और खुजली चलती है दाह होता है। इससे इसको वैद्यों ने उपजिह्व रोग की संज्ञा दी है।

अनुभूत योग

४४६—जीभ का रक्त मोचन कराना जिह्वा रोग के लिये उपयोगी है ।

४४७—गुरच	पीपल
नीम की छाल	कुटकी

—इनके क्वाथ से कुल्ले कराना भी जिह्वा रोग निवृत्ति के लिये अच्छा यत्न है ।

४४८—सोंठ	मिरच
पीपल	जवाखार
हरड़	प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण जीभ पर लगाने से जिह्वा रोग दूर होता है ।

४४९—कचनार की छाल के क्वाथ के कुल्लों से भी इसमें शान्ति मिलती है ।

४५०—घाव और छाले के लिये शहद का गण्डूष, दाह और तृषा पर दूध, घी का गण्डूष, त्रिफला के साथ मधु मिला कर कुल्ले करना भी अधिक लाभप्रद है ।

४५१—राई	बड़ी हरड़
सोंठ	नौसादर
अकरकरा	प्रत्येक समभाग

—ले पीस कर जीभ पर मलने से भी जिह्वा रोग पर लाभ होता है ।

४५२- जीभ पर जलन होने पर दही को पानी में मिला कर कुल्ले करना और कत्था जीभ पर मलना भी इस रोग पर उपयोगी है ।

४५३- मसूर जलाकर उसके बराबर कत्था मिला कर जीभ पर फूके । तथा—

४५४—बड़ी इलायची, के दाने छालिया दोनों जलाकर महीन पीसकर जीभ पर बुर्के । तथा—

४५५—बकायन की छाल और सफेद कत्था भी इसका अच्छा उपयोगी साधन है ।

—विचारिये—

औषधि एक ऐसा विश्वस्तनीय तीर है जिसके बल पर चिकित्सक रोग रूपी शत्रु से लड़ने को सदा प्रस्तुत रहता है। उसे सदैव अपनी विजय पर विश्वास रहता है और इसी कारण वह कठिन से कठिन समय में भी वार करने में नहीं चूकता। यदि भीषण परिस्थिति सम्मुख उपस्थित हो और वैद्य का तीर रोग रूपी शत्रु का निग्रह न कर विफल हो जाय तो फिर चिकित्सक की आन बान पर आ बनती है और उसे उपस्थित शत्रु के सामने नत होना पड़ता है। पर यदि उसका तीर सच्चा निशांना लगाता है तो फिर उसके शत्रुओं को नत मस्तक होना पड़ता है तथा इष्ट मित्र भलाई का टीका लगाते हैं। यह है एक वैद्य के सफल युद्ध का परिणाम !

आयुर्वेद में ऐसे सैकड़ों प्रयोग हर रोग पर वर्णित हैं जिनके द्वारा चिकित्सक सदैव विजयी हो सकता है। पर "जिन खोजा तिन पाइयां।" अतः सबके विचार सुनना और उनसे सार ग्रहण करना अपना कर्तव्य है।

प्राणाचार्य आपको सबके विचार लाकर देता है व आपके विचार दूसरों के समीप में पहुंचाता है। अतः वह सबका मित्र है। आप अपने इस मित्र को स्वयं ही मनन कर न छोड़ दें वरन् अपने चिकित्सक मित्रों से उपर्युक्त भेद का स्पष्टीकरण कर उन्हें "प्राणाचार्य" मंगाने को प्रोत्साहित करें।

वै. [signature]

ऊर्ध्वंजत्रुगत रोग

लेखक—आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्रमोहन बी० ए० वैद्य विद्यानिधि, देहली

माननीय आचार्य महोदय अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी आयुर्वेद पर पूर्ण विश्वास, श्रद्धा और अटूट भक्ति रखते हैं। आप आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान, प्रवीण चिकित्सक, मर्म प्रदर्शी अध्यापक, अच्छे लेखक और उत्तम ग्रन्थ लेखक हैं। आपने कैयदेव (द्रव्य गुण शास्त्र) पर सुन्दर टीका की है। प्रारम्भिक विज्ञान लिख कर आपने वैद्यों और वैद्यक विद्यार्थियों को नव विज्ञान परिचिति के लिये अपार सुगमता उपस्थित की है। आपकी एक और कृति **यन्त्र शस्त्र परिचय** *अभी हाल में प्रकाशित हुई है। जिसे विद्यालयों में पाठ्यपुस्तक का स्थान प्राप्त है। पञ्जाब में आयुर्वेद की विद्या को सुव्यवस्थित रीत्या सञ्चालित करते हुए आपने सहस्रों आयु-र्वेदज्ञ संसार को दिए हैं।*

आपने अपने प्रस्तुत संक्षिप्त लेख में आयुर्वेदज्ञों को तुलनात्मक ढङ्ग से विमर्श करने का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है। यदि एवंविध चिकित्सकों ने तुलनात्मक विवेचन के द्वारा रोग निर्णयानुबन्धी निश्चय किया तो निःसन्देह निकट भविष्य में आयुर्वेद अपने उच्च आदर्श को प्रतिद्वन्द्वियों पर प्रकट करने की सफलता प्राप्त करेगा।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

कण्ठ शालूक क्या है ?

जत्र्वस्थि से ऊपर २ जो अंग विशेष कण्ठ, मुख, नासादि इन्द्रियां और मस्तिष्क स्थित हैं। यह सब ऊर्ध्वंजत्रुगत कहलाते हैं। ऐसी संक्षिप्त और सुन्दर संज्ञा ऐलोपैथी में नहीं मिलती। वहां प्राय यह Head and neck, or eye, ear, nose and throat diseases कहलाते हैं। यह समास नहीं, प्रत्युत समास विच्छेद है।

सर्व शरीर की अपेक्षा शिर एक छोटा सा अङ्ग है, परन्तु इस संकुचित स्थान में जगत् स्रष्टा ने पञ्च इन्द्रियें, मस्तिष्क (मन), कण्ठ, मुख, दांतादि नाना विधि रचनाओं का पुञ्ज बना दिया गया है, इसी कारण महर्षि चरक ने शिर का महत्त्व दर्शाते हुए उस

का यों लक्षण किया है—

प्राणाः प्राणभृतां यत्राश्रिताः सर्वेन्द्रियाणिच ।
यदुत्तमाङ्गमङ्गानां शिरस्तदभिधीयते ॥
(च० सू० अ० १७)

अर्थात् शिर (Head) वह है, जिस में प्राणियों के प्राण और सर्व इन्द्रियां (All vitalorgans) स्थित हैं और जो सब अंगों में श्रेष्ठ है।

संसार का शायद ही कोई ऐतिहासिक ग्रन्थ हो, जिस में शिर का ऐसा सुन्दर लक्षण किया गया हो।

ऊर्ध्वजत्रुजगत रोग यद्यपि संख्यातीत हैं, तो भी मुख्य २ रोग हमारे शास्त्रों में सुवर्णित हैं। उन में से मैं केवल एक रोग का संक्षेप में वर्णन चिकित्सा सहित करता हूं। वह यह है—

कण्ठ शालूक

इसका वर्णन सुश्रुत के निदान स्थान अध्याय १६ में यों मिलता है—

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टक, शूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्य स्तकण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥

अर्थ—जो ग्रन्थि (Gland) कोलास्थि मात्र (बदरास्थि तुल्य) कफ के कारण गले में कांटे की तरह चुभे, खर (खुदरी Rough), स्थिर (स्थायी, नष्ट न होने वाली), शस्त्र कर्म (छेदनादि) द्वारा साध्य होने वाली होती है, उसे *कण्ठशालूक* कहते हैं।

व्यक्तव्य—

यह ग्रन्थि गले (Throat) में एक या दोनों ओर सूज सकती है। ग्रन्थि के बढ़ने से वह खर वा कण्टकवत् प्रतीत होती है। थूक निगलने पर रोगी को कष्ट होता है। अतः 'कण्टकशूक भूतः- स्वर, स्थिर' आदि विशेषण दिये गये। शालूक का अर्थ है, कमल कन्द जो कमल की मूल में जल निमग्न रहता है। कण्ठ (गले) में ग्रन्थिवद्वत् होने से कण्ठ शालूक कहलाती है। यह चिरकाल तक स्थिर रहती है। कभी कभी दोनों ओर की ग्रन्थियां बढ़ कर इतनी बड़ी हो जाती हैं, कि गले का मार्ग अवरुद्ध होने से रोटी तो क्या तरल पदार्थ निगलना भी कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था में छेदन (Excisivn) की आवश्यकता पड़ती है। ग्रन्थि वा ग्रन्थियां काट दी जाती हैं। इसी कारण सुश्रुत ने शस्त्र निपात साध्य. (Curable by operation) कहा और आगे चल कर चिकित्सा स्थान के अध्याय २२ में लिखा है—

विश्राव्य कण्टशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत ।

इससे पूर्व तुण्डिकेरि और तत्पूर्व गलशुण्डी (Enlarged uvula बढ़ा हुआ काग) की क्रिया बताते हुए ऋषि ने 'छेदयेन्मण्डलाग्रेण, ऐसा कहा अर्थात् मण्डलाग्र शस्त्र से काटे।

कण्ठशालूक को अब क्या कहें ?

आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन संज्ञाओं को यदि प्रचलित करना है तो उनके वर्तमान भाषा नाम और अंग्रेजी नाम निश्चित किये जावें। मेरे विचार में कण्ठशालूक (Enlarged tonsils) के अतिरिक्त और कुछ नहीं। लोक भाषा में इसे 'गले, वा गले-पड़ना कहते हैं। मूल पाठ में 'ग्रन्थिर्गले' शब्द तो मिलते हैं। लोग केवल सुगम शब्द ग्रहण करते हैं। अतः 'गले, शब्द प्रचलित होगया। ग्रंथि वा कण्ठशालूकादि शब्द भूल गया जैसे अब अंग्रेजी में Tonsillitis (बढ़े हुए गले) संज्ञा का व्यवहार न करके लोग केवल (Tonsil) शब्द का प्रयोग करते हैं।

नवीन चिकित्सा में यह शस्त्र साध्य ही माना जाता है और (Guilotine) नामक शस्त्र से इन ग्रंथियों को काट दिया जाता है। यह शस्त्र मण्डलाग्र. (सुश्रुतोक्त) वत् ही है।

कण्ठ शालूक की चिकित्सा

यह ग्रंथि स्वाभाविक रूप से गले में दोनों ओर होती है। इसका ठीक कार्य अभी तक नहीं जाना

गया। तो भी प्रणाली विहीन ग्रन्थियों (Ductless glands) की तरह यह भी कोई स्राव (Secretion) गले में छोड़ती है, जिससे गला तर रहता है। जब यह ग्रंथि सूज जाती है, तो गला शुष्क और खर प्रतीत होता है अर्थात् कण्ठोपयोगी स्राव ग्रंथि से नहीं निकलता वा भीतर विकार रूप सञ्चित रहता है।

कारण

शीत जल, हिम (Ice) वा हिम कृत वस्तुओं (Ice-cream) आदि का अति योग, दही, खटाई, तैल, लाल मरिच का असात्म्य व्यवहार ही इन ग्रंथियों को बढ़ा देता है। इसी कारण हमारे शास्त्रकारों ने कफसंभूत. शब्द का प्रयोग किया। मुख रोगों के सामान्य कारण देखिये—

आनूपपिशितक्षीर दधिमत्स्याति सेवनात्।
मुखमध्ये गदान् कुर्यु क्रुद्धादोषाः कफोत्तरा. ॥
(माधव निदान)

कफोत्तरा. शब्द का ध्यान रखें। मूंगफली, वनस्पति तैल आदि तथा पकौड़े आदि पदार्थ सब अहित जानें।

चिकित्सा

कारण के प्रतिकूल होनी चाहिए। "संशोधन संशमन निदानस्य च वर्जनम्". यह चरक का वचन सर्वत्र उपादेय है। शीत जल, हिम, अति मधुराम्ल, तैल, अशुद्ध घृत, दही, खट्टी लसी, इमली आदि का प्रयोग वर्जित करे। रोगी को प्राय. सात्म्य पदार्थों का सेवन कराना चाहिए। कोष्ण जल सर्वदा विहित है।

लवण, स्फुटिका, कत्थादि के गण्डूष, पोदीना का सूक्ष्म चूर्ण, अपामार्ग क्षारादि का गलों पर लगाना (प्रतिसारण), देशी चाय या गुलबनफसा का फांट पीना, कण्ठयीयूषादि वा गले पर लगाना, च्यवनप्राश, एलादि वटी, खदिर वटी, मरिचादि वटी (कफ भूयिष्टे) इत्यादि वस्तुओं का प्रयोग चूषणार्थ कराया जावे। नादयाने खताई का फांट भी उपयोगी है, एवं तुलसी या पोदीने का फांट दिया जा सकता है। साधारण अवस्था में इन उपायों से पर्याप्त लाभ होता है अन्यथा सुश्रुत का वचन "शस्त्रनिपात साध्यः" अवलम्बनीय होगा।

गलशुण्डी (Elongated uvula) की चिकित्सा प्रायः गलशालूकवत् समझें। अतिप्रवृद्ध अवस्था में शस्त्र कर्म भी करना पड़ता है।

'छेदयेन्मण्डलाग्रेण' सुश्रुत।

इससे आगे सुश्रुत ने यों लिखा है—

मरिचातिविषा पाठावचा कुष्ठ कुटन्नकैः।
क्षौद्रयुक्तै. क्षलवैस्ततस्ता प्रतिसारयेत् ॥
वचामतिविषा पाठा रास्नॉ कटुरोहिणीम्।
निःक्वाथ्य पिचुमंदं च कवलं तत्र प्रयोजयेत् ॥
....
....
क्षार सिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशनेहितः।
(सु० चि० अ० २३)

अतिविषा, मरिच, वचा, क्षारादि का यथा योग्य प्रयोग कराया जावे।

विशेष निवेदन

सम्भव है कि कोई विद्वान कण्ठशालूक को Tonsillitis न मान कर कुछ और रोग माने तो उसे यह स्पष्ट करना चाहिए कि Tonsils के रोग को कौन सा शास्त्रोक्त नाम दें।

नि० भा० आयुर्वेद महामण्डल, हिन्दू विश्वविद्यालयादि किसी संस्था द्वारा अथवा कुछ विद्वानों की सम्मति बैठ कर इन बातों पर विचार करे कि प्राचीन शास्त्रोक्त रोगों का लोक भाषा तथा अंग्रेजी में क्या नाम या पर्याय हो? अथवा लोक भाषा या अंग्रेजी में प्रचलित प्रसिद्ध-प्रसिद्ध रोगों का शास्त्रोक्त नाम क्या हो। आज कल के नवीन शब्द रक्तभार, फुफ्फुस प्रदाह, आन्त्रिक ज्वर आदि का प्रयोग वर्जित किया जावे।

गलशुण्डिका शोथ या गल शुण्डिका पाक
(Tonsilitis)

लेखक—वैद्यरत्न कविराज रामस्वरूप आयुर्वेदालङ्कार, रोहतक

> *श्रीयुत रामस्वरूप जी "आयुर्वेदालङ्कार पजाब के प्रसिद्ध एतिहासिक नगर रोहतक में स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसाय करते हैं। आप अपने नगर में प्रख्यात और निपुण चिकित्सक हैं। सामाजिक कार्यों में भाग लेने के कारण अच्छी लोक प्रियता प्राप्त है। आपने अपने प्रस्तुत लेख्य विषय को सतर्कता से सफल सम्पादन किया है।*
>
> *—आचार्य हरदयाल वैद्य*

गले में जिह्वा के दोनों पार्श्वों पर एक-एक कफ ग्रन्थी विद्यमान रहती है जिनकी शोथ को गलशुण्डिका शोथ कहते हैं और उन के पाक को गलशुण्डिका पाक कहते हैं।

कारण

अजीर्ण, प्रतिश्याय, गल शोथ, निर्बल अवस्था में सहसा गले में सर्दी लग जाता या अन्य कफ प्रकोपक कारणों से गलस्थ कफ का प्रकोप हो जाता है जिससे ये उपरोक्त गल शुण्डिका की कफ ग्रन्थियां फूल जाती हैं। यदि केवल कफ का ही प्रकोप हो तो गलशुण्डिका शोथ होकर हट जाता है। साथ ही यदि पित्त का भी प्रकोप हो जाये तो गलशुण्डिका का पाक भी हो जाता है।

बालकों में तथा कफ प्रकृति के युवकों में यह रोग चिरस्थायी रूप में भी हो जाता है।

यह रोग बहुत जनपद व्यापी है। ऋतु परिवर्तन के समय अधिक होता है। खसरा, चेचक, आन्त्र ज्वर, श्लेष्म ज्वर तथा उपदंश का एक लक्षण भी होता है। ऐलोपैथिक चिकित्सक इस रोग के कृमि अधिकतर Staphylo cocci और Strepto cocci समझते हैं।

लक्षण

निम्न लिखित मुख्य लक्षण होते हैं—

१-*ग्रन्थि शोथ*—रोगी के मुख को यदि खोल कर देखा जाय तो दन्त पंक्ति के अन्त में विद्यमान यह शुण्डिका ग्रंथि लाल और उभरी हुई दिखाई देती है तथा इस पर थोड़ी बहुत श्लेष्मा भी चिपकी रहती है। एक तरफ की ग्रंथि के फूलने के पीछे दूसरी तरफ की ग्रंथि भी फूल जाती है। कभी-कभी दोनों इतनी फूलती हैं कि आगे बढ़ कर दोनों एक दूसरे के समीप आजाती है। निम्न हनु अस्थि के पिछले कोने के पीछे यदि अंगुली से ऊपर को दबाया जाय तो इन बढ़ी हुई ग्रन्थियों का बाहर से भी अनुभव हो जाता है।

२—*निगरण काठिन्य*—एक या दोनों ग्रंथियों के अधिक बढ़ जाने पर भोजन का चबाना तथा निगलना भी कठिन होजाता है।

३—*कफ ज्वर*—कफ ज्वर तथा तज्जन्य अरुचि, क्षुधा नाश,

प्राणाचार्य

ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक
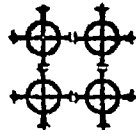
कण्ठ रोग विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में कण्ठ गत रोगों का तुलनात्मक ऊहापोह युक्त सम्यक् विवेचन हुआ है।

(८)

शिर दर्द, पूति श्वास आदि लक्षण भी हो जाते हैं।

क—यदि तीव्र शोथ के पीछे किसी शुण्डिका ग्रन्थि में पाक भी होने लगे, तो ज्वर अवश्य होता है जो १०३° फार्नहाइट से १०४° फार्नहाइट तक भी पहुँच सकता है।

ख—रोगी के लिए बात चीत करना, चबाना आदि कठिन होजाता है। कभी कभी तो मुख से आवाज बिल्कुल नहीं निकल सकती।

ग—मुख में से श्लेष्मा निरन्तर बहती रहती है।

घ—गल शुण्डिका देखने में लाल और चमकीली सी दिखाई पडती है और बाहर से भी अंगुली द्वारा अनुभव होती है। इसमें रह रह कर तोद होती है। यदि एक अंगुली अन्दर ग्रंथि पर और दूसरे हाथ की अंगुली बाहर हनुअस्थि के पीछे इस ग्रंथि पर रख कर दबाया जाय तो पूय का अनुभव भी होसकता है। यह पूय प्रायःकर शुण्डिका के अन्दर नहीं पडती किन्तु इसकी ऊपर की झिल्ली के नीचे पडती है तथा इसके ऊपर के और आगे के भाग में ही पडती है इस लिए बहुत थोड़े से क्षत के द्वारा यह निकल जाती है।

चिकित्सा

गल शुण्डिका शोथ के आरम्भ होते ही कफ ज्वरों के समान इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। कफ ज्वरोक्त वत्सनाभ के रस प्रयोग में लाने चाहिए। जैसे—कफकेतु, मृत्युञ्जय, कफ चिन्तामणि, वेताल रस, सौभाग्य वटी, श्लेष्म कालानल, कस्तूरी भैरव (लघु) आदि।

इन्हें आर्द्रक स्वरस तथा मधु के साथ चटाना चाहिए।

शिशु अवस्था में भी यही रस लघु मात्रा में प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

कफ ज्वर की चिकित्सा के अतिरिक्त विरेचन भी देना चाहिए जिससे कफ और पित्त का निर्हरण हो। बालकों को रस कर्पूर १/४ रत्ती तथा युवकों को १ से २ रत्ती त्रिकुट के साथ मिलाकर दे सकते हैं। इसके उपरान्त कोई जलीय विरेचन भी जैसे निशोथ (तृवृत) या दन्ती आदि का देना चाहिए।

मात्रा—तृवृत की युवकों के लिये एक ड्राम।

अर्थात् ४ माशा और बच्चों के लिए ५, ६ रत्ती मधु या शर्बत में घोल कर पिला दें।

स्थानिक चिकित्सा

कफ हर गण्डूष देने चाहिए। जैसे—बच, कुष्ठ, पीपल, मरिच आदि के उष्ण फाँट के गण्डूष देने चाहिए। अथवा २॥ तोला गरम पानी में ५ रत्ती टङ्कण (भुना हुआ) मिला कर उसके गण्डूष दें। अथवा अजमोद सत्व और कर्पूर मिला कर इसकी कुछ बूंद गरम जल में डालकर गण्डूष दें। मुख में बच को थोड़ी देर रख कर श्लेष्मा को अच्छी तरह बाहर निकाल सकते हैं।

लेप

उपरोक्त त्रिकुट, कुष्ठ, बच आदि कफ हर द्रव्यों को मधु में मिलाकर अंगुली या फुरैरी से गले पर लगावें। अथवा कटफल का घन सत्व तैयार करके इसमें मधु मिला कर फुरैरी लगावें।

स्वेदन

शुण्डिका शोथ की अवस्था में बाहर बनफ्शा दुग्ध में उबाल कर निचोड़ कर तथा किञ्चित घृत में भर्जित कर के बांधना चाहिए अथवा गरम जल में कर्पूर, अजमोदादि द्रव्य डाल कर बाष्प नाडी यन्त्र द्वारा गले में भाफ पहुँचानी चाहिए। यदि शुण्डिका का पाक होने लगे तो यह स्वेद उपनाह आदि अधिक करने चाहिए। जिससे शीघ्र ही पाक हो जावे।

(शेषांश पृष्ठ २७७ पर देखें)

कण्ठ रोगों के विषय में संक्षिप्त

लेखक– पं० मदनमोहन पाठक शास्त्री आयुर्वेदाचार्य प्रभाकर, अमृतसर

श्रीयुत प० मदनमोहन जी पाठक शास्त्री आयुर्वेदाचार्य अमृतसर के मान्य चिकित्सक हैं। आपने बहु वर्षों तक आयुर्वेदीय धर्मार्थ चिकित्सालय में कार्य किया है। आप मधुर भाषी, व्यवहार पटु एव सुलझे हुए परपीडा के लिए निज हृदय में व्यथा रखने वाले सज्जन हैं। आपने अपने प्रस्तुत लेख में "कण्ठ रोगों के विषय में संक्षिप्त विवेचन" में सर्वतो प्रिय सरल भाषा में अपने विषय को तुलनात्मक सरणी के द्वारा व्यक्त करने में पूर्ण सफलता से कार्य किया है। स्थान २ पर आप ऋषियों की अभूत-पूर्व वर्णनशैली का उत्कर्ष दिखाते हुए प्रत्यक्ष ज्ञान मूलक मदोन्मदों को उचित पुरस्कार प्रदान किया है।

पाठक! पाठक जी के लेख में अनेक विशेषतायें अनुभव करेंगे। चित्रों के द्वारा विषय बोध में और भी सुगमता समन्वित है। चिकित्सा प्रकरण यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्म है तदपि ऋषि येदय की झलक से ओतप्रोत है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

लेखक

लेखक की शुभ सम्मति

प्राणाचार्य के योग्य सम्पादक श्री बांकेलाल जी गुप्त ने ऊर्ध्वजत्रु विशेष रोगांक निकालने की दूरदर्शिता दिखा कर न केवल अपने पत्र को ही बल दिया है वरन् वैद्य समाज की सामान्य अपेक्षित आवश्यकता की पूर्ति कर वैद्य समाज को उपकृत भी किया है। अत उनका यह यत्न सत्य ही स्तुत्य है और विशेष स्तुत्य इस लिये है कि उन्होंने इस विशेष रोगांक के सम्पादन का विशेष भार भी ऐसे कन्धों पर डाला है जो निश्चय ही इस भार को उठा सकने में पूर्ण समर्थ हैं। श्री आचार्य हरदयाल जी सचमुच ही इस दुर्गम प्रतीत होने वाले विषय को अपनी विलक्षण प्रतिभा से सुगम बना वैद्य समाज को पूर्ण लाभ पहुंचा सकेंगे यह आशा ही नहीं निश्चित प्राय है।
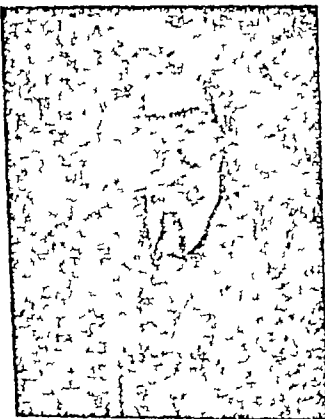
कंठ रोगों के विषय में प्रायः वैद्य समाज की यह धारणा है कि इस विषय में आयुर्वेद में कुछ नहीं लिखा है और जो कुछ थोड़ा सा लिखा भी है वह आधुनिक वैज्ञानिक युग के अनुकूल नहीं—अतः कंठ के विषय में केवल ऐलोपैथिक डाक्टर ही उचित चिकित्सक हैं। कई बन्धु तो गल व्याधि समझते ही रोगी को बिना कुछ विशेष पूछे ताछे ही सीधे डाक्टर का ही सुझाव दे देते हैं। उनका ऐसा करना आयुर्वेद पद्धति का स्वयं ही विनाश करना है। गले के रोग आयुर्वेद में अधिक ही नहीं अपितु सूक्ष्म विवेचन के पीछे लिखे हुए प्रतीत होते हैं। तनिक सा भी स्थान आकृति तथा लक्षणों का पार्थक्य होने पर प्राचीन आचार्यों ने रोग का नाम ही पृथक रख दिया है। यह तभी सम्भव होता है जब उस विषय का सूक्ष्मतम ज्ञान हो। यदि मैं इस दिशा में अत्युक्ति तुल्य आभासित होने वाली यह बात भी कह दूं कि आयुर्वेद ने इतने सुन्दर ढङ्ग से लिखा है कि आज की चकाचौंध में प्रकाश डालने वाली यह वैज्ञानिक युग धारा भी वैसा नहीं पता पाई तो आपको आश्चर्य चकित नहीं होना चाहिए। वरन् क्या मेरा कहना सत्य है? यह अपनी तत्वान्वेषिणी आलोचना कसौटी पर कसना चाहिए। निस्सन्देह आपको स्वयं ही उस जमाने से (आज के से यन्त्र शस्त्र शून्य विश्व में) लिखे हुए कंठ रोग सम्बन्धी विज्ञान पर गौरव अनुभव होगा। उन में से कुछ का स्वतन्त्र तथा कुछ का समन्वयात्मक विवेचन यहां किया जाता है। साथ के चित्रों में स्थान तथा सतुलात्मक दृष्टि कोण से पार्थक्य आदि का निर्देशण करने का भी यत्न किया है।

आयुर्वेद में कंठ रोग इस प्रकार है—

कंठशुण्डी, ५ प्रकार की रोहिणी, कंठशालूक, वलय, बलाश, एक वृन्द, वृन्द, शतघ्नी, गलायु, गल विद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान, विदारी, ३ प्रकार का सर्वसर तथा समय और प्रकृति के हेर फेर से अन्य रोग भी हो सकते हैं जिनका विवेचन भी वात, पित्त, कफ दोष के सुलझे हुए विवेक द्वारा किये जाने का आदेश है।

कंठ-शुण्डी (काक)

यह रोग कफ रक्त के गल शुण्डिका (Uvula) प्रदेश पर प्रकोप से होता है। गलशुण्डी अपनी सहज सीमा से अधिक विस्तृत हो जाती है और उसके इस शोथ युक्त हो जाने से श्वास, खांसी, प्यास आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं यथा—

> श्लेष्मा सृग्भ्यां तालु मूले प्रवृद्धो
> दीर्घः शोथोध्मात वस्ति-प्रकाशः।
> तृष्णा कास श्वास कृत्त वदन्ति
> व्याधिं वैद्याः कण्ठ शुण्डीतिनाम्ना ॥
> सु० नि० अ० १६

रोहिणी

वात, पित्त, कफ तत्व जो सदैव रक्त में व्याप्त रहते हैं, स्वास्थ्य कर मात्रा से न्यूनाधिक होकर जब धातु श्रेणी से दोष श्रेणी में आ जाते हैं और गल प्रदेश के मांस तथा रक्त कणों को दूषित कर वहां (गल प्रदेश की) सूक्ष्म ग्रंथियों को अंकुर का रूप दे देते हैं तब इस रोग का नाम रोहिणी हो जाता है। वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा रक्त दोष के भेद से यह ५ प्रकार का होता है।

इनका अल्प भेद इस प्रकार किया जा सकता है। वायु से उत्पन्न मांसांकुरों में पीड़ा बहुत होती है तथा उसके ऊपर झिल्ली होने से भी पीड़ा अधिक बढ़ जाती है और गले के कार्य में भी रुकावट उत्पन्न हो जाती है।

पित्त रोहिणी

पित्त दोष पूरित मांसांकुरों का पाक शीघ्र होता है तथा साथ ही ज्वर भी हो जाता है।

कफज रोहिणी

कफ दोष पूरित मांसांकुर स्थूल होते हैं तथा गले

की श्लेष्मिक कला से आच्छादित होने के हेतु जब ये उस कला को छेद कर अंकुरित होते हैं तब इनसे गले के मार्ग में बाधा पडती है। दृढ मूल होने से गले की जिन सूक्ष्म ग्रंथियो ने अंकुर का रूप धारण कर लिया है वह अधिक उभरी हुई तथा स्थिर अंकुरों जैसी आभासित होती हैं।

सान्निपातिक रोहिणी

इसमें मांसाँकुर तीनों दोषों से पूरित होते हैं अत. एव पीछे लिखित तीनों दोषों की रोहिणी के सम्पूर्ण लक्षण प्रायः पाये जाते हैं अर्थात् तीव्र वेदना, क्षिप्रपाक तथा अंकुर स्थिरता, गल मार्ग की रुकावट स्पष्ट प्रतीत होती हैं। इनका पाक भी गहरा होता है।

रक्तज

माँसांकुर पित्त के समान होने पर भी अपनी विशेषता यह रखते हैं कि इन मांसाँकुरों के आस पास चारों ओर छोटी छोटी फुन्सिया होती है। सुश्रुतानुसार इनका वर्णन इस प्रकार है—

गलेऽनिलः पित्तकफौच मूर्छितौ,
प्रदूष्य मास च तथैव शोणितम्।
गलोपसंरोध करै स्तथाँकुरै,
र्निर्हन्त्यसून् व्याधिरिय हि रोहिणी ॥
सु० नि० अ० १६

वातज

जिह्वा समन्ताद् भृश वेदनास्तु,
मासाकुराः कण्ठ विरोधिनोये।
सा रोहिणी वात कृता प्रदिष्टा,
वातात्मकोपद्रव गाढयुक्ता ॥

पित्तज

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाह पाका
तीव्रज्वरा पित्त निमित्तजातु।

कफज

स्रोतो विरोधिन्यचलोद्गताच
स्थिराकुराया कफ सम्भवासा ॥

सन्निपातज

गम्भीर पाकिन्यनिवार्य वीर्या,
त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिताच।

रक्तज

स्फोटैश्चिता पित्त समान लिङ्गा,
साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिकातु ॥

कुछ आयुर्वेद के विद्वानों ने इसका समन्वय ऐलोपैथी के Vincent,s angina में तथा कुछ ने Diphtheria (खनाक) में करने का यत्न किया है। किन्तु उनका यह समन्वय आंशिक समता से अधिक कुछ नहीं—क्योंकि Vincent,s angina तो निस्सन्देह गल ग्रंथि रोग होने पर भी अंकुर वत् नहीं होता तथा ज्वर १००° तक ही जाता है किन्तु पित्तज तथा सन्निपातज रोहिणी में ज्वर १०५° तक भी चला जाता है। इसी लिये इसे "तीव्र ज्वरा" लिखा है।

Vincent,s angina से रोहिणी की भयङ्करता स्रोतो विरोधिनी होने से अधिक है तथा केवल रक्तज रोहिणी को छोड़ कर शेष में मृत्यु भी निकट ही होती है जब कि विन्सैन्ट्स में मारकता बहुत कम है।

निसन्देह यह डिफ्थीरिया प्रतीत होता है, किन्तु है नहीं, क्योकि डिफथीरिया भी अङ्कर वत् नहीं होता तथा वह Farynx एव गलग्रथि (Tonsillitis) सम्बद्ध एव गल ग्रन्थि रोग है जब कि रोहिणी मास सम्बद्ध ग्रथि रोग है।

कण्ठ शालूक (Tonsillitis)

यह गल ग्रथिका रोग है यह ग्रथि केवल कफ दोष

से उत्पन्न होती है। यह गले में काँटे की तरह चुभती है। खरखरी तथा कडी होती है।

कोलास्थिमात्रः कभसम्भवोयो,
ग्रन्थिर्गले कण्कट शूकभूत ।
खर स्थिरः शस्त्रनिपात साध्यम्तं,
कण्ठ शालूक मिति ब्रुवति ॥
सु० नि० अ० १६

गलायु (Tonsillitis)

कठशालूक रोग से मिलता मिलता जुलता ही यह रोग है, इसमें ग्रन्थि आवले की गुठली के आकार वाली, कडी, पीड़ा देने वाली तथा गले में भोजन का ग्रास अटका हुआ सा प्रतीत होता है। यह कफ रक्त से होती है। यह भी प्रायः शस्त्र साध्य ही है। प्रायः इसलिये कि कई रोगियों को बिना शस्त्र के भी मैंने अच्छा किया है। चीरा देने पर इससे रक्त मिश्रित पूय निकलता है। यथा—

ग्रथिर्गले त्वामलकास्थिमात्र',
स्थिरोतिरुक् यः कफरक्तमूर्ति.।
सलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स,
शस्त्र साध्यस्तु गलायुसज्ञ.॥
सु० नि० अ० १६

कंठशालूक तथा गलायु का भेद

कठशालूक केवल कफ दोष से होता है तथा इसकी ग्रन्थि काटे की भांति, गेंहू या जौ के तीकुर की तरह चुभने वाली होती हैं। इसमें खरखरापन भी अधिक होता है तथा यह गले के अन्दर के प्रदेश में अधिक होती है किन्तु गलायु की स्थिति बिलकुल भिन्न होती है।

यह प्रायः गोल होती है। अति पीडा देने वाली तथा अन्दर और बाहर दोनों ओर होती है। बाहर की ओर जब होगी तो यह भोजन के अटके हुए ग्रास की भांति प्रतीत होती है। वस्तुत कठशालूक तथा गलायु दोनों ही (Tonsillitis) हैं।

यह आयुर्वेदक की विशेषता है कि रोगों के विषय में आयुर्वेदिक दृष्टि कोण सूक्ष्म से सूक्ष्म विवेचनात्मक होता है। इसलिये जहां कहीं भी आकृति या दोष का अल्पतम भी प्रार्थक्य प्रतीत हुआ, झट इस विज्ञान के वेत्ताओ ने उसका दूसरा नाम सौन्दर्य के लिये रख दिया। इस प्रकार की विवेचना शैली एलोपैथी आदि अन्य किसी पद्धति में नहीं है। यह शैली आयुर्वेद की विशेषता को ही द्योतित करती हैं, कठशालूक Enlarged chronic tonsillitis की भांति होता है तथा गलायु का कुछ रूप ऐलोपैथी का Chronic follicular Tonsillitis बता पाया है, चित्र में इनका स्थान भी प्रदत्त है।

(पृष्ठ २७३ का शेषांश)

छेदन

यदि शुन्डिका ग्रथी का पाक हो जावे तो चाकू द्वारा उथला सा क्षत कर के पूय निकाल देनी चाहिए। यह क्षत गहरा नहीं देना चाहिए तथा काकलक के मूल से पिछली दष्ट्रा तक आने वाली रेखा के मध्य में या उस के कुछ बाहर की ओर यह क्षत करना चाहिए। पूय निकल जाने के पीछे टङ्कण द्रव, निम्ब द्रव में से किसी के गरारे दें। गले के बाहर गरम कपड़ा बाध देना चाहिए।

बालकों में शुण्डिका शोथ कफ प्रकोप जन्य होने के कारण कई बार चिरस्थाई हो जाता है। जिससे बालक की नासिका के पिछले द्वार कुछ रुद्ध हो जाते हैं और बालक मुख खोल कर श्वास लेता है और बोलते समय ऐसा मालूम होता है कि उसके मुख में कुछ पड़ा हुआ है। इस चिरस्थाई शुण्डिका शोथ के लिए भी कफ हर गडूष तथा लेप देने चाहिए। कई बार इस चिकित्सा से सफलता नहीं होती तब शल्य कर्म द्वारा इन्हें निकलवा देना चाहिए।

एक वृन्द तथा वृन्द (Acute pharyngitis)

महर्षि सुश्रुत जी ने इनके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं। यथा—

१—वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः,
सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च।
नाम्नैक वृन्दः परिकीर्तितोऽसौ,
व्याधिर्बलासक्षतज-प्रसूतः॥

२—समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरंति।
तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपात् ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकन्तु॥
सु० नि० अ० १६

एक वृन्द

गले के अन्दर गोल तथा ऊंची उठी हुई सूजन होती है जिसमें दाह (जलन), तथा खुजली जो कठिन होती है किन्तु कम पकती है तथा भारी होती है। यह श्लेष्मा तथा रक्त के प्रकोप से होती है, इसको एक वृन्द नाम से पुकारा जाता है।

वृन्द

यह पित्त तथा रक्त के प्रकोप से होती है। इसके लक्षण एक वृन्द के से ही होते हैं किन्तु विशेषता यह है कि इसमें दाह (जलन) अत्यधिक होती है तथा ज्वर भी अधिक तीव्र हो जाया करता है। यह पैत्तिक होने से सहज ही पित्त प्रधान लक्षणों (ज्वर दाहादि) का प्राचुर्य इसमें होगा।

इसका नाम वृन्द बताया गया है और यदि इसमें वेदना भी हो तो भी यह वृन्द ही कहलायेगा जो वायु से तथा रक्त दोष से होगा। Acute faryngiti के सब लक्षण इसके अन्दर समाविष्ट हैं।

आयुर्वेद ने यहां कई पीड़ा आदि बातें अधिक बताई हैं, जो देखने पर कई रोगियों में पाई भी जाती हैं। ऐलोपैथी केवल एक ही रोग बताकर रह गई है।

विदारी रोग (Acute septic pharyngitis)

गले के अन्दर एक लाल रङ्ग की पीड़ा करने वाली तथा जलन करने वाली सूजन हो जाती है। इसमें पीछे पूय उत्पन्न होकर गले का मांस बदबूदार तथा सड़ा हुआ हो जाता है। यह रोग पित्त से होता है तथा उस ओर के भाग में प्रायः होता है जिस ओर की करवट से वह व्यक्ति अधिक सोता है। Acute sheptic pharyngitis का इस रोग में सम्पूर्ण भाव से समावेश हो जाता है। 'सदाहतोद तथा पूति विशीर्णमांसम्' से तो यह बिलकुल स्पष्ट प्रतीत हो जाता है।

स्वरघ्न

यह स्वर यन्त्र का रोग है। इस (स्वर यन्त्र) के अभ्यन्तरिक भाग की आकृति झरोखों जैसी होती है। इसी लिये इन से बिना किसी रुकावट के नैसर्गिक भाव से मनुष्य की इच्छानुसार स्वर निकलते रहते हैं। इसका कार्य अति विचित्र होता है।

इस समस्त जगती तल के प्राणी मात्र की अपनी अपनी बोली का समुत्पादक यह यन्त्र ही है। जब स्वर यन्त्र के वातायन (वाततत्व बहुल एवं वात वाही झरोखे) कफ से लिप्त हो जाते हैं तो वात सञ्चार में बाधा पड़ जाती है और वात धातु बहुल उन झरोखों के सहज कार्य में विकृति उत्पन्न हो जाती है। इस से रोगी व्यक्ति को बल पूर्वक श्वास लेना पड़ता है। उसकी आवाज (ध्वनि) पूर्व की सी स्पष्ट न रह कर फटी-फटी सी हो जाती है। रोगी का गला सूखता है। श्वास फूलता है इत्यादि लक्षण हो जाते हैं। विशेषतः उसे निगलन की क्रिया में अत्यन्त बाधा अनुभूत होती है।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं,
भिन्न स्वरः शुष्क विमुक्त कण्ठः।
कफोपदिग्धे स्वनिलायनेषु,
ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः॥
सु० नि० अ० १६

शतघ्नी

वर्तिर्घना कण्ठविरोधिनी या
चितातिमात्र पिशित प्ररोहैः।
अनेकरुक् प्राण हरी त्रिदोषाज्
ज्ञेया शतघ्नी च शतघ्नि रूपा॥
सु० नि० अ० १६

गले में त्रिदोष के कोप से एक कड़ी गले को रोक देने वाली बत्ती के समान लम्बी सूजन हो जाती है। जिसके ऊपर चारों तरफ मांसांकुर होते हैं जो गले को और अधिक रोक लेते हैं। इसमें तीनों दोषों के लक्षण जलन, कण्डू तथा पीड़ायें होती हैं। यह शतघ्नी तोप के समान मार देने वाली होती है। शतघ्नी कीलों से भरे हुए लौहपट्ट को भी कहते हैं। यहा मांसांकुरों की समता के लिये ही इस शब्द का प्रयोग किया गया प्रतीत होता है।

विद्रधि

इसमे भी गले मे शोथ होता है। इसमें भी तीनों दोषों के लक्षण पीड़ा, कण्डू आदि होते हैं। विद्रधि संज्ञक गल शोथ तभी कहलायेगा जब यह सारे गले मे व्याप्त होकर शोथ होगा। यह गल विद्रधि ठीक सन्निपातज विद्रधि के लक्षणों वाली होती है।

सर्वं गल व्याप्य समुत्थितोयः,
शोथो रुजः सति च यत्र सर्वा।
स सर्वदोषैर्गल विद्रधि स्तु,
तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य॥
सु० नि० अ० १६

शतघ्नी और गल विद्रधि का भेद—

शतघ्नी का शोथ लम्बा तथा मांसाकुरों से परित व्याप्त होता है जब कि विद्रधि का शोथ गले में लम्बे आकार का नहीं होता अपितु सारे गले में फैलकर होता है। इसमें मांसांकुर नहीं होते।

वलय रोग

कफ के प्रकोप से गले मे एक ऐसी सूजन होती है जिससे अन्न प्रणाली का ऊपर का द्वार रुद्ध हो जाता है। यह किसी भांति अच्छा नहीं होता अतः इसे छोड़ देना चाहिए ऐसा लिखा है। इसका नाम वलय है।

वस्तुतः यह अन्न प्रणाली के मुख पर होने वाला रोग है। चित्र मे वलय रोग का स्थान प्रदत्त है। सुश्रुत के अनुसार यथा—

वलाश एवायत मुन्नत च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य।
तं सर्वथैवा प्रतिवार्य वीर्यं विवर्जनीय वलय वदति॥
सु० नि० अ० १६

वलाश रोग

जब वायु और कफ कुपित होकर गले में एक प्रकार का ऐसा शोथ उत्पन्न कर देते हैं जिसमें श्वास लेना कठिन होता है तथा जिसमें मर्म के काटने के समान पीड़ा होती है। ऐसी स्थिति वाले रोग का नाम वलाश है।

गले तु शोथ कुरुतः प्रवृद्धौ,
श्लेष्मानिलौ श्वास रुजोपपन्नम्।
मर्मच्छिद दुस्तरमेनमाहु र्वलाश,
सञ्ज्ञा निपुणा विकारम्॥
सु० नि० अ० १६

साराश यह है कि—

जब श्वास प्रणाली के मुख पर शोथ होता है तो श्वास में रुकावट होती है अतः यह श्वास प्रणाली के मुख का शोथ है।

गलौघ

गले में कफ और रक्त के प्रकुपित होने से एक बहुत बड़ा शोथ हो जाता है जिसके हेतु से न अन्न और न पानी ही अन्दर जा सकता है और ना ही अनायास

वायु (श्वास) ही लिया जा सकता है। इसमें तीव्र ज्वर होता है। इसका नाम गलौघ है।

शोथो महानन्न जलावरोधी तीव्रज्वरो वायु गते र्निहता।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघ: परिकीर्त्यते तु ॥
सु० नि० अ० १६

इसका शोथ गले के श्वास तथा अन्न प्रणाली के मांझे भाग पर होता है जिस से अन्न तथा श्वास प्रणाली का मार्ग बन्द हो जाता है। यहाँ तक कि पानी या श्वास भी आसानी से नहीं जा सकता।

मांसतान

जब वात पित्त कफ तीनो दोष प्रकुपित होकर गले में एक ऐसा क्रमशः बढ़ने वाले स्वभाव का शोथ पैदा कर देते हैं जो शनैः शनैः सारे गले में व्याप्त हो (फैल) जाता है फलतः गले को रोक देना है तथा जो आकृति में लम्बा सा लटकता हुआ प्रतीत होता है। इसे आयुर्वेद शास्त्रकार मांसतान कहते हैं। यह प्राणों को नष्ट कर देने वाला होता है।

प्रतानवान् यः श्वयथुः सकष्टो,
गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानः कथितो वलम्बी प्राण,
प्रणुत सर्व कृतो विकारः॥
सु० नि० अ० १६

सर्वसर

यह मुख पाक है केवल गले का रोग नहीं अत. इसका विवेचन केवल गल रोगों में अनुपयुक्त होने से छोड़ दिया गया है।

Diphthiria क्या है ?

अब यह विचारना है कि ऐलोपैथी का डिफ्थीरिया नाम वाला रोग आयुर्वेद के किस रोग में समाविष्ट होता है। वस्तुत: Diphthiria गले (Throat) का एक रोग है जो गले के पिछले भाग Farynx में प्रधान रूप से होता है। वैसे इसका प्रभाव Tonsils & soft palate पर भी पर्याप्त रहता है और कभी कभी तो इतना बढ़ जाता है कि नाक के पीछे के भाग Larynx तक भी इसका शोथ हो जाता है। तब उपद्रव रूप में Dephthiritic laryngitis भी इससे बन जाता है। दूसरे शब्दों में जब यह अपने सम्पूर्ण लक्षणों में होता है तभी इतना भयङ्कर होता है। वैसे तो यह भयङ्कर होने पर भी सदैव इतना विस्तृत हो यह अनिवार्य नहीं। जब अल्प दोष से समुत्पन्न होता हैं तो मर्यादित भी होता है।

मेरी सम्मति में जब इसका प्रभाव (शोथ) अन्न प्रणाली तक ही मर्यादित रहता है तब "वलय" और जब केवल श्वास प्रणाली तक सीमित हो तब "वलाश" और जब उससे भी उग्र हो और श्वास तथा अन्न प्रणाली दोनो को प्रभावित करे तब "गलौघ" एव यदि यह महा भयङ्कर शोथ के रूप में हो जाये और लटकता सा अनुभूत हो तो मांसतान की उपाधियों से पुकारने योग्य है।

ये सभी रोग गले की पिछली दीवार में Pharynx तथा Soft palale में होने वाले हैं। यह आयुर्वेद की विशेषता या अधिक विवेचनात्मक शैली की प्रथा है कि लक्षण पार्थक्य की स्पष्टता के लिए नाम करण भी पृथक-पृथक कर दिये जाते हैं। इसी को यूनानी वाले "खनाक" के नाम से पुकारते हैं। इनकी विशेष चिकित्सा फिर कभी लिखूगा। हां संक्षिप्त चिकित्सा १-२ रोग की जो स्वानुभूत है। यहाँ लिखता हूं।

चिकित्सा

वैसे तो प्रायः कण्ठ रोगों की चिकित्सा शास्त्र साध्य ही शास्त्र ने लिखी है जो प्रारम्भ में औषधि साध्य भी होते हैं। हां, कई रोग आरम्भ से ही असाध्य अब तक माने जाते हैं। अब तक इसलिये कि आज तक भी किसी भी पैथी ने उनकी चिकित्सा का आवि–

प्कार नहीं किया है। अत. शस्त्र चिकित्सा के विषय में कुछ न लिख कर केवल औषधि चिकित्सा ही लिखता हूँ।

कण्ठ शुण्डी

सामान्यतः कफ रक्त दोष शामक औषधि, आहार तथा विहार ही इसमें लाभप्रद होता है। एलादि वटी, व्योषादि वटी या कर्पूरादि वटी की १–१ गोली १–१ घण्टे पीछे मुंह में रख कर चूसना चाहिए।

४५६—सितोपलादि चूर्ण २ माशा
प्रवाल भस्म २ रत्ती
—लेकर दिन में २ बारे प्रात. साय मधु के साथ या शर्बत बनफ्सा में मिला कर सेवन कराना चाहिए।

४५७—फिटकिरी १० माशा
पानी स्वच्छ १२ छटाक
मिला कर गण्डूष कराना चाहिए। दिन में यह गण्डूष प्रक्रिया कम से कम तीन बार होनी चाहिए।

फिटकिरी के स्थान पर कई व्यक्ति नमक डालकर कुल्ले कराते हैं। यह भी लाभप्रद है।

४५८—५ तोले मधु में ३ माशा सितोफलादि मिला कर रख लेना चाहिए। इसका Glycerin की भांति प्रलेप दिन में ४ बार कराना चाहिए। यह अतीव लाभकारी सिद्ध होता है।

यदि कण्ठ शुण्डी रोग पुराना हो गया हो तो उसमें च्यवनप्राश्य का निरन्तर सेवन भी लाभप्रद होता है।

कण्ठ शालूक तथा गिलायु

इन दोनों रोगों में भी कफ रक्त शामक औषधि, आहार विहार का ध्यान रखना परमापेक्षित होता है।

कण्ठ शुण्डी रोग लिखित समस्त चिकित्सा तथा आन्तरिक प्रलेप के लिये निर्दिष्ट मधु सितोपलादि प्रलेप भी हितकर सिद्ध होता है।

४५६—न्याज्वो का स्वरस २ तोला
पानी १२ छटांक
—लेकर मिश्रित कर गण्डूष धारण करना अत्यधिक लाभप्रद होता है।

४६०—भली भांति पिसी हुई कृष्णा का चूर्ण प्रातः सायं मधु में मिला कर चाटने से आशातीत लाभ होता है।

४६१—फिटकिरी का फूला १ माशा
मधु ३ तोला
—में मिलाकर आन्तरिक प्रलेप Glycerine की भाँति दिन में चार बार कराना चाहिए। यह प्रलेप जीर्ण कण्ठ शालूक में तो अनुपम लाभ करता है।

४६२—इसमें मृत्युञ्जय रस, लक्ष्मी विलास रस तथा कफकेतु रस भी रोगी के बल, वय, ऋतु तथा रोग की अवस्था विशेष का ध्यान रख कर उचित मात्रा के निरन्तर प्रयोग से अच्छा लाभ पहुंचाते हैं।

४६३—वासावलेह १ तोला
प्रवाल भस्म २ रत्ती
—मे मिश्रित कर प्रात साय सेवन कराना चाहिए। एक माह के निरन्तर सेवन से अच्छा लाभ होता है।

४६४—कायफल का घनसार तथा देवदाली का घनसार अर्ध भाग मधु मिला कर गले में प्रलेप करने से भी अतीव लाभप्रद होता है।

नोट—घनसार निम्न भांति बनावें—

कायफल १ छटांक पानी १ सेर। क्काथ बनावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानलें। पुन. पकावें अर्धाव शेष रहने पर १ छटाक मधु मिलादें। शीशी में भर कर रखलें। ग्लैसरीन की भांति गले में प्रलेप करें।

इसी भांति देवदाली घनसार बनाने की भी प्रक्रिया है।

दोनों योगों की उक्त प्रस्तुत मात्रा में यदि प्रत्येक में पिपरमेंट २ रत्ती रैक्टीफाईड स्प्रिट ६ माशा में घोल कर मिला दिया जावे तो ये दोनों योग अत्युत्कृष्ट आशुफल दायक बन जाते हैं। प्राय. सब प्रकार के औषध साध्य गल रोगों में पिचु द्वारा प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है।

रोहिणी (Diphthiria)

लेखक-वैद्य रामराज शुक्ल, व्याकरणायुर्वेदाचार्य, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

मानीय शुक्ल जी आयुर्वेदीय पत्र पाठकों के चिरपरिचित सारमय लेख्य सामग्री प्रस्तुत करने वाले लेखक हैं। आप आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित हैं। अध्यापन कार्य में विशेष नैपुण्यता के कारण विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगडी के अध्यापक हैं। आपने अपने विषय का प्रतिपादन प्राच्य प्रतीच्य पद्धति के आधार पर तुलनात्मक किया है।

आयुर्वेदोक्त गल रोगों में पठित रोहिणी को डिफ्थीरिया बताया गया है। चिरकाल से ऐसा प्रचलन भी है परतु इस अङ्क में पाठक इसी सम्बध में योग्य विद्वानों के भिन्न मत भी पाएँगे। अंतिम निर्णय पाठक स्वय करेंगे। आयुर्वेदोक्त प्राचीन रोगों की जिन जिन नए रोगों से तुलना की गई है। इस सम्बध में शास्त्र चर्या चलते ही रहनी चाहिए। एवविध किसी उपयुक्त काल में प्रत्येक रोग के प्रति अतिम और स्थिर निर्णय हो सकेगा।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

लक्षण

यह रोग गल के १७ या १८ रोगों में प्रधान है अत. आयुर्वेद के मत से इसे गल तोरणकीय रोहिणी भी कह सकते हैं। यह रोग गले के खराश के समान ही प्रारम्भ होता है इस में जल भी निगलने में वेदना अधिक होती है। प्राय वमन भी होता है। कण्ठ प्राय लाल दीख पड़ता है परन्तु कुछ समय के पश्चात् तुण्डिका पर कुछ हरापन लिये हुए श्वेत रूप के यहि स्राव के धब्बे दीख पड़ते हैं और १२ घण्टे के लगभग ये बढ़ कर एक कला सी बना देते हैं। यह कला प्रथम तुण्डिका को ढक लेती है पुन वहा से गल तोरणिका दण्डों, मृदु तालु, अधिजिह्वा तथा ग्रसनिका के ऊपर फैल जाती है। यह कला हरित वर्ण मिश्रित सफेद रङ्ग की होती है तथा अपने से नीचे के तन्तुओं से चिपकी रहती है अत यह अपने स्थान से शीघ्र नहीं छूटती, यदि बलपूर्वक छुड़ाया जाय तो रक्त प्रवाह होने लगता है और उस स्थान पर पुनः वही कला कुछ देर के पश्चात् छा जाती है। प्राय. गल तोरणिका दण्ड फूले हुए शोथ युक्त हो जाते हैं। ग्रैवेयक ग्रथियां शीघ्र ही फूली हुई और स्पर्श

से पीड़ायुक्त होजाती है। श्वास शीघ्र ही दुर्गन्ध युक्त हो जाता है। नासिका से पूय तथा रक्त मिश्रित स्राव होता है।

रोहिणी शब्द की निरुक्ति

चरक ने इसका लक्षण इस प्रकार कहा है कि अत्यंत बढ़े हुए वात, पित्त और कफ जिसे के जिह्वा मूल में स्थित हो जाते हैं। उसके जिह्वा मूल में शोथ और अनेक प्रकार की पीड़ा होती है और कण्ठ का रोधन करके शीघ्र ही मृत्यु कर देती है अत. कण्ठ रोधनात् इसका रोहिणी नाम है।

भेदक लक्षण

विशेष निश्चय के लिये कण्ठ परीक्षा करने से इस में मलिनता लिये हुए श्वेत धब्बे, दुर्गन्ध युक्त प्रश्वास, नासिका स्राव तथा फूली हुई ग्रैवेयक ग्रन्थियां मिलेंगी। साधारण ग्रन्थि की तुण्डिका शोथ (गल रोग) में बहिः स्राव पीला तथा सुगमता से पुछ जाने वाला होता है। इसमें कदाचित ही कभी कला बनती हो। विन्सेण्ट के तुण्डिका शोथ (Vincents tonsillitis) में यद्यपि कला भी बनती है तथापि उसमें जीवाणु इससे भिन्न प्रकार के होते हैं परितुण्ड-कीय विद्रधि (Peritonsillar abscess) में श्वास से गन्ध नहीं आती तथा ग्रथियों का अल्प शोथ और मुख खुलने से कठिनता का अनुभव होना रोहिणी से पृथक किया जा सकता है।

स्वर यन्त्र में यदि यह रोग हो जाय तो केवल आवाज से ही पहचाना जा सकता है। इसमें स्वर कर्कश होना तथा श्वास का फूलना इस रोग का सन्देह उत्पन्न कराता है।

रोग का हेतु

इस रोग का कारण रोहिणी दण्डाणु (Ci Dip hthiria) है। साधारणत ग्रीवा पश्चिम भाग में स्थिति करके स्थानिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। यह जीवाणु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति पर कफ के विन्दुत्क्षेप से फैलता है। उपसर्ग के फैलाने वाला व्यक्ति या तो स्वयं रोग से पीड़ित होता है अथवा स्वय तो उसमें रोग नाशक क्षमता होती है परन्तु उसके नासिका और गलों के स्रावों से उपसर्ग रहता है जिससे वह स्वय पीड़ित नहीं होता इस प्रकार के व्यक्ति को वाहक कहते हैं और ऐसे वाहक के दूषित दुग्ध से भी बालकों में उपसर्ग हुआ करता है।

इसका सम्प्राप्ति काल १ से ५ दिन तक है।

रोहिणी का उपसर्ग शरीर के अन्य भागों में प्राय. नहीं होता। मध्य कर्ण में उपसर्ग साक्षात् सम्पर्क से हो सकता है। कभी कभी नेत्र कला भाग तथा नाभि की भी रोहिणी हो सकती है।

उपद्रव

१—अनुरोहिणी अङ्गवात–जिसमें प्रलाप, तन्द्रा, अनुग्रैवेयक पेशियों तथा पृष्ठ वंश का जकड़ जाना, हाथ पैरों में शूल, अत्यधिक प्रक्षोभ तथा शिरः शूल लक्षण मिलता है।

२—दूसरा है हृद्विकार–रोहिणी का हृदय पर दो तरह से प्रभाव पड़ता है। एक तो रक्त परिभ्रमण द्वारा पहुचा हुआ विष हृदय पर सीधे प्रभाव डालकर हृदयस्थ स्निग्धता हटाकर और दूसरा प्रकार यह है कि वात नाड़ियों पर विषाक्त प्रभाव डालकर उसमें उपद्रव करता है।

चिकित्सा

रोहिणी प्रतिविष (Diphtheria Antitoxin) सन्दिग्धावस्था में ४००० यूनिट्स की मात्रा है रोग का निश्चय हो जाने पर १५००० यूनिट्स इन्ट्रा मसक्यूलर इन्जैक्शन द्वारा देने चाहिए। विष प्रभाव होने के उपरान्त ३०००० से ६०००० यूनिट्स तक दे सकते हैं। पहली मात्रा देने के पश्चात् १२-२४ घण्टे के भीतर प्रथम मात्रा की आधी मात्रा दूसरी बार देनी चाहिए। अधिक मात्रा देर से देने की क्षति

पूर्ति नहीं कर सकती इसकी चिकित्सा ३-४ दिन तक पेशी द्वारा प्रतिविष देकर करनी चाहिए।

इस रोग के लक्षण और चिकित्सा के विषय में ऋषियों के निम्न लिखित मत हैं—

चरक—

वात पित्त कफा यस्य युगपत् कुपितास्त्रयः।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्ते विदहन्तः समुच्छ्रिताः॥
जनयन्ति भृशं शोथं वेदनाश्च पृथग्विधा।
तं शीघ्र कारिणं रोगं रोहिणीति विनिर्दिशेत्॥
त्रिरात्रम् परमं चास्य जन्तोर्भवति जीवितम्।
कुशलेन त्वनुक्रान्तः क्षिप्र सपद्यते सुखम्॥
सन्ति चैवं विधा रोगा साध्या दारुण सभता।
ये हन्यु रनुपक्रान्ता मिथ्यारंभेण वा पुन॥

अर्थात्—

एक साथ तीनों दोष (वात, पित्त, कफ,) कुपित हो बढ़ कर दाह पैदा करते हुए जिह्वा मूल में यदि स्थित हो जाते हैं तो भयानक वेदना के साथ वृहच्छोथ पैदा कर देते हैं यह शोथ शीघ्र ही प्राण रोध कर देता है। ऐसे रोगी की परिमायु ३ दिन है। यदि क्रिया कुशल वैद्य मिल गया तो शीघ्र ही नीरोग हो जाता है। इस प्रकार के और भी भयानक शोथ हैं जिनका प्रतिकार न करने से मृत्यु हो जाती है।

सुश्रुत—

गले निल. पित्त कफौ च मूर्च्छितौ, पृथक समस्ता-श्च तथैव शोणितम् प्रदूष्य मास गल रोधिनोऽङ्कुरान् सृजन्ति यान् सासु हराहि रोहणी जिह्वा समन्ताद्भृश वेदनाये मांसाकुराः कण्ठनिरोधिन स्युः। तां रोहिणीं वातकृतां वदन्ति वातात्मकोपद्रव गाढ्युक्ताम् क्षिप्रोद्गमां क्षिप्र विदाहपाका तीव्र ज्वरा पित्त निमित्तत स्यात्। स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्द पाका गुर्वी स्थिरा सा कफ सम्भवावै गम्भीरपाकाऽप्रतिकार्य वीर्या त्रिदोषलिंगा त्रय सम्भवा स्यात् स्फोटाचिता पित्त समान लिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिकेयम्॥

चरक के मत मे रोहिणी त्रिदोषज ही होता है और सुश्रुत के मत से एक दोषज भी है और रक्तज भी। सुश्रुत में रोहिणी की चिकित्सा के बारे मे लिखा है कि—"लेख्याश्चतस्रः रोहिण्य" अर्थात् सन्निपातज रोहिणी को छोड़कर शेष वातज, पित्तज, कफज और रक्तज रोहिणी आपरेशन से ठीक हो जाती है। चरक में, शस्त्र चिकित्सा से ठीक होने वाली रोहिणी का इस लिए उल्लेख नहीं है कि शस्त्र चिकित्सा पर आत्रेय सम्प्रदाय का अधिकार नहीं था अत केवल त्रिदोषज असाध्य रोहिणी बतला कर ही अपना कर्तव्य पूरा किया।

रोहिणी के विषय में भोज की सम्मति निम्न लिखित वाक्यों में पाई जाती है—

"वात पित्त कफा. रक्त मेकशः सर्वशोऽपिवा कण्ठ यदा निषेवन्ते शोथ संजायते तदा। तन्तु. शुष्यति कण्ठश्च वातेनायास्यते यदा, कण्ठेऽस्यान्न प्रसज्येत, सप्ताहात् स जहात्यसन्। उष्यते चूष्यते पित्तात्, धूपति परिदह्यते, अङ्गारेरिव जह्यात् स, प्राणानाशु चतुर्दिनात्। कफादन्तर्बहि. शोथ. श्वास कण्ठश्च बाध्यते यस्य सोऽसून्त्यजेद्रोगी ध्यहाद्रोहिणि पीडितः, लक्षण पित्त रोहिण्या स्तुल्य शोणित जन्मन सर्व दोष कृतायात्तु सर्व लिङ्ग समन्विता असाध्यां ता विजानी-यात् रोहिणीं सन्निपातजाम् एतासद्यो मारयति सर्वा आद्यक्रिया बिना इति" अर्थात् सुश्रुत और इनकी सम्मति मिलती जुलती ही है।

रोहिणी के साध्यासाध्य के विषय में खरनाद जी ने यह कहा है कि सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति ध्यहाच्छ्लेष्म समुद्भवा पञ्चाहात् पित्त सभूता सप्ताहात् पवनोत्थिता। अर्थात् इनके मत से सभी रोहिणी असाध्य हैं।

आयुर्वेद मत से चिकित्सा

त्रिदोषज रोहिणी को छोड़ कर शेष रोहिणी रोग में सर्व प्रथम शस्त्र क्रिया द्वारा रक्त निकालें पश्चात् वमन करावें, गण्डूष (कुल्ला) करावें। नस्य देवें

वैरेचनि के धूम्र पान करावें। वातज रोहिणी में रक्त निर्हरण करने के बाद सैन्धव से प्रतिसारण करके ईषदुष्ण कटु तैल का गण्डूष मुख में लेकर बारम्बार उगलता जाय, इसी तरह रक्त निकल जाने के बाद पित्तजा में मिश्री मधु और प्रियंगु से घर्षण करावे और फालसा तथा मुनक्का का क्वाथ कर गण्डूष देवें। इसी तरह कफज में रक्त निःस्राव के पश्चात् गृह धूम और कुटकी से प्रतिसारण करके श्वेत अपराजिता, विडङ्ग और दन्ता के कल्क तथा क्वाथ से सिद्ध तैल का सैन्धव मिश्रित गण्डूष देवें तथा तीनों रोहिणी में इसी तैल का नस्य देवें। रक्तज रोहिणी की चिकित्सा पित्तवत् करें। इस क्रिया के पश्चात् अधो लिखित क्वाथ का पान १ सप्ताह दें।

निम्न लिखित तीनों क्वाथ को क्रमशः वात, पित्त और कफ में देवें।

४६५—हरड़ का क्वाथ शहद के साथ मिलाकर पिलावें।

मात्रा—१ पल से २ पल तक चार बार।

४६६—कुटकी — अतीस
देवदारु — पाठा
नागर मोंथा — इन्द्रायन
प्रत्येक समभाग

—लेकर गौमूत्र में क्वाथ बनावें।

मात्रा—१ तोला से १ पल तक दिन में ३ बार।

४६७—मुनक्का — कुटकी
सोंठ — मिर्च
पीपल — दारुहल्दी
दालचीनी — आंवला
हरड़ — बहेड़ा
नागर मोंथा — पाठा
रसाञ्जन — दूर्वा
तेजबल — प्रत्येक समभाग

—लेकर यवकुट करके क्वाथ करें और मधु मिला कर पिलावें।

मात्रा—२ पल ६ बार दिन रात्रि में।

रोहिणी में धारण योग्य गुटिका

योग—

४६८—यवक्षार — तेजबल
पाठा — रसाञ्जन
दारुहल्दी — पीपल
प्रत्येक समभाग

—लेकर कपड़ छन कर चूर्ण बना मधु से वटी बना मुख में धारण करने से सब प्रकार की रोहिणी सहज ही में ठीक हो जाती है।

प्राणाचार्य
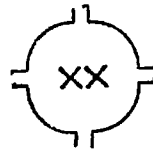
ऊर्ध्वजत्रुजरोगांक

ऊर्ध्वजत्रुज अवयव विज्ञानीय स्तम्भ

इस स्तम्भ में ऊर्ध्वाङ्ग के अवयवों पर लक्षणात्मक दृष्टिकोण से प्रशस्ताप्रशस्त विज्ञान पर विचार किया गया है।

(९)

मेरी विचार धारा

प्राणाचार्य के व्यवस्थापक तथा सम्पादक भाई कृष्णगोपाल गुप्त वैद्य के कई पत्र आये कि इस बार प्राणाचार्य के विशेषाङ्क "ऊर्ध्वजत्रुज रोगाङ्क" में मैं भी लेख दूं, यद्यपि इस विशेषाङ्क के सम्पादक हमारे परम मित्र वैद्य वाचस्पति कविराज हरदयाल जी के भी कई पत्र आये परन्तु उन्हें तो मैंने अपनी असमर्थता दिखलाते हुए उनसे क्षमा मागली परन्तु अनुज कृष्णगोपाल का आग्रह न टाल सका, छोटा भाई जो ठहरा छोटे भाई की हठ के आगे झुकना ही पडा।

अब यह समस्या उपस्थित हुई कि लिखा क्या जाय? विषय सूची पुस्तिका देखने से कई तरह के विचार उत्पन्न होने लगे। मैं इस विचार में था ही कि श्रीयुत प० जगन्नाथप्रसाद जी शुक्ल द्वारा लिखित "ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा विज्ञान" नामक पुस्तक पर दृष्टि पड़ी, उसमें पुरुष, स्त्री के मुख की परीक्षा सम्बन्धी लेख देखा, देखते ही मेरे मन में विचार आया कि क्यों न इसी को लिखा जाय, विशेषाङ्क में विशेष ही लेख होना चाहिये। रोगों पर तो बहुत से विद्वान वैद्य लिखेंगे परन्तु अपना तो लेख निराला ही होना चाहिये। अतः मैं उन वाचकों के लिए जो रोग के निदान, लक्षण, चिकित्सा आदि सम्बन्धी विषय पढते पढते थक जायें वे पाठक और पाठिकायें इस लेख को पढकर अपने मन ही मन लक्षण मिला कुछ क्षण के लिये प्रसन्न हो विश्राम का अनुभव कर पुनः आगे पढने की कोशिश करें।

आयुर्वेद में भी अङ्ग-प्रत्यङ्ग परीक्षा द्वारा, दीर्घायु, स्वल्पायु और मध्यायु के लक्षण लिखे गये हैं, प्रस्तुत लेख में भी इसका उल्लेख किया जायगा, परन्तु विशेषतया स्त्री, पुरुष के मुख के अङ्ग-प्रत्यङ्ग की परीक्षा द्वारा उनके आचरण-आचार-विचार व्यवहार आदि का व्यवहारोपयोगी बातों पर ही लिखा जायगा।

—लेखक

मुख परीक्षा

लेखक—दूरदर्शी

यह लेख श्री दूरदर्शी जी ने प्रेषित किया है। ऊर्ध्वजत्रुजरोगाक के लिये निःसन्देह महत्व पूर्ण कृति है। ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क का अभिप्राय उर्धाङ्ग के रोगों को दूर करना है। परन्तु दूरदर्शी जी ने ऊर्धाङ्ग के प्रधान क्षेत्र मुख को ग्रहण करके तत्सम्बन्धित अगोपाङ्ग के लक्षण समूह के द्वारा स्वास्थ्य प्रतिपादन के नये ढग को अपनाया है। मुखाकृति विज्ञान पर आपने पाण्डित्य पूर्ण प्रकाश डाला है। एवं अपने विषय सफलता के साथ प्रतिपादन किया है। श्री दूरदर्शी जी ने अपना नाम व्यक्त करने में सकोच से काम लिया है। सम्भवतः इसका कारण शायद यह हो कि लेखक महोदय पाठकों की धारणा शक्ति वा मुखाति विज्ञान के द्वारा ही लेखक के परिचय की इच्छा रखते हों। वास्तविकता तो प्रभु ही जानें। वैज्ञानिक दृष्टि कोण इस प्रथा को कहा तक अपनाता है ? इसका निर्णय पाठकों पर छोडता हू।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

बोल चाल की भाषा में मुख को ही मुंह और चहरा कहा जाता है। शरीर में मुंह का कुछ कम महत्व नहीं है। स्वास्थ्य का पूरा असर मुह पर ही गिरता है। स्वस्थ आदमी का चेहरा भरा हुआ, लाली लिए हुए और खुश रहता है किन्तु जब स्वास्थ्य में गड़बड़ी पैदा होजाती हैं तो चेहरा फीका, खुश्क, सफेद या पीला पड़जाता है। ऐसे पुरुष या स्त्री की नौजवानी में ही बुढ़ापा मालूम होने लगता है।

मानसिक विचारों का भी असर चेहरे पर पूर्णतया पड़ता है। जब हमारा मन प्रसन्न रहता है तो चेहरा भी खिला हुआ प्रफुल्ल रहता है किन्तु जब हमारे दिल में कोई शोक होता है तो चहरे पर हवाइया उड़ने लगती हैं। चेहरे के भावो को ताड़ कर ही अनुभवी न्यायाधीश, राजा, मालिक आदि अभियोग का निर्णय कर सजा देते हैं। चहरे का सौन्दर्य कवियों के वाक्य की सामिग्री और कामियों की कामना की उत्सुकता है। सुन्दर मुख किसे अच्छा नहीं लगता, खूबसूरत चहरे को देख कर लोग आकर्षित हुआ करते हैं, स्त्रियों का मुंह तो सुन्दर होना ही चाहिये किन्तु पुरुषों का भी चेहरा असुन्दर न हो। स्वस्थ आदमी का मुख अवश्य सुन्दर रहता है। सुन्दरी ललनाओं का चेहरा भी उनकी अस्वस्थता के कारण अरुचिकर मालूम होता है।

मनुष्य शरीर की बनावट उसके बाह्य आकार के सौन्दर्य अथवा कुरूपता की ही द्योतक नहीं होती बल्कि

ग्रसनिका के सामने का नासीय भाग

१—Soft Palate मृदुतालु

२—Uvula काग

३—नासा प्राचीर

४—नासा शुक्तिका
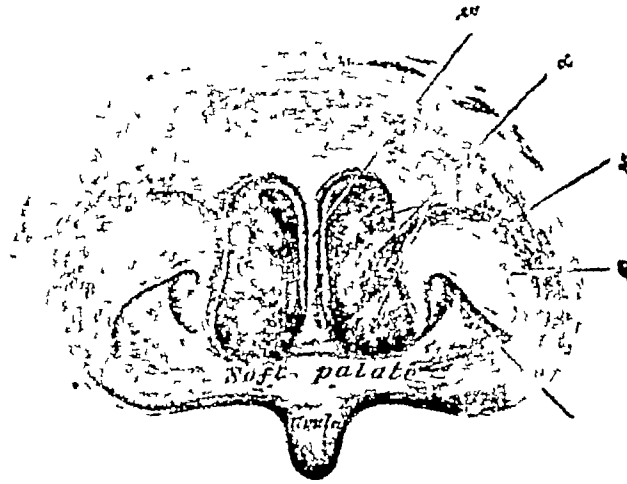
५—ग्रसनिकीय गह्वर

६—नासीय उभार

चश्मों के रोग विषयक चित्र
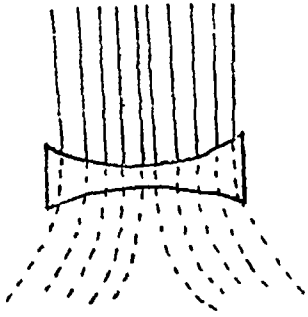
चित्र नं० ६
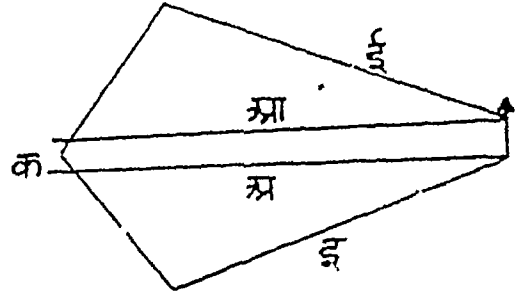
चित्र नं० ७
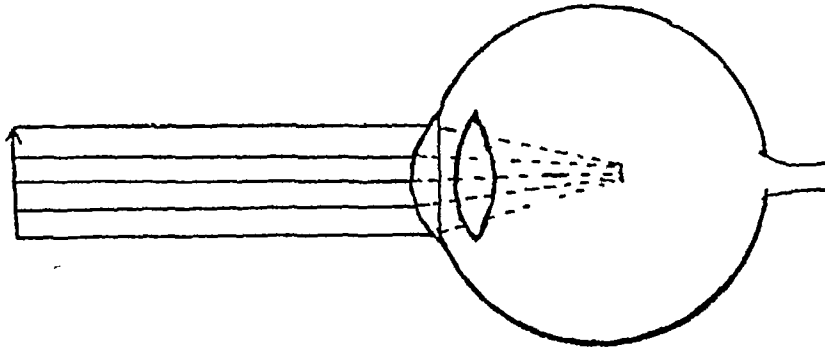
चित्र नं० ८

ह्रस्व दृष्टि में रश्मियां दृष्टि पटल से पूर्व ही केन्द्रित हो जाती हैं।
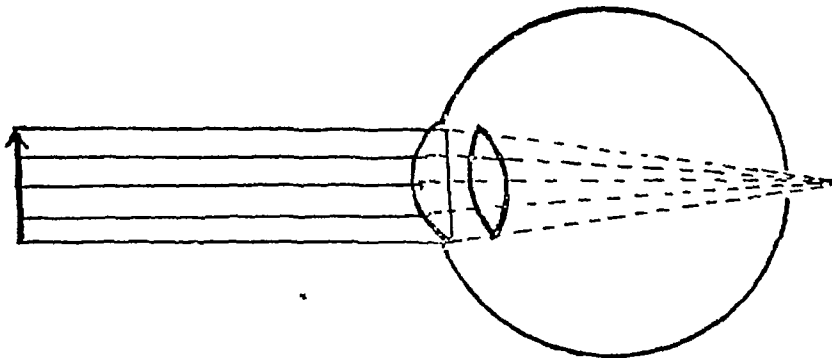
चित्र नं० ६

"दीर्घ दृष्टि" में रश्मियां दृष्टि पटल से पीछे केन्द्रित होती हैं।

उसके आभ्यन्तर का भी पता बतलाती है। वह मनुष्य के भले या बुरे होने और उसके भले बुरे स्वभाव की भी सोतक होती है। यही नहीं पुरुष और स्त्री शरीर के अलग अलग लक्षण भी जाने जा सकते हैं। पुरुष और स्त्री के शरीर की सूक्ष्म रचना कुछ विचित्र और विभिन्न प्रकार की होती है अतएव उनके स्वभाव के द्योतक अङ्गों की बनावट से उनका पार्थक्य भी प्रकट होता है। इसे सामुद्रिक शास्त्र के नाम से पुकारा जाता है और इस शास्त्र के आदि प्रवर्तक आचार्य समुद्र माने जाते हैं, इसके बाद नारद, माण्डव्य ऋषि, कार्तिक आदि ने भी इस सम्बन्ध के शास्त्र की रचना की है। इस शास्त्र में मनुष्य शरीर के सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों को देख कर फल कहने का उल्लेख है परन्तु प्रस्तुत विशेषाङ्क "ऊर्ध्वजत्रुज रोगाङ्क" है इसमें गले से ऊपर ही रहने के लिये सम्पादक जी की तरफ से हिदायत है और चूंकि मुख शरीर के अङ्गों में प्रधान अङ्ग है, अतः केवल मुख परीक्षा द्वारा ही पुरुष स्त्री के स्वभाव और सौभाग्य आदि देखने का प्रयत्न करेंगे। मुह के कहने से हमें सिर्फ गाल और होठ नहीं समझना चाहिए, मुह के सात अङ्ग हैं यथा—

१—मुह २—ऊपर और नीचे के होठ ३—दांतों के मसूढ़े ४—दांत ५—जीभ ६—तालु और ७—गला इन सातों अङ्गों के मिलने से मुंह होता है।

पुरुष का मुंह

परीक्षा विधि—

गला—जिस मनुष्य की गर्दन छोटी हो वह श्रेष्ठ होता है। जिसकी ग्रीवा गोल और गठी हुई हो वह सुखी, धनवान और सुन्दर होता है। जिसकी गर्दन शङ्ख के आकार की और तीन रेखा युक्त हो वह राजा होता है। मोटी गर्दन वाला मनुष्य शूरवीर और मध्यम गर्दन वाला मनुष्य शस्त्राघात से मरता है। लम्बी गर्दन वाला मनुष्य अधिक खाने वाला होता है। जिसकी गर्दन एक तरफ को कुछ झुकी हुई हो वह चुगुलखोर होता है। जिसकी गर्दन लम्बी हो वह भली बात को भी बिगाड़ने वाला होता है।। लम्बी और चपटी गर्दन वाला मनुष्य सदा दुःखी रहता है। बगुले की सी गर्दन की नली जिसकी हो वह पाखण्डी होता है। चपटी, रूखी नसों वाली या मांस हीन गर्दन वाला मनुष्य धन हीन होता है। पुरुष की गर्दन की साधारणतः लम्बाई ४ अंगुल होनी चाहिए। चारों ओर से गर्दन के घेरे की लम्बाई ७४ अंगुल हो तो श्रेष्ठ है। सुन्दर गर्दन वाला मनुष्य भाग्यवान होता है।

दाढी (ठुड्डी)—

जिस मनुष्य की दाढ़ी गोल और मॉस से भरी तथा न छोटी और न बड़ी और सुडौल होती है वह पुण्य-वान, धनवान होता है। जिसकी दाढ़ी (ठुड्डी) पतली, दुबली, लम्बी, दो हिस्सों में बंटी हुई और गांठदार होती है, वह मनुष्य दरिद्र होता है। स्तन से लेकर ठुड्डी की लम्बाई साधारणतः १२ अंगुल होनी चाहिए। यदि दाढ़ी के अगले भाग चिरे न हों, स्निग्ध, सुन्दर, कोमल और नीचे हों तो शुभ है। इसके विपरीति अशुभ।

गाल—

जिस मनुष्य के गाल (गण्ड स्थल) ऊंचे होते हैं वे सुखी और जिसके गाल मास से भरे पिचके न हों वे भोगी होते हैं। जिसके *गण्ड स्थल* सिंह या हाथी के समान ऊपर उठे हुए होते हैं वह राजा होता है। जिन मनुष्यों के कपोल नीचे धसे हुए मॉस रहित और छोटे-छोटे बालों से युक्त होते हैं वे पापी दुःख भोगने वाले और दूसरों के चाकर होकर जीवन निर्वाह करने वाले होते हैं। जिसका गाल फूला हुआ रहता है वह मन्त्री होता है। जिसकी ठुड्डी पर तथा छाती पर लोम नहीं जमते वह धोखेबाज होता है।

मुख—

जिस मनुष्य का मुख मण्डल सब ओर से बरा-बर गोल, सूक्ष्म, स्निग्ध, दर्शनीय तथा हाथी या सिंह के समान भरा हुआ हो वह राजा होता है। सुख भोग

करने वाले का भी चेहरा इसी तरह पर इससे कुछ न्यून होता है। अपनी माता के मुख के समान मुख जिसका होता है वह भाग्यशाली होता है। जिसका मुह मोटा, चौडा और बड़ा हो, उसे अभागा समझें। स्त्रियों के समान मुह वाला निस्सन्तानी होता है। धूर्त और चाल वाजों का मुह चोकोर होता और छोटा मुह कजूस मनुष्यों का होता है। धन हीनों का मुख लम्बा और भाग्यवान का मुंह गोल होता है। टेढ़े और विकृत मुंह वाले सूखे और घोड़े के समान मुह वाले मनुष्य दरिद्री और पुरुषार्थ हीन होते हैं।

ओष्ठ (बिम्बाधरोष्ठ)

जिन पुरुषों के ओठ पके कुन्दुरुफल के समान लाल होते हैं वे धन धान्य से युक्त होते हैं। पाटल पुष्प के समान लाल वर्ण के ओष्ठ वाले मनुष्य बुद्धिमान होते हैं। मूंगे के समान ओष्ठ वाला मनुष्य राज्य प्राप्त करता है। जिनके ओष्ठ नीचे ऊपर की नाप में दो अगुल, कोमल, समान और चिकने हों, वे पुरुष धनवान होते हैं। मोटे ओष्ठ वाला अच्छे आचरण वाला तथा लम्बे ओष्ठ वाला मनुष्य भोगी होता है। जिसके ओष्ठ रूखे पतले विवर्ण और बुरे रङ्ग के तथा फटे हुए से खण्डित वा स्थूल होते हैं वह धन के सुख से रहित होता है। अर्थात् दूसरों की आज्ञानुसार चलने वाला तथा दुःखो होता है।

दांत—

जिससे दात घनी पक्ति वाले समान उठे हुए और घने हो तथा स्निग्ध चिकने और दाढ़ें तेज हो वह धनवान होता है। जिस के ३२ सौं दांत होते हैं वह भाग्यवान होता है। ३१ दांत वाले पुरुष भोगी, ३० दात वाले पुरुष अर्थ कष्ट में रहते हैं और २८ दात वाले पुरुष सुखी होते हैं। २६ दात वाले दरिद्री और दुःखी होते हैं। नीचे की पक्ति से ऊपर की पक्ति में कम दाँत वाले पुरुष दुःखी रहते हैं। जिन बच्चो के दांत १२ महीने के भीतर निकलते हैं उन्हें राज दन्त कहते हैं और ये शुभ होते हैं। पर पहले ऊपर के दांत निकलें तो अशुभ हैं। यदि जन्म के समय में ही दात हों तो वह भी अशुभ हैं। बच्चे को जन्म से लेकर २ वर्ष के भीतर दात निकल जाने चाहिए। इसी तरह ७ वर्ष की अवस्था से १० वर्ष तक में दाँत निकल आने चाहिए। इससे अधिक समय लगे तो समझें कि बच्चे का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। जिनके दात धीरे धीरे उखड़ें तथा सब इन्द्रिया अपने-अपने कार्य में समर्थ बनी रहें वह पुरुष दीर्घ जीवी होते हैं। बडे दांत वाला मनुष्य प्राय मूर्ख नहीं होता। चिकने दाँत वाला मनुष्य सदा रुचि कर आस्वाद लेता है। जिस पुरुष के दांत एक दूसरे से अलग हों और हसने पर कपोलों पर गढ़े पड जाते हों वह पुरुष दूसरे के धन से धनी और दूसरे की स्त्री में मग्न रहने वाला होता है।

जिह्वा (जीभ)—

जिस मनुष्य की जीभ पतली, लाल, बड़ी और नरम तथा समान हो, वह सुस्वादु और मिष्टान्न भोजी होता है। जिसकी जीभ का अगला भाग सिकुरा, नुकीला और स्निग्ध तथा कमल के फूल की पङ्खड़ी के समान न मोटा न पतला और न चौडा हो, वह मनुष्य राजा होता है। जिसकी जीभ सफेद मैल से भरी हो वह शौचाचार से हीन होता है। नीली जीभ वाला धन हीन। चितकबरी जीभ वाले पापी होते हैं। जिस पुरुष की जीभ इतनी लम्बी है कि वह अनायास नाक के अगले भाग को स्पर्श करले तो वह रोगी और मुमुक्षु होकर पृथ्वी पर विचरता है। एक फ्रेञ्च वैज्ञानिक का कहना है कि जिसकी जीभ लम्बी हो वह स्पष्ट वाणी होता है। यदि जीभ चौड़ी हो तो वह खर्चीला होता है। यदि जीभ कम चौड़ी हो तो वह मनुष्य लगन के साथ काम करने वाला होता है। यदि जीभ चौडी और लम्बी हो तो वह नियम, कायदा, कानून का जानकार होता है।

तालु—

जिस मनुष्य का तालु लाल कमल के समान लाल

हो वह पराक्रमी तथा पृथ्वी पति होता है। जिनके तालु सफेद हो वे धनवान होते हैं। जिनके तालु रूक्ष, चित्र विचित्र, खरदरे और मैले होते हैं उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहना। काले और नीले रङ्ग के तालु वाले मनुष्य दु:खी रहते हैं। जिनके जीभ और तालु लाल, दीर्घ और सूक्ष्म तथा समतल हों वह पुरुष भोगी होते हैं।

हास्य—

हसते समय जिनके दांत बाहर नहीं निकलते किंतु कपोल किञ्चित विकम्पित हो जाते हैं और मृदु हास्य होते समय धीरता से हँसी हो, किन्तु अधरोष्ठ विकसित न हो ऐसे स्मित हास्य वाले पुरुष प्रधान होते हैं। हसते समय जिन के शिर और कन्धे फड़कने लगें, आंखें मुंद जाएँ तथा आंखों मे आंसू आने लगे तथा अनेक बार हंसी आवे, ऐसे पुरुष मध्य कहे जाते हैं। हसते समय अगों का कांपना अशुभ है। जिसका मुख (चेहरा) सदा हस मुख रहता है वह कभी दु:खी नहीं होता।

विशेष—

जीभ, दांत, त्वचा, नेत्र, नख और बालों की स्निग्धता देख कर मनुष्य के स्नेह की परीक्षा होती है। इन सभी अङ्गों में स्नेह होना पुण्यवानों का काम है। प्रिय बोलना जिह्वा की स्निग्धता का चिह्न है। स्निग्ध दांतों वाला मनुष्य गरीब या सेवक हो तो भी उसे सुन्दर भोजन प्राप्त होते हैं। जिसकी त्वचा चिकनी हो वह मनुष्य सुख भोगने वाला होता है।

स्त्री मुख

पूर्व वर्णित पुरुषों के लक्षण के समान स्त्रियो के भी आकार, रङ्ग, सुगन्धि, चक्र, शब्द, चाल, कान्ति आदि से स्वभाव, आचार, विचार, भले–बुरे की परीक्षा होती है। यहां सिर्फ मुख मण्डल के ही लक्षण लिखने का प्रसङ्ग प्राप्त है। अत: जैसे पुरुषों के मुख वर्णन करते हुए लक्षणादि लिखे गये हैं। वैसे ही स्त्रियों के मुख मण्डल का वर्णन लक्षणादि लिखेंगे।

गर्दन—

जिस स्त्री के गले का गट्टा सीधा हो वह दीर्घायु होती है। जिस स्त्री की कृकाटिका मोटी और मासदार हो वह विधवा होती है। जिस स्त्री की गले की घुटकी समुन्नत समान ऊची हो वह सुख और सौभाग्य से युक्त होती है। जिस स्त्री का गला स्वच्छ, साफ मास से भरा गोल और चार अगुल लम्बा हो वह शुभ होता है। ऐसी स्त्री सुख विलास भोगने वाली होती है। जिस स्त्री की ग्रीवा सुडौल और तीन रेखाओं से युक्त होती है, उन्हे सोने मोतियों के हार पहनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। जिस स्त्री के गले की हड्डिया दीखतीं हों, मास की कमी हो, गला चपटा, फटा सा, खुरदरा और कुरूप होता है वह बराबर दुख भोगती रहती है। मोटी गर्दन वाली स्त्रियाँ प्राय विधवा होती हैं, जिनके गले में चक्र का चिन्ह होता है वे वन्ध्या होती हैं। जिनकी गर्दन छोटी, शिरायें उभरी हुई होती हैं वे दरिद्रणी होती हैं। जिनकी गर्दन बहुत लम्बी होती है वह कुल क्षय कारिणी तथा कुटिल स्वभाव की होती हैं। जिस स्त्री की ग्रीवा मोटी, आँखें टेढ़ी, पिंगल वर्ण अथवा चञ्चल हों वह कुलटा होती है।

ठुड्डी (दाढी)—

स्त्रियो की ठुड्डी दो अंगुल परिमाण मांसल और मुलायम होनी चाहिये। यह शुभ लक्षण है। इसके विपरीत स्थूल द्विधा विभक्त, रोम युक्त, अधिक लम्बी ठोडी अच्छी नहीं होती।

कपोल—

मांस से भरे गोल बराबर ऊचे, निर्मल स्त्रियों के कपोल-फलक अच्छे होते हैं। काम शास्त्र में ऐसे कपोलों को गङ्गा के किनारे के सुन्दर कगार और और कामदेव के ठहरने के टीले कहा गया है। किन्तु इसके विपरीत जिन स्त्रियों के दोनों कपोल बिना कान्ति, रोम युक्त, कठोर, काले और नीचे झुके हों वह स्त्री दुखिनी होती है। जिस स्त्री के कपोल (गाल) मधूक पुष्प (दुपहरिया के फूल) के समान लाल, देह रोम रहित

हो, नसें उभरी न हों वह देवों के उपासना योग्य है। जिस स्त्री के बाये कपोल पर लाल मस्सा होता है वह मिष्टान्नों का भोग करती है। जिस स्त्री के कपोल सफेद गड्ढेदार हों वह व्यभिचारिणी होती है।

मुँह—

जिस स्त्री का मुख मण्डल गोल निर्मल, चिकना और चन्द्र बिम्ब के समान सुन्दर मास से भरा हुआ हो वह स्त्री प्रशसनीय है। जिस स्त्री का मुख मण्डल सदा प्रसन्न रहता हो तथा अपने पिता के मुख के सामान मुख मण्डल हो वह सौभाग्यवती और कल्याण कारिणी होती है।

ओष्ठ (होठ)—

जिस स्त्री के सुन्दर ओष्ठ बिम्ब के मध्य में रेखा खण्डित, चिकने और पके कुन्दुरू के फल के समान भरे हुए स्निग्ध और लाल हों वे श्रेष्ठ हैं। कवियों ने ऐसे ही ओठ की प्रशसा करते-करते अपनी कलम तोड़ दी है। इसके विपरीत जिनके ओठ विषम, ऊचे नीचे, लम्बे फटे, कटे, पतले, रूक्ष और सूखे से होते हैं वे दुःख और अभाग्य के सूचक हैं। जिन स्त्रियों के होठ दशनच्छद स्थूल और काले हों वे झगड़ालू और पति हीना होती हैं। जिसके अधरोष्ठ मोटे होते हैं वे कलह प्रिया होती हैं। स्त्रियों का ऊपरी ओठ क्रम से मुलायम, झुका हुआ, चिकना, स्निग्ध, विना रोग के और बीच में उठा हुआ होना चाहिए। ऐसा ओष्ठ श्रेष्ठ होता है। इसके विपरीत ओष्ठ वाली स्त्री विधवा और दुःख भोगने वाली होती है। यदि ओष्ठ बन्धूक पुष्प (दोपहरिया के फूल) के समान लाल माँस युक्त, दातों की पक्ति कुन्द पुष्प के समान स्वच्छ, सरल बचन बोलने वाली स्त्री हो तो वह पति-सुख तथा ऐश्वर्य भोगने वाली होती है। यदि स्त्री लम्बी हो और साथ ही ओठ में रोवें हों तो वह स्त्री पति की अमङ्गल कारिणी होती है। जिस स्त्री के अधर के नीचे रोम होते हैं वह सौभाग्य हीन होती है।

दात—

जिन स्त्रियों के दात चिकने, चमकदार, बराबर, नोकदार, उभड़े हुए कुन्दकली के समान श्वेत घने मिले हुए होते हैं वे स्त्रियां सौभाग्यवती और ऐश्वर्य शालिनी होती हैं। जिन स्त्रियों के मन दांत साफ, चमकदार, गाय के दूध के समान सफेद हो और संख्या में ऊपर नीचे के दांत समान सोलह-सोलह अर्थात् बत्तीस हों वह स्त्री राज रानी होती है। जिन स्त्रियों के दात बहुत छोटे अथवा लम्बे, पतले, मोटे अथवा दोहरी पक्ति में (एक के ऊपर एक जमे हुए) सीप के आकार के अथवा काले होते हैं वह स्त्री दरिद्रिणी और दुःखनी होती है। जिन स्त्रियों की दन्त पंक्ति में नीचे के जबड़े में अधिक दात होते हैं वह अपनी माता को मारने वाली होती है। यदि किसी स्त्री के दात विकट और भयङ्कर हों तो वह स्त्री विधवा होती है। जिन स्त्रियों के दात में लगे मसूड़े सफेद होते हैं वे दुःखनी होती हैं।

जिह्वा—

जिन स्त्रियों की जीभ स्निग्ध, कोमल, लाल, चिकनी और पतली होती है वह सौभाग्यवती और सदा मिष्टान्न खाने वाली होती है। जिस स्त्री की जीभ खुरदुरी हो उसकी मृत्यु जल में होती है। जिस स्त्री की जीभ लाल पीली रंग की हो उसका विवाह अच्छे पुरुष से होता है। जिस युवती की जीभ श्यामता लिये होती है वह अपनी जाति से दूसरी जाति में चली जाती है। अधिक मासल या मोटी जीभ वाली स्त्री दरिद्रिणी और अधिक चौड़ी जीभ वाली शोक ग्रस्ता होती है।

तालु—

स्त्रियों का तालु सुन्दर चिकना कमल पुष्प के समान रंग का कोमल और स्वच्छ अच्छा समझा जाता है। किन्तु श्याम रंग का मोटा तालु बहुधा दुःख दायक होता है। सफेद तालु वाली दरिद्रिणी और काले तालु वाली पति हीन होती है।

हसना—

जिन स्त्रियों में हसते समय मुंह थोड़ा खुले गण्ड-स्थल का थोड़ा विकास हो, किन्तु हसते समय दांत न

दिखाई पड़े, ऐसी हसी उत्तम समझी जाती है। जिस स्त्री के हसते समय गालों में गढ्ढे पड़ जाए वह श्रेष्ठ होती है।

नासा—

सुन्दर तोते की नाक सी उतार चढ़ाव नुकीली नाक अच्छी समझी जाती है। किन्तु नाक का अग्र भाग द्विधा विभक्त मालूम पड़े तो वह अच्छा नहीं है। छोटी नाक वाली स्त्रियों को प्राय दूसरों की नौकरी करनी पड़ती है। चपटी नाक वाली पति हीना और बड़ी नाक वाली स्त्रिया बहुधा क्रोधी स्वभाव की होती हैं।

नेत्र—

जिन स्त्रियों की आखो की सफेदी गोदुग्ध के समान निर्मल, श्वेत, अन्त में ललाई और बीच में पुतली काली होती है और बाहरी किनारे कान के पास तक लगे हो, ऐसी आंखें अच्छी समझी जाती हैं। आखों की बरौनी नील कमल के समान निर्मल हों और उन पर छोटे-छोटे बाल हों, बाल कोमल हों और पलक उठने पर सूर्य के प्रकाशित होते समय जैसे कमल खिलत है उसी तरह नेत्र पटल खुलें, ऐसी आखें सौभाग्यवती और ऐश्वर्य शालिनी स्त्री की होती हैं। जिस स्त्री के नेत्र हिरण के से चञ्चल, सुहावने, फिरने वाले मद भरे, लम्बे चौड़े कमल की पङ्खड़ी के समान सुन्दर और निर्मल होते हैं वे स्त्रिया शुभ लक्षण वाली होती हैं। इसके विपरीत आँख वाली स्त्री दुःख भोगने वाली होती है। जिस स्त्री की आंखें पीले रंग की गौ के से रंग की होती हैं वह अधिक कामातुरा होती हैं। जिस स्त्री के दोनों नेत्र लाल कमल के समान हों वह पर पुरुष की कामना करती है। जिस स्त्री के नेत्र जल से भरे रहते हैं वह श्रेष्ठ नहीं होती। जो स्त्री देखते समय आखें फाड़कर देखे वह बुरे स्वभाव की होती है। जो स्त्री बायी आख से कानी हो वह व्यभिचारिणी होती है। जो जन्म से दाहिनी आख से कानी हो वह निस्सन्तान वाली होती है। जिन स्त्रियों के नेत्र बड़े बड़े होते हैं वे भूख प्यासस हने वाली, सहनशील, मित भाषिणी, मित पान भोजन वाली होती हैं।

बरौनी और भौंह—

जिस स्त्री की आंख की बरौनी सुदृढ काली, सूक्ष्म और घनी होती हैं वह सौभाग्यवती होती है। इसके विपरीत निन्दनीय है। भौंहें कमानीदार गोल, पतली और कज्जली की सी छाया जिस पर पड़ती है वह अच्छी होती है। जिस भौंह से नेत्र घिरे से मालूम पड़ें ऐसी भौंह अच्छी नहीं। देखने में सुन्दर, छोटी, नरम रोम वाली, चढ़ी हुई कमान के समान भौंहें शुभ हैं। इसके विपरीत अच्छी नहीं होती। जिस स्त्री की भौंह मोटी घनी हो वह *शीलहीन होती है। जिस स्त्री की भौंह* के बाल लम्बे-लम्बे हों वह बन्ध्या होती है। जिस स्त्री के भौंह के किनारे अथवा ललाट मे मस्सा होता है वह राज्य भोगनी है।

कुछ विशेष—

जिस स्त्री के बाँये कपोल में काला मस्सा या तिल हो वह स्त्री सदैव अच्छे-अच्छे भोजन करती है। जिस स्त्री के कण्ठ के वाम भाग में मस्सा या तिल हो वह प्रथम बार पुत्रोत्पन्न करती है। जिस स्त्री के नख, रोम, त्वचा और आंखें सुन्दर होती हैं वह क्षमाशील होती है। जिस स्त्री के तालु, नख, जीभ और ओष्ठ तथा नेत्र आदि लाल हों वह धन धान्य से युक्त होती हैं। जिस के बड़े नेत्र, लम्बे चौड़े कूले, चौड़ी छाती, बड़ी कमर और योनि हो वह समाज में प्रतिष्ठा पाने वाली होती है। जिस स्त्री के कोमल बाल, कोमल शरीर, नरम रोंये हों तथा मृदु भाषिणी हो और थोड़ा ही क्रोध करने वाली हो ऐसी स्त्री बड़े पुण्य से प्राप्त होती है। जो स्त्री बड़े नेत्र वाली, बड़ी भुजायें वाली, लम्बी लम्बी अंगुलियों वाली, लम्बे बाल वाली होते हुए भी दुबली पतली होती है वह दीर्घायु जीवी होती है। जिस स्त्री के मुख, कुच, जघा, ग्रीवा और नाभी गोल हो वह स्त्री सौभाग्य युक्त होती है। जिस स्त्री के पहुंचे और कण्ठ देश में तीन रेखायें व्यक्त हो वह राजरानी होती है। जिस स्त्री की आंखें, नख, रोमवली, ओष्ठ, तालु और जीभ काले हों

(शेषांश पृष्ठ २६७ पर देखें)

ऊर्ध्वजत्रुज विज्ञान

लेखक—वैद्य श्री रामकिशोरसिंह आरोग्य मन्दिर सरथा (पटना)

> श्रीयुत वैद्य रामकिशोरसिंह जी ने ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क की मूल भित्त पर लेखनी उठाई है। इस नये अङ्क के लिये उर्ध्वजत्रुज विज्ञान एक आवश्यक विषय हैं, लेखक ने अपने विषय की सीमा के भीतर पर्याप्त ज्ञातव्य विषयों को सफलता से पूर्ण किया है।
>
> —आचार्य हरदयाल वैद्य

शरीर परीक्षा से मालूम पड़ता है कि उसकी बनावट चार चीजों के मेल से है—१-चाम। २-हड्डी। ३-रक्त ४—मास।

हड्डियों से शरीर का ढांचा बना है तथा कोमल अंगों की रक्षा भी उन्हीं से होती है। रक्त शरीर के प्रत्यंगों को भोजन पहुंचाता है। हमारे भोजन में जो शक्ति वर्धक वस्तुयें होती हैं उन्हें रक्त ले लेता है, रक्त ही शरीर को गर्म भी रखता है। चाम-शरीर का ढक्कन है। बाहरी चढ़ाई से यह शरीर की रक्षा करता है। मास—चाम के नीचे रहता है। मास में ही शरीर का आहार सम्रहित रहता है।

शरीर को मुख्यत: तीन भागों में विभाजित करते हैं तो प्रथम भाग ऊर्ध्वजत्रु होता है।

हड्डियाँ—शरीर में हड्डियों का ढांचा (कङ्काल) न होता तो मनुष्य न खड़ा होसकता था न चल-फिर ही सकता था।

जाति—अस्थि पाच प्रकार की है।

१—तरुण—नाक, कान और आंख आदि में।

२—कपाल—गाल के ऊपर, तालु और कनपटी आदि में।

३—वलय—यह ऊर्ध्वजत्रुज मे नहीं है।

४—नलक—छेदों मे।

५—रुचक—दांतों मे।

ऊर्ध्वजत्रुज और गले में चरक और वाग्भट्ट के मतानुसार ११२, सुश्रुत के मतानुसार ६६ और पाश्चात्य मतानुसार २६ अस्थि हैं।

परमात्मा की रचना अत्यन्त विचित्र है। ऊर्ध्वजत्रु की खोपड़ी मस्तिष्क के ढक्कन के लिए है उसी में आंख, नाक, कान और मुंह भी जोड़ दिए हैं।

मास—सारे शरीर में पांचसौ के लगभग मांसपेशियां हैं। इनमे अनेक छोटे छोटे तन्तु भरे पड़े हैं, इनमें से कुछ चल और कुछ अचल हैं। मांस पेशियों के बल से ही शरीर बलवान बना रहता है। जब मनुष्य चलता फिरता है तभी माँसपेशियां अपना अपना काम किया करती हैं। शरीर के मास वर्धन तथा स्वस्थता के लिये कोई न कोई शारीरिक व्यायाम अनिवार्य है।

स्नायु—सारे शरीर में जाल की तरह फैले हुए हैं लेकिन रीढ़ और मस्तिष्क में विशेष। स्नायु ही शरीर सञ्चालन में मांस पेशियों को शक्ति प्रदान करते हैं।

चेतनासूत्र-मस्तिष्क में भरे पड़े हैं। मस्तिष्क के इशारे पर

ही काम करते हैं ।

शरीर के सारे स्नायु मण्डल दो धमनियों की शाखा प्रशाखायें हैं । इनमें एक का नाम आदि कण्डरा और द्वितीय का नाम फुफ्फुस धमनी है। आदि कण्डरा धमनी जहाँ से शुरू होती है वहीं से मस्तिष्क गले और ऊपर की भागों में गई हैं। फुफ्फुस धमनी द्वारा दूषित एवं विषैला रक्त हृदय से फुफ्फुस में जाता है ।

धमनियों में हमेशा शुद्ध रक्त भरा रहता है । इसीसे सारे शरीर का पोषण होता है । आदि कण्डरा धमनी की जड़ है ।

मर्म स्थान—स्नायु, हड्डी, मांस पेशी आदि जहा पर मिलते हैं वे सब मर्म स्थान हैं। सिर मे जहाँ पर आँख, कान, नाक और जिह्वा के स्नायु जाल आपस में मिलते हैं वहा चोट लगने से तुरन्त मृत्यु हो जाती है। तालु स्थान जो सिर के ठीक बीचो बीच खोपड़ी की हड्डी के चारों ओर से बीच में जोड पर है वहा पर भी चोट लग जाने से तत्काल ही मृत्यु हो जाती है। कनपटी स्थान, कान और मस्तक के बीच से भी चोट लगने से तत्काल मृत्यु हो जाती है ।

सिर आठ बडी मजबूत सूक्ष्म हड्डियो का बना है। इसके भीतर मस्तिष्क का भेजा, नाडी चक्र, प्रधान-प्रधान इन्द्रियों का केन्द्र आदि स्थित हैं ।

मस्तिष्क—एक मजबूत हड्डी के डिब्बे में जिसे खोपड़ी कहते हैं, भली भांति सुरक्षित रक्खा गया है। इसके चार भाग हैं । १—बृहत् । २—क्षुद्र । ३—सफेद रग की रस्सी और ४—मातृका मूलाधार । इसके अलावा तीन झिल्लियां हैं जिससे चारों ओर से घिरा रहता है।

तौल—मनुष्य का मस्तिष्क पूरी उम्र का लगभग डेढ़ सेर का होता है। स्त्री का मस्तिष्क लगभग ढाई छटाक कम होता है ।

मस्तिष्क के स्नायु शरीर की सारी इन्द्रियों से मिले हुए हैं। मस्तिष्क ही सारी इन्द्रियों को आज्ञा देता है। सूचना देना, समझना, सीखना, चिन्ता आदि जितने भी बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाले मानसिक व्यापार हैं सब करता है ।

सुषुम्ना पिंगला—यह मस्तिष्क के महा छिद्र से लिपटी हुई है। पुरुषो में इसकी लम्बाई लगभग १८ इञ्च और स्त्रियों में १७॥ इञ्च तक होती है। तौल लगभग १ औंस के हैं। इसमें नसों के ३१ जोडे हैं ।

खोपड़ी इसमें ८ हड्डियाँ निम्नाङ्कित हैं। १—कपाल २ और ३—ललाट की दांये-बांये की ४—माथे के पीछे की। ५ और ६—कनपटी के दोनों ओर की जिसमें कान के छेद खुले हैं। ७—ढोलक कनपटी हड्डी के भीतर और ८—नाक के ऊपर की हड्डी है ।

मुखमण्डल—चौदह हड्डियों को मिला कर बना है। गाल की हड्डी, निचले जबड़े की हड्डी। प्रथम से गाल बनने में मदद मिलती है। द्वितीय में दात रहते हैं। निचले जबड़े की दोनों हड्डियों के मेल से तथा जबडे की हड्डी की मदद से तालू और नाक की छत बनती है। नाक का पिछला भाग गाल की ऊपर वाली हड्डी के खोखले से एकदम मिला रहता है।

गाल की ऊपर वाली हड्डी से दो टेढ़ी मेढ़ी हड्डियां दाई और बाई ओर चली गई हैं। इन्हीं हड्डियों में दातों के घर बने हैं। ये दोनों हड्डिया जहां मिलती हैं वही नाक की नीचे की सतह बनती है।

निचले जबड़े की हड्डी के मेहराब से ठुड्डी बनती है ।

अश्रुऽस्थि—आख के खोडर के सामने वाले भाग में है। इसी राह से आँसू निकलते हैं ।

कपोलास्थि—मुख मण्डल के बाहरी तथा ऊपरी भाग में है। इससे गालों का ऊपरी उभार बनता है।

तालुऽस्थि—नाक की पीछे को ओर से एक-एक करके तालु के दोनों ओर रहती है।

यह दो भागों में बटा रहता है। पहला कड़ा दूसरा मुलायम। कड़ा भाग दांत का पिछला और इस भाग का पिछला कितारा कोमल भाग है ।

नाकास्थि—नाक के भीतर दोनों ओर एक एक हड्डी है। नाक के भीतर भी एक हड्डी है जो दोनों छेदों के बीच में है।

आंख का खोढरा—सिर के दोनों तरफ एक-एक गोल गड्ढा है। जिसमें आख की पुतली रहती है। यह कटोरा सात हड्डियों के मेल से बना है। माथा, तालू, नाक, आसू आदि की हड्डियां इसके बनने में मदद देती हैं।

त्वचा (चाम)—शरीर का बाहरी ढकन है। साथ ही शरीर की गर्मी को भी कायम रखता है। नसों और शिराओं आदि की रक्षा होती है। शरीर की अवस्था की जानकारी भी इसी से होती है। केश चाम से ही निकलते हैं।

यदि चाम को उधेडा जाय तो इसकी तीन तहें पाई जायगी। प्रथम ऊपर के भाग की खाल या चमडी कहते हैं। बीच के भाग को मध्यस्तर और निचले भाग को भीतरी चमडी कहते हैं। आयुर्वेद मत से त्वचा से मास तक सात तहें हैं।

त्वचा या ऊपर का भाग—इसमें नसें रक्त को लाने और ले जाने वाली वाली नालियां, चर्बी और पसीना निकालने वाली नसें होती हैं। इसके भीतर झिल्ली होती है। त्वचा की जाच से मालूम होता है इसमें बहुत ही छोटे-छोटे छेद हैं। शरीर के जहरीले पदार्थ इससे बाहर निकलते हैं। दाढी, मूंछ और सिर के रोओं को बाल या केश कहते हैं। स्त्रियो में दाढी और मूंछें नहीं निकलती है। यह प्राकृतिक बनावट है। उनमें महीन २ कोष होते हैं। इनकी जड़ें चमड़े के भीतरी भाग में रहती हैं। यही बालों का उद्गम स्थान है।

नाडी परिवार—जिनके द्वारा हमें बाहरी और भीतरी वस्तुओं का ज्ञान होता है। उसे नाड़ी परिवार कहते हैं। यह दो भागों में बटा है।

१—मस्तिष्क और मेरुदण्ड सम्बन्धी नाडियां।

२—साम्वेदिक नाडियाँ जो काम कराती या सम्वाद पहुचाती है।

मस्तिष्क सम्बन्धी नाड़ियां

१—वृहत् मस्तिष्क।

२—लघु मस्तिष्क और मस्तिष्क सेतु।

१—वृहत् मस्तिष्क की बनावट—इसके बीचो बीच एक रेखा है जो इसे दो भागों में बाट देती है। प्रत्येक भाग को मस्तिष्क गोलार्ध कहते हैं। दोनो भाग नीचे आकर आपस में जुड गये हैं। इस जोड़ को महायोजक कहते हैं।

२-लघु मस्तिष्क—वृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है। इस में भी दो गोलार्ध हैं और भाग तीन हैं। दो गोलार्ध और एक नीचे का भाग मध्याश। दोनों गोलार्ध के मध्य डण्ठल की तरह एक चीज है जिसके भी तीन भाग हैं।

२-सेतु—यह लघु मस्तिष्क के सामने घूमा हुआ गोल सा रहता है। यहीं के सुपुम्ना, लघु और वृहत् मस्तिष्क में जाने वाली नाडियां निकलती हैं। सेतु के नीचे छोटे छोटे दो गोल दाने वृन्त पिण्ड हैं। इसके बाद दृष्टि योजिका और घ्राणपथ की ओर जाने वाला पथ है।

सुपुम्ना—यह सुई की आकार की एक नाडी है। इसका एक इञ्च लम्बा शिरा ऊपर की ओर है। इसकी मोटाई हर जगह एक समान नहीं है। इसके बोचोबीच एक छेद है। इस छिद्र में एक नली रहती है। इसका सिरा मस्तिष्क के चौथे खाने से जाकर मिलता है। दूसरा सिरा मेरुदण्ड के बीच में जाकर मिलता है।

वृहत् सेतु तथा सुपुम्ना पर झिल्लियों के तीन आवरण है जिसे मस्तिष्क वाह्यावरण कहते हैं। इन्हीं आवरणों मे रक्त ले जाने वाली नाडियों का जाल सा बिछा हुआ है।

नाडियां नीचे लिखे अनुसार बटी हैं और मस्तिष्क नाडियाँ कहलाती हैं। ये नाडियाँ लघु मस्तिष्क के भीतरी

पटल से निकलती है इनके १२ जोड़े हैं।

१-घ्राण नाड़ियां—जिनसे हमें गन्ध मिलती है।

२-दृष्टि नाड़ियां—इनकी मदद से हम देखते हैं। आंखों के भीतर एक गोलक है और गोलक के बाद एक पर्दा है जिस पर बाहरी चीजों की परछाई बनती है। नाड़ियां उसी गोलक के पीछे से घुसती हैं और फैल जाती हैं। जिससे हमें देखने की शक्ति मिलती है।

३-नेत्र चालिनी नाड़िया—इससे आंख की पुतलियों को गति मिलती है।

४-नेत्र चालिनी द्वितीया—इस नाड़ी की मदद से आंख की पलकें उठती और गिरती हैं।

५-त्रिशाखा नाड़ी—इससे मुख मण्डल, निचला जबड़ा, नाक, मुंह, जीभ का दो तिहाई भाग तथा दांतों को गति मिलती है।

६-छठा जोड़ा—आंखों को ऊपर को उठता है।

७-मौखिकी नाड़ियाँ—इससे खोपड़ी और मुख मण्डल की पेशिया चलती फिरती हैं। इस का सम्बन्ध जीभ से भी है। जिस से हमें चीजों का स्वाद मिलता है।

८-श्रावणी नाड़िया— इससे हमें सुनने के काममें मदद मिलती है।

९-जिह्वा कण्ठ नाड़िया—इससे कण्ठ की पेशियों तथा जीभ में रस का स्वाद लेने की शक्ति उत्पन्न होती रहती है।

१०-दसवीं नाड़ियां—स्वर यन्त्र, टेंटुआ आदि को गति प्रदान करता है।

११-एकादशी नाड़िया—पीठ गर्दन को और

१२-द्वादशी नाड़िया—जीभ की पेशियों को गति देती रहता है।

स्वास प्रणाली में ऊर्ध्वजत्रु के नीचे लिखे अङ्ग काम करते हैं— (१) नाक और (२) गलकक्ष।

नाक—यह खोखली चीज है। इसके बाहर और भीतर दो दरवाज़े हैं। नाक के भीतर दो गड्ढे हैं और बाहर दो छेद। नाक के दोनों गड्ढों पर एक चिकनी झिल्ली चढ़ी हुई है जिससे बराबर कफ निकलता है। उसे ही नेटा कहते हैं।

गल कोष—मुंह तथा नाक का पिछला भाग जहाँ आकर मिलता है उसे कहते हैं। नाक के दोनों गड्ढे, दोनों कण्ठ कर्णी नली मुंह के सामने की वायु नली और पीछे गल नली।

स्वर यन्त्र—इससे स्वर निकलता है। स्वर नली वहीं से निकलती है जहां गल कोष समाप्त होता है अर्थात् जीभ के पिछले भाग से। स्वर यन्त्र में नीचे लिखी हड्डियां हैं।

१—चुल्लिका अस्थि—चोकोर आकार की हड्डी है। इसी चुल्लिका कोष के भीतर स्वर रज्जु है जिससे बोली निकलती है।

२—मुद्रा अस्थि—यह नगदार अंगूठी की तरह है।

३-स्वर यन्त्रच्छद—यह जीभ की जड़ है। इसके ऊपर की ओर गल कोष और नीचे की ओर टेंटुआ है।

पाचन प्रणाली में ऊर्ध्वजत्रु के नीचे लिखे भाग काम में आते हैं—

(पृष्ठ २६३ का शेषांश)

वह दुश्चरित्रा होती है। जिस स्त्री का ललाट, ग्रीवा, ओष्ठ, नाक, कुच, कोख और योनि लम्बी हो वह स्त्री अच्छी नहीं समझी जाती। सोते समय जिस स्त्री के मुख से लार टपकती हो आंखें अधखुली रहती हो वह कुलटा होती है। जिस स्त्री के हंसते समय मुख से लार और नेत्रों से आंसू बहे वह चरित्र और शील से हीन होती है। जिस स्त्री के हंसते समय गालों पर गड्ढे पड़ जाय और नेत्र चलायमान हो वह व्यभिचारिणी होती है। बहुत छोटे मुंह वाली स्त्री धोखा देने वाली होती है। जो स्त्री सोते समय दांत पीसा करे और कुछ बड़बड़ा उठे वह अच्छी नहीं होती है।

मुंह, जीभ, दाँत और गल कच्छ।

मुंह—पाचन प्रणाली का सब से मुख्य अङ्ग है।

जीभ—मांस पेशियों के समूह से बनी है। जीभ से हमें सब चीजों का स्वाद मिलता है। अन्न चबाते समय जीभ से उलटने पलटने का काम लेते हैं।

तालुमूल (ललरी)—तालु के अन्त में गल नली के पास यह यन्त्र है।

तालु—हड्डी तथा श्लैष्मिक झिल्ली से बना है। यह अन्न पचाने के काम में मदद देता है।

दांत—इससे अन्न चबाने और पचाने का काम लिया जाता है। इसकी पूरी संख्या ३२ है। १६ ऊपर और १६ नीचे। जिसके सहारे दात जबड़ों में जमे हैं उसे मसूड़ा कहते हैं। मसूड़ों में अनेकों स्नायु और रक्त की नलियां हैं जो दांतों की जड़ों में घुसी रहती है। दात का जो भाग मसूड़ों में घुसा रहता है वह दात का मूलदेश अथवा जड है। उत्पन्न होते समय दात नहीं होता है। दो वर्ष के अनन्तर दूध के २० दात निकल आते हैं। छः से आठ वर्ष के भीतर ये दूध के दात टूट जाते हैं और इनकी जगह पर नये स्थाई दांत निकल आते हैं। जो अन्त तक रहते हैं। दांत के दोनों कतार में ऊपर नीचे बाईं और दाईं ओर चट्टु या चौभर होते हैं जिसे बुद्धि दात भी कहते हैं। जो सख्या में १२ होती है। ये १६ से २४ वर्ष के भीतर निकलते हैं। इस प्रकार कुल दांत ३२ होते हैं जो अन्त तक रहते हैं और टूटने पर पुनः नहीं निकलते हैं।

गल नली—यह एक तरह की नली है। इसका प्रारम्भ मुंह के भीतरी भाग से होता है। जो पदार्थ खाया जाता है इसी नली द्वारा मुंह से पेट में जाता है। इस नली का सिकोड़ बराबर नीचे की ओर होता है। इस प्रकार जो पदार्थ इसके भीतर जाता है उसे नीचे की ओर ठेलती है।

गल नली से सटी हुई वायु नली है जिसके द्वारा हवा जो हम नाक से स्वास लेते हैं फेफड़ों में जाता है। इसकी बनावट विचित्र है। इसकी दीवाल में रोंयेदार रेशे हैं जो किसी भी स्थूल पदार्थ को भीतर जाने नहीं हैं। धोखे से जाता भी है तो फेंक देता है। जैसे कभी २ छींक से अन्न कण नाक से निकलता है।

मुंह—पाचन प्रणाली का प्रथम भाग है। इसके छत को तालु कहते हैं। इसका अगला भाग सख्त और पिछला भाग नरम तालु है।

ओष्ठ (होठ)—मुंह के बाहरी खोल के ऊपरी और निचले कोरों को ओष्ठ कहते हैं। पुरुषों के ऊपरी ओष्ठ पर मूंछें निकलती हैं। मुंह के भीतरी द्वार के ऊपर वाले भाग में छोटी सी चीज जीभ की तरह रहती है उसे लुड़की या घण्टी कहते हैं। लुढकी के दोनों बगल की जगह खिलान की तरह से बनी हुई है इस खिलान की दाहिनी और बाईं रेखा गाल के निचले छोर पर दो भाग होकर गहराई उत्पन्न करती है। उस गहराई या अस्तर झिल्ली के नीचे एक लार निकालने वाली गिल्टी रहती है। उसे टौन्सिल कहते हैं तथा इसी को गल शुण्डिका भी कहते हैं।

आंख—आखें दो हैं। दाहिनी और बायी आँख। हरेक आख को दो भागों में बाटते हैं। प्रथम आख का खोडर और उसका भीतरी भाग। आंख का दृश्य भाग बादामाकार होता है लेकिन इसके पीछे का भाग गोल रहता है। इस अंश के पीछे मस्तिष्क रहता है। नीचे लिखे अङ्ग आख के भाग हैं—भौंहे, पलकें, आंखों का कोना, ढेंढर, गोलक, आसू निकालने वाली गांठादि।

आँखों के ऊपरी भाग के रोंयेंदार टेढ़ी लकीर को भौंह कहते हैं। हरेक आँख के ऊपर और नीचे की ओर एक-एक पलक होती है। इससे आंखों की रक्षा होती है। जिस स्थान पर दोनों पलकें मिलती हैं उस जगह को चक्षु कोण कहते हैं। आंसू, कीचड़ तथा अन्य गन्दी चीजें यहां से बाहर निकलती हैं।

आखों के खोडर में एक गोलक होता है। जिसे ढेढर कहते हैं। इसके ऊपर चमड़े का एक ढक्कन होता है। ढेंढर के बीच के भाग को आख की पुतली कहते हैं। इसका ढक्कन नीला होता है बाकी भाग सफेद रहता

है। ढेंढर पर इसके ऊपर जो पर्दा रहता है उसे शुभ्र मण्डल कहते हैं। यह एक सफेद पर्दा है। इस पर्दे के निचले भाग में एक छेद रहता है। इसी छेद को आँखों का तारा कहते हैं। आंखों को प्रकाश देने वाली नसें इसी छेद से होकर भीतर आती हैं। इन नसों को दर्शन स्नायु कहते हैं। इसके बाद वाला तीसरा पर्दा कृष्णपट कहलाता है। इसमें अनेक नसें तथा रक्त की नलियां हैं। देखने में यह एक महीन जाल की तरह है। इसका दूसरा नाम चित्र पत्र है।

आंख की पुतली के भीतर जो प्रकाश चक्षु गोलक में जाता है उसकी सहायता से हम लोगों को चीजों की असली अवस्था का पता चलता है जिसे हम देखना कहते हैं। उस समय उस वस्तु का चित्र आंख के पिछले भाग पर गिरता है जिसे चित्रपट कहते हैं। यह चित्र तुरन्त चित्र पट द्वारा मस्तिष्क में पहुँच जाता है। इस प्रकार किसी वस्तु का ज्ञान हमें होता है। ढेंढर को हम जिस ओर चाहते हैं उस ओर घुमाते हैं क्यों कि इसमें छः चीजें मिला कर ढीली ढाली ढङ्ग से रखी है।

कान—कान दो हैं। ये खोपड़ी की जड़ में दोनों ओर दाँयें और बाये हैं। कान को तीन भाग में बांटते हैं—(१) वाह्य कर्ण (२) मध्य कर्ण और (३) भीतर का।

वाह्यकर्ण के दो भाग हैं। (१) कर्ण पुट और (२) कर्ण कुहर।

कर्ण पुट एक प्रकार की हड्डी है यह शब्दों को बटोरती है और कर्ण कुहर में भेजती है। कर्ण कुहर को शब्द नली कहते हैं। क्यों कि इसी से होकर शब्द भीतर प्रवेश करता है। कर्ण कुहर ज्यों-ज्यों भीतर गया है पतला और टेढ़ा होता गया है और आखिर मे जाकर झिल्ली से मिल जाता है। इस झिल्ली को कर्ण पटह कहते हैं। कर्ण कुहर या श्रवण नली में अनेक गाँठें हैं जिनसे कान का मैल निकलता है। यही श्रवण नली को तर रखता है।

मध्य कर्ण तीन छोटी हड्डियों से बना है जो आँख की तरह आपस में मिली हुई हैं। यह सुरङ्ग हवा से भरी रहती हैं। मध्य कर्ण की एक हड्डी हथौड़ी द्वितीय निहाई और तृतीय रकाब के आकार की होती है। ये शब्दों को भीतर ले जाती हैं।

अन्त. कर्ण (भीतर का) इसके तीन भाग हैं। यह पानी के तरह के पदार्थ से भरा रहता है। श्रवण स्नायु इसके मस्तिष्क से निकल कर भीतर जाने के बाद हजारों भागों मे बट गया है।

अतः कर्ण का प्रथम शिरा बहुत कुछ अंगूठे के आकार का है। बीच का भाग अण्डे के आकार का होता है और अन्त का भाग घोंघे के आकार का है।

कर्ण का बाह्य भाग केवल शब्द बटोरता और उसे मध्य भाग में भेजता है। उस शब्द के पहुँचते ही निचले भाग में चञ्चलता आ जाती है जिस से शब्दों की शक्ति बढ़ जाती है। अन्त. कर्ण में प्रसारक और उत्थापित नाम की दो पेशिया हैं जो शब्दों को ठीक करती हैं। कर्णास्थियां शब्दों के इन कम्पनों को ठीक स्थान पर पहुँचाने का काम करती हैं।

ऊर्ध्वजत्रुजरोग और चिकित्सा

लेखक-पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्य बम्बई

हार्दिक सान्मानार्ह सुहृद्वर वैद्य रत्न श्री प० शिवशर्मा जी आयुर्वेदाचार्य के नाम से कदाचित ही कोई वैद्य वा आयुर्वेद प्रेमी ऐसा हो जो परिचित न हो। आपकी विद्वता, विशुद्ध आयुर्वेद प्रेम, व्यवहार पटुता, क्रिया नैपुण्य, चिकित्सा साफल्य, लेखन प्राचुर्य तथा वक्तृत्व पटुता आदि विभूतियों ने आपका भारत ही नहीं, प्रस्तुत भारतेतर विश्व में भी उच्च कोटि की ख्याति प्रदान की है। पंजाब विभाजन के पश्चात् लाहौर छोडकर आपने बम्बई नगरी को अपना चिकित्सा क्षेत्र बनाया है। बम्बई जैसे बृहत्काय नगर में आप ४-५ स्थानों पर सफलता पूर्वक चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। ४-५ स्थानों पर चिकित्सा करने वाले व्यक्ति के पास लेखन कार्यार्थ कितना समय प्राप्त हो सकता है यह तो भुक्तभोगी भली प्रकार जानते हैं। इस पर भी आपने मेरे निवेदन को अपने हृदय में स्थान देकर अपने बहु मूल्य समय को ऊर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के पाठकों की भेंट किया है।

आपने प्रस्तुत लेख में अपने ऊर्ध्वजत्रुज रोगों के चिकित्सकों को सतर्क रहने और विदेशी औषधों के बल बूते पर ऊर्ध्वजत्रुज रोगों को निर्मूल करने वाले ठेकेदारों के माया जाल से सावधान रहने का मार्मिक संकेत करके निर्भीकता का परिचय दिया है। आपका यह शुभ आशीर्वाद निःसन्देह व्यवहारार्ह है। आप स्थानीय **यूनिवर्सल हैल्थ इंस्टीट्यूट** में उन सुदीर्घ व्याधि ग्रस्त रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान कर रहे हैं जो ऐलोपैथी के द्वारा स्वास्थ्य लाभ करने में कुण्ठित रहे हैं। आपके इस प्रयास के द्वारा निकट भविष्य में आयुर्वेद का प्रकाश ज्ञान गर्वित तम को दूर कर सकेगा।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

मुझे यह जानकर कि आपके सम्पादकत्व में प्राणाचार्य का "ऊर्ध्वजत्रुज रोगाङ्क" निकल रहा है बहुत सन्तोष हुआ है। ऊर्ध्वजत्रुगत रोगों की संख्या भी बढ़ रही है और वह रोगी को विशेष कष्ट प्रद भी सिद्ध होते हैं। आजकल के डाक्टर इन व्याधियों में अधिकांश सल्फा-ड्रग, पेनिसिलिन तथा ओरियोमाइसिन और टेरामाइसिन का प्रयोग करते हैं। इन औषधों से कुछ तत्कालिक लाभ भी होता है, यद्यपि सल्फा औषध प्रायः यकृत और वृक्कों को बहुत हानी भी पहुंचाते हैं और फिर टेरामाइसिन आदि तो रोगी की रोग प्रति बन्धिकी शक्ति का निर्माण न करके अपितु कीटाणु नाशक क्रिया द्वारा ही कुछ लाभ पहुँचाने की शक्ति रखते हुए उत्तम उपचार कहलाने के अधिकारी नहीं। इन व्याधियों में आयुर्वेदिक उपचार अधिक स्थाई लाभ पहुंचाता है और रोगी की निजी रोग प्रति बन्धिकी शक्ति का निर्माण करना उसका विशिष्ट गुण है।

केवल शल्य शालाक्य साध्य ऊर्ध्वजत्रुज विकारों को छोड़ कर अन्य विकारों में जीर्ण प्रतिश्यायज उपद्रवों के संख्याधिक्य को नहीं भूलना चाहिए। उनमें जो लाभ क्वाथ चिकित्सा और रसों के सामजस्य से होता

(शेषांश पृष्ठ ३०४ पर देखें)

ऊर्ध्वजत्रुज रोगों का चिकित्सा क्रम

लेखक—श्री पं० देवदत्त शर्मा वैद्य शास्त्री पठानकोट (पञ्जाब)

सुहृद्वर ! श्री देवदत्त जी वैद्य शास्त्री योग्य विद्वान एवं अनुभवी चिकित्सक हैं। आयुर्वेद के पत्रों का स्वल्प स्वाध्याय करने वाले आपके नाम से पूर्ण परिचित हैं। आप कुशल और सफल लेखक हैं। अपनी सुपुत्री के शुभ विवाह कार्य में संलग्न होते हुए भी आपने उर्ध्वजत्रुजरोगाङ्क के लिए सारभूत और मार्मिक अपनी स्मृतिएं पाठकों की भेंट की हैं। लेखक ने भरसक प्रयत्न के साथ नाति विस्तार पूर्ण तथ्यों को लेख बद्ध करने में सफलता प्राप्त की है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

"ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु स्वप्न काले प्रशस्यते" यह आर्ष वाक्य अति प्राचीन है। आज इस वाक्य की ओर बहुत कम वैद्यों का ध्यान रहा है। इसलिये भी यह आवश्यक है कि मैं अपनी रचना द्वारा उन्हें पिछले इस विस्मरण को पुनः याद करादूं। "ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु विशेषात्रस्य मिष्यते।" ऐसे वचन भी शास्त्रों में कहे गये हैं पर इन पर भी यदि लिखा जायेगा तो विषय बहुत बढ़ जायगा, इसलिये उपरोक्त प्रधान विषय पर ही मैं कुछ चर्चा करूंगा।

आजकल वैद्यों की स्थिति बड़ी विचित्र है। डाक्टरों के समान ही वह चिकित्सा करना चाहते हैं। यही कारण है कि उन्हीं की भाँति दिन में कई बार औषध देने की व्यवस्था की जाती है। आर्ष चिकित्सा में औषध योजना के लिये जिन कालों का उल्लेख हुआ है उनकी ओर बहुत कम वैद्यों का ध्यान है। विदेशी चिकित्सकों के समान वैद्य भी दिन में वा रात्री में कई वार औषध देने की व्यवस्था करते हैं। शास्त्रीय नियमों का ठीक पालन न होने से औषध योजना वैसी सफल नहीं होती जैसी होनी चाहिए। कोई औषधि बार-बार देने या अधिक मात्रा में देने से ही रोग का नाश नहीं करती, आर्ष चिकित्सा के अनुसार—

> दूष्यं देशं बल काल मनलं प्रकृतिवयः।
> सत्व सात्म्यं तथाऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः॥
> सूक्ष्यसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरुपणे।
> येवर्तते चिकित्सायां न सस्खलतिजातुचित्॥

इन सब बातों का चिकित्सक को चिकित्सा के समय ध्यान रखना होता है। हममें से कितने चिकित्सक इन सब बातों पर ध्यान रख कर वर्तमान में चिकित्सा करते हैं? क्या आप स्पष्ट शब्दों में उत्तर दे सकते हैं? नहीं—तो फिर क्यों न यह कहा जाय कि वर्तमान के चिकित्सक, केवल नाम मात्र के चिकित्सक हैं। सच्ची चिकित्सा तो हम से बहुत दूर निकल गई।

बात बहुत पुरानी है। तब केवल औषधों पर ही विश्वास था। शास्त्रीय वचन—

> मात्रा कालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठता।
> तिष्ठत्युपरि युक्तज्ञोद्रव्यज्ञानवतां सदा॥

आदि पर मेरा ध्यान भी न जाता था। मूल्यवान औषध और तीव्र औषध ही सब कुछ करती है ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास था। साधारण रोगों में भी तीव्र से तीव्र औषध, नवीन रोगों में भी बहुमूल्य शास्त्रीय कल्प ठोकने

की मुझे बड़ी आदत थी। उन दिनों कितने रोगी मुझसे रोग मुक्त हुए यह तो मुझे स्मरण नहीं। यह इतना अवश्य याद है कि मुझे अपने शास्त्रीय अध्ययन पर अधिक मान था। बात-बात में वृद्ध वैद्यों तक से विवाद करना मेरे बांये हाथ का करतब था। सच कहा जाय तो मैं तब कुमार्ग में जारहा था। भगवान को यह स्वीकार नहीं था, उसने मुझे सत्य मार्ग दिखाना था इसीलिये एक विचित्र घटना घटी और मेरा सब अभिमान दूर हो गया। मुझे सत्य मार्ग या सच्ची चिकित्सा का मार्ग दर्शित हुआ। विवाद तो क्या प्रत्येक वयोवृद्ध और ज्ञान वृद्ध वैद्यों का मैं भक्त बन गया।

बात यूं हुई कि मेरे एक ७५ वर्ष के वृद्ध चाचा ने डाक्टर सोहनसिंह जी से अमृतसर में आंखों का ओपरेशन कराया। आंख तो ठीक बन गई पर एक मास बाद जब आंख की पट्टी उतारी तो भारी चक्कर आने की बीमारी उन्हें तङ्ग करने लगी। इस बीमारी से वह इतने तङ्ग आये कि आख के कष्ट से भी इसे अधिक प्रधानता देने लगे। उठते बैठते बराबर चक्कर उन्हें सताते रहे। तब चलना फिरना भी कठिन हो गया। चक्कर के साथ-साथ शिर में भयानक जड़ता का आभास होने लगा। रोगी को पहले नेत्रेन्द्रियों का विकार था इसलिए भय था कि कोई ऐसी औषधि रोगी को न दी जाय जो पुनः नेत्र विकार उत्पन्न करदे, इसलिये रोगी का इलाज डाक्टरी होता रहा, लगातार ३ मास चिकित्सा से जब लाभ न हुआ तो बड़ी कठिनता से रोगी को अमृतसर से घर लाया गया। यहां दूध घृत आदि पौष्टिक वस्तुओं का इस विचार से अधिक सेवन कराया गया कि दुर्बलता से ही सम्भव है चक्कर हों और इसी के विदा होते ही शायद आराम हो जाय पर बात ऐसी ठीक न उतरी। घर आने के ठीक सवा मास बाद भी जब पौष्टिक पदार्थों से रोगी को कुछ लाभ न हुआ तो फिर चिकित्सा आरम्भ की गई। स्वय चिकित्सा करता रहा पर कुछ लाभ जब न हुआ तो फिर उन्होंने औषध लेनी बन्द करदी। उन्हें वृद्ध वैद्यों पर विश्वास था, समीप के दो चार वृद्ध वैद्यों की चिकित्सा हुई पर लाभ कुछ न हुआ। जिन दिनों की यह बात है उन दिनों में मेरे पूज्य पिता स्वर्गीय प० सोहनलाल जी नाडी विज्ञानाचार्य आयुर्वेद केसरी तीर्थ करने गये थे। वह ७-८ मास बाद जब घर आये तो चाचा जी के चक्कर की अवस्था सुन कर बड़े चिन्तित हुए। मुझ से पूछा—'क्या देते रहे हो चक्कर के लिये?' मैंने उत्तर दिया—अभी तक १२-१४ औषध दे चुका हूं, पर लाभ नहीं हुआ और इलाज भी उन्होंने करवाये हैं पर उनसे भी लाभ न हुआ। क्या यूनानी इलाज भी हुआ? हकीम सादिक एक दिन खबर लेने आये थे वह बादाम रोगन की व्यवस्था करके चले गये। ८-१० दिन बराबर बादाम रोगन भी चला और एक जुशान्दा जो उन्होंने बताया था लेते रहे पर कुछ लाभ न हुआ। हकीम शेरअली एक दिन बाजार में मिले तो कहा कि याकूती दो यह भी ५-७ दिन उन्हीं से लेकर दी गई पर फरक जरा भी न हुआ। अच्छा तो आज इस प्रकार करना कि, नेत्रेन्द्रिय स्थान पर कार्य करने वाली प्रधान औषध महायोगराज गूगल के साथ अमृतासत्व मिश्रित कर रात्रि को ९ बजे शयन के समय मधु से चटा कर ऊपर से धमासे का क्वाथ घृत में छौंका हुआ पिला देना। इससे क्या होगा? जो होगा तुम्हारे सामने आजायेगा।—जहां बड़ी बड़ी औषधों ने कुछ नहीं किया वहां महायोगराज गूगल बेचारा क्या करेगा? वह भी केवल रात्रि को शयन के समय एक मात्रा के रूप में? —ठीक है? तुम्हें शास्त्रीय रहस्य का कुछ पता नहीं। यूंही अन्धाधुन्ध चिकित्सा ठोकते हो। आज जरा खिला कर तो देखो प्रातः ही क्या गुल खिलता है? चिकित्सा तो बहुत हुई पर किसी का ध्यान— ऊर्ध्व-जत्रु विकारेषु स्वप्न काले प्रशस्यते।" की ओर नहीं गया। यही कारण है कि औषध सफल न हो सकीं। मैंने ठीक ९ बजे महायोगराज गूगल में अमृता सत्व मिला मधु से चाचा जी को चटा दिया। ऊपर से धमासा क्वाथ घृत में छौंका हुआ पिला दिया। प्रात: जब मैं उठा तो देखा कि चाचा जी मुझ से पहले ही उठे हुए बाहर बैठे हैं। मैंने उनसे पूछा—"आज प्रात ही आप उठ बैठे?"—चक्कर का तो आज नाम निशान नहीं, पता नहीं बड़े भय्या की

दवा की इन्तजार ही इन्हें थी। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही, इतने दिन इतनी मग्ज मारी की बहुमूल्य दवा दी— दवा पर दवा का दौरा चला, जहां यह सब बातें असफल हुईं वहाँ केवल ऋषि वचन का "ऊर्ध्वजत्रुविकारेपु स्वप्न कालेप्रशस्यते" यह सकेत ही बाजी मार ले गया जिसकी ओर मुझे स्वप्न मे भी ध्यान न था। इसके बाद २-३ दिन दवा देने के बाद मैंने चाचा जी से तो छुट्टी पाई पर इस शास्त्रीय वचन ने मेरे चिकित्सा क्रम के बदलने में जो सहायता दी वह विषय विस्तृत है। इस वचन की ओर बराबर मेरा ध्यान फिर बना रहने से जो अनेक लाभ मुझे हुए उनकी यदि विस्तार से मैं चर्चा करूं तो एक स्वतन्त्र ग्रथ ही बन जावे। वैद्यों से मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वह ऊर्ध्वजत्रुज विकारों की चिकित्सा में उपरोक्त वचन को सदा ध्यान मे रखें।

रोगी लग-भग १४ वर्ष का था। सिर दर्द प्रधानता से था पर साथ साथ कोष्ठ मूल, ज्वर, तृष्णा, सिर में जड़ता, उदर मे आग सी बोध होना, सुस्ती, निरुत्साह आदि भी साथ ही चला करते थे। पेट दुखने की शिकायत रोगी २ वर्ष से बराबर करता चला आता था। इतने समय से बराबर ऐलोपेथिक इलाज चालू रहा पर कोई विशेय लाभ न हुआ। रोगी अच्छे घराने का था। इससे भी उसके पिता को डाक्टरी इलाज पर अधिक विश्वास था, अग्निमान्द्य की शिकायत रुग्ण की माता बराबर करती थी। अपने एक रिस्तेदार की शादी पर जब यह रोगी आया तो इसकी माता साथ थी। अचानक विवाह में ही रोगी को उत्क्लेद होने लगे। मेरा अपना शादी वाले के घर आना जाना था। इससे रोगी की चिकित्सा का मुझे ही सुअवसर मिला।

रोगी के इतिहास और परीक्षा से मैंने निश्चित किया कि कृमि रोग के ही उपद्रव स्वरूप यह उत्क्लेश हैं। इसलिये इनके नाश के लिये मैंने कबीला ४ रत्ती और सजीवनी वटी २ रत्ती मिलाकर २ पुड़ियां बना मधु से शयन काल में दी। इनके साथ ही साथ तन्द्रा और अनुत्साह जो उस समय प्रधान रूप मे बढ़े थे उनकी कमी करने के लिये कफघ्न और स्रोतोरोध नाशक तालिसादि चूर्ण २ माशे की १ पुड़िया को गरम पानी से व्यवहार किया। दो दिन यह उपचार चालू रहने पर उत्क्लेद में तो कमी आई पर उदरशूल और अन्य लक्षण मे जरा भी अन्तर न आया। विचार करते करते मैंने स्थिर किया कि शीर्षशूल जो प्रधान लक्षण है वह ऊर्ध्व जत्रु गत विकार है। इसका मूल कारण कृमि ही है। यह विचार कर मैंने "ऊर्ध्वजत्रु विकारेपु स्वप्नकाले प्रशस्यते" के सूत्र को ध्यान में रखते हुये केवल रात्री को शयन के समय बडी सौंफ और कबीला के मिश्रण की एक पुडिया देने की व्यवस्था की। ठीक रात्री के ९ बजे यह पुडिया दी गई। प्रातः काल प्रथम दिन ही आश्चर्य युक्त वाक्य मुझे रोगी की माता से सुनने को मिले। रोगी की माता ने कहा वैद्य जी क्या कहूं आज तो इतने कीड़े पखाने में निकले जिनकी हद

(पृष्ठ ३०१ का शेषांश)

है, उससे वैद्यो को पूर्ण लाभ उठाना चाहिए। मैं जिन औषधियो का अधिक प्रयोग इन व्याधियो में करता हू। उनके नाम लिखे देता हूं। रस चन्द्रिका वटी (भै० र०) वृहद्वातचिन्तामणिरस (भै० र०), मकरध्वज सानुपान (पूर्ण चन्द्रोदय), लक्ष्मी विलास तथा महा लक्ष्मी विलास रस, पथ्यादि क्वाथ (शार्ङ्गधर) तथा मधुयष्ट्यादि क्वाथ (बनफशा तथा गावजवान डालकर), चित्रक हरीत की अवलेह, च्यवनप्राश्य, श्रृङ्ग, प्रवाल, अभ्रक, इत्यादि। बादाम, पोस्त के बीज, चारों बीज तथा केशर से सिद्ध किया हुआ दूध भी विशेष लाभकारी है।

अति सक्षेप के लिये क्षमा चाहता हूं। आप जैसे अनुभवी विद्वानों के हाथ में यह अङ्क बहुत उपयोगी और उच्च साहित्य पूर्ण होगा इसमें मुझे या किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उसे लोकप्रिय होने के लिये किसी के आशीर्वाद की अपेक्षा नहीं। मेरी शुभ कामनायें तो सदा आपके साथ हैं ही।

नहीं। पेट दर्द और शिर दर्द अब आपका रोगी नहीं बताता, रात भर गनूदगी भी मुझे दिखाई नहीं दी जो वराबर मुझे २ वर्ष से दिखाई देती थी। उदर में ज्वाला का जो बोध होता था आज उसने वह भी नहीं बताया मैंने लगातार एक सप्ताह यह उपचार चालू रखा। इससे शीर्ष शूल, अग्निमान्ध, उत्क्लेश आदि का सर्वथा नाश हो गया। इन सब के मूल कारण कृमि थे और उनका नाश होते ही इन उपद्रवों का भी सदाको अन्त हो एक सूत्र—"ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु स्वप्नकाले प्रशस्यते।,, कितना सफल हुआ यह आप अब स्वयं निश्चित करें।

उमावती देवी पञ्जाब स्त्री वय ३० वर्ष के करीब जालन्धर की रहनेवाली थी। बहुत वर्षों से तीव्र शीर्षशूल और अन्न न पचने की शिकायत थी। रोगी का पति रेलवे में नौकर था बराबर डाक्टरी इलाज करा करा कर तंग आगया था। यहां पठानकोट में रुग्णा को अपने बहनोई के घर आने का समय मिला तो एक दिन जब रुग्णा को बहुत कष्ट था उसकी बहन मुझे दिखाने ले आई। उनके घर का मैं ही कुछ समय से गृह वैद्य था। मुझ पर घर वालों का बड़ा भरोसा था इसलिये वह मेरे पास ही लाई। यहां आने पर जब मैंने वृत्त पूछा तो रुग्णा ने अपने जीर्ण रोग का सब वृत्त कहा और साथ ही कहा कि हम लोग तो इस रोग को अब असाध्य ही समझते हैं। मैंने उसे विश्वास दिलाया कि रोग ठीक हो जायेगा—पर उनके हृदय पर मेरे बचनों का पूर्ण प्रभाव हुआ या नहीं यह मैं स्पष्ट कह नहीं सकता।

रुग्णा उच्च घराने की स्त्री होने के नाते कुछ नाजुक मिजाज भी थी। तीव्र औषध का सहन होना उसके लिये कठिन था। मैंने कोष्ठस्थ पचन विकार सामदोष समझ कर शिरशूल इसका गौण लक्षण समझा-शास्त्रीय वचन "पित्त विस्तं" को ध्यान में रखते हुये पचन व्यापार की जो अव्यवस्था थी उसके लिये पित्त दोष की प्रधानता से बुद्धि एसा निश्चय किया। साम पित्त दोष को निराम करते हुये पाचन विकार को ठीक करने की बात मैंने हृदय में स्थिर की। इसके लिये पाचक गुटिका (आमला प्रधान औषध कल्प) तीन दिन आपानकाल और समानकाल देने की व्यवस्था थी। इस औषध से अन्न पचन क्रिया सुधरी, पेट का आनाह शान्त हुआ, मलशुद्धि होने लगी पर शिर दर्द में जरा भी अन्तर न आया। अब विचार हुआ कि कोई पित्त शामक और शोधक औषध की व्यवस्था करनी चाहिये, इसकार्य के लिये मैंने प्रवाल माक्षिका मिश्रण मुरब्बा आमला से दिन में २ बार प्रयोग किया और रात्री को मधुर विरेचन चूर्ण-पर-इन औषधों से भी शिरदर्द में जरा कमी नहीं आई अब मैंने दोष दूष्य विचारपूर्वक चिकित्सा करने की ठानी।

रुग्णा को शिर पीड़ा का बेग रात्री को अधिक होता था। इस पीड़ा से निद्रा ठीक नहीं आती थी। रात्री जागरण से अन्न का परिपाक ठीक नहीं होता था। स्वभाव भी उसका चिड़चिड़ा हो गया था। शिरदर्द सम्पूर्ण शिर में होती थी। उपरोक्त लक्षणों से मैंने तीव्र शिरस्थ वात प्रकोप का निश्चय किया। साथ साथ पित्त का ईषत् अनुबध भी मुझे कुछ मिला सर्व शिर रोगों में रक्त धातु ही दोषों का आश्रय स्थान है (शिरस्य स्र प्रदूष्यति।)—(चरक सूत्र १७/११)

यह दोष दूष्य सम्बन्ध सन्मुख रख कर मैंने बृहण नस्य देने का निश्चय किया। पर शास्त्र में—

(अष्टाङ्ग० हृदय० सूत्र० २०।४) में-
"रक्ताला बृंहण रक्तच।

जो यह लिखा है इस कार्य की पूर्ति होनी मुझ से एकदम असम्भव थी। दूसरे ऐसा मुझे अनुभव भी नहीं था, और नहीं गुरु जनों को या अन्य कहीं के वैद्यों को ऐसा प्रयोग करते मैंने देखा था इसलिए बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। विचार करते करते मैंने इसी के समान गुण कारक नस्य योग ढूंढ लिया। वह योग था—

"शर्कराकुंकुमशृतघृतं पित्तासृगन्वये"।
(अ० हृ० उत्तर० २४।७)

अब रात्री को ६ बजे शयन के समय दूध एवं घृत में जरा मिश्री मिलाकर उसमें लघु सूतशेखर मिश्रण किया और रुग्णा को पिला दिया। औषधि सेवन के बाद ही शर्करा-केशर-घृत की नस्य दी गई। मधुर स्निग्ध और उष्ण वीर्य यह नस्य भी—

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषुस्वप्नकाले प्रशस्यते।

इस उद्देश्य को सन्मुख रखकर ठीक रात्री को ६ बजे ही दी गई। प्रथम दिन ही इस चिकित्सा का अद्भुत प्रभाव हुआ। शीर्ष शूल उसी रात्री को सदा के लिये विदा हो गया, कुछ दिन प्रयोग से रुग्णा के स्वभाव में भी भारी अन्तर आ गया और सदा को इस दारुण रोग से छुटकारा पा गई।

हमने बाद में अनेक बार तीव्र शीर्ष शूल में उपरोक्त चिकित्सा क्रम से बड़ा लाभ उठाया। रात्री जागरण अति अभ्यास से उत्पन्न तीव्र शिर शूल में उपरोक्त उपाय बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है।

तीव्र शीर्ष शूल के जिन रोगियो को केफीन साइट्रिक, एसप्रीन और एस्प्रो जैसी पेटेण्ट औषधि कुछ लाभ न कर सकी—सुवर्ण सहसूतशेखर, महावातविध्वन्सरस, महायोगराज गूगल, शिर शूलादि वज्ररस और विविध आयुर्वेद औषधियों का भी जिस शिर शूल पर कुछ प्रभाव देखने में नहीं आया-ऐसे रोगी उपरोक्त चिकित्सा क्रम से शीघ्र से शीघ्र पूर्ण आरोग्य हो गये। यह बड़े ही आनन्द की बात है। शर्करा केशर घृत की नस्य शामक होने से केवल शिर शूल पर ही कार्य नहीं करती मुख दूषिका, नीलिका, व्यङ्ग आदि पर भी उत्तम कार्य करती है, ऐसा हमारा ही नहीं शास्त्र का भी मत है। (अष्टाङ्ग० हृ० उत्तर ३२/३२) अनुभव में परीक्षा द्वारा अनेक बार इस शास्त्रीय कथन को सत्य सिद्ध किया है। अनेक रोगियों को उपरोक्त चिकित्सा क्रम से पूर्ण लाभ हुआ है। यह सत्य और परीक्षित बात है। हमने अर्धावभेदक के अनेक रोगियों पर भी इस चिकित्सा क्रम से लाभ उठाया है। अर्धावभेदक में जिधर वेदना हो उसके विपरीत नासापुट में यह नस्य देनी चाहिए। यदि दबाव दोनों ओर हो तो दोनों नासापुटों में इसे डालना चाहिए।

उपसंहार

शास्त्रोक्त सूत्र 'ऊर्ध्वजत्रु विकारेषु स्वप्न काले प्रशस्यते' देखने में बहुत छोटा और साधारण जान पड़ता है, पर इस सूत्र में जो रहस्य छिपा हुआ है वह इतना विस्तृत है कि, इसके विषय में जितना लिखा जाय उतना ही अल्प है। वर्तमान में वैद्यों की स्थित बड़ी विचित्र है। वह शास्त्रीय मार्ग को छोड़कर इस समय अनुभूत योगों के पीछे दौड़ लगा रहे हैं। सिद्ध योगों के नाम पर इस समय बड़ी दौड़ धूप है पर सत्य सिद्ध योग कौन है इसकी ओर इस समय हमारा जरा भी ध्यान नहीं है। सच बात तो यह है कि हम लोग ऋषियों के सच्चे मार्ग को एकदम भूल चुके हैं। यही कारण है कि हमारी चिकित्सा पूर्ण सफल नहीं हो रही है। हम अपने योगों को दोषी ठहराते हैं, पर यह हमें स्वप्न में भी ध्यान नहीं कि, दोष हमारा है योगों का नहीं है। शस्त्र कितना ही उत्तम हो यदि उसका प्रयोग करने वाला उसके प्रयोग की विधि को ठीक-ठीक न जानता हो तो कभी उससे समय पर पूर्ण लाभ नहीं उठा सकता, पूर्ण लाभ वही उठा सकता है जो उसकी प्रयोग विधि को जानता है। प्रयोग विधि को जानने वाला तो मामूली शस्त्र से भी बड़ा लाभ उठा सकता है।

वैद्यों की दशा इस समय बड़ी चिन्तनीय है। वह अपने घर को तो देखते नहीं पर पराये घर पर सेंध लगाने की भरसक लालसा उनके हृदय से जाती नहीं। यदि वह अपने घर को ध्यान से देखें तो सब कुछ उन्हें सहज ही में प्राप्त हो सकता है।

आज आयुर्वेद का नाम ही नाम रह गया है। चिकित्सा तो वर्तमान में एक दूसरे के देखा देखी वैद्य भी डाक्टरी नहीं तो उसी के समान कर रहे हैं। आज देश, काल, मात्रा, युक्ति की ओर उनका ध्यान नहीं।

(शेषांश पृष्ट ३०९ पर देखें)

कतिपय ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की आशुफलप्रद चिकित्सा

प्रधान सम्पादक की लेखनी से

नेत्राभिष्यन्द—

आंख दुखने या आख आ जाने पर प्रायः जिंकलोशन का व्यवहार किया जाता है परन्तु हम अपने चिकित्सालय में अनेक वर्षों से निम्नलिखित योग का व्यवहार करते हैं। धर्मार्थ चिकित्सालयों के लिए निम्नलिखित समस्त योग अत्यन्त लाभदायक और सरल सिद्ध होंगे।

४६६—दारु हलदी ५—
जल १ सेर
शेष २० तोला

—वस्त्र पूत करके बोतल में डालदें। ऊपर से लाल फिटकरी कच्ची का १ तोला चूर्ण इसमें डालदें और मिलाकर पड़ा रहने दें। दिनमें २/४ बार हिला मिला दिया करें। २४ घंटा के बाद एक स्वच्छ बोतल लेकर उसके मुख पर शीशे की कीप रखदें और इसके भीतर अत्यन्त स्वच्छ रुई की तह बिछादें। ऊपर से शनैः २ दवाई डालकर पातन करलें। अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर वर्ण का तरल आपको बोतल मे प्राप्त होगा इस तरल के दो चार विन्दु नेत्रों में डालने से नेत्रों की रक्तिमा, शोथ और जल स्राव एव रढक शात होकर आरोग्य प्राप्त होता है।

पोथकी (कुक्कुरे)—

सबसे पूर्व यह रोग बच्चों को हो जाता है और इसकी चिकित्सा गलत होने के कारण बड़ी आयु तक भी रोगी इससे छुटकारा नहीं पाता। इस रोग में प्रायः कास्टिक लोशन १, २, वा ४% का डाला जाता है। इसके प्रयोग से तत्काल तो क्षणिक लाभ प्रतीत होता है। परन्तु इसके प्रयोग से वर्त्मों के भीतर की श्लैष्मिक कला का परत मोटा और जलवाहिनियों के छिद्र बन्द हो जाते हैं परिणाम स्वरूप विकृत दोष भीतर अवस्थित होकर पलकों के अग्र भाग को पूर्वापेक्षा वा स्वस्थापेक्षा स्थूल कर देते हैं और रोग का मूल कारण इन्हीं में स्थिर होकर बार बार प्रकोप करता रहता है। एतदर्थ निम्नयोग अतिशय लाभप्रद है।

४७०—परिश्रुत जल १ पाव
उत्तम नीला थोता १ रत्ती

—पीसकर मिलादें। पूर्णतया घुल जाने के बाद दूसरे तीसरे दिन उपर्युक्त विधि से पातन करके रखलें। इसकी २–४ विन्दु रोगी के नेत्रों में डालने से उक्त रोग में आश्चर्य जनक लाभ होता है एवं पुराने कष्ट में अधिक समय के प्रयोग से नेत्र रोग रहित हो जाते हैं।

नेत्राभिघात—

अकस्मात नेत्रों में आघात सा जाने वा चोट लगने के कारण यदि नेत्र गोलक का बहिर्भाग एवं चक्षु बुद बुद रक्त होने के साथ साथ तीव्र वेदना एव शोथ आदि उपस्थित हो जाए जो तुरत ही स्त्री के दूध को नेत्र में डालें और ऊपर से स्त्री दुग्ध में विशुद्ध रुई

के फाहे को भिगोकर नेत्र के दोनों पलकों को चिपकादें तुरन्त व्यथा शांत होगी और २/३ दिनमें शेष उपद्रव भी इसी चिकित्सा से शांत हो जायगे।

नेत्रस्राव—

प्रात: काल, पढ़ने के समय अथवा रात्री को वा शीत वायु के सम्पर्क से यदि नेत्रों से स्वतः ही जलस्राव हो तब—

४७१—समुद्रफल को ५/७ विंदु भर स्वच्छ जल के साथ किसी स्वच्छ शिल पर घिसकर और इस घृष्ट तरल को सलाई पर लगाकर रात्री को सोते समय अञ्जन करने से नेत्रों का जल स्राव ५/७ वार प्रयोग करने से ही नष्ट हो जाता है।

दूसरा योग—

४७२—समुद्रफाग	१ तोला
कालासुरमा	१ तोला
यशद का फूला	६ माशा
फिटकरी का फूला	३ माशा

—सबको मिलाकर भली प्रकार पीसकर रखलें। प्रात: सायं शलाका द्वारा प्रयोग करने से भी जल स्राव बंद होकर नेत्र स्वस्थ रहते हैं।

कर्णरोग—

पनसिका—यह एक फुन्सी है और कान के भीतरी भाग में हुआ करती हैं। इसके उत्पन्न होने से कान में असह्य तीव्र वेदना होती है।

४७३—१ चमचा भर बकरी का मूत्र साधारण उष्ण करके १ रत्ती भर सेंधव लवण मिलाकर कान में डालने से तुरन्त पीड़ा शाँत हो जाती है। कान मे दवाई डालने के पश्चात् गरम की हुई रूई के साथ कान को सेंक करना चाहिए। कर्ण शोथ, कर्णकण्डू और तुरन्त का बहिरापन भी इस योग से शांत हो जाता है।

कर्णस्राव—

यह भी एक भयङ्कर व्याधि है। कभी कभी यह बाल्यावस्था से आरम्भ होकर बड़ी आयु तक निरन्तर चलता ही रहता है।

उपाय—

४७४—कपर्द भस्म को कान में भरकर ऊपर से १०-१५ बिन्दु नीबू का रस ५-७ दिन प्रतिदिन डालने से यह शात हो जाता है। ऐसे रोगियों को श्योनाक-त्वक चूर्ण १॥/१॥ माशा की मात्रा से प्रात सायं मधु के साथ चाटने के लिए भी देना चाहिए।

कर्ण बधिरता—

श्रवण शक्ति की दुर्बलता पर शार्ङ्गधरोक्त 'बिल्वादि तैल' इसके लिये अत्युत्तम योग है। इसी का निरन्तर प्रयोग करने से यह रोग दूर हो जाता है। बिल्वादि तैल का विशेष साधन प्रकार उपयोग और वक्तव्य सहित मेरे द्वारा की गई शार्ङ्गधर की *रहस्यार्थ प्रकाशिकाटीका* में देखें।

नाशा रोग—

नाशा शोथ, नासार्श, पुराना प्रतिश्याय, पीनस एवं पूयरक्त, प्राय: नासा के उक्त रोगों के ही रोगी व्यक्ति-रूपेण वा दातव्य धर्मार्थ चिकित्सालयों में आया करते हैं। इनमें से प्रथम के २ रोग यदि शस्त्र साध्यावस्था में न पहुँच गये हों तो निम्न लिखित योग से प्रायः नष्ट हो जाते हैं।

४७५—देवदाली का पञ्चाङ्ग ५ तोला लेकर कूटलें और ८ छटाक जल में क्वथन करके अष्टमाँश शेष रखलें। तदनु मल कर स्वच्छ वस्त्र से छान कर शीशी में डालदें। नासा के उपयुक्त सब रोगो में प्रात साय एक २ ड्रापर भरके दोनों नासापुटों में डाल दें। रोगी को चित्त लिटाकर औषध नासिका मे डालें और तब तक रोगी पड़ा रहे जब तक औषध कण्ठ में न पहुच जाये। इसके प्रयोग से नासिका से जल स्राव होता है और ५-७ दिन में ही उक्त रोग नष्ट हो जाते हैं। पुराने प्रतिश्याय और पीनस के लिये तो यह योग सद्यः फल प्रद और अनेक

बार का अनुभूत हैं।

ओष्ठरोग—

ओठों के फूटने या पकने के रोगों में ज्योतिष्मती तैल का पिचु के द्वारा प्रयोग करने से २-४ बार के प्रयोग से ही ओष्ठरोग नाश हो जाते हैं। कर्ण लेही या कर्ण पालिका के शोथ और व्रणों पर इसी तैल को पिचु द्वारा लगाने से तुरन्त लाभ होता है।

दन्त रोग—

दाँतों में अनेक रोग होते हैं। परन्तु अधिकता से होने वाले कतिपय दन्त रोगों में निम्न लिखित योगों का व्यवहार हम नित्यप्रति करते हैं।

दन्त पीडा—

दातों में प्रायः मसूढों के फूलने से या दन्त मूलगत वातवाहिनियों के पीडित होने से दन्त शूल या शीतोष्ण स्पर्श से पीडा की प्रतीती होती है।

एतदर्थं—

४७६—दालचीनी हलदी
कूठ मंजीठ
फिटकरी कबावचीनी
अखोटत्वक तम्बाकू की नसवार
शर्करा सैंधव
कर्पूरदेशी प्रत्येक सम भाग

—सब को मिला कर कूट कर वस्त्रपूत करलेवें। आवश्यकता के समय दांतों और मसूढों पर इसे मसलना चाहिये। इसके मर्दन के बाद आधा घण्टा तक कुल्ला न करें। इसके प्रयोग से दंत शूल एव दातों में पानी लगने की शिकायत दूर हो जाती है।

क्रिमि दन्त शूल—

क्रिमि भक्षते दंत शूल आरम्भिक अवस्था का तो औषधि साध्य है यदि वह पुरातन या अधिक विकराल रूप का हो तब इसे उत्पाटित कर देना ही उत्तम उपाय है। साधारण अवस्था के लिये हिंगुवारुणीसार १ औंस में १ माशा अहिफेन घोल कर उसकी फुरेरी लगाने से तुरंत तीव्र शूल शांत हो जाता है।

४७७—सैन्धवलवण को सूक्ष्मतया पीसकर कटु तैल के साथ मिलाकर मर्दन करने से भी तत्काल लाभ हो जाता है।

मुखपाक की द्वितीयावस्था—

इस अवस्था में जिह्वा का अग्रभाग, जिह्वा के पार्श्व अथवा आमूल चूल जिह्वा पर शोथ, पीडा, रक्तिमा और मुख से लाला स्राव होता है एव कपोल द्वय का भीतरी भाग भी न्यूनाधिक उपर्युक्त लक्षणों से व्याप्त होता है। कभी २ यह रोग अत्यंत तीक्ष्णोष्ण पदार्थों के सेवन से होता है और कभी २ आमाशय शोथ एवं क्षुद्रान्त्रों के प्रदाह के कारण होता है और कभी २ पैत्तिक संग्रहणी (स्प्रू) के कारण उत्पन्न होता हैं।

४७८—यदि यह रोग तीक्ष्णोष्ण वस्तुओं के सेवन मात्र से ही उत्पन्न हुआ हो तो प्रातः साय त्रिफला चूर्ण ४-४ माशा की मात्रा से शीतोदक से देना चाहिये और मसूर की दाल के छिलके या साबूत मसूर

(पृष्ठ २०६ का शेषांश)

यह भारी दोष जब तक हम से निदान नहीं होता विशुद्ध आयुर्वेद कभी पूर्ण तया निरी कोरी भारी भारी स्कीमों से फूलित-फलित नहीं हो सकता। मैं कितने ही वैद्यों को जानता हूं जो वैद्य होते हुए भी कभी आयुर्वेद औषधियों का व्यवहार नहीं करते। उन्हें आयुर्वेद की औषधियों पर पूर्ण विश्वास नहीं। नाम मात्र के ऐसे वैद्य सदा डाक्टरों के आगे सिर झुकाये अपना समय पूर्ण करते हैं। ऐसे वैद्यों को आयुर्वेद के गौरव की परवाह नहीं। इन वैद्यों से क्या आयुर्वेद का कुछ मान वढ़ेगा। नहीं, तो फिर क्यों न हम विशुद्ध आयुर्वेद के सच्चे भक्त वन संसार का उपकार करें। इसी में हमारा और आपका गौरव है।

के क्वाथ से कुल्ले कराने से तुरन्त रोग की शांत हो जाता है।

४७६—यदि आमाशय शोथ या क्षुद्रान्त्रीय प्रदाह के कारण उत्पन्न हुआ हो तो रोगी को त्रिफला का हिम कषाय मिश्री मिलाकर देना और भोजनार्थ केवल दूध, दूध चावल, साबूदाना, या सूजी से बनी पतली लपसी देने से लाभ हो जाता है।

यदि यह रोग पैत्तिक ग्रहणी के कारण कभी २ उत्पन्न होता हो तब प्रकृत रोग की उपयुक्त चिकित्सा करने से ही शाँत होगा।

कण्ठरोग—

कण्ठ के रोग तो अनेक हैं परन्तु प्रायः रोगी— कण्ठ शोथ, कण्ठपीडा, कण्ठशालूक (टोन्सिलस) के अधिक आते हैं। इनकी शाँति के लिये जिस अमोघ और अचूक योग को हम नित्यश व्यवहार करते हैं वह इस प्रकार है—

४८०—कायफल ऽ। कूटकर कलईदार बर्तन में ४ सेर पानी डालकर शनैः २ पाक करें। जब ऽ॥ सेर क्वाथ शेष रहे तो पात्र को चूल्हे पर से उतार कर अवशिष्ट क्वाथ को स्वच्छ वस्त्र से छानले। इस वस्त्र पूत क्वाथ को स्वच्छ कलईदार बर्तन में डालकर पुन. मंद २ अग्नि से आधा रहने पर्यन्त पाक करे। तदनु पात्र को चूल्हे से उतार कर शीतल होने पर इसमें १० तोला शुद्ध मधु अथवा अभाव में १२ तोला ग्लिसरीन मिला कर चालन करें। यह एक अत्यन्त मनोहर सुन्दर वर्ण का घोल तैयार होगा इसे स्वच्छ बोतल में डाल दें। ऊपर से ४ रत्ती सत्त पोदीना पीस कर डालदें और डाट लगाकर खूब हिलादें। समस्त गल रोगों के लिये पिचु विधान से दिनमें २–३ बार इसको गले के भीतर लगाना चाहिये। प्रत्येक आयु के रोगियों को निःशंकतया लगाया जा सकता है। प्रायशः बाल रोगो में यह तुरन्त लाभ करता है।

पायेरिया—

यह रोग बडी त्वरित गति से बढ़ रहा है। ग्रामीणों की अपेक्षा नगर निवासियों पर इसकी विशेष कृपा है। इसका कारण अधिक गरमागरम चाय और बरफ का मात्राधिक प्रयोग है। अत्यन्त बढ़ा हुआ यह रोग भी दन्त पंक्ति को नष्ट कर देता है। इसके रोगियों को पूर्ण सावधान रहने की आवश्यकता है। इस रोग में ग्रस्त रोगियों के लिए दांत उखाड़ देने का प्रमाण पत्र दे दिया जाता है। दांतों को उखाड़ देने से भी इसकी शाँति नहीं होती। घातक व्याधि का मूल रूप शरीर में विद्यमान रहता है परन्तु रोगी अपने दांतों से सर्वदा के लिए वञ्चित हो जाता है और कृत्रिम दांत पूर्ण तया उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करते एवं नए दांत लगवाकर रोगी एक नये झंझट को अपना सहचर बना लेता है।

इसकी पूर्ण चिकित्सा समय साध्य है और किसी ऐसे चिकित्सक द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है जो आयुर्वेदिक सरणी के अनुसार दोष दूष्य और धातुओं की परम्परा और सञ्चय, प्रसरण, प्रकोपादि को भलो प्रकार जानता हो।

व्याधि की पीड़ा और उपद्रव शांति के निमित्त निम्न लिखित योग सतोषप्रद कार्य करते हैं।

४८१—लोध्रचूर्ण स्फटिका
कत्था निम्ब पत्र चूर्ण
प्रत्येक समभाग

—उत्तम प्रकार से निर्मित जात्यादि तैल (शारंधरोक्त) १ तोला में उक्त चूर्ण ६ माशा मिलाकर दांतों और मसूढ़ों पर मर्दन करने से पर्याप्त लाभ होता है।

४८२—गूलर के त्वक् के क्वाथ से कुल्ले कराना एवं इसी की रस क्रिया को थोड़े से जल के साथ घोल कर कर्पूर मिश्रित करके अंगुली से दिनमें २/४ बार घर्षण करना भी पायेरिया की तीव्रता एवं इसकी भविष्य की वृद्धि को रोकता है।

४८३—अखोटत्वक् २ तोला
देशी तम्बाकू का चूर्ण ६ माशा
कर्पूर ३ माशा
लालफिटकरी कच्ची ३ माशा

—इस योग के प्रयोग से भी पायेरिया का कष्ट अधिक दु:खदायक नहीं रहता एवं रोग की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। समूलत: रोग शांति के लिए अनुभवी चिकित्सक की शरण लेनी अनिवार्य है।

मुखपाक—

मुखपाक से अभिप्राय दोनों ओष्ठों के भीतर की दीवारों पर शोथ, पाक और चकत्तों का परिचायक जानना चाहिए। इसको आयुर्वेद *सर्वसर* के नाम से सम्बोधित करता है। यह साधारण दोष प्रकोप से होने वाला रोग है।

एतदर्थ—

४८४—गैरिक चूर्ण १ तोला
तूतिया २माशा

—मिलाकर रखलें और रोगी के पीड़ित स्थान पर अगुली के द्वारा घर्षण करने से ही शांत हो जाता है। इसके प्रयोग के पश्चात् १५-२० मिनट के बाद शीतोदक से कुल्ले कर लेने चाहिये।

नोट—जो चिकित्सक अपने व्यक्तिगत चिकित्सालय में या धर्मार्थ चिकित्सालयों में अपने दैनिक व्यवहारार्थ इस प्रकरण में दिये गये योगों को व्यवहार करेंगे उन्हें विदेशी औषधियों के एतदर्थ व्यवहार की आवश्यकता नहीं रहेगी। यदाकदा आवश्यकता पर चिकित्सक महानुभाव अन्य रोगों के लिए भी विदेशी औषधियों के स्थान ग्रहण करने वाली आयुर्वेदीय औषधों के लिए पूछ सकते हैं। अपने ४५ वर्ष के चिकित्साकाल में हमने ऊर्ध्वजत्रुज रोगों के लिए कभी भी आयुर्वेदतर औषधों का व्यवहार अपने निजी चिकित्सालय में या धर्मार्थ चिकित्सालयों में नहीं किया। इस प्रकरण के समस्त योग अत्यन्त सरल और सुक्रिय हैं।

इनके अतिरिक्त इस अङ्क के योग्य और मान्य लेखक महोदयों ने भी हमारे निवेदन के अनुसार *ऋषि हृदय प्लावित* होकर ही ऊर्ध्वजत्रुज रोगों के लिए अपने २ शतशोऽनुभूत योग प्रदान किये हैं। एतदर्थ हम उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

वैद्यरत्न कविराज डाक्टर प्रतापसिंह

सम्माननीय मित्रवर्य प्रिंसिपल हरदयाल जी सा० वन्दे०

आपका कृपा पत्र प्राप्त कर परम प्रसन्नता हुई। प्राणाचार्य के व्यवस्थापकों ने आप के हाथों में प्राणाचार्य के विशेषाङ्क का सम्पादन समर्पण कर बहुत बुद्धिमानी का कार्य किया है आप जैसे परिश्रमी अध्यव्यसाइ विज्ञ पुरुष के द्वारा कार्य अत्यन्त सुन्दर और ज्ञान प्रचारक होगा।

मैं यहाँ के कार्य से अवकास हीं नही पाता अभी २२ दिन के देहाति दौरे से लौटा हू। इन मरु भूमि के देहातों में जल का तो अभाव है ही आजकल अन्न और चारे का भी महा अकाल है ऐसी दशा में चित्त की शान्ति रहना कैसा कठिन है वह आप जैसे विज्ञ वैद्यों को बताना सूर्य को दीपक दिखाना है।

आजकल "स्वस्थे चित्ते बुद्धय संस्फुरन्ति" कहावत चरितार्थ हो रही है। चित्त के अस्वस्थ रहने से लिखना पढना सब बन्द है तथापि आपके अनुरोध से मेरा एक अनुभव नेत्र रोगों पर है वह लिख देता हू। आप निदानादि का विस्तार कर इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

भवदीय
कवि० प्रतापसिंह

बहुमानास्पद परम मित्र सुहृद्वर वैद्य रत्न कवि प० प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य महोदय का नाम आयुर्वेद जगत में सम्मान के साथ लिया जाता है। यह सम्मान वैभव आपका निज परिश्रमोपार्जित है। आयुर्वेद शिक्षा के दीक्षान्त सस्कार के पश्चात् आप ऋषीकेशस्थ सुप्रसिद्ध बाबा काली कमली वालों के आयुर्वेद विद्यालय तथा दातव्य चिकित्सालय के अध्यक्ष पद पर सुशोभित हुए एव बहु वर्ष तक सफलता के साथ कार्य करने के बाद आप हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के आयुर्वेद विभाग के अध्यक्ष नियत हुए। यहा भी आपने अपनी विद्या, कुशाग्र बुद्धि और योग्यता से आदर्श कार्य कर दिखाया। इसी काल में आपने आयुर्वेदीय खनिज विज्ञान का सङ्कलन किया। इससे आपकी कीर्ति कौमुदी चतुर्दिक प्रसारित हुई। तदनु राजस्थान के आयुर्वेदीय विभाग के सर्वोच्च स्थान पर पदारूढ होकर आयुर्वेद के प्रचार में निमग्न हैं।

प्रभु ने आप को अनेक गुणों के साथ-साथ मधुर भाषण तथा अन्वेषण प्रियता मुख्य रूपेण दान दी है। समय न रहते हुए भी आपने ऊर्ध्वजत्रुज रोगों में प्रमुख स्थानीय नेत्रों के सम्बन्ध में आयुर्वेद की इस उक्ति "पुनर्नवा नेत्र नव करोति" को सानुभव सहित पाठकों की भेंट करके उपकार का कार्य किया है।

—आचार्य हरदयाल वैद्य

पुनर्नवा नेत्र नवा कराति

लेखक—वैद्यरत्न कवि० श्री प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य डायरेक्टर आफआयुर्वेद, राजस्थान

प्राचीन चिकित्सकों का यह अनुभव सिद्ध वाक्य मेरे विचार में अनेक बार आया पर इसका प्रयोग कैसे किया जावे यह निश्चय नहीं हो सका। अनेक वृद्ध वैद्यों के साथ परामर्श करने पर इतना ही ज्ञात हो सका कि इसके मूल को घिस कर अञ्जन करने से नेत्र के अनेक रोगों में लाभ होता है। मैंने इसका अनुभव करने का निश्चय कर पुनर्नवा के अनेक मूल मगाकर पोथिका, तिमिर, काच, अव्रण शुक्र के रोगियों को देना प्रारम्भ किया और रोगियो के साथ सम्पर्क कायम रखा पर रोगी घिस कर मूल का अञ्जन करने में बड़े ही आलसी निकले, किसी ने दो दिन और किसी ने चार छ दिन मल कर के निराश होकर बैठ गये, इस से बार-बार प्रयत्न करने पर भी सफलता नहीं मिली पर मैं निराश नहीं हुआ और वैद्य हकीमो से पूछ ताछ करता ही रहा, एक दिन एक मित्र ने उर्दू के पत्र में यह नुसखा दिखाया कि पुनर्नवा का रस, अभ्रक का रस समान भाग में लेकर बराबर का मधु मिलाकर अञ्जन करने से नेत्र रोगों में अद्भुत लाभ होता है। इस योग का निर्माण कर प्रयोग किया गया तो निःसन्देह बहुत लाभकारक सिद्ध हुआ और रोगियों को उपयोग करने में बड़ी सरलता हो गई पर यह योग आंखों में लगता बहुत है। अत्यन्त तीक्ष्ण होने के कारण बहिरङ्ग (आउट डोर) रोगियों के लिये लगाना सम्भव नहीं हुआ केवल अन्तरङ्ग (इन्डोर) रोगियों के काम का बन गया। इस प्रयोग की उपयोगिता देखकर भागलपुर (बिहार) निवासी रायबहादुर बशीधर जी ढांढनिया महोदय ने इसके प्रचार का बड़ा यत्न किया और इस योग में अष्टमास कपूर और षोडशांश पोदीने का सत मिला कर प्रयोग किया जिससे उपरोक्त रोगियों का आशातीत उपकार हुआ।

रायबहादुर साहब ने हजारों रोगियो को धर्मार्थ वितरण करने की व्यवस्था करदी और स्वयं उपयोग किया जिसका परिणाम यह हुआ कि अब वे बिना चश्मा के इस वृद्धावस्था में अपना लिखना पढ़ना सानन्द कर सकते हैं एवं अपने बड़े-बड़े कारखानों में बनवाकर रोगियों को वितरण कराते रहते हैं। पाठक इनसे मगा कर लाभ उठा सकते हैं।

मैंने इस योग का स्वयं जब उपयोग किया तो अनुभव हुआ कि यह अत्यन्त दाहक है नेत्र में जलन और रक्तता होती है। ३-४ घण्टे के बाद स्वस्थता होती है, ऐसी दशा में प्रतिदिन इसका उपयोग करना सम्भव नहीं है अतः इसके गुणों को अक्षुण्ण रख कर उपयोग में लाने के लिये अनेक प्रकार के योग तैयार किये, अन्त में नीचे लिखा अच्छा सिद्ध हुआ। यह आजकल प्रयोग किया जा रहा है। यह पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

श्वेत रक्त भेद से पुनर्नवा दो प्रकार की मिलती है, जो प्राप्त हो वह स्वच्छ सुन्दर खेतों में से पञ्चाङ्ग लेकर साफ धुली हुई शिला पर पीस कर बिना जल से उपयोग किये स्वरस निकाल ले। पुनर्नवा में द्रव भाग अत्यल्प होता है अत अत्यन्त सूक्ष्म कल्क बनाने से द्रव की प्राप्ति होती है। इस द्रव को स्वच्छ वस्त्र से छान कर पांच तोला दो औंस की शीशी में भरलें, बाद में एक तोला बरास या भीमसेनी कपूर व तीन माशा

पिपरमेंएट (पोदीने का सत) मिलाकर बन्द करके स्टोपर्ड बोतल में रखले । चालीस दिन पड़ा रहने दे । इस समय में कपूर और पिपरमिएट मिलकर इस द्रव के स्थूलाश को प्रथक कर देंगे और एक अच्छा रक्ताभ द्रव घन भाग पर तैरने लगेगा, इस द्रव को धीरे से नितार कर अन्य शीशी में भर कर रखलें, नीचे का भाग फैंकदें ।

इस द्रव को तूलिका से रात्रि में आखों में लगाकर अन्धकार में लेट जावें थोड़ी सी चरमराहट लग कर शान्ति हो जावेगी । प्रात. आखों पर शीतल जल के छींटे मार कर आखें धोकर साफ करले । इसका अञ्जन निरन्तर एक वर्ष करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है । चश्मा लगाना प्राय छूट जाता है और मोतिया बिन्द पैदा नहीं होता यदि कदाचित प्रारम्भ होजावे तो पुन. विलीन होजाता है । पाठकों से प्रार्थना है कि इस योग का प्रचुर प्रचार का प्रयत्न करे और जगत को दिखा दें कि "पुनर्नवा नेत्र नवा करोति" वाक्य सर्वथा सिद्ध है ।

नेत्र के विषय में निम्न श्लोक की विधि के अनुसार आचरण करने से भी नेत्र सदा स्वस्थ बने रहते हैं और किसी प्रकार का नेत्र विकार नहीं होता ।

शीताम्बु पूरित मुख' प्रति वासरंयः ।
वारे त्रयेऽपि नयन द्वितयं जलेन ॥
आसिञ्च सौ न दाचिदर्दाचः ।
रोग व्यथा विधुरता लभते मनुष्यः ॥

अर्थात्—दिन में तीन बार प्रतिदिन मुख में शीतल जल का गराडूष भर कर जो नेत्रों को शीतल जल से सिञ्चन करता है वह किसी प्रकार की नेत्र व्यथा से पीड़ित नहीं होता है ।

कुछ ऊर्ध्वजत्रुज रोग एवं उनकी सिद्ध चिकित्सा

लेखक–स्व० वैद्य साहित्य भूषण तेजीलाल नेमा शास्त्री आयुर्वेद रत्न

स्व० आयुर्वेदरत्न तेजीलाल जी नेमा शास्त्री भाटापारा (रामपुर) में सफलता पूर्वक चिकित्सा कार्य करते थे। आपकी लेखन शैली सारगर्भित और पटुतापूर्ण होती थी। आपने कतिपय ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की सुन्दर चिकित्सा लिखकर शतशोऽनुभूत योगों के स्तम्भ की शोभा बढाई है आपका यह द्वितीय लेख है। पूर्वलेख अन्यत्र प्रकाशित है। ईश्वर आपकी आत्मा को शाति प्रदान करे ? आचार्य हरदयाल वैद्य

इस विशेषाक के प्रधान सपादक महोदय ने अनुभूत योग लेखकों से प्रार्थना की है कि वे योग लिखते समय ऋषि हृदय प्लावित होकर लेखनी उठायें। वास्तव में पूछा जाय तो वर्तमान समय में सिद्ध योगों को गुप्त रखने की मनोवृत्ति ने आयुर्वेद को नीचे गिराने की भर पूर चेष्टा की है। कुछ लेखक अ ट सट प्रयोग छपवा कर नाम पाने की या देखने की लालसा तो रखते हैं पर योग कसौटी पर कसने पर ठीक नहीं उतरते। इससे आयुर्वेदिक योगों से आस्था हटती जाती है। अतएव सच्चे हृदय से यदि अपने २ गुप्त योगो को जो बहुबार के परीक्षित हों प्रकाशित करावें तो आशा है आयुर्वेद की उन्नति पूर्ण रूप से हो सकेगी। कुछ वैद्य पाश्चात्य औषधियों का मिश्रण आयुर्वेदिक औषधियों से करके उसे छिपाने की प्रवृत्ति रखते हैं, यह बुरी बात है। यदि भारत का हित चाहना है और देश का धन देश में ही रखना है तो आप को यत्न पूर्वक आयुर्वेद निधि से अमूल्य योग रूपी मोती प्राप्त करना होगा। विद्वान चिकित्सकों का ऐसे वातावरण के समय अपने सिद्ध योगों को गुप्त रखने की भावना को दूर हटाकर, अपनी आने वाली एवं वर्तमान सतान को उन्नति शील बनाने हेतु स्वार्थ का त्याग कर उच्च भावना प्रदान करना होगा। तभी देश एव आयुर्वेद का कल्याण होगा।

मैं अपनी अनुभूत एव परीक्षित चिकित्सा एवं योगों को जो कि ऊर्ध्वजत्रुज रोगों पर उपयोगी हैं प्रकाशनार्थ भेज रहा हू, आशा है प्राणाचार्य के पाठक गण लाभ उठावेंगे।

पाषाण गर्दभ

इस रोग में सेक खूब कराना चाहिये। जब सिकाव अच्छी तरह हो जाय तब उस पर ऐण्टीफ्लान अथवा ऐण्टीफ्लोजिस्टीन का लेप चढ़ाना चाहिये यदि इस कीमती मरहम को न लगा सकें तो *शोथ हर लेप* लगावें तथा खाने को लक्ष्मीविलास रस १-१ गोली अदरख रस+पानरस+मधु के साथ मिला चटावें। पेट साफ रखने के लिये त्रिफला चूर्ण या सुधा खड वटी खिलावें।

सौराष्ट्रजा टिकली को गर्म पानी में डाल कुल्ली करावें। इससे ३ दिन में रोग अच्छा हो गया है। यदि शोथ विकट या भयंकर हो गई हो और पक गई हो तो शस्त्र से चीरा- देकर व्रण के समान उसका उपचार करे। यदि ठीक न पकी हो तो जोंकें लगवाकर दूषित रुधिर निकलवा डालना चाहिये इससे रोग बिना औषधि के ठीक हो जाता है।

शोथ हर लेप (पुलटिश)

४८९—अलसी या गेहू का आटा ६ तोला

घी १॥ तोला
पानी २० तोला
हल्दी आमा १॥ माशा

—इनका मिश्रण पकालें। इसमें अमृतधारा की १० बूद डाल कर गरम २ पीड़ा की जगह पर लगावें। लेप ठण्डा होने पर उतार लें और पुनः बना लगावें।

शोथ हर लेप

४८६—एलुवा मनसिल
कूठ हल्दी
हरताल देवदार
बकरी की मेंगनी प्रत्येक समभाग

—इनको बछिया की पेशाब के साथ पीसकर किंचित हींग मिला गरम २ लेप करें।

सेक

४८७—पोस्त के डोंडे के क्वाथ में एक फलालैन के टुकड़े को भिगो कर उसमें १-२ बूद तारपीन तेल डाल खूब बार २ सेकने से लाभ होता है।

सुधाखंडवटी

४८८—सनाय डंठल रहित ऽ-
मुनक्का बीजनिकाले ऽ-
मिश्री ऽ=

—सब को मिलाकर झरबेरी के बेर के समान गोली बना रखलें।

पायोरिया

यह दांतों की बीमारी है और इसमें मसूड़ों के किनारों का प्रदाह युक्त हो जाना तथा दांतों के सहारे सहारे एवं जड़ों में से मवाद (पीव) बहती है। जब रोग विकृति अवस्था में हो जाता है तब मसूड़े इतने सूज फूल जाते हैं कि वे कीड़ा खाये हुये दांतों को ढके रहते हैं और किंचित दबाव पड़ते ही इनमें से खून बहने लगता है। मुख से दुर्गंध आती रहती है एवं रोगी का हाजमा पेट में पीप जाते रहने से खराब हो जाता है।

पायोरिया अधिकतर गरम चाय पीने से, भोजन चबाकर न खाने से, कुल्ले न करने से, अन्न कणों के रुके रहने के कारण सड़ान पैदा होने से, एवं मुख गंदा रखने से, मिठाई एवं पानों के अधिक चर्वण कर उन्हें साफ न करने से यह बीमारी दांतों में लग जाती है।

रोग से बचने के उपाय—

जो व्यक्ति मुख को नित्य भली भांति दातौन, मञ्जन आदि द्वारा एव कुल्ले कर कर साफ रखते हैं उन्हे प्रायः यह व्याधि नहीं सताती। दांतों मे अन्नकण, मिठाई आदि के कण एव अधिक पानों के चर्वण से जो चूना आदि की पपडी जम जाती है उसे नहीं निकालते-उससे भी दांतों में यह बीमारी हो जाती है इससे बचना चाहिए एवं पपडी न जमने पावें इसका ध्यान रखो।

चिकित्सा

४८९—रोज बबूल, करञ्ज, आक, नीम या सरफोंका की दातौन चबा चबाकर कुची बनाकर दांतों को घिसें, इससे रोग न होगा।

यदि हो जावे तो—

नेमा पायोरिया प्रहार

४९०—सुहागा फूला २॥ तोला
बड़ का दूध ऽ-
गूलर का दूध ऽ-
घी गाय का ऽ=
मधु २॥ तोला
सरसों का स्वरस ऽ=
सत्व अजमाइन ३ माशा
पीपरमेंट सत ३ माशा
कपूर देशी ३ माशा
शक्कर २॥ तोला
तेल दाल चीनी ३ माशा
लोंग तैल ३ मा०

विधि—स्वरस, एव दूधों को एक छोटी कढ़ाई या बड़े पीतल के कलई लगे कटोरे में डाल उसमें घी छोड़ कर अग्नि पर रख घी सिद्ध करलो। याने घी मात्र रह जावे। सतों और तेलों को एक दिल कर इसी घृत में मिलादें, पश्चात मधु, सुहागे के फूला का कपड छन चूर्ण और शक्कर बारीक छनाकर इसी में घोटदें यदि इसमें मृग श्रृङ्ग भस्म २॥ तोला मिलादें तो और भी उत्तम फलप्रद दवा (मरहम) रूप से बन जाती है।

व्यवहार विधि—इसे सरफोंका या बबूल की दातौन करने के पश्चात् ब्रुश में थोडी दवा लगा २ दातो एव मसूड़ों पर घिमे या अगुली से दवा को लेकर मसूढ़ों और दातों से मलें।

गुण—इसके व्यवहार से पायोरिया आराम होता है एवं नित्य व्यवहार करने से यह तथा दाँतों की बीमारी नहीं होने पाती।

उत्तमोत्तम अन्य योग–

मुख सुन्दर पाउडर

४६१–छिलके रहित मसूर की दाल की मैदा ५ तो०

बड़ की कोमल २ जटा का चूर्ण	५ तोला
सेमर वृक्ष की छाल का चूर्ण	५ तोला
कपूर	३ माशा

—सबको एकत्रित कर शीशी में रखलें। इस चूर्ण को ६ माशा लेकर बकरी के दूध से पीस मुख मण्डल पर लेप कर सूखने पर गर्म जल से धो डाले, पश्चात शास्त्रीय कुकमादि तैल की मालिश करे तो २१ दिनमें चन्द्रमा के समान मुख मण्डल की शोभा होगी। सब प्रकार के मुख के दाग, व्यग, न्यच्छ, झाईं वगैरा नष्ट हो जायगे। परीक्षित है।

नेत्र रोग नाशक श्वेत वर्ती

४६२—सफेदा (जयपुरी)	३ तोला
फिटकरी	१ तोला
मिश्री	१ तोला
तुत्थ	१ माशा

–चारों को गुलाब जल से घोट बत्ती बना छाह में सुखालें, बत्ती यव जैसी बनाले। इसे स्त्री के दुग्ध या बकरी के दुग्ध में घिस लगावें।

गुण–इसके स्तेमाल से नेत्र के रोहे, कुकरे, एव अन्यान्य होने वाली नेत्र व्याधिया नष्ट होती हैं।

कर्णरोगान्तक तैल

४६३—लट जीरा (अपामार्ग) क्षार	१ तोला
अपामार्ग का काढ़ा	४० तोला
मुनगा की छाल का काढ़ा	४० तोला
बच का चूर्ण	२ तोला
कपूर	६ माशा
तिल तैल	२० तोला

विधि—तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर शीशी में छान रखलें।

गुण—कान के रोगों पर अक्सीर है।

पुराने शिर दर्द का माजूम

४६४—हर्रा बड़ा	हरड़ छोटी
बहेड़ा	आंवला
काबुली हरड़	१-१ भाग
धनिया का मगज	५ भाग
खस खस के दाने	१ भाग
मगज चार (खरबूजा, तरबूजा, ककड़ी, पेठा) की गिरी	२॥ भाग
बादाम रोगन सबका	१६ वां भाग

विधि—कूटने पीसने वाली चीजों को कूट पीस कर कपड़छन चूर्ण करके सब को एक में मिलाओ फिर सबके बराबर मिश्री और दूना शहद (मधु) डाल कर माजूम तैयार करलो।

मात्रा—१-२ तोला दूध या पानी से।

गुण—शिर दर्द, नजला, दिमागी कमजोरी, नेत्र कमजोरी आदि में बहुत लाभकारी है।

कण्ठमाला पर उपचार

४६५—प्रात. साय २–२ गोली काँचनार गुग्गुल की खिला ऊपर से महामंजिष्ठादि क्वाथ १। तोला से २॥ तोला पानी में पिलावें तथा कंठमाला पर जात्यादि घृत लगावें। यदि गाठे सख्त हों तो आयडोनोल लगावें अथवा कण्ठमाला पर दोषघ्न लेप वकरी मूत्र या गौ मूत्र में पीस लगावें फायदा होगा।

उत्तम कठमाला हर लेप—

४६६—राई — सरसों
कलौंजी — मूली का बीज
सन के बीज — अलसी
काला जीरा — तिल
सहिंजना बीज — गाजर बीज

प्रत्येक १-१ तोला

—सबको बारीक पीस (गौ मूत्र में) ऐसी कंठमाला पर जो न फूटी हो लगावे, फूट जाने पर जात्यादि मरहम या घृत लगावे। अनुभूत है।

मुंह आना

४६७—सुहागा खील — ४ तोला
गेरू — ४ तोला
सेलखड़ी — ४ तोला
नीला थोथा भुना — १॥ तोला,

—सबको पीस छान शीशी में रखलो और जरूरत पड़ने पर ६ माशे चूर्ण को १ गिलाश पानी में डाल कुल्ले करो शीघ्र छाले दूर होंगे, पर थोड़ा लगता है।

दूसरा योग

४६८—सुहागा खील — १ तोला
ग्लैसरीन — २ तोला

—मिला फुरैरी से मुह के छालों में लगाओ।

कामला (पीलिया)

प्रात साय —

४६६—मडूर लोह भस्म — २ रत्ती
त्रिफला चूर्ण — १ माशा
मधु — ६ माशा

—मिला चटादें। भोजनोपरांत—

कुमारी आसव — १ तोला
लोहासव — १ तोला

—मिश्रण कर पानी दुगुना मिला पिलावें तथा बन्दाल फल को पानी में भिगोकर उस पानी की नस्य दें। शीघ्र आराम होगा।

नेत्र रक्षा

साम्प्रत समय में सभ्य शिक्षित समुदाय नेत्र रोगों से अधिकतर ग्रसित है। जहां देखो वहीं नव युवक एवं नव युवतियां और नन्हे-नन्हे बालक आखों के रोगों से ग्रसित हो अत्यन्त कष्ट उठा रहे हैं। किसी के नेत्रों में रोहे, कुकरे तो किसी को जाला फूला एवं किसी को मोतिया बिन्दु, रतौंधी और किन्हीं को दृष्टि न्यूनतादि नाना प्रकार की नेत्र व्याधि ने जकड़ लिया है। नेत्र व्याधि एक ऐसी व्याधि है जिससे स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य दोनों से मनुष्य गिर जाता है।

आंखें हमारे शरीर में परम उपयोगी अङ्ग हैं। साथ ही यह अत्यन्त नाजुक भी हैं। नेत्र के बिना संसार ही सूना है। अतएव इस अङ्ग की रक्षा सावधानी पूर्वक करना मनुष्य का धर्म है।

नेत्र रोग होने के कारण

एक समय वह था जब हमारी मातायें जन्म लेते ही शिशु की रक्षा के निमित्त शिशु संगोपन की ओर विशेष लक्ष्य रखती थी और उस समय बच्चे स्वस्थ्य रहा करते थे। मातायें बच्चों के नेत्रों में काजल लगाया करती थी एवं रोज उनकी आंख साफ किया करती थीं। इस तरह ध्यान देने से शिशुओं की आखें ठीक रहती थी किन्तु वर्तमान माताओं ने इस ओर ध्यान देना अपना कर्तव्य ही नहीं समझा और समझें क्यों कर जब उन्हें इस "शिशु संगोपन" की शिक्षा दीक्षा ही नहीं

मिली-परिणाम शिशुओं की दशा शोचनीय न हो तो क्या हो। इसके अलावा नेत्र रोगों के कारणों में—क्रोध, शोक, चिन्ता, धूप, धूल, धुआं, अत्यन्त मैथुन एवं क्षारीय भोजन, उनका अधिक मात्रा में सेवन करना, चिमनी की रोशनी में पढ़ना, आंखों से अत्यन्त सूक्ष्म बारीक काम करना, अत्यन्त तेज प्रकाशवान पदार्थों की ओर जैसे सूर्य, तेज बिजली की रोशनी आदि की ओर देखना, रात्रि एव संध्या के समय पढ़ना लिखना, आंसू एव मल मूत्रादि वेगों को रोकना, शारीरिक दौर्बल्यता तथा पौष्टिक आहार की कमी, चश्मों की आदतों का शौकियन बना लेना, नेत्र रोगों के उत्पन्न होने में सहायक हैं। मनुष्यो को इन कारणों से बचना चाहिए। कुछ नेत्र रोग ऋतु विकार जनित भी होते हैं जैसे आंखों का दुखना, अभिष्यन्द, सुर्ख हो जाना आदि। निरन्तर कब्ज के बने रहने से उदरस्थ विजातीय द्रव्यों के अवखारे उदर मे उठ कर मस्तिष्क एवं नेत्रों में अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर देते हैं अतएव बुद्धिमान विचार शीलों को इस भयङ्कर कब्ज व्याधि से सदैव बचना चाहिए।

चश्मा एवं नेत्र रोग

वर्तमान समय मे नेत्र ज्योति की निर्बलता के लिये लोगों में उपनेत्र (चश्मा) लगाने की सलाह डाक्टर तुरन्त देते हैं। नेत्रों की ज्योति बढ़ाने में चश्मा कहां तक सिद्ध हस्तता प्राप्त कर सका है इसे भुक्त भोगी ही जान सकता है। मेरे ख्याल से इससे नेत्र ज्योति नहीं बढ़ती हां नेत्रों को सहाय्य तो अवश्य ही मिलता है। चश्मा के प्रयोग से नेत्र ज्योति का बढ़ा लेना दुराशा मात्र है। लगातार दस बीस वर्षों तक चश्मे का स्तैमाल करने वाला व्यक्ति भी दृष्टि शक्ति क्षीणता को नहीं बढ़ा सका अपितु यदि उन्हें समय पर चश्मा नहीं मिला अथवा गुम गया तो ऐसे समय वे पढ़ने लिखने आदि में असमर्थता जाहिर करते हैं अतएव चश्मा नेत्र ज्योति बढ़ाने में सिद्धता प्राप्त नहीं करा सकता।

चिकित्सा—

आयुर्वेद शास्त्रकारों ने नेत्रों में ७६ प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं ऐसा बताया है किन्तु स्थानाभाव और समयाभाव होने के कारण हम उन सबका इस स्थान पर उल्लेख नहीं कर रहे हैं। केवल दृष्टि शक्ति क्षीणता पर ही अपना अनुभव प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है नेत्र ज्योति हीन व्यक्ति लाभ उठाकर फलाफल प्रकाशित करायेंगे।

हम जो अनुभव नेत्र शक्ति बढ़ाने के लिये यहां दे रहे हैं वह शीघ्रता पूर्वक नेत्र दृष्टि शक्ति क्षीणता को दूर करने की चाह रखने वालो के लिये हितकर नहीं है हां यदि जो व्यक्ति स्थाई तौर पर नेत्र शक्ति क्षीणता को दूर करना चाहते हैं वे लगातातार कम से कम ३-४ माह तक हमारी बताई हुई विधि के अनुसार कार्य करते रहेंगे तो अवश्य सफलीभूत होंगे।

दृष्टि शक्ति क्षीणता वाले व्यक्तियों में जिस प्रकार चश्मा का मोह उत्पन्न होता है उसी भांति उत्साह पूर्वक एव नियम पूर्वक हमारे आगे बतलाये हुये प्रयोगों का सेवन किया तो अवश्य ही हम विश्वास दिलाते हैं कि उनकी नेत्र ज्योति क्षीणता दूर हो जायगी। साथ ही वे कब्ज से भी छुटकारा पा जायगे और उनके शरीर का स्वास्थ्य तथा मुख कांति बढ़ जायगी।

इस प्रकार सिवाय लाभ के किसी भांति इससे हानि नहीं है।

औषधि सेवन विधि—

प्रातः सोकर उठते ही नेत्रों को त्रिफला हिम से धोवें। ६ बजे तथा रात्रि सोने के पूर्व तथा दातौन कर त्रिफला घृत या महा त्रिफलादि घृत २ तोला की मात्रा से अनुपान गाय के गर्म दूध में अभावे भैंस के दूध में जो पाव भर के करीब हो मिश्री २ तोला डालकर घृत मिला पिला दें या २ तोला घृत में २ तोला मिश्री मिला चटा दें और ऊपर से गर्म किया दूध पिलावें।

सोते समय त्रिफला चूर्ण ६ माशे बना कर ऊपर से कुनकुना जल पिलावें और नेत्रों में नित्य प्रति नयनामृताजन,, सलाई से प्रातः और शाम को लगावें। इस भांति आप नेत्र शक्ति क्षीणता को दूर भगा सकते हैं।

प्रयोग विधि-

त्रिफला चूर्ण १॥ तोला लेकर करीबन ३० तोला जल मे, काच, चीनी अथवा मिट्टी के प्याले में रात्रि को सोने के पूर्व भिगो देना चाहिये। साथ ही इस बात का ध्यान रहे कि गर्मी के दिनों में रात्रि की ओस में बाहर चौड़ी खुली जगह में रक्खा जाय तथा उष्ण एव शीत ऋतु में (जाड़े के दिनों से) उसको घर में किसी सुरक्षित स्थान मे रखें। बर्तन के मुंह को स्वच्छ साफ कपड़े के टुकड़े से ढक देवें जिससे उसमें धूल, ककड़, कचरादि अथवा कृमि वगैरह न गिरने पावे। फिर प्रात काल स्तेमाल करने के पूर्व इस दवा को हाथ साफ करके खूब मथलें और बारीक साफ कपड़े से छान लें, इसी जल से दोनों आंखों को धोदें।

कब्ज रहने पर-

जिन व्यक्तियों को कब्ज रहता हो उन्हें चाहिये कि-वे २॥ तोला त्रिफले के दरदरे चूर्ण को रात्री में ४० तोला पानी में उपर्युक्त पात्रों में से किसी में भिगोदें। प्रात काल उसी प्रकार मलछान कर उस जल में से प्रथम आधा तो पीजायें शेष जल से नेत्रों को धोवें। यदि प्रमेह हो तो मधु या मिश्री मिला पिया करें। जिन्हें कब्ज की व्याधि न हो उन्हें त्रिफला हिम पीने की आवश्यकता नहीं।

योगों को बनाने की रीति

त्रिफला चूर्ण—

९००—नवीन हरड़ का छिलका २० तोला
सूखे बड़े आंवले की गुठली निकाली कली २०तो०
नवीन बहेड़े का बकल २० तोला

—इन तीनों को लेकर जौ कुट करले और रखले। खाने के लिये इसी में से आधा चूर्ण लेकर चूर्ण को बारीक कूट छान ले। यह रात्रि को सोते समय खाने के काम आवेगा।

महात्रिफलादि घृत—

द्रव्य एवं निर्माण विधि—

९०१—त्रिफला क्वाथ — भृङ्गराज स्वरस
अड़ूसा स्वरस — बकरी का दूध
गिलोय स्वरस — आवले का रस
गाय का घी — प्रत्येक ६४–६४ तोला

तथा—

छोटी पीपल — मिश्री
मुनक्का — हरड़
बहेड़ा — आंवला
कमल — मुलहठी
क्षीरकाकोली — गिलोय
छोटी भट कटैया — कुल मिलाकर १६ तोले

—का कल्क लेकर घृत पाक विधि से पकावें। घृत सिद्ध होने पर शीशी में भरलें और सुरक्षित ढक्कन लगा रखलें।

मात्रा—१ से २ तोला तक बलाबल अनुसार उतना ही मिश्री चूर्ण मिला कर सवेरे शाम सेवन करें। ऊपर से दूध पीना हितकर है।

नयनामृताजन—

९०२—शुद्ध काला सुरमा	९ तोला
खपरिया	६ माशा
सिरस के बीज	६ माशा
छोटी इलायची के बीज	६ माशा
फिटकरी भुनी	सुहागा भुना
नौसादर	प्रत्येक ३–३ माशा
यशद भस्म	२ तोला
समुद्रफैन	३ माशा
शीतल चीनी	६ माशा
मोती अनविधे	३ माशा
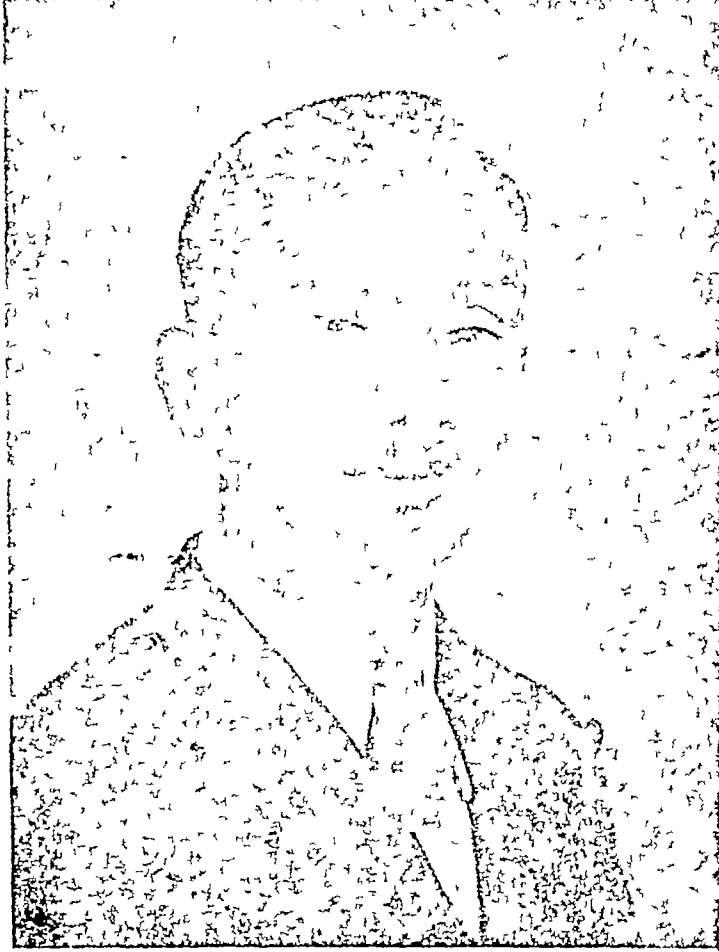
कविराज श्री भारत भूषण जी वैद्य वाचस्पति

भारत औषधालय, शकूर बस्ती, देहली

ममीरी चीनी	३ माशा
कपूर भीमसैनी	३ माशा
सत्व पिपरमेंट	१ माशा

बनाने की विधि—शुद्ध काले सुरमा को एक मजबूत खरल में डाल बारीक करलें—पश्चात् कपूर और सत्व पिपरमेंट को छोड़ बाकी चीजों को क्रमश. सुरमे में डाल पीस डाले जब बारीक हो जाय तब अर्क सौंफ, अर्क तुलसी, अर्क नीम या इसके रस में तथा अर्क गुलाब में १-१ दिन घोंट कर कपूर और पिपरमेंट सत्व मिला रख लें। सुरमा छाया मे ही खूब सूख जावे। यह अत्यन्त बढ़िया सुरमा बन जाता है। इसे सलाई से लगावें।

गुण—इससे आंखों की सब बीमारियां दूर होती हैं। नेत्र ज्योति बढ़ती तथा नित्य लगाने से चश्मा लगाने की जरूरत नहीं रहती। यह सुरमा अमीरों के लगाने योग्य है।

नेत्र रक्षक अन्य उपाय

१—जो-जो कारण हमने नेत्र रोगोत्पन्न करने वाले ऊपर दर्शाये हैं उनसे सदैव बचा रहे।

२—नेत्रों में नित्य प्रति प्रातः या सायंकाल कोई न कोई उत्तम सुरमा अथवा काजल लगाना चाहिए? जिससे कि सदा नेत्रों की रक्षा होती रहे।

३—गर्म पानी से शिर से स्नान करना, तैल, खटाई, लाल मिर्चों का अधिक खाना, बीड़ी सिगरेट आदि धुआं पीना तथा अधिक मद्य पीना हानिकर है।

४—शीतल जल का शिर में डालना (स्नान करते समय), सोने के पश्चात् शीतल जल से दोनों पैरों का धोना और आंखों को बासी जल से धोना लाभप्रद है।

५—भोजन कर लेने के बाद दोनों हाथों को खूब साफ करके आपस में रगड़ कर आंखों पर फेरना आखों की ज्योति बढ़ाने में सहायक है।

६—हरी वस्तुओं को देखना' शिर में शीतल तैलों की मालिश करना (मस्तक पर चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं का लगाना), शिर पर मक्खन रखना, मक्खन मिश्री, दूध मलाई, नारियल की गिरी खाना एवं बालों में कंघी करना, देशी तैल के दीपक से पढ़ना हितकर है। आंखों के लिए हरा एवं नीला रङ्ग हितकारी है।

७—सिनेमा की तस्वीरों को इक टक (दृष्टि स्थिर किये हुए) न देखना चाहिए। साथ ही नीचे दर्जे का टिकट मत लो। रोज-रोज सिनेमा देखने की आदतें मत डालो। यदि गरीबी के कारण ऊंची टिकट न खरीद सको तो सिनेमा देखने के लिये सीधे आराम से बैठो अपने पलकों को नीचा करो ठोडी को ऊंचा करो एवं पलक स्वाभाविकता से मारते रहो। इससे आंखों पर खराब प्रभाव नहीं पड़ता।

८—बाल रवि की किरणें पलकों पर लेना एवं चन्द्रमा की किरणों को देखने से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

९—सायं काल ठीक-ठीक प्रकाश न होने पर मिट्टी के तैल का चिराग रख कर नहीं पढ़ना चाहिए।

नेत्र स्नान—

आँखों को स्नान कराना—इससे स्नायुओं को पुष्टि मिलती है। थकावट तथा गरमी दूर होकर नेत्रों में ताजगी आती है। इसके लिये ठण्डे स्वच्छ जल के छींटे जल्दी-जल्दी मारना चाहिए एवं आंख धोने की छोटी प्याली में पूरा पानी भर कर आख खोलकर उस में डुबोना चाहिए। प्रत्येक आंख के धोने के लिये ३-४ मिनट खर्च करो। आंख को प्याली के पानी में देर तक न रखा जाय क्योंकि इससे आख के अन्दर पानी चले जाने की सम्भावना रहती है अत' लगभग २०-२५ सेकण्ड तक आंखों को प्याली में डोब कर निकाल ले इस प्रकार क्रमश. नेत्र स्नान करावे। इस प्रकार से आप नेत्र रक्षा कर सकते हैं।

'प्रतिश्याय जनित दन्तशूल' तथा उसकी चिकित्सा

वैसे तो दन्त शूल के अनेकों कारण अन्य भी हैं, किन्तु प्रतिश्याय जनित दन्तशूल भी अत्यन्त पीड़ा कर होता है। इसकी एलोपैथिक चिकित्सा केवल दन्तशूल निवार्णार्थ ही की जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि उग्र औषधों के प्रभाव से शूल तो न्यून हो जाता है, किन्तु प्रतिश्याय का विष दन्त पुप्पुट में रुक कर व्रण तक बन जाता है। कभी २ कान में रुक कर कान के बाहर भी व्रण बन जाता है। ऐसी दशा में यह व्याधि बहुधा कष्ट कर और भयङ्कर हो जाती है। डाक्टरों को दाँतों का निकालना भी आवश्यक हो जाता है। किंतु आयुर्वेदिक प्रणाली से इसके मूल कारण प्रतिश्याय विष को दूर कर देने से तथा यदि मलावरोध हो, तो उसका उपाय कर देने से ऐसा एक भी उपद्रव होने की सम्भावना नहीं रहती एवं दाँत सर्वथा पूर्ण स्वस्थ नियमित कार्य करने वाले पूर्ववत् हो जाते हैं।

चिकित्सा

५०३—यदि मलावरोध के साथ प्रतिश्याय जनित दन्त शूल हो तो प्रथम 'संशोधनी वटी' से वमन विरेचन करादें। इसके दूसरे दिन से त्रिफलादि अवलेह २-२ तोला की मात्रा से प्रातः तथा रात्रि को सोते समय खाकर ऊपर से सुरसादि क्वाथ पिलावें। दाँतों की पीड़ा तथा मसूड़ों की बढ़ी हुई सूजन के लिए निम्नलिखित लगाने की औषधों का प्रयोग करें।

५०४—दन्त शूलनिवारक चूर्ण — १॥ माशे
गौ घृत — ६ माशे

—में डाल चम्मच अंगारों पर रख रुई की फुरैरी से दाँतों तथा मसूड़ों को खूब अच्छी प्रकार सेकें और प्रतिश्याय का रुका दूषित विष लार के साथ निकालते जावें। उसके २ घंटे पश्चात् कुपीलकादि मञ्जन दाँतों पर मल गर्म जल में थोड़ा सेंधानमक डाल कुल्ले करलें।

पथ्य में—काली मिर्च और तुलसी की चाय, मूंग की दाल, तथा गेहूँ का दलिया आदि लघुपादि पेय दें।

ऊपर आये हुये प्रयोगों की विधि

संशोधिनी वटी—

५०५—उषारा रेवन्द असली, एलुआ असली, इन्द्रायनमूल चूर्ण — १-१ तोला
हींग बढ़िया भुनी — ६ माशे

—सबको खरल में बहुत थोड़े जल के संयोग से घोट झड़बेरी समान गोली बनालें।

मात्रा—२ गोली से ४ गोली तक। प्रातः ठण्डे जल से निगलवा दें।

त्रिफलादि अवलेह—

५०६—हरड़त्वक् — १ तोला
बहेड़ात्वक् — १ तोला
आंवले — १ तोला

—तीनों को तवे पर गौ घृत में भून चकले पर पीस चूर्ण बनालें। इसमें—

उस्तखद्दूस चूर्ण — १ तोला
बादाम रोगन — १ तोला

—सबको १ पाव मधु में मिला तैयार करलें।

मात्रा—२-२ तोला प्रातः तथा रात्रि को चाटने के लिये।

सुरसादि क्वाथ—

५०७—तुलसीपत्र शुष्क, बनफ्सा, मुलहटी, सौंफ, गूदा अमलतास — ५-५ तोला
मिर्च काली — १। तोला
खांड — १ पाव

—सबको मोटा कूट क्वाथ का चूर्ण तैयार करलें। २ तोला चूर्ण पाव भर पानी में औटाओ जब आधा बाकी रहे तब छान कर प्रात. साय इसी प्रकार तैयार किया हुआ पिलावें।

दन्त शूलनिवारक चूर्ण—

५०८—कपूर भीम सेनी	हींग उत्तम भून कर	
अश्ववच	विडङ्ग चूर्ण	
	३-३ माशे	

—सबको महीन पीस काँच के कार्क की शीशी में भरलें।

कुपीलकादि मञ्जन—

५०९—कुपीलु भस्म	६ माशे
भल्लातक भस्म	६ माशे
सेंधानमक	६ माशे
कपूर भीमसेनी	१॥ माशे

—अच्छे प्रकार पीस छान मञ्जन तैयार करलें। यह स्वानुभूत चिकित्सा और पूर्ण परीक्षित प्रयोग ही लिखे गये हैं। विश्वास है इन आयुर्वेदीय औषधों द्वारा चिकित्सक गण कष्ट पीड़ित रोगियों को पीड़ा रहित कर धन एवं यश प्राप्त करेंगे।

नोट—ऊपर लिखी पूरी चिकित्सा विधि का प्रयोग करने की तो बढ़ी हुई पीड़ा में ही आवश्यकता पड़ती है। साधारण कष्ट में तो केवल दन्तशूलनिवारक चूर्ण १ माशे थोड़ी रुई में रख दाढ़ दांतों के नीचे १५-२० मिनट तक दबाने से ही शूल तत्काल दूर हो जाता है। अथवा कुपीलकादि मञ्जन दांतों मसूढ़ों पर मल कर १५-२० मिनट बाद सेंधानमक डाल गर्म जल से कुल्ले करने मात्र से ही दांतों की पीड़ा अवश्य दूर हो जावेगी।

कुछ स्वानुभूत सफल प्रयोग

लेखक-पं० नाथूराम शर्मा वैद्य, बेगूसराय
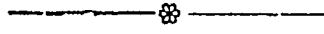
कर्णशूल पर-

द्रव्य—

४१०—लहसुन की छिली हुई कली	२ तोला
लवंग	१ तोला
अजवायन	१ तोला
फिटकरी	१॥ मा०
सेंधव	१ मा०
अर्कपत्रस्वरस	१ तोला
गेंदे की पत्तियों का रस	१ तोला
सुखदर्शन पत्रस्वरस	१ तोला
तिलतैल	ऽ। पाव

निर्माण विधि—प्रथम मीठे तैल को एक छोटी सी कढ़ाई में ढाल कर चूल्हे पर चढ़ा कर अग्नि से खूब गरम करें। पश्चात् लहसुन की पुतियों को कुचल कर गरम किए तैल में डालदें। साथही सेंधव और फिटकरी को बारीक पीसकर उसीमें डालदें। पुनः अजवायन के सहित सभी स्वरसों को तैल में ढालकर औषधियों को जलनेदें। स्वरस जल जाने पर छुन छुन की आवाज बन्द हो जायगी। तुरन्त ही कढ़ाही को चूल्हे से उतार लें और शीतल होने पर छानकर स्वच्छ शीशी में भरदें।

प्रात. सायं २-४ बूंद कान में टपकाने से कान का दर्द शीघ्र शान्त हो जाता है। यदि कान बहता हो, कान में कीड़े पड़ गये हों, खुजली हो, तथा कान में अनेक प्रकार के शब्द होते हों तो इसके प्रयोग से कुछ दिनों में ही सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं, किन्तु स्रावाधिक्यता में निम्न योग का साथ में उपयोग किया जाय तो और भी अच्छा रहेगा।

योग—

श्वेत शुभ्रा (फिटकरी) को उत्तम शहद में मिला करके किसी बारीक वस्त्र की छोटी २ कुछ बत्तिया बनाकर उक्त मिश्रण में लपेट दें। फिर कान को साफ करके एक बत्ती कान में प्रवेश करा दें। इस प्रकार दिन में २ या ३ बत्ती समयान्तर से प्रयोग में लावें और पहिली बत्ती को निकाल कर फेंक दिया करें उक्त तैल का प्रयोग प्रात. सायं अवश्य करते रहें। इसके सेवन से साधारण स्राव ५-६ दिन में और पुराने कर्ण स्राव को भी अधिक से अधिक २ हफ्ता में पूर्ण लाभ होता है और कान के बहुत से रोग दूर होकर मस्तिष्क को वास्तविक शान्ति प्राप्त होती है।

रोहे की अव्यर्थ औषधि-

द्रव्य—

४११—रसौत	३॥ तोला
गुलचीनी का वक्कल	२॥ तोला

विधि—रसौत को मिट्टी आदि से पहिले साफ करलें और वक्कल को कुचल लें। पश्चात रसौत और गुल-चीनी के बक्कल को प्रथक् प्रथक् किसी काच अथवा चीनी के पात्र में आध आध सेर पानी में भिगो दें और एकान्त स्थान में रख दें कि कोई अन्य वस्तु उसमें न पड़ने पाये। दूसरे दिन दोनों को अलग २ ही मसल कर छान लें फिर उसी प्रकार पात्र को साफ करके छाने हुए पानी को भर कर रख दें। कुछ समय बाद सावधानी पूर्वक धीरे २ दोनों को अलग २ नितार लें। इस

प्रकार दोनों के पानी को ३-४ बार नितार कर स्वच्छ करलें कि उसमें कोई मिट्टी आदि का कण न रह जाये। फिर एक छोटी सी स्वच्छ कढ़ाई में दोनों के पानी को एकत्र करके अग्नि पर चढ़ादें और मध्यम अग्नि से औषधि को जलनेदें। जब जलते जलते द्रवयुक्त कुछ गाढ़ी हो जाय तो अग्नि से उतार लें और थोड़ी ठंडी होने पर किसी चौड़े मुंह की शीशी या डिबिया में भरलें। औषधि से सनी हुई जो कढ़ाई रहती है उसे व्यर्थ समझ कर फेंक न दें अपितु थोड़ा सा जल डालकर कढ़ाही को धोलें और उस पानी को छान कर शीशी में अलग भरलें। इसमें से २-३ बूंद दुखती आँखों में डाल दिया करें बड़ा अच्छा लाभ करती है। उपरोक्त तैयार की हुई दवा को इस प्रकार सेवन करें।

गोजिह्वा (जंगली गोभी) का क्षुप उखाड़ लावें और उसे धोकर मसलदें। उसमे अर्क निकले उसमें १ या २ रत्ती दवा आवश्यकतानुसार मिला कर काजल जैसी बनालें और उसे रोहे वाले रोगी की आंख में सलाई या अंगुली से आंज दें। ऊपर का पलक भारी शोथ युक्त होने के कारण नीचे के पलक से चिपट जाता है, अत उसे चिमटी से पकड़ किंचित् ऊपर को उठा कर सावधानी से दवा भरदें। यह (पोथकी) रोग प्राय बच्चों को अधिकता से होता है। यह बच्चों को माता के दुग्ध में मिला कर भी लगाई जा सकती है तथा बड़ों को गोभी के अभाव में गुलाबजल में लगाई जा सकती है, किन्तु गोभी स्वरस के साथ शीघ्र लाभ करेगी। यही इसका सच्चा अनुपान है। प्रातः सायं दोनों बार इसका प्रयोग करें।

सेवन काल में निम्न बातों से बचें—

तीव्र धूप में घूमना, अधिक धूल वाले स्थान में जाना, अधिक शीतल वायु व जल का प्रयोग करना, धूआँ में रहना, बारीक अक्षरों को पढ़ना या अति सूक्ष्म पदार्थों को दीर्घ काल तक देखना, क्रोध करना, तेज चटपटे मिर्च मसाले आदि खाना, घृणित वेश में रहना इत्यादि। बच्चे के लिये उसकी माँ को उक्त अपथ्यों से भली भांति बचना चाहिये। इस दवा के सेवन से नित्य रोता हुआ रोगी पहिले दिन ही आराम की नींद सोता है और ४-५ दिन के सेवन से पुराने से पुराने रोहे भी नष्ट हो जाते हैं। यह एक उत्तम और सस्ती औषधि है।

नक्सीर पर—

द्रव्य—

११२—आन्ने उपले की राख	कागज की भस्म
भुनी हुई फिटकरी	तीनो सम भाग

—लेकर बारीक पीस मिला दें। आवश्यकता पड़ने पर जरा सी इसमें से रोगी को सुंघावें। नाक से वेग के सहित बहता हुआ रक्त तुरन्त ही रुक जायगा। 'तिलकी ओट पहाड़, इसीका नाम है। कितना सुगम योग है। नाक से कृष्णवर्ण का रक्त निकले तो उसे एक दम न रोके, निकलने दें। दूषित रक्त के निकल जाने पर उससे अधिक रक्तस्राव न होनेदें उसे औषधि द्वारा रोक देना चाहिये अन्यथा, मस्तिष्क अधिक दुर्बल हो जाने से अनिष्ट हो जाने की सम्भावना हो सकती है।

इसके रोगी को खटाई, तैल के पदार्थ, अन्य उष्ण पदार्थ, अग्नि तथा धूप का सयोग आदि अपथ्य है और द्रव पदार्थों का सेवन, दिन में सोना, मलमूत्रादि वेगों को रोकना त्याज्य हैं। पुराने जौ, शाली चावल, मूंग, कुल्थी का यूष, छोटी मूली, परवल आदि रोगानुसार इसमें पथ्य हो सकते हैं।

यह योग (अ० यो० चि०) में डाक्टर श्री गणपति सिंह वर्मा जी ने लिखा है। मैंने इसकी कई बार परीक्षा की है, किन्तु अभी तक असफल नहीं हुआ योग सस्ता और लाभप्रद है।

पुराने प्रतिश्याय के लिये—

द्रव्य—

११३—अहिफेन शुद्ध ३ माशा

मधुयष्टी	३ माशा
खसखस	३ माशा
निशास्ता (गेहूँ का सत्व)	यथावश्यक
तुख्मकाहू	२ माशा
कतीरा	२ माशा
समय अरबी (गोंद बबूल)	२ माशा
अजवायन	१ माशा
सर्मकी (बोल)	१ माशा
असली अकरकरा	१ माशा

विधि—अफीम और निशास्ता को छोड़ कर सभी औषधियों को बारीक कूट पीस लें। फिर आवश्यकतानुसार निशास्ता मिला कर पिसी हुई औषधियों को घोटें थोड़ी देर घोटने पर अफीम को भी उसमें मिलायें तदन्तर बलवान हाथों से न्यूनातियून ३ घण्टे खूब घोटें और चणक समान वटी बनालें। यह एक यूनानी नुस्खा हैं। इस प्रकार तैयार किये हुये योग का नाम मैंने "अहिफेनादि वटी, रक्खा है। गोली छाया शुष्क होनी चाहिये।

मात्रा—१ गोली प्रातः १ गोली सायंकाल को मुंह में डालकर चूसते रहना चाहिए अथवा १ गोली खाकर ऊपर से कुछ गर्म जल पी लेना चाहिए। किन्तु गोली को चूसते रहने से अधिक लाभ देखने में आया है। रोग की अवस्थानुसार दिन में तीन बार दवा दी जा सकती है। बच्चों को ½ या ¼ मात्रा दें। अनुपान में माता के दुग्ध में वटी घोल कर पिलादें।

गुण—इसके सेवन से नया पुराना जुकाम, कास, श्वास, क्षय, सन्निपात, शीतज्वर, स्वेदावरोध, हड़फूटन और श्लेष्म विकार आदि कई रोग दूर होते हैं। यह ज्वर को पसीना लाकर उतार देती है। सेवन करते समय वस्त्र ओढ़ कर चुपचाप लेट जावें और गोली को शनैः शनैः चूसते रहें। सर्दी के कारण शरीर की नस-नस में दर्द हो तो उक्त विधि से दवा सेवन करें अवश्य लाभ होगा। उपर्युक्त रोगों को यह दवा अतिया दूर कर देती है, परन्तु बिगड़े जुकाम खांसी के लिये तो मानों यह अमोघ शस्त्र ही है। हमें इससे अच्छी दवा तो अभी तक मिली नहीं है।

नोट—पथ्यापथ्य की व्यवस्था रोगानुसार करें।

दन्त रोगों पर मञ्जन

द्रव्य—

५१४—कीकर की कोंपल	२ तोले
खड़िया मिट्टी	२ तोले
भस्म बादाम छिलका	१ तोला
भस्म सुपारी	१ तोला
माजूफल	श्वेत कत्था
दालचीनी	लवङ्ग
काली मिर्च	सेंधा नमक
फिटकरी का फूला	काली हरड़
सोंठ	प्रत्येक १-१ तोला
कायफल	भुना तूतिया
	प्रत्येक ६-६ माशा
मौलसिरी की छाल	२ तोला
बढ़िया कपूर	१ तोला

—यथा विधि सब औषधियों का बारीक चूर्ण करके सब के बाद में कपूर को मिला कर मञ्जन तैयार करलें।

इसे प्रति दिन धीरे धीरे दांतों पर मलना चाहिए। दांतों का हिलना, मसूढ़े फूलना, टीसें मारना आदि कई रोगों में लाभदायक है। यदि इस में २ तोला नारङ्गी के छिलकों का चूर्ण और मिला दिया जाय तो पायोरिया रोग को भी शीघ्र समूल नष्ट कर देता है और दांत स्वच्छ, चमकीले तथा दृढ बन जाते हैं। केवल दांतों के खराब रहने से ही शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए दन्त रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को कुछ समय इसका व्यवहार कर लाभ उठाना चाहिए।

(शेषांश पृष्ठ ३३० पर देखें)

कतिपय शिर रोगों की अनुभूत चिकित्सा

लेखक—न्यायायुर्वेदाचार्य वैद्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, जबलपुर

इस लेख में पढ़िये—

- ❀ *शिरोरोग की चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें।*
- ❀ *अर्धावभेदक, इसका इलाज और उत्तमोत्तम सुपरीक्षित-योग।*
- ❀ *सूर्यावर्त, उसका इलाज और छः सुपरीक्षित योग।*
- ❀ *गरमी के शिर दर्द का अनुभूत सफल इलाज।*
- ❀ *क्षय-जन्य शिर दर्द की गवेषणा। पूर्ण चिकित्सा विधि।*
- ❀ *कृमिजन्य सिर दर्द और उसकी सफल चिकित्सा*
- ❀ *पीनस-नाशक उत्तमोत्तम् प्रयोग।*
- ❀ *अनन्त वात शिरोरोग और उसकी सफल चिकित्सा।*
- ❀ *शिरोरोग-चिकित्सा का एक प्रत्यक्ष अनुभव पूर्ण एव चिकित्सोपयोगी वर्णन।*

आदि-आदि सावधानी से पढिये।

शिरोरोग चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें

१—इस रोग की चिकित्सा के पूर्व उसके लक्षण एव भेद प्रभेदों को समझ लो।

२—'संक्षेपतः क्रिया योगो, निदान परिवर्जनम्' इस बात का पूरा २ ध्यान रखो। अर्थात् जिस कारण रोग पैदा हुआ हो, उन कारणों को अवश्य दूर करदो। अन्यथा रोगी फिर रोग के चक्कर में आजायगा।

३—अर्धावभेदक (आधे शिर का दर्द) कभी कभी छुट मुट टोटकों से ही ठीक हो जाता है, किन्तु कभी कभी बड़े-बड़े प्रयोगों से भी ठीक नहीं होता, इस-लिए दोषों की योग्य परीक्षा करके तदनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

४—अर्धावभेदक की चिकित्सा 'वातज शिरोरोग चिकित्सा वत्' करें।

५—अर्धावभेदक और सूर्यावर्त में अन्तर समझिये। रोगी का योग्य निदान करके फिर तदनुरूप चिकित्सा करिये। अन्तर 'सूर्यावर्त-प्रकरण' में देखिए।

६—जहां पर विरेचन देने की आवश्यकता हो, वहां रोगी के कोष्ठ की परीक्षा अवश्य करलें। क्रूर कोष्ठ को सरल रेचनों से लाभ नहीं होता। यदि रेचन

दिया जाय और उससे दस्त न हो तो फिर सिर दर्द और भी अधिक बढ़ जायगा।

७—एकमात्र बाहरी उपचार अथवा एक मात्र खाने की औषधि पर ही यकीन न करो जहां तक सम्भव हो दोनों ही उपाय काम में लो। हां परस्पर विरोधी दोनों क्रिया एक साथ न करनी चाहिए। दोनों प्रकार के अविरोधी उपचार करने से रोगी शीघ्र रोग मुक्त हो जाता है।

८—मुचकुन्द के फूलों को पीसकर सिर पर लेप करने से प्रायः नये शिर दर्द अवश्य ठीक हो जाते हैं। रोगी को कब्ज हो तो विरेचन भी दो। शुष्कता हो तो पौष्टिक आहार योग्य मात्रा में पाचन शक्ति के अनुसार देते रहो।

९—शिरो रोगों में पथ्यापथ्य पर पूरा ध्यान रखना चाहिए। शिरो रोग पर पथ्यापथ्य का विस्तृत विवेचन 'प्राणाचार्य भवन, विजयगढ़ (अलीगढ़) से मिलने वाली 'सौ-रोगों का सफल इलाज' नामक पुस्तक में मगाकर देखिये।

१०—चिकित्सा में आने वाली औषधें स्वयं बनाइये, यही सर्वोत्तम है। हमने तो सरल से सरल सर्वत्र सुलभ योगों द्वारा यहां पर सिर दर्द-चिकित्सा बताई है। कोई औषधि यदि तैयार न हो सके तो प्राणाचार्य भवन से ले लें।

अर्धावभेद का इलाज—

आजकल इस रोग के रोगी बहुसंख्यक होते हैं। धर्मार्थ औषधालयों के चिकित्सानुभव से जाना गया है कि शिरो रोगों में इसका भी प्रमुख स्थान है। इस रोग को 'वातज शिरोरोग' में गिना गया है। किन्तु वास्तव में यह एक मात्र वातज ही नहीं है। इसमें प्रारम्भ में वात दुष्ट होता है, बाद में 'एकः प्रकुपितो दोषः इतरानति कोपयेत्' के अनुसार अन्य पित्त-कफ दोषों को भी कुपित कर देता है। इस तरह अन्त में यह 'त्रिदोषज' बन जाता है। तब तदनुसार इसकी चिकित्सा करें।

इस रोग में तीव्र वेदना होती है। गर्दन की नसें, भौंह, कनपटी, कान, आंखें, ललाट ये सबके सब आधी ओर बडा दर्द देते हैं। जैसे कोई कुल्हाड़ी मार रहा हो या मथानी चला रहा हो। यदि यह रोग अधिक बढ़ जाय तो आंख कान को बेकाम कर देता है।

इसकी चिकित्सा में याद रखने योग्य बातें—

१—इस रोग में प्रारम्भ में स्निग्ध जुलाब दें। कभी कभी साफ दस्त होते ही यह रोग फरार हो जाता है। इसके लिये निम्नलिखित प्रयोग उत्तम हैं।

स्निग्ध रेचक योग—

५१५—बिनौलों को फोड़कर उनके अन्दर की मिंगी (मज्जा) निकाल लें। इसे २ से ७॥ तोला तक लें और खालिस आधासेर दूध में उबालें फिर रोगी को पिलादें। आराम से दस्त हो जायगा।

२—कभी कभी रोगी को घी आदि चिकनी चीजें पिला कर, फिर भफारा या पसीने दिलाकर, बाद में विरेचक योग देते हैं। कभी कभी बड़ा तेज जुलाब देना पड़ता है। ये सब बातें रोगी की अवस्था पर निर्भर हैं। जैसा दोष कोप हो या जैसा रोगी का कोष्ठ हो।

नोट—कभी कभी दूध में दो से ढाई तोले तक Caster oil (साफ अन्डी का तेल) मिलाकर देने से यह रोग विदा हो जाता है।

५१६—इसमें शुद्ध तिल तैल की मालिश कराना परमोत्तम है। दिनमें कई बार मालिश करें। उससे नाड़िया भी खुल जायगी और वात प्रकोप भी दूर होगा।

आहार-विहार ऐसा रखें जो वातघ्न हो, वात-नाशक हो।

५१७—कूट	एरण्ड की जड़
सोंठ	समान भाग

—लेकर तक्र (छाछ) में पीसें और दर्द स्थान पर लेप

करें, दर्द मिट जायगा। बाह्य प्रयोग के लिये उत्तम प्रयोग है।

परीक्षित प्रयोग—

अब मैं अपने सुपरीक्षित-प्रयोग यहाँ पर दे रहा हूं, पाठक उनसे अवश्य लाभ उठावें।

अर्धावभेदकनाशन लेप—

४१८—मुचकुंद के फूलों को भेड़ के दूध में पीसकर दर्द स्थान पर लेप करदो, अति शीघ्र लाभ होगा। भेड़ का दूध न मिले तो काजी, तक्र या एकमात्र जल में ही पीसकर लेप करदो। जादू की तरह आराम होगा।

इस प्रयोग के साथ खाने की औषधि का भी ध्यान रखो।

ऐसे रोगियों को निम्नलिखित योग खाने को दो—

४१९—शिरोवज्र रस	२ रत्ती
प्रवाल भस्म	२ रत्ती
गुलकन्द	१ तोले

—में मिलाकर चटावें। यह एक मात्रा है। इस प्रकार की चार-मात्रायें प्रतिदिन दें। दो दिन में ही रोग रफा-दफा हो जायगा।

शिरोरोगान्तक तैल—

४२०—एक मात्र बादाम तैल सिर पर मलने से वातज सिर दर्द ठीक हो जाता है। धर्मार्थ औषधालयों से यह अनुभव विशेषतया प्राप्त किया गया है।

नोट–१—बाजारू बादाम-रोगन किसी काम का नहीं रहता, शुद्ध खालिश बादाम तैल शीघ्र काम करता है। इसे योग्य-स्थान से प्राप्त करना चाहिए।

२—इसको ६ माशे की मात्रा में दूध के साथ पिलाने से 'वातज सिर दर्द' बहुत शीघ्र ठीक हो जाता है। वातज आहार से रोगी को अवश्य बचावें।

सूर्यावर्त (आधा शीशी) की चिकित्सा—

आधा शीशी किसे कहते हैं ?

१—जो दर्द सूर्योदय के साथ दुपहर तक बढ़ता जाता है और सूर्य के ढलने के साथ दर्द कम होता जाता है, वह आधा शीशी या सूर्यावर्त है।

२—यह दर्द प्रात: काल से ही धीरे-धीरे आंख या भौंह पर से प्रारम्भ होता है।

अर्धावभेदक और सूर्यावर्त में अन्तर—

१—अर्धावभेदक का दर्द अधिक तीव्र होता है और उसमें काल का कोई नियम नहीं चाहे जिस समय उठ खड़ा होता है। सूर्यावर्त सूर्योदय से प्रारम्भ होता एवं मध्याह्न के बाद घटता जाता है इसमें वेदना भी अपेक्षाकृत कम होती है।

२—सूर्यावर्त साधारण-उपायों किंवा टोटकों से ठीक हो जाता है अत: सुख साध्य है, किन्तु अर्धावभेदक को चिकित्सा में इसकी चिकित्सा की अपेक्षा कहीं अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

अनुभूत चिकित्सा विधि—

४२१—रोगी को सूर्योदय से १ घण्टे पहले २ रत्ती प्रवाल भस्म (चन्द्र पुटी) १ तोला गुलकन्द के साथ दें। फिर आधे घण्टे बाद ही दूसरी मात्रा भी इसी प्रकार देकर ऊपर से धारोष्ण दूध पावभर या आधा सेर पिलादें। सूर्यावर्त ठीक हो जायगा।

४२२—शाम को कलाकन्द लाकर रखलें। प्रात: सूर्योदय से १ घण्टे पूर्व उठ कर आधा पाव कलाकन्द खाकर ऊपर से धारोष्ण दूध पीलें। आधा शीशी मिट जायगी।

४२३—यदि रोगी को कब्ज हो तो साय सोते समय पञ्चसकार या अन्य विरेचक चूर्ण की योग्य मात्रा देकर प्रात सूर्योदय से आधा घण्टे पूर्व धारोष्ण दूध पिलादें। उसी दिन आधा शीसी का दर्द दूर हो जायगा।

जब यह रोग पुराना हो जाता है, तब इसमें सावधानी रखनी पड़ती है। ऐसी स्थिति में कई दिन तक प्रातः न० ४२१ वाला उपचार करना चाहिए। रोगी को

खीर एवं घी युक्त भोजन देना चाहिए।

५२४—नारियल (दाभ) का पानी २ तोला
गौदुग्ध ऽ=
मिश्री २ तोला

—मिलाकर दिन में तीन से पांचवार तक पिलावें। याद रखें कि ऊपर लिखी हुई मात्रा १ मात्रा है इसलिये इसी प्रकार की मात्रायें ४-५ बार तक दें। प्रात. सूर्योदय से पूर्व न० ५२१ वाला उपाय करें जीर्ण अर्धावभेदक भी एक सप्ताह में ठीक हो जायगा।

नोट—इस रोगी के शिर खालिस (शुद्ध) गुलरोगन (गुलाब का तैल) रात को १५-२० मिनट खूब मलना चाहिए सत्वर लाभ होगा।

५२५-शाम को जलेबी और दूध लेकर रखलें। अथवा प्रात. धारोष्ण दूध ले, इन दोनों को मिलाकर सूर्योदय से पूर्व दो बार में लेने से यह रोग पिण्ड छोड़ देता है।

गरमी के सिर दर्द की चिकित्सा—

इस सिर दर्द में सिर आग सा जलता है, नाक और आखों में भी जलन होती है, ज्वर भी हो जाता है, पसीना भी आता है और मूर्छा ('बेहोशी) भी हो जाती है।

इसकी चिकित्सा—

५२६—त्रिफला का चूर्ण ६ माशा
गुलकन्द १ तोला

—मिलाकर चटाने से पित्तज सिर दर्द शीघ्र ही मिट जाता है।

५२७—पिपरमेंट अजवायन का फूल
कपूर इलायची का तैल
प्रत्येक समभाग

—लेकर एक शीशी में डाट लगा कर धूप में रखलें। सब मिलकर एक दिल पतली दवा बन जायगी। इसमें से चार बूंद दवा आठ बूंद घी या मक्खन में फेंट कर सिर पर लगाने से शर्तिया गरमी का सिर दर्द ठीक हो जाता है। हजारों बार का सुपरीक्षित है।

नोट—यदि रोगी को कब्ज हो तो 'अर्धावभेदक चिकित्सा' प्रकरण में लिखे गये 'स्निग्ध रेचक योग' से पहिले विरेचन भी करालें। अच्छा दस्त लगते ही ऐसे सिर दर्द ठीक हो जाते हैं।

५२८—सिर को उस्तरे से मुडवाकर उस पर घिसा चन्दन और कपूर का मोटा एव गीला लेप करदें। लेप सूख जाय तभी उतार ले और फिर गीला ताजा लेप लगादे। तीन चार बार ऐसा करने से सिर दर्द ठीक हो जायगा।

५२९—धनियां का चूर्ण ४ माशा
मिश्री ४ माशा

—दोनों को मिलाकर फांकले और ऊपर से एक गिलास पानी पिये। इसी प्रकार की तीन मात्रायें दिन भर में लें। सिर दर्द ठीक हो जायगा।

५३०—चन्द्र पुटी प्रवाल अकीक पिष्टि
गौदन्ती भस्म प्रत्येक २-२ रत्ती

मिलाकर आधे तोले गुलकन्द के साथ लेने से गरमी का सिर दर्द अवश्य मिट जाता है। सुपरीक्षित प्रयोग है।

(पृष्ठ ३२६ का शेषांश)

नोट—मञ्जन करके शीघ्र ही गण्डूष (कुल्ले) न करें, १०,१५ मिनट रुक कर करें अन्यथा अल्प लाभ होगा।

सूचना—उपरोक्त सभी योग वही दिये गये हैं, जिन से बार-बार लाभ उठाया है। पाठकों को समयानुसार परीक्षा करके प्राणाचार्य में पुन प्रकाशित कराना चाहिए, जिससे कि इनके लाभदायक होने में किसी को भ्रम न हो और साधारण गरीब जनता भी लाभान्वित हो सके।

क्षयज सिर दर्द और उसकी चिकित्सा—

जब रक्त, चरबी, कफ ये चीजें सिर में कम हो जाती या नष्ट हो जाती हैं, तब सिर में तेजी से दर्द होता है बड़ी वेदना होती है। इसके इलाज में यदि बफारा नस्य आदि दिया जाय, तो दर्द और भी अधिक बढ़ जाता है, चूंकि इन क्रियाओं से रहे सहे कफ आदि और भी कम या नष्ट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में निम्न लिखित सरल उपचार करें।

सिर दर्द नाशक उपचार—

५३१—आधा पाव दूध में छः माशा घी डाल कर चम्मच से पिलावें। इस प्रकार प्रति दो घण्टे बाद घृत मिश्रित दूध पिलाते रहें। क्षयज सिर दर्द से आराम मिलेगा।

५३२—घी गुड़ मिलाकर खिलाते रहो। १ तोले गुड़ की डली पर ६ माशा से ६ माशे तक घी लगा कर रोगी को खिलाओ, यह एक मात्रा है। इस प्रकार की चार मात्रायें प्रति दिन देनी चाहिए। सरल एव सुपरीक्षित है।

५३३—हलुवा अथवा पूड़ी दूध खाने को दो।

५३४—उत्तम घी का नस्य ३-४ बार प्रति दिन दो।

५३५—शाम के समय ८-१० बादाम की गिरी पानी में भिगो दो। प्रातः सिल पर उन्हें चन्दन की तरह घिस लें चाहें तो साथ में थोड़ा थोड़ा दूध डालते जाय, यह बढ़िया सफेद दूध सा तरल तैयार हो गया। अब एक कटोरी में एक तोले घी डाल कर गरम करके उक्त तरल को छोंक दें। इसमें १॥ तोले मिश्री पीस कर डाल दें। बस प्रयोग तैयार हो गया।

इसे चम्मच से थोडा-थोड़ा पिलाते जाइये। रात को भी इसी प्रकार यह बादाम का पेय तैयार करके रोगी को चम्मच से दीजिये। क्षयज सिर दर्द अवश्य ठीक हो जायगा।

५३६—बादाम का हलुवा बनाकर प्रातः साय देने से सिर दर्द ठीक हो जाता है।

५३७—रोगी को प्यास लगे तो नारियल (दाभ) का पानी समभाग दूध और मिश्री मिलाकर पिलाओ।

५३८—भोजन में घी, दूध, शक्कर, भात दें। सारांश यह है कि पौष्टिक आहार दें।

नोट-१—पाचन शक्ति पर ध्यान रख कर इन उपयोगों को विवेक पूर्वक करने से क्षयजन्य सिर दर्द सत्वर ठीक हो जाता है।

२—सेव, सन्तरा, अनार का रस अंगूर का रस, दाख, मुनक्का आदि का पथ्य ऐसे सिर दर्द में परमोत्तम है। हम तो इन्हीं से काम लेते हैं।

❀ ❀ ❀

कृमिजन्य सिर दर्द और उसकी चिकित्सा—

मिथ्याहार-विहार से किसी प्रकार सिर में कीड़े पैदा हो जाते हैं। ये कृमि सिर के भीतर रक्त पीकर भयंकर सिर दर्द पैदा करते हैं। इस कष्ट से मनुष्य पागल सा हो जाता है। ज्वर, खाँसी, अशक्ति आदि विकार उत्पन्न होकर सिर में टोंचने-काटने की-सी पीड़ा होती है, नाक से लाल पतला कफ आता है, कान सन सनाते हैं।

बोल चाल की भाषा में इस सिर दर्द को 'पीनस, कहते हैं।

कृमिजन्य सिर दर्द (पीनस) की चिकित्सा—

५३९—सरसों का तैल सुताने से पीनस ठीक हो जाता है।

५४०—नीम के साफ तैल में हींग भूनकर नस्य देने से कृमिज-सिर दर्द मिट जाता है।

५४१—हिंगोट तैल गौ मूत्र में डाल कर पकावें, इसकी नस्य देने से कृमिज-सिरदर्द सरलता से ठीक हो जाता है।

५४२—वायविडंग को बकरी के मूत्र में पीस कर नस्य देने से कीड़ों के द्वारा पैदा होने वाला सिरदर्द

आनन-फानन में दूर हो जाता है।

५४३—एक यूनानी चिकित्सक ने बताया था कि ताजे खून की नस्य देने से सिर के कीड़े बेहोश होकर (गंध से उन्मत्त होकर) नाक मुंह द्वारा बाहर निकल आते हैं। तब तीक्ष्ण नस्य या धुयें से उन्हें बाहर निकाल डाले।

५४४—बालछड़   नागर मोथा
अगर   समभाग

—लेकर कूट कपड़ छन करलो। इसका नस्य देने से सिर के कीड़े बिलकुल नष्ट हो कर बाहर निकल आते हैं। यदि कारण वश ये तीनों चीजें एक साथ न मिल सकें तो जितनी भी या जो भी मिलजाय उसी की नस्य दे

५४५—अनन्तवात (उक्त) की चिकित्सा में लिखा हुआ 'देवदाली वेदांत, का प्रयोग भी शर्तिया कृमिज-सिरदर्द को ठीक कर देता है। अनेकों बार का सुपरीक्षित है।

+ + +

अनन्तवात-शिरोरोग और उसकी चिकित्सा—

तीनों दोष दुष्ट हो कर गर्दन के पिछले भाग में बहुत तेजी से दर्द करते हैं। फिर यह दर्द बढ़ता बढ़ता आंख, भौं एवं शखदेश में जा पहुंचता है। फिर गर्द स्थान में कंप करता हुआ विभिन्न प्रकार के नेत्र रोग उत्पन्न करता है। बड़ा विकट शिर दर्द है।

चिकित्सा—

५४६—इस सिरदर्द में प्रायः क्षयज-सिरदर्द जैसा इलाज करते हैं। रोगी को जलेबी, पूड़ी, घेवर, खीर, घी, दूध, बादाम का हलवा आदि दिया जाता है।

५४७—कई लोग जमालगोटे के बीज को पानी में पीस कर कनपटियों पर लगा देते हैं। इससे दर्द शीघ्र ठीक हो जाता है। किंतु उस स्थान पर छाले पड़ जाते हैं। इस लिये यह लेप सिर्फ आधा-मिनट तक कनपटियों पर रहने दें फिर फौरन पोंछ डालें ऊपर से घी लगा दें। इस प्रयोग से भी आराम मिलता है। किंतु अमीरों के लिये यह प्रयोग अच्छा नहीं है।

५४८—रोगी को प्रातः बढ़िया हलुआ खिलाइये। इसके दो घण्टे बाद एक रत्ती बारीक कपड़ छन किया हुआ कायफल का चूर्ण और चौथाई चावल भर पोटाश परमैंगनेट (कुए के पानी में डालने की दवा) मिला कर सुंघा दो शीघ्र ही प्रभावक असर होगा, फिर आधा घण्टे या १ घण्टे बाद बादाम का हलुआ खिला दो। सिरदर्द ठीक हो जायगा।

५४९—एक तोले नौसादर को बारीक घोंट कर एक शीशी में भरें, ऊपर से एक तोला पिसा हुआ चूना ऊपर से डाल दें। बस दवा तैयार है। इसे आवश्यकता के समय जरा हिलालो और डाट हटा कर एक सैकेण्ड के लिये रोगी को सुंघाओ। सुंघाते ही शीशी लेकर डाट लगादो। रोगी का सिर दर्द फौरन ठीक हो जायगा। बेहोशी दूर करने के लिये यह उपाय कई स्थानों पर काम में लिया जाता है।

५५०—इस रोग की चिकित्सा के विषय में मैं अपना एक सुपरीक्षित अनुभव आपकी भेंट कर रहा हूँ आवश्यकता के समय इसे सावधानी से काम में लीजिये।

घटना जौंधरी (आगरा) की है। श्री ला०श्रीनिवास जी की धर्मपत्नी के सिर में तीन माह से दर्द था। प्रारम्भ में तो छोटे-छोटे उपचारों द्वारा वह सिरदर्द फौरन ठीक हो जाया करता था। कभी सिर में घी मल दिया तो कभी तिल तैल की अच्छी मालिश करादी, कई बार कायफल का कपड़ छन चूर्ण सुंघाया, इतने से ही सिर दर्द ठीक हो जाया करता था। एक बार बहुत जोर से सिर दर्द हुआ, ऊपर के सारे उपचार फेल हो गये किंतु सिर दर्द न गया तो बड़ी-बूढ़ी ने बताया कि घी कपूर मिलाकर सुंतादो। मेरा सिर दर्द इसी उपाय से ठीक हुआ था। अन्त में यह उपाय किया

गया तो पहिले तो मामूली फर्क पड़ा । आधा घण्टे बाद पुनः घी कपूर को सुंघाने से सिर दर्द एक दम हलका पड़ गया। बाद में यह प्रयोग सर्व श्रेष्ठ प्रमाणित होता रहा ।

तीसरे महीने फिर गर्दन से दर्द उठ कर, आंखों की ओर आया, दुस्सह वेदना हुई, उपचार पर उपचार चले, एक प्रयोग के बाद दूसरे प्रयोग का सहारा लिया गया, किंतु अव्यर्थ घोषित किये जाने वाले वे सब प्रयोग व्यर्थ प्रमाणित हुए। उनमें से कई प्रयोगों का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

१—सिर पर सौ बार धोया हुआ घी मलवाया गया।
२—घी में लौंगें घिसकर सिर पर लेप किया गया।
३—छोटी इलायची और चंदन का लेप लगाया गया।
४—मक्खन मिश्री खिलाकर, पान में कपूर खिलाया।
५—सिर पर जमाल गोटा घी में घिसकर लगाया।
६—अरीठा पानी में घोलकर नस्य द्वारा दिया गया।
७—आक का दूध चूल्हे की राख में मिलाकर सुंघाया।
८—काली मिर्च का कपड़छन चूर्ण सुंघाया गया।
९—अमृतधारा घी में मिलाकर लगाई।
१०—अमृताञ्जन पेनबाम लगाई।
११—कई स्थानों के विभिन्न बाम, (Balm) लगाये।
१२—नौसादर चूना सुंघाया।
१३—नौसादर कपूर घोंटकर सुंघाये।
१४—षड्बिन्दु तैल की नस्य दी।
१५—शिरोवज्र रस गुलकन्द में खिलाया।

इत्यादि-इत्यादि विभिन्नोपचार, एक के बाद एक जैसे जिसने बताये, किये गये। कोई नकछिकनी एव बहुत सी प्राइवेट दवाइयां घोंट-पीस कर लाते रहे। करीब तीनदिन तक ऐसा आस पास का कोई गांव न रहा, जहाँ का प्रयोग बताने वाला अपना प्रयोग न करा चुका हो। यहां तक कि एक कसबे के डॉक्टर साहब मारफिया का नशीला इन्जैक्शन भी दे चुके थे ।

इन तमाम उपचारों के बावजूद वही हाल था कि ज्यों-ज्यों दवा की त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता चला गया। चौथे दिन यह मालूम पड़ने लगा कि बांई ओर की आंख अब एकदम निकल कर बाहर गिरी पड़ती है। आंसुओं की धारा तो पहिले से ही जारी थी। इन्जैक्शन लगते ही दर्द कुछ कम पड़ गया था, किन्तु तीन घण्टे के बाद इतनी तेजी से दर्द चालू हुआ कि रोगी का तड़फना देखकर देखने वाले दयार्द्र हो उठते थे।

भाग्यवश इसी समय एक जङ्गली आदमी आ गया। लाला श्रीनिवास की दूकान से वह प्रायः किराने का सामान ले जाता था। दूकान बन्द देख कर उसने लोगों से पूछा कि लाला कहां गये? लोगों ने सारा मामला सुना दिया। वह फौरन दौड़ कर घर गया और लाला श्री निवास के कान में कुछ कहा।

वे फौरन उठकर दूकान गये। दवा निकाली गई। खरल में डाल कर पानी से खूब घोटी गई और जङ्गली व्यक्ति घर पर आया। आते ही उसने भूखी रुग्णा को आधा सेर दूध जलेबी खिलाई। बाद में चारपाई पर लिटाया। सिर चारपाई के सिरहाने से एक फुट ऊपर खींच कर नीचे लटका दिया। फिर ड्रापर से १० बूंद दवा बांई ओर के नकुए में डालदी और मुंह बन्द कर दिया और दाहिनी ओर का नकुआ भी बन्द कर दिया फलत सांस लेने के साथ ही औषधि ऊपर सूत ली गई।

रुग्णा का सारा गला व नाक कड़वी हो गई। वह बहुत बुरी तरह से रोने लगी। दो मिनट बाद इस हालत से बदल कर उन्हें बैठा दिया गया। इस समय नाक से पानी बहना तेजी से जारी था। ज्यों-ज्यों पानी बहता गया सिर दर्द कम होता गया। अब नाक में से बहने वाले पानी के साथ कभी कभी छिछड़े भी आ जाते थे। दो घण्टे बाद फिर दूध जलेबी खिलाई गई। तीन दिन तक ऐसा ही आहार दिया गया। रुग्णा हमेशा के लिये रोग मुक्त हो गई।

बाद में हमने लाला श्रीनिवास जी से पूछा कि भाई यह रोग किस प्रकार ठीक हुआ? उन्होंने बतलाया कि मुझे तो अच्छी तरह मालूम नहीं कि उन्होंने क्या

औषधि दी किन्तु मेरे यहा से तो उन्होंने ८-१० बीज वन्दाल (बिन्दाल) के लिये थे। उसे घोट पीस कर और अपनी दवा मिलाकर उन्होंने मन्त्र पढ़ कर नाक में डाली थी। मैं नहीं जानता कि बिन्दाल का प्रभाव है या उनकी दवा का अथवा उनके मन्त्र का ?

मैंने कहा—ठीक है, कृपया ये बिन्दाल मुझे भी तो दिखा दीजिये।

वे दूकान पर गये और फौरन ही उन्होंने 'बिन्दाल' दिखाये। मैं समझ गया कि यह 'देवदाली' है। इसे हिन्दी में 'गगर बेल' या सोंनैया कहते हैं। इसके फल ही उन्होंने दिखाये थे। मैं एक आयुर्वेद पत्रिका में सन् १९३७ में ही इसके गुण पढ़ चुका था। मुझे विश्वास हो गया कि यह इसी की करामात है। उसने अपने पास की दवा मिलाई हो या न मिलाई हो, किन्तु यही एक मात्र सफल प्रयोग है।

मैंने लाला श्रीनिवास जी को बता दिया कि एकमात्र सारी करामात इसी औषधि की है। मन्त्र यन्त्र या औषधि मिश्रण प्रायः प्रदर्शित के लिये रहे होंगे। अस्तु !

अब मैं आपको इसको तैयार करने की विधि बताता हूं।

८-१० गगर बेल (बिन्दाल या देवदाली) के फल लीजिये। उनका ऊपरी छिलका (कांटेदार सा) और अन्दर के बीज अलग कर दीजिये। शेष जालीदार भाग को पानी में भिगोकर रखदें। आधा घण्टे बाद खरल में घोट डालें और पानी को छान लें। बस औषधि तैयार है। इसी को ड्रापर से डाल कर प्रयोग करना चाहिए।

इस प्रयोग का कम से कम पचास बार मैं भी अनुभव कर चुका हू।

सर्पगंधा योग और ऊर्ध्वजत्रुजरोग

लेखक—कविराज हरिकृष्ण सहगल बागीचो अलाउद्दीन, देहली

प्रिय कविराज हरिकृष्ण जी सहगल द० आ० का० लाहौर के पुराने स्नातक हैं। सारात्मक लेख लिखने का आरम्भ से ही इन्हें शौक था। अब इस दिशा में कविराज जी ने खासी उन्नति और प्रख्याति प्राप्त की है। आयुर्वेदीय समाचार पत्रों का तनिक अवलोकन करने वाले पाठक आपके लेखों का रसास्वादन करते ही रहते हैं।

प्रस्तुत सक्षिप्त लेख में आपने आयुर्वेद की पुरानी छटाओं को उद्बोधक और चित्ताकर्षक ढग से लिख कर वैद्यों को पुनः शल्य कर्म में निपुणता और सिद्धि प्राप्त करने के लिये महाकाली का आशीर्वाद प्राप्त करने का परामर्श दिया है। निश्चय ही यदि वैद्य समाज ऊर्ध्वजत्रुज रोगों में अकर्मण्यता के कलङ्क को प्रक्षालन करने की लालसा रखता है तब उसे इस दिशा में अवश्य ही भागीरथ प्रत्न करना होगा।

—प्रिंसीपल हरदयाल वैद्य

'प्राणाचार्य' संचालकों ने ऊर्ध्वजत्रुज रोगांक निकाल कर आयुर्वेद चिकित्सा के लुप्त अध्याय की पूर्ति का शुभ प्रयास किया है। आज जिस चिकित्सा को सरकार सहारा देने से हिचकिचा रही है, इस चिकित्सा ने अतीत काल में चिकित्सा क्षेत्र में कितनी उन्नती की थी उस पर कुछ प्रकाश डाला जा सकेगा।

आज से २००० वर्ष पूर्व आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की चिकित्सा को शल्य चिकित्सा विज्ञान के सहारे एक छोटा खेल समझ कर खेला। शिर को काटकर सप्ताहों तक जीवित रखना, उनके लिए कठिन न था। आज साइन्स भी इसी दिशा में प्रयत्नशील है। ख्याल किया जाता है कि रक्त सम पदार्थ का निर्माण पूर्ण होते ही कृत्रिम हृदय की सहायता से उस नकली रक्त को शिर में चालू रखा जा सकेगा। शिर की सैलों को शुद्ध रक्त बराबर मिलता रह सकेगा। शिर बोल तो न सकेगा परन्तु आंखों की हरकत से उत्तरों को दे सकेगा और ऐसा शिर शताब्दियों तक जीवित भी रह सकेगा। क्या कुरु क्षेत्र के मैदान में आयुर्वेदिक चिकित्सकों ने कश्यप के शिर को जीवित रखकर ऐसा उदाहरण उपस्थित न किया था।

महाराज दक्ष के कटे हुये शिर को पुनः जोड़ देना अगर मौत पर विजय प्राप्त करना नहीं तो क्या है? क्या दधीचि ऋषि के कटे शिर के स्थान पर अश्विनी कुमारों के अश्व शिर को और गणेशजी के शिर के स्थान पर हस्ति शिर को न जोड़ा था।

आज साइन्स कहती है कि अनुसंधान अब इतनी उन्नती कर चुका है कि शिर की खोपड़ी को खोल कर पहले मस्तिष्क को निकाल कर अन्य मस्तिष्क वहां

लगाया जा सकता है। भगवान आत्रेय से यही खोपड़ी खोलने की क्रिया की जानकारी प्राप्त करने के लिये बुद्ध चिकित्सक जीवक आया था। यूनान के प्रसिद्ध चिकित्सक बुकरात को चौथी शताब्दी में यही ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की चिकित्सा में शल्य चिकित्सा की सफलता भारत खैंच ले आई है।

ऊर्ध्वजत्रुज रोगों में सफलता प्राप्त करने के लिये वैद्यों को पुन. महाकाली का आशीर्वाद प्राप्त करके शस्त्रों मे दिल लगाना होगा। शस्त्र चिकित्सा के बिना ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की चिकित्सा मे आयुर्वेद विज्ञान अधूरा रहता है।

यह आख, नाक, कान, जिह्वा आदि के व सर्व मानसिक रोग ऊर्ध्वजत्रुज रोग हैं। आपके समने यूनानी मतानुसार ऊर्ध्वजत्रुज रोगों की तालिका व चिकित्सा उपस्थित करता हू। दर्द सिर (सदाअ) गर्मी, सर्दी, बुखारात के दिमाग की तरफ चढ़ने और चोट से कई प्रकार का है। इन सब के लिये आप आगे लिखे योग से लाभ उठा सकते हैं।

५५१—गौदन्ती भस्म नौसादर
गेरू ऐस्प्रीन

प्रत्येक समभाग

—लेकर रखलें १० ग्रेन तक की मात्रा में उष्ण जल से दें तत्काल आराम होता है। यूनानी चिकित्सकों के आब लीमू, तुख्म खारतङ्ग अगरचे अच्छे हैं परन्तु अब रफतारे जमाना से पीछे है। माथे पर सोंठ, बादाम, दालचीनी व चन्दन का आवश्यकतानुसार लेप लगाना व वैस्लीन में पिपरमेंट, काफूर, तैल इलायची मिला कर बाम घना लगाना लाभ करता है। इस रोग में आक के दूध से उपले को भिगोकर भस्म कर छींक लेना, कटफल नस्य का व्यवहार, नाक से दूध का पीना, नाक मे तुलसी स्वरस टपकाना आदि सब क्रियायें लाभदायक है। जिस शिर पीड़ा का कारण दिमाग की कमजोरी हो उसमें मस्तिष्क की पुष्टी के लिये औषधि देनी चाहिए और जब कारण दृष्टि मन्दता हो तो ऐनक लगावें व नेत्र चिकित्सा का सहारा लें। यह दर्द शिर अधिक स्त्री सेवन से भी उत्पन्न होता है, इसमे वीर्य वर्धक मूसली पाक व चन्द्रप्रभा में ऐस्प्रीन मिला कर देने से बहुत सफलता मिलती है, मदिरा सेवन से उत्पन्न शिर पीड़ा स्फटिका योगों से और बदबू या तेज बू के सूंघने से उत्पन्न शिर पीड़ा खुशबूयात से दूर होती है। आधे शिर को पीड़ा होने पर नाक में स्त्री दुग्ध टपकाने व आक की कोंपल प्रातः सूर्य निकलने से घण्टा पूर्व गुड़ में लपेट कर लेने से लाभ होता है। यूनानी चिकित्सा अनुसार शिर और भवों में होने वाली पीड़ा अलग २ प्रकार की है। इसमें गरम बुखारात कारण होते हैं।

शिर का चकराना, अन्धेरा आना में प्रवाल पञ्चामृत, महा लक्ष्मी विलास रस आदि के सेवन से आराम होता है। सन्निपात भी ऊर्ध्वजत्रुज रोग है। इसकी चिकित्सा दोषानुसार की जानी चाहिए। इसकी चिकित्सा में बस्तियां अधिक लाभ करती हैं।

नींद का अधिक आना तथा न आना यह भी ऊर्ध्वजत्रुज रोग है। अधिक निन्द्रा आने पर कफ नाशक औषधियों का प्रयोग होना चाहिए और निन्द्रा नाश में चान्द्र मरुवा के योग बहुत हितकर है।

स्मृति नाश (भूल जाना)—

५५२—सर्पगन्धा, स्वर्ण, शिलाजीत, ब्राह्मी, माल कांगनी बीज इसकी मानी हुई औषधि है।

उन्माद (मलखोलिया, जनून)—

५५३—सर्पगंधा का चूर्ण २ तोला
ब्राह्मी का सफूफ ३ माशा
वच का चूर्ण ३ माशा

—इन सब को ८ औंस रैक्टीफाइड स्प्रिट में डालकर तीन दिन शीशी में रखें, बीच २ में हिलाते रहें, लाल रंग का मिक्चर बनेगा। अधिक से अधिक १० बूंद तक रोगी को दें। यह टिन्चर निन्द्रा नाश व उन्माद को

एक ही दवाई है और मैंने जितने रोगियों पर दिया इस से सफलता ही मिली है।

अपस्मार (मिर्गी)—यह रोग भी ऊर्ध्वजत्रुज रोग है इसकी चिकित्सा में प्राणिज औषधियां ही सफल चिकित्सा है। जूती का तला, कुत्ते के शिर की भस्म यह सभी प्राणिज है। सन्यास रोग मे मृगमदासव व कस्तूरी जैसी तीव्र औषधियों का सुंघाना व अञ्जन करना इसकी चिकित्सा है।

अर्दित, पक्षाघात रोगों की गणना भी ऊर्ध्व-जत्रुज रोगों में है इनकी चिकित्सा में प्राणिज औषधियों गोपा, कबूतर आदि के प्रयोगों का मुकाबिला अन्य औष-धियां नहीं कर सकती, लहशुन से कहीं कहीं और अधिकतर गुग्गुल से लाभ उठाने का प्रयास किया गया है। पुनर्नवा क्षार, गुग्गुल और ऐस्प्रीन मिलाकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

ऊर्ध्वजत्रुज रोगों में खून निकलवाना, जौंक लगवाना, गर्म चिमटे आदि से दागना बहुत लाभ करता है। आयु-र्वेद ने बहुत अच्छे तैलों और घृत का इसमें वर्णन किया है।

युनानी मतानुसार कर्ण रोग, नेत्र रोग, जिह्वा के रोगों की संख्या बहुत लम्बी है। यूनानी चिकित्सकों ने भी आयुर्वेदिक चिकित्सकों का अनुकरण करते हुये इन रोगों की शल्य चिकित्सा की ओर ध्यान नहीं दिया। नेत्र रोगो के लिये, दांतों के रोगों के लिये विज्ञान ने कितनी तरक्की की है इसे देखते हुये मानना पड़ेगा कि हमारे चिकित्सक इञ्जीनियर लीडरो के समान ही है। बेशक सनातन काल में हमारे ऋषियों ने कटे शिरों को भी जोड़ दिया मगर आज का आयुर्वेदिक चिकित्सक तो एक व्रण में से पीच भी निकालने में अशक्त है।

अन्त में मैं वैद्य भाइयों से प्रार्थना करूंगा कि वह चिकित्सा में यश उपार्जन के लिये सर्पगंधा, ब्राह्मी, वचा का योग अवश्य बना कर रखें और इस योग को मेरी ओर से उपहार समझें।

ऊर्ध्वजत्रुज रोगों पर सफल एवं

अनुभूत प्रयोग

प्रेषक-वैद्यराज अमीचन्द जी वैद्य शास्त्री नूरपुर कांगड़ा

पाठक वृन्द ! आपने इस अङ्क में बहुत से अनुभवी वैद्यों के अनुभूत योग पढ़े हैं। परन्तु मैं भी कुछ अद्वितीय योग जो हमारे यहाँ सैकड़ों वर्षों से बरते जा रहे हैं आपकी भेंट करता हूं जो कि अत्यन्त सरल और सुगम हैं।

नक्तांधा पर सरल योग

२२४—कटुतुम्बी पत्र रस — १ तोला
मरिच चूर्ण — १ रत्ती

—मिलाकर त्रिकाल के समय आंखों में दो दो बिन्दु डालने से १ सप्ताह में रोगी लाभ अनुभव करने लग जाता है।

२२५—बैल के गोबर का रस आँखों में डालने से नक्तांधता दूर होती है।

२२६—मधु और कान की मैल आंखों में डालने से नक्ताँधता दूर होती है।

२२७—मनः शिला वत्स मूत्र शुद्ध — १ तोला
अजापित्तेन मर्दिता अञ्जनेन जीर्णमपि नक्ताध्य सद्य व्योहति।

फूला नाशक

२२८—पुराण विपणपरू जी जड़ — पुनर्नवा मूल
समान भाग

—लेकर दधि मस्तु में घिसकर २०-२१ दिन डालने से फूला का नाश हो जाता है।

२२९—नृसार — तुत्थ
सुहागा — फिटकरी
प्रत्येक २-२ तोला

—पीसकर दो प्यालों में डमरू यन्त्र द्वारा बेर पत्र कल्क से संधि बन्द करदें। बेर की लकड़ी की आँच दीपक प्रमाण दें। ३-४ घंटा के पश्चात् ऊपर के प्याले से सत्व निकाल लें। सरसों के प्रमाण सलाई से आँखों में डालें। ७ दिन में फूला कितना ही पुराणा या बड़ा क्यों न हो इसके सेवन से नष्ट हो जाता है।

अपथ्य—नमक, मिरच, तैल, गुड़।

पथ्य—घृत खूब खायें।

धुन्ध, गुवार और कुकरों में भी लाभदायक हैं।

आंख दुखने पर

२६०—रसौत — ऽ—
लाल फिटकरी — ऽ—
फेन — आधा तोला
पोस्त डोडा का क्वाथ — ऽ—

किस्टे ５=

—शुद्ध रसौंत को पोस्त डोडे के क्वाथ में घोलले और किस्टे का भी क्वाथ कर छान लें।

लाल फिटकरी पीसकर तवा पर डालदें और नीचे आग जलादें। जब पकने लगे तो रसौंत जल और किष्टों का जल डाल दें। आधा शुष्क हो जावे तो फेन पानी में घोल कर डालदें। खौंची से चलाता रहे फिर गाढ़ा होने पर उतार कर वर्ती बनालें। इस वर्ति को पानी में घिसकर दुखती आंख के ऊपर लगाये २-४ बार लगाने से आराम होगा।

पडवाल

५६१—मरिच गेरू
सैंधव शुद्ध

प्रत्येक समान भाग

—जल से पीसकर लेप करने से पड़वाल दूर हो जाते हैं।

कर्ण पीड़ा

५६२—कान में दर्द होता हो तो अर्क पत्र को चूल्हे में भुवरेल कर (पुटपाक की तरह) सैंक कर रस निकाल लें या शीघ्रता से कूटकर पानी निकाल फिर गर्म गर्म कान में डालें, फौरन आराम होगा।

कान से पीव आना

५६३—स्त्री दुग्ध में रसौंत को घिसकर मधु मिलाकर डालने से कान का बहना दूर होता है।

५६४—भैंसा गुग्गुलु का धूआं कान में देने से भी ५-७ दिन में कान का बहना दूर होता है।

५६५—यदि कई वर्ष से कान बहता हो और किसी उपाय से आराम न आता हो तो समुद्रफेन पीसकर कान में डालें ऊपर से ज्योतिषमती (मालकंगणी) का तैल डालने से २-३ सप्ताह में आराम हो जाता है, कर्ण पीड़ा के लिये भी लाभदायक है।

५६६—बकरे के मूत्र में सिंधु लवण गर्म करके कान में डालने से कान का दर्द जाता रहता है।

५६७—मद्य (शराब में) फेन (अफीम) हल करके १-२ बिन्दु कान में डालने से तत्काल लाभ होता है।

कृमिदन्त

५६८—लाँगली मूल सिरका में पीस कर जिस ओर दांत में कीड़ा लगने की पीड़ा हो उससे दूसरी तरफ हाथ के अंगूठे के नाखून पर लेप लगाये तो थोड़ी देर में दर्द हट जावेगा।

५६९—नौसादर पानी में घोल कर कृमिदन्त से पीड़ित रोगी की उल्टी ओर की नासा में डालने से तत्काल लाभ होता है। रोता रोगी हसने लगता है।

५७०—सभालू (वया) के पत्तों का रस उल्टी ओर की नाक में डालने से फौरन पीड़ा शांत होती है इसी के पत्ते मुंह में डालकर शनैः २ चबाता जावे तो थोड़ी देर में ही दांत के साथ दांत मिल जावेगा और रोगी खाना अच्छी प्रकार चबा सकेगा।

मुंह पकना, मसूड़ों में दर्द होना, मसूड़े फूल जाना, गले में दर्द होना या छाले पड़ जाना आदि विकारों में निम्न योग के चूर्ण को अंगुली से खूब मलें और मुंह से पानी (लार) बाहर निकालदें। २-४ बार लगाने मात्र से लाभ होता देखा गया है।

५७१—नौसादर शोरा
मरिच फिटकरी
गेरू समान भाग

—लेकर चूर्ण बनालें।

दन्तरोग, जिह्वा, उपजिह्वा और समस्त रक्त विकारों पर अनुभूत है।

शिरोरोग

५७२—शिर में आधासीसी का दर्द हो तो २-३ रत्ती नमक ३ मासा पानी में घोलकर जिधर दर्द हो उसकी उल्टी नासा में देने से तत्काल आराम होता है।

५७३—जमाल गोटे का बीज पानी में घिस कर दर्द वाले स्थान पर लगाने से आराम हो जाता है परन्तु स्थान

पर जलन होती है वहा घृत या मक्खन लगाने से शांत हो जाती है।

५७४—घोड़ाचोली बाजीवर्मा प्रसिद्ध आयुर्वेद का योग है। उसकी २ गोली सूर्य चढ़ने से प्रथम ४ बजे रात कलाकद से खिलादें सूर्य्यावत के दर्द को आराम होगा।

शिरः शूल हर योग

५७५—लौंग ६ माशा

चिरायता मरिच

समान भाग

—मिलाकर चूर्ण करें गरम जल से खायें। शिर शूल हट जावेगा।

मात्रा—१—२ माशा।

शिरः शूल हर वटी

५७६—शुद्ध धतूरा बीज	३। तोला
रेवन्द चीनी	२॥ तोला
सोंठ	१। तोला
गोंद किकर	१ तोला

—गोंद को पानी में हल करले, शेष औषधियों का कपड़ छन द्वारा निहायत बारीक चूर्ण कर उसमें मिलादें। ४-४ चावल की गोली बनालें।

मात्रा—१-४ गोली गरमजल या दुग्ध से शिर दर्द सब प्रकार का आधा शीशी, प्रतिश्याय, जीर्ण विषमज्वर, वात ज्वर में लाभ करता है। यह योग आयुर्वेद में ऐस्प्रीन का काम करता है। बस इतना कहना ही काफी है।

कपाल कृमि हर योग

५७७—नगर वेल का फल पानी के साथ पीसकर हिंगु मिलाकर नस्य देने से कृमि निकल जाते हैं।

५७८—हुल हुल के बीज	१ टङ्क
समुद्रफल	१ टङ्क
मरिच	१ टङ्क

—गौ मूत्र से भावना दें। निम्बूरस की ३ भावना देकर वारीक चूर्ण सम बनायें फिर नली में भरकर नाक में लगाकर जोर से फूंक देकर चढ़ादें। छींकों द्वारा कृमि तुरन्त निकल जायगे।

५७९—सद्य. शोणित नस्येन शिरोगता जन्तवा पतन्ति अद्भुत योग।

प्रेषक—केशवदास सुडेले वैद्य तालवेहट (झाँसी)

कर्ण रोग

यह रोग चार प्रकार का होता है।

कर्णशूल—कर्णशूल वात से होता है। इससे कान के भीतर अत्यन्त वेदना होती है और कान का मैल सूख जाना और पतला पतला स्राव होना इसके पूर्व चिह्न हैं।

कर्ण प्रदाह—यह पित्त से होता है। कान में शोथ, लाल पीला और दुर्गन्धित स्राव और साथ में ज्वर भी हो जाता है।

कर्ण नाद—यह कफ से होता है। नाना प्रकार की आवाज, खुजली, स्थिर शोथ, अल्प वेदना, स्निग्ध स्राव, ठीक सुनाई न देना इसके पूर्व चिह्न हैं।

कर्ण स्राव के अन्य कारण

चेचक, मियादी बुखार के बाद या गण्ड माला ग्रस्त बच्चों को तथा अन्दर घाव होने से कान से स्राव होता है।

कर्ण बधिरता—उपरोक्त कारण ही बधिरता (बहिरापन) के पूर्व लक्षण हैं।

चिकित्सा

कर्ण रोग में प्रथम पेट साफ करना हितकर है।

५८०—बच्चों को अरण्डी का तैल तथा पूरी आयु वालों को अश्व कचुकी रस देकर पेट साफ कर देना चाहिए।

माता पिता की अनभिज्ञता से बच्चों को कर्ण रोग होता है।

कर्ण शूल चिकित्सा—

५८१—सेंमल की गीली टहनी को आग में भून कर गर्म-गर्म २ बूंद कान में निचोड़ने से निश्चय लाभ होता है।

५८२—कद्दू की टहनी को आग में भून कर और फिर छील कर गर्म-गर्म २-२ बूंद कान में निचोड़ना चाहिए।

५८३—लाल मिर्च (गीली) के बीजों को हाथ से मलने से जो पानी निकले उसे २-२ बूंद कान में डाल दें। वेदना दो तीन मिनिट के बाद ठीक हो जायगी।

५८४—नीम की पत्तियों को पानी में उबाल कर बफारा दें।

५८५—विषगर्भ तैल, हिंग्वादि तैल, गन्ध तैल, देवदारु आदि तैलों को गर्म करके का कान में डाल दें।

५८६—सुदर्शन के पत्तों का रस और कर्ण मूल में राई का लेप करने से शीघ्र लाभ होता है।

५८७—बड़ी आयु वालों को कर्णशूल में शक्ति वर्धक औषधियां च्यवनप्राश आदि देना लाभकारक है।

५८८—कर्ण प्रदाह में क्षार तैल, अमृतधारा की २-२ बूंद १ तोला तिलो के तैल में डाल गर्म करके कान में डाल देना चाहिए।

कर्ण व्रण—

५८९—वैरोजे का तैल अथवा मधु में टङ्कण को मिला कर डालने से कर्ण व्रण में लाभ होता है।

कर्ण स्राव—

५९०—काले तिल का तैल या मूली के पत्तों का रस समान भाग ले गर्म करके कान में छान कर डालने से लाभ होता है।

५९१—पीली कौड़ी की भस्म तथा नीबू का रस कान में डालने से उबाल आवेगा और जब उबाल बन्द हो जाय तब कान को रुई से साफ करके कौड़ी की भस्म को डाल दे और फिर रुई का फोहा लगा देना चाहिए। यदि कर्ण स्राव पुराना है तो किशोर गुग्गुल या सारिवादि वटी खाने को देना चाहिए।

विशेष क्रियायें—

कर्ण स्राव में प्रथम रुई का फोहा बना कर सींक से साफ करलें और यदि पिचकारी द्वारा साफ करने की आवश्यकता हो तो कान साफ कर औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

कर्ण बधिरता—

५९२—एक शीशी में थोड़ा सा बकरी का मूत्र रखलें। दिन में दो चार दो-दो बूंद डालने से निश्चय लाभ होता है।

बिल्व तैल—

५९३—बिल्व तैल, अपामार्ग क्षार तैल, इरिमेदादि तैल कान में डालने से बहिरापन दूर होता है।

यदि बहिरापन, जुकाम या ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता के कारण उत्पन्न हुआ हो तो सम्बन्धित रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए।

प्रेषक—*श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज*
क्षय चिकित्सक नैनीताल

परम हर्ष का विषय है कि इस वर्ष प्राणाचार्य ऊर्ध्व-जत्रु रोगों पर अपना विशेषांक निकालने जा रहा है। इसके कर्तव्य शील प्रबन्धक एवं स्थाई सम्पादक वैद्य बांकेलाल जी गुप्त ने इस विशेषाङ्क का विशेष सम्पादक कार्य कवि-राज श्री हरिदयाल जी वै० वाचस्पति आयुर्वेदाचार्य प्रिंसीपल महोदय को सौंपा है।

यद्यपि मैं प्रायः क्षय और मधुमेह की ही चिकित्सा विशेषतया किया करता हूं और वर्तमान समय में इन

दोनों ही रोगों का इतना अधिक प्रसार हो रहा है कि इनके रोगी ही प्रचुर मात्रा में मिल जाया करते हैं जो कि अन्य रोगों की चिकित्सा का समय ही नहीं दिया करते तो भी मैं अपना कुछ अनुभव शिरो रोग (अनन्तवात और सूर्यावर्त) एवं चक्षुरोग (मोतिया बिंदु) पर लिख कर जनता के लाभार्थ प्रकाशनार्थ पं० हरदयाल जी के आग्रहवशात भेज रहा हूं। गुणग्राही विज्ञ वैद्य बन्धुओं ने यदि इन रोगों से जनता को लाभ पहुंचा कर आरोग्य प्रदान किया तो मैं पुनः पुनः अपने अनुभव जनता जनार्दन के लाभार्थ भेजता रहूंगा।

अनन्तवाते—

५६४—हरड़ का बकला	बहेड़ा का बकला
आंमले का बकला	गिरी बादाम
गिरी कद्दू	गिरी पिस्ता
गुलसुर्ख	मेंहदी पत्र

प्रत्येक सम भाग

—इन को कूट पीसकर घी से चख करें और मिश्री २ भाग शहद १ भाग अर्थात् कुल चूर्ण के समान शहद हो और उससे दो गुनी मिश्री हो इसका किमाम तैयार करके माजून बना लें। रात में सोते समय दो तोला मात्रा में सेवन करके गुनगुना पानी पियें। गदा मवाद खारिज हो कर शिर शूल शान्त होगा।

मोतियाबिंदः—

५६५—कान की मैल लेकर शहद द्वारा गोली कर सलाई के द्वारा नेत्र में लगाकर शयन करें।

शिरः शूले सर्वप्रकारे—

५६६—पुलुधा	१ तोला
सत्व अफसन्तीन	१ तोला
रूमी मस्तगी	१ तोला
गुद्दा तुम्मा खुश्क (शेम हन्जिल)	६ माशा
तिर्वो	६ माशा

—करफिस के काढ़े में खरल करके गोलियां चने बराबर बनालें। दो गोली सोते समय तथा दो प्रातः चाय के पानी से या गर्म पानी से लें।

दन्त रोग हर—

हिलते हुये दांतों को मजबूत बनाने के लिये और सदा के लिये बनाये रखने के लिये इससे उत्तम अन्य वस्तु नहीं।

५६७—त्रिफला	३ तोला
त्रिकुटा	३ तोला
नीला थोथा (भुना हुआ)	६ माशा
काफूर	६ माशा
पांचों नमक	२॥ तोला
अकरकरा	१ तोला
लौंग	१ तोला
माजू	१ तोला
सुहागाखील	१ तोला

—सबको कूट पीस कर छान कर मंजन तैयार करके सुबह शाम दो बार प्रयोग में लावें।

प्रेषक—वैद्य दयाराम महाजन नूरपुर (कांगडा)

शिरो रोग पर अनुभूत योग—

५६८—हरड़	बहेड़ा
आँमला	चिरायता
हल्दी	नीमछाल
गिलोय	मुण्डी
पापड़ा	कौड़

प्रत्येक सम भाग

—लेकर काढ़ा विधिपूर्वक तैयार करके ६ माशा पुराना गुड़ मिलाकर पीने से समस्त शिरोरोग नष्ट होते हैं।

५६९—षड्बिंदु तैल की मालिश मस्तक पर करें और नस्य भी लें तो लाभकारी है।

६००—मक्खी के सिर को काली मिर्च व सर्द पानी से घोट कर यदि आधा शीशी का दर्द दाहिनी ओर होवे तो बांई ओर अजंन करावे यदि बांई ओर होवे तो दाहिने तरफ अजंन करावें तत्काल फायदा होगा।

तन्त्र—

६०१—देशी कागज लेकर उसकी बीड़ी बना कर सिगरेट की भांति जलाकर नासिका द्वारा धूम को खींचें और बीड़ी बनाते समय यह मंत्र ३ बार जपें।

पवन तनय संकट हरो यश दो दीनानाथ, गया रोग आवे नहीं कार देऊ हनूमंत।

६०२—श्वेत तिल — चिरौंजी
बादाम की मिंगी — छुहारा
कद्दू बीज की मिंगी — प्रत्येक ६-६ माशा

—कूटकर बारीक करलें और चोकर १ तोला लेकर पानी में भिगोदें। १ घण्टा बाद मल छान कर १ छटांक पानी लेवे फिर ताजा गाय का दूध १ पाव में मिलादें और ऊपर लिखी वस्तु भी १ पल खांड मिलाकर सेवन करके ऊपर से यह दूध पीलें। सात रोज सेवन करने से सर दर्द तथा आधा सीसी को लाभ होता है परीक्षित है।

६०३—कटु फल — ६ माशा
अर्क पत्र — ६ माशा

—लेकर अर्क दूध की भावना दे सुखा कर नस्य तैयार करलें। नस्य लेने से फायदा होगा।

६०४—नवसादर — नमक सेंधा
कपूर डली — प्रत्येक समान भाग

—लेकर नस्य बना कर नस्य लें चमत्कारी है।

६०५—धतूरे के पत्तों के रस में नवसादर नमक मिलाकर नाक में बूंद टपकाने से नाक के कृमि तुरन्त बाहर आ जाते हैं।

तिमिर रोग

तिमर रोग पर अनुभूत योग लिखता हूं। यह बड़ी नामुराद बीमारी है जिस से हर समझदार अच्छी तरह वाकिफ है।

६०६—भीमसेनी कपूर — श्वेत सुरमा
समुद्र झाग — सर्द चीनी

प्रत्येक समभाग

—लेकर अगस्त फूल के रस की भावना देकर अञ्जन तैयार करके दिन में २ बार अञ्जन करें। विशेष लाभकारी है।

६०७—गुञ्जा जड़ को मधु में घिस कर अञ्जन करने से बड़ा लाभ होता है।

६०८—रोलयाटिका जो कि खालिस हल्दी से बनता है और ऐलिये के नाम से बिकता है। वह लेकर उसके बराबर देशी साबुन मिलाकर ठडें निर्मल जल से घिस कर अञ्जन करने से बहुत जल्द लाभ होता है हजारों रोगियों पर परीक्षित है।

६०९—जड़ सत्यानासी को पानी में घिसकर अञ्जन करना लाभकारी है परीक्षित है। दृष्टि को भी बढ़ाती है।

६१०—चन्द्रोदय वर्ती आंख की लाली, आंख का दुखना, जल स्राव, रतौंधी, मांस, विद्रधी, खाज, पटल इत्यादि नेत्रों की बीमारी में अत्यन्त लाभकारी है। हर प्रमाणिक ग्रन्थ में देखें।

सुरमा

६११—तिल के फूल — ८० नग
पिप्पली बीज — ८० नग
गुल चमेली — ८० नग
काली मिर्च — ३० नग
श्वेत सुरमा — १ तोला
समुद्र झाग — १ तोला

—कपूर मिञ्जर बूटी के रस की ५ भावना देकर मञ्जन तैयार करलें नेत्र रोग में बड़ा लाभकारी सुरमा है।

प्रेषक—चौधरी दरयावसिंह वैद्य रोहतक,

रोहिणी चिकित्सा

कब्ज हो तो—

६१२—ज्वरकेशरी वटी दें। कब्ज दूर होने पर बन्द कर दें।

ज्वर कम करने के लिये—

६१३—लक्ष्मीनारायण रस या घोड़ा चोली रस-आकाश बेल और मकोय के क्वाथ के साथ दें।

वातज रोहिणी में—

३१४—रसराजः (भै० र० वाताधिकार) मिश्री के साथ दें।

पित्तजरोहिणीमें—

६१५—चन्द्रकला रस (र० त० स० सं०) शर्बत शहतूत के साथ दें।

कफजरोहिणीमें—

६१६—त्रिभुवन कीर्ति रस १ रत्ती कफकेतु रस १ रत्ती अदरख रस ६ माशा के साथ दें।

सन्निपातज रोहिणी में—

६१७—रसराज १ रत्ती लक्ष्मीनारायण रस आधी रत्ती हेमगर्भपोटली रस आध रत्ती मिला कर पान के रस के साथ दें।

रक्तज रोहिणी में—

६१८—चन्द्रकला रस और ताम्र भस्म दोनों को मिला कर अर्क सौंप के साथ दें।

गला बन्द हो तो—

६१९—रीठों का छिलका और आम के पत्तों को चिलम में धर हुक्का पिलायें।

गले पर बांधने के लिये—

६२०—आकाश बेल	२ तोला
शहतूत के पत्ते	२ तोला
झाड़ की जड़	१ तोला
कचनालकी छाल	१ तोला
मकोय	१ तोला

—इन सबको कूट कर गर्म करें और गले पर बांध दें।

सब प्रकार की रोहिणी की चिकित्सा

०*मल्ल चन्द्रोदय वटी—*

६२१—मल्ल चन्द्रोदय १ तोला लेकर ३ दिन मकोय के रस में खरल करें फिर एक दिन अकरकरा के क्वाथ में खरल करें। पश्चात् टिकिया बना साया में सुखा लें। सूख जाने पर एक पीले मैंढक का पेट काट कर यह टिकिया उसमें रखदें और कपड़ मिट्टी करदें। सूख जाने पर ३ सेर उपलों की आग दें, शीतल होने पर टिकिया को निकाल कर खरल करें और इन औषधियों का बारीक चूर्ण और डालदें।

चिरायता	मजीठ
पीपल	शुद्ध बच्छनाग
सोहागा फूल	कोड़ी भस्म
मकोय	प्रत्येक ६–६ माशा
पित्तपापड़ा	इन्द्रायन मूल
लाख पीपल	कपूर
	प्रत्येक १–१ तोला

—इन सबको सात सात दिन अदरख और गिलोय के रस में खरल करके २–२ रत्ती की गोलियां बनावें और साया में सुखालें।

मात्रा—१–१ गोली दिन में ३ बार जल या शहद के साथ।

उपयोग—यह औषधि कण्ठ रोहिणी के लिये रामबाण है।

० आयुर्वेदीय इन्जैक्शन

६२२—ब्रह्म दण्डी घन	४ तोला

अडूसा घन	२ तोला
सत मुलहठी	१ तोला
कपूर	१ तोला
कस्तूरी	३ माशा
रेक्टीफाइड स्प्रिट	१॥ पौण्ड

—इन सब को रेक्टीफाइड स्प्रिट में हल करदें और सात दिन तेज धूप में रखदें। फिर बारीक कपड़े से छान लें और मजबूत शीशी में रखलें और २ शीशी वाली सिरिंज में भरकर माँस में इन्जैक्शन करें। यह इन्जैक्शन लगाने और मल्ल चन्द्रोदय वटी खाने के लिये देने से रोहिणी में बड़ा लाभ होता है। यह दोनों प्रयोग एक मुसलमान हकीम से १९४६ में मिले थे परन्तु आज वह इस देश में नहीं। उसने इन इन्जैक्शनों से कण्ठ रोहिणी के १००० बालकों को स्वस्थ किया था, वह खास कर बालकों की चिकित्सा किया करते थे और कहा थे कि यह इन्जैक्शन डाक्टरी इन्जैक्शन कौरेमीन, पैनिसिलीन से बढ़ कर है।

नोट-वह इसे तपैदिक में और लगाते थे। वह यूनानी और आयुर्वेदिक से बहुत वाकिफ थे। आशा है वैद्य महानुभाव इनकी परीक्षा कर प्राणाचार्य में अपने अनुभव प्रकाशित करेंगे।

प्रेषक–प० नत्थूराम शर्मा वैद्य घड़ियाली नूरपुर (कांगडा)

दालन—

यह रोग वायु की विकृति के कारण होता है। दन्त पोषक सूक्ष्म रक्त वाहिनियां जब वाताभि भूत हों तब एक वा एकाधिक दांतों में तीव्र शूल होता है।

उपाय—

६२४—अकरकरा	कायफल
सोंठ	नौसादर
गेरिक	कपूर

समान भाग

—लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर तप्त नारायण तैल वा तिल तैल से मिलाकर दांतों और मसूड़ों के भीतर बाहर मसलने से तुरन्त शूल शांत होता है।

दन्तहर्ष—

इसमें शीतोष्ण सहनशक्ति नष्ट हो जाती है। दन्त गत स्नायु दौर्बल्य का लक्षण है।

उपाय—

६२५-अशोकत्वक् चूर्ण	१ तोला
सेंधव लवण	६ माशा
केशर	१ माशा
कपूर	१ माशा

—इनके सूक्ष्म चूर्ण को गरम किये हुए घृत में पिचु बनाकर गरमागरम पिचु को रात्रि को सोते समय मुख में रखकर दांतों से चर्वित करने से दन्तहर्ष नष्ट होता है। ३ बार करना पर्याप्त है। इस प्रयोग के पश्चात् कुल्ला न करें।

पडवाल—

यह भयङ्कर रोग आरम्भ होने पर कष्ट के साथ जाता है। किन्तु हमारा योग समूल नष्ट कर देता है।

उपाय—

६२६—स्फुटिका भस्म	३ माशा
तूतिया	१ माशा
जगार	३ माशा
नसार	२ माशा
कीकर की छाल का चूर्ण	२ माशा
कतीरा गोंद	६ माशा
समुद्रफाग	६ माशा

—सबको अर्क गुलाब में पीसकर अञ्जन बनालें। आरम्भिक पड़वालों के लिये प्रातः सायं अञ्जन करना काफी है। यदि पुराण रोग में वर्त्म के भीतर रोगोद्गम हो गया हो तो—

केशर	½ रत्ती
अहिफेन	½ रत्ती

ऊपर का चूर्ण २ रत्ती

—सबको १ चमचा जल में १ घंटा भिगोने के बाद मसल कर जल वस्त्र पूत करलें। तदनु रोमों को मोचना से उखाड़ कर वस्त्र पूत जल के दो २ बिन्दु नेत्रों में डाल दें और शेष जल से थोड़ी सी विशुद्ध रुई भिगोकर पिचु रूप में नेत्रों पर रखकर पट्टी बांधदें ३-४ बार ऐसा करने से पड़वाल सर्वदा के लिये नष्ट होंगे।

शिरोव्यथा—

सम्प्रति बहुत रोग बढ़ा हुआ रोग है। प्रायः सभी चिकित्सक इसकी शांति के लिये एस्प्रीन या उसी से निर्मित योग व्यवहार में लाते हैं। परन्तु हमने निम्न-लिखित योगों से इस पर ८० प्रतिशत लाभ उठाया है।

६२७—पिप्पली मूल चूर्ण १ माशा
सर्पगंधा १ रत्ती
खांड १ माशा

—ऐसी ३ पुड़िया शीतोदक से देने से तुरन्त लाभ होता है। इसके द्वारा हृद्दौर्बल्य का भय भी नहीं है।

चिरस्थायी, दीर्घ कालानुबन्धिनी तथा पुराण प्रति-श्याय के परिणाम स्वरूप में निरन्तर रहने वाली शिरो-व्यथा के लिये--

६२८—शुद्ध धतूरा बीज २। तोला
रेवन्द चीनी २॥ तोला
सोंठ १। तोला
गोंद कीकर १ तोला

—लेकर जल योग से सूक्ष्म पीसकर १-१ रत्ती की मात्रा प्रात. सायं जल से। कुछ दिन के निरन्तर प्रयोग से निश्चय ही शिरोव्यथा नष्ट हो जाती है।

मासतान—

डिफ्थोरिया—एस यम दूत की आशु प्राण घातकता को चिकित्सक महानुभाव भली प्रकार जानते हैं। चिकित्सा की सुविधा के लिये इनकी तीन अव-स्थायें स्वीकार करनी होंगी।

प्रथमावस्था, साधारण और द्वितीयावस्था पूर्वापेक्षा बल वती। तृतीयावस्था तीव्र लक्षणात्मक होने से प्रायः औषधि व्यवस्था समय भी प्रदान नहीं करती।

अतः इस रोग की उस अवस्था में जिसमें प्राण नाश निश्चित नहीं, दो योग हम प्रयोग करते हैं—

६२९—अनन्नास के ४ तोला रस में १ तोला मधु मिला-कर शिशु को ५-५ मिनट बाद १-१ चमचा देने से स्वास्थ्य लाभ होता है।

६३०—रीठे के छिलके का चूर्ण १ तोला को ५ तोला जल में डाल कर क्वाथ करें। अर्धावशिष्ट रहने पर इस तरल को पिचु द्वारा कण्ठ में लगाने से तुरन्त शोथ युक्त उभरी हुई झिल्ली बैठ जाती है और शिशु सुख पूर्वक श्वास प्रश्वास की क्रिया को आरम्भ करता है। इन योगों का ठीक समय पर प्रयोग होने से प्राय मृत्यु भय दूर हट जाता है।

नोट—आशा है वैद्य बन्धु मेरे उक्त योगों को प्रयुक्त करके प्राणाचार्य द्वारा लाभालाभ की सूचना वैद्य समाज को देने का कष्ट करेंगे।

मैंने श्री प्रधान सम्पादक जी की इच्छानुसार ऋषि हृदय प्लावित होकर ही अपने कुछ योग पाठकों की भेंट किए हैं।

———※———

विलम्ब से प्राप्त—

ज्ञानेन्द्रियां और उनके कार्य

लेखक–आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

आधुनिक विज्ञान का विचार करने के पूर्व यह बहुत आवश्यक है कि हम अपनी पूंजी का हिसाब करलें कि ज्ञानेन्द्रियों के कार्य को हम किस प्रकार मानते हैं अर्थात् नेत्र के द्वारा हम देखने का कार्य कैसे करते हैं ? कर्ण या श्रवणेन्द्रिय के द्वारा श्रवण व्यापार कैसे सम्पादित होता है ? इत्यादि इसे समझने पर शेष ज्ञान सम्पादन सदैव लाभ प्रद रहता है ऐसा मेरा विश्वास है यही नहीं हमें अन्य ज्ञान की निस्सारता भी भलेप्रकार समझने का सुअवसर भी मिलेगा।

हम पचमहाभूतों से भले प्रकार परिचित हैं। हमारी ज्ञानेन्द्रियां एक एक महाभूत का प्रतीक बतलाई गई हैं जैसे आकाश भूत की प्रतीक श्रवणेन्द्रिय, वायुभूत की प्रतीक स्पर्शनेन्द्रिय, जल भूत की प्रतीक रसनेन्द्रिय, अग्नि भूत की प्रतीक चक्षुरेन्द्रिय तथा पृथ्वी भूत की प्रतीक घ्राणेन्द्रिय है। यद्यपि प्रत्येक इन्द्रिय पञ्च महाभूतात्मक तत्वों से बनी है परन्तु उसमें एक एक महाभूत का प्राधान्य रहता है।

आख, नाक, कान, जीभ, त्वचा जो हमको दिखलाई देते हैं वे ज्ञानेन्द्रियों के पृथक् पृथक् अधिष्ठान हैं जो भिन्न भिन्न भूतों को ग्रहण करते हैं और जिनके द्वारा हमें देखने, सूंघने, सुनने, चखने या छूने से विशिष्ट प्रकार के ज्ञानों का बोध हो जाता है यदि यह अधिष्ठान या यन्त्र विशेष नष्ट हो जाय तो उसमे सम्पादित होने वाला कार्य अपूर्ण रह जावेगा और वह व्यक्ति अन्य बधिराधि सञ्ज्ञाओं से पुकारा जावेगा। कभी कभी अधिष्ठान ज्यों का त्यों रहने पर भी उस अधिष्ठान के द्वारा वह कार्य पूर्ण नहीं होता। आख ज्यों की त्यो रहने पर भी व्यक्ति को कुछ नहीं दीखता। कान बना रहने पर भी व्यक्ति सुनता नहीं इत्यादि। कभी जब वह सुनने का कार्य करता है तो ठीक से देख नहीं पाता और जब चित्रपट पर कुछ देखता है मुख में रस घुलने का आनन्द नहीं ले पाता। ये उदाहरण यह प्रगट करते हैं कि इन अधिष्ठानों का और भी कहीं सम्बन्ध है तथा और ही कहीं से नियन्त्रण होता है।

ज्ञानेन्द्रियों का नियन्त्रण कर्ता मन होता है। मन मानो राजा है। राजा से लिए ५ कचहरियां बनी हुई हैं। वह एक के बाद दूसरी कचहरी में जाता है। जिस कचहरी में जाता है वहां वही वही कार्य करता है। आख की कचहरी में बैठकर वह देखता है, कान की कचहरी में सुनता है, जीभ की कचहरी से चखता, नासा की कचहरी में सूंघता है, तथा त्वचा की कचहरी में स्पर्श करता है। यदि यह राजा इन कचहरियों में चक्कर लगाना बन्द कर दे तो ये कचहरिया सूनी पड़ी रहती हैं। आँख होते हुये भी व्यक्ति अन्धा, कान रहते हुये भी बहरा आदि हो जाता है। इन इन्द्रियों के राजा मन की गति आज कल की एटौमिक शक्ति के द्वारा चालित यन्त्रों से भी लाखों गुनी बढ़ी हुई होती है इसी कारण वह झट आख में झट कान में झट जीभ पर झट नासा में और झट त्वचा में देखा जाता है और हर जगह जाने का कार्य वह इतने आनन फानन में करता है कि किसी इन्द्रिय को यह ज्ञान ही नहीं हो पाता कि मन उसके पास नहीं है। भगवान कृष्ण के लिए यह प्रसिद्ध है कि वे अपनी कई सहस्र रानियों के पास एक ही समय में पाये जाते थे उसी प्रकार सब इन्द्रियों के पास प्रत्येक समय मन की उपस्थिति परखी जा सकती है। पर क्या वास्तव में मन प्रत्येक समय प्रत्येक इन्द्रिय में नहीं रहता या अधिक शास्त्रीय भाषा मे मन प्रत्येक कार्य युगपत् नहीं करता इसमें विश्वास करना चाहिए। शास्त्रकारों

ने मनको एक तथा अणु बतलाया है। एक होने से वह एक ही समय में एक कार्य करता है तथा अणु होने से उसके टुकड़े नहीं हो पाते परन्तु वह अतिशीघ्र अपने कार्य करने की सामर्थ्य रहता है। मन का लक्षण ज्ञान का होना या न होना इसी से जाना जाता है।

पांचों महाभूतों के पांच ही गुण होते हैं। आकाश का गुण शब्द है, वायु का गुण स्पर्श है, अग्नि का गुण रूप है, जल का गुण रस है तथा पृथ्वी का गुण गन्ध है। ये पांचों गुण इस क्रम से हैं कि प्रथम से द्वितीय मे गुण की वृद्धि हो जाती है द्वितीय से तृतीय में प्रथम और द्वितीय दोनों गुण मिलते हैं। इसे यों समझ सकते हैं शब्द प्रथम गुण, द्वितीय गुण स्पर्श में शब्द भी अन्तर्निहित है, रूप तृतीय गुण में शब्द और स्पर्श दोनों का समावेश है, रस में शब्द, स्पर्श और रूप ये तीनों गुण है तथा गन्ध में प्रथम चारो सम्मिलित रहते हैं। इन गुणों में इतना सम्मेलन होने पर भी अधिष्ठान अपने अपने विषय को ही ग्रहण करने में समर्थ होता है और सो भी जब मनराज की मौज आजाय तब। आंख के द्वारा जो रूप ग्रहण होता है यह चक्षुरेन्द्रिय का इन्द्रियार्थ कहलाता है इसी प्रकार शब्द श्रवणेन्द्रिय का इन्द्रियार्थ है इसी प्रकार शेष का समझ लें।

इन्द्रिय के द्वारा अपना इन्द्रियार्थ समनस्क होने पर ग्रहण होता है। मन का विषय या अर्थ है चिन्तन, विचार करना, ऊपापोह करना, ध्यान करना, सकल्पता करना तथा अन्य इन्द्रियनिरपेक्ष सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, चेतना, धृति, स्मृति, अहकारादि हैं उन सबका आकलन मन के विषय में आता हैं। जब इन्द्रियाधिष्ठान में मन आ जाता है तो फिर वहां वह इन्द्रियार्थ को ग्रहण कर फिर उसका ऊहापोह करता है। स्व विषय का ध्यान करने का कारण उस इन्द्रियार्थ का उसे जो स्पष्ट ज्ञान हो जाता है वह निश्चयात्मिका बुद्धि का कारण बनता है। प्रत्येक इन्द्रिय की दृष्टि से बुद्धि विविध प्रकार की होती है। यह बुद्धि ही तत्ततः इन्द्रियार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान कहलाता है। घट देखने से घट बुद्धि का होना और निश्चयात्मक विचार उठना कि यह घट है यही घट सम्बन्धी निश्चयात्मिका बुद्धि का प्रगटी करण है।

निश्चयात्मक ज्ञान की प्रतीति अव्यक्त वा आत्मा को होती है। अव्यक्त और बुद्धि के बीच की एक स्थिति अहङ्कार की आती है जिसमें व्यक्ति यह अनुभव करता है कि यह मैं देख रहा हूँ या यह मैं चख रहा हूं इत्यादि। अव्यक्त ज्ञान प्राप्ति के लिए इङ्गित मात्र करता है। मन उस इङ्गित पर चलकर बुद्धि एवं अहङ्कार को सचेत करता है जिनके द्वारा विषय विशेष का ज्ञान होता है।

हमारे आचार्यों ने लोकस्थ पञ्चमहाभूतात्मक सृष्टि के ज्ञान के लिए इन्द्रियाधिष्ठान से लेकर अव्यक्त तक एक इस प्रकार की मशीनरी का व्यवधान मान लिया जिसके कारण उस उसका पूर्णतः बोध हो सके। इस ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख साधन मन रखा।

अब यदि हमसे कोइ पूछता है कि हम कैसे देखते हैं तो हम सरलता से बतला सकते हैं कि अग्नितत्व प्रधान जिनका कोई रूप हो ऐसी वस्तुओं को हम देख सकते हैं। आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि वायु रूप पदार्थ रूप विहीन होने से देखे नहीं जासकते। रूपवान द्रव्यों को देखने का साधन है वह इन्द्रिय जिसका इन्द्रियार्थ रस है और वह है चक्षुरेंद्रिय। चक्षुरेन्द्रिय का अधिष्ठान आंख है अत: रूपवान वस्तु की ओर पहले आँख जावेगी फिर अव्यक्त उस वस्तु के देखने के लिये मनको इङ्गित करेगा, मन चक्षुरेन्द्रिय के साथ सम्पर्क जोड़ कर रूप ग्रहण करेगा और उस सम्बन्ध में यथोचित ऊहापोह करता हुआ सब रेकार्ड बुद्धि को सौंप देगा। बुद्धि उस ज्ञान का निश्चय करेगी और अहङ्कार उसमें अपनत्व प्रगट करता हुआ बुद्धि के द्वारा अव्यक्त को यथार्थ ज्ञान देगा। इसी प्रकार अन्य ज्ञानेन्द्रियों के सम्बन्ध भाव आता है। इतना सब समझ लेने के पश्चात आयुर्वेदीय विचार वादी के मन में शङ्का का स्थान नहीं रहता।

श्री वैद्य भास्कर बाँकेलाल गुप्त के

४५ वर्ष के अनुभव के आधार पर निर्मित

पेटेन्ट एवं परीक्षित

औषधियों

का

वृहद् सूचीपत्र

इसमें दी गई प्रत्येक औषधि आशुफलप्रद, चमत्कारिक, गुणदायक एवं चिकित्सकों को सुयश प्रदाता सिद्ध हुई हैं। आप अपनी चिकित्सा में सदैव इन्हें व्यवहार कर आयुर्वेद का नाम उज्वल करें।

प्राणाचार्य भवन लिमिटेड

विजयगढ़ (अलीगढ़)

कुछ नवीन आविष्कार

नेत्र विन्दु

दुखती आँख में डालने से तत्काल आराम होता है। बच्चों से लेकर बड़ों तक की आँखों में भी डाली जा सकती है।

मूल्य—१ शीशी =)

कण्ठ्य लेप

सर्दी गर्मी के साथ लगने से गले में खराश पड़ जाती है, चोट आदि से गला सूज जाता है, किसी कठोर वस्तु के सटकने से गले की त्वचा छिल जाती है, काग गिरना, टौंसिल्स आदि में इसका प्रयोग तत्काल लाभ दिखाता है। मोटी सी रुई को फुरैरी से मुह खुलवाकर आ आ-आ करते हुए शीघ्रता से गले में चारों ओर लगा देना चाहिए।

मूल्य—१ शीशी ॥)

एक नवीन परीक्षित आविष्कार

श्वेत प्रदरारि रसायन

अब तक श्वेत प्रदर को जड़ से नाश करने वाली कोई भी दवा अपने सामने नहीं आई। इस कमी को देख कर हमने उक्त औषधि का निर्माण किया और पचासों रोगियों पर परीक्षा की है। शतप्रतिशत सफल होने पर आपके सामने है। इससे कमर का दर्द, पिंडलियों का दर्द, भूक की कमी आदि सब उपद्रव १५ दिन में जाते रहते हैं। २१ दिन के सेवन से रोग जड़ से चला जाता है।

मूल्य—२१ दिन के कोर्स का २१)

अर्क कपूर

हैजे व जी मिचलाने आदि की सर्वोत्तम दवा है। जहरीले जानवर के काटे, लू लगने, कै दस्त आदि सभी के लिये अचूक दवा है।

मूल्य—१ शीशी ॥।)

अर्क पोदीना

पेट के सब विकारों के लिये, अफरा, दस्त, दर्द आदि की सर्वोत्तम दवा है।

मूल्य—१ शीशी ॥)

अण्ड वृद्धि हर लेप

अण्ड वृद्धि हर रसायन के साथ-साथ इस लेप का भी प्रयोग करना चाहिए।

मूल्य—दो औंस २॥) आध औंस १)

जलोदरारि रसायन

जलोदर (जलन्धर) के लिये अव्यर्थ महौषधि। केवल आठ दिवस के सेवन से जलोदर को नष्ट करने वाली नवीन औषधि।

प्रातः सायं एक-एक मात्रा गौमूत्र से दें। पथ्य में केवल दूध दें। जल आदि सब बन्द कर दें।

मूल्य—१६ मात्रा ८)

अण्ड वृद्धि हर रसायन

अण्ड कोष की वृद्धि, हार्नियाँ के लिये सर्वोत्तम औषधि है। मूल्य—(२१ मात्रा) ४)

स्तम्भन गुटिका

इसके सेवन से वीर्य का स्तम्भन होता है।

मूल्य—१ शीशी (३२ गोली) १।)

वातारि गुटिका

समस्त वात रोगों के लिये उत्तम गुणप्रद औषधि है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोली)-२)

मुखपाक हर चूर्ण

मुख के छाले, जो गरमी, पाचन विकार से या मलावरोध से उत्पन्न हो जाते हैं इसके लगाने मात्र से ही शान्त हो जाते हैं।

मूल्य—१ शीशी (६ माशा)-॥)

रक्त रोधक रसायन

रक्त पित्त, क्षय, रक्तातिसार, रक्त प्रदर, रक्तार्श आदि किसी रोग के कारण किसी भी मार्ग से रक्त जाता हो, इसके सेवन से अवश्य बन्द हो जाता है। मूल्य—१ शीशी (४ औंस) ४)

प्लीहान्तक

जिनकी तिल्ली बढ़ गई है उनके लिये राम-बाण है।

मूल्य—१ शीशी (८ औंस, १६ खुराक) १॥)

प्लीहान्तक चूर्ण

यदि यह प्लीहान्तक के साथ सेवन किया तो और भी शीघ्र लाभ होता है।

१६ खुराक (४ तोला) ॥।)

रक्त शोधकासव

सब प्रकार के रक्त और चर्म विकार के लिये उत्तम है। मूल्य—१ बोतल २)

प्राणाचार्य मलहम की बत्ती

यह मलहम की बत्ती फोड़े फुन्सी पर अचूक लाभ करती है। मूल्य—१ बत्ती ॥)

प्राणाचार्य मलहम

फोड़ा फुन्सी और हर प्रकार के घाव के लिये सर्वोत्तम है। मूल्य—१ डिब्बी ।)

उदर भास्कर चूर्ण

अजीर्ण, पेट का दर्द, अरुचि, खट्टी डकार, अफरा, इनको दूर करता है। दस्त साफ लाता है खाने में स्वादिष्ट है।

मूल्य—१ शीशी (४ औंस) १)

आम निस्सारक चूर्ण

इसके सेवन से उदर में रुकी हुई और कष्ट-कारक आव दस्त के साथ निकल जाती है उदर शुद्ध हो जाता है। भेदक है।

मूल्य—१ शीशी (४ औंस) १।)

स्वप्न दोषान्तक चूर्ण

स्वप्न दोष अर्थात् स्वप्न में होने वाले वीर्यपात के लिये अति उत्तम है।

मूल्य—१ शीशी (४ औंस) २)

स्वप्न प्रमेह रिपु वटी

स्वप्न दोषान्तक चूर्ण के साथ इसे भी सेवन किया जाय तो और भी अधिक लाभ होता है।

मूल्य—१ पैकिट (३१ गोली) १)

कण्डू हर तैल

साधारण खाज खुजली के लिये मालिश करने को अद्वितीय फलप्रद तैल है। मूल्य—१)

ज्वर निग्रह

(मीठी और स्वादिष्ट)

आज कल बाजारों में मलेरिया के लिये पचासों औषधियां प्रचलित हैं परन्तु सभी में एक दोष है कि वह या तो कुनीन पर बनी होने के कारण मूल्यवान व कड़वी है या क्वाथ रूप होने के कारण कड़वी हैं। कड़वी दवा सभी कोई सरलता से सेवन नहीं कर सकता है फिर भी—

"कड़वी औषधि के बिना मिटै न तन की पीर"

कहावत के अनुसार यह दवायें लोग प्रयोग करते हैं पर, हमारी इस नवीन आविष्कृत मीठी व स्वादिष्ट ज्वर निग्रह ने इस कहावत में परिवर्तन कर दिया है और हम दावा के साथ कहते हैं कि हमारी इस मीठी ज्वर निग्रह की तीन चार मात्राओं के सेवन मात्र से मलेरिया, विषम ज्वर छूमन्तर हो जाता है। हजारों रोगी लाभ उठा चुके हैं। एक बार परीक्षा करके इसके गुणों की परीक्षा करें। मूल्य—१ शीशी (दस मात्रा) एक रुपया

श्वास रिपु

इससे कैसा ही श्वास का दौड़ा हो रहा हो, रोगी कष्ट से बेचैन हो, कफ न निकलता हो तो दो चार मात्रा में ही दौड़ा शान्त हो रोगी ठीक हो जाता है। इस औषधि की प्रशन्सा हम क्या लिखें जादू के समान चमत्कार दिखाती है।

मू०—चार खुराक की शीशी का १) रुपया।

प्राणाचार्य वाम

वाम के गुण सर्व साधारण जानते ही हैं। शिर दर्द मे लगाने के लिये प्रधान है।

मू०—१ शीशी ॥)

शोथ-शूल हर प्रलेप (Anti Phloja)

फुफ्फुस प्रदाह नाशक स्नेह युक्त उपनाह प्रलेप है। इसके आविष्कार में भी कुनीन के समान ही प्रयत्न किया था अब जाकर सफलता मिली है। सांघातिक निमोनिया के रोगी, बालकों की पसली, डिब्बा, छाती के दर्द, सूजन, फोड़ा, खासी, गठिया, मोच, अङ्ग पीड़ा आदि के हजारों रोगियों पर परीक्षा करली गई है। यह विलायती प्लास्टर से उत्तम गुण वाली साबित हुई है। डाक्टरों से हम विशेष अनुरोध करते हैं कि वह अपने २ रोगियों को देकर देखें कि इसके गुण विलायती एन्टीफ्लोजा से कितने अधिक हैं फिर तो वह सदैव ही इसे व्यवहार कर सकेंगे। औषधिया बेचने वालो को शीघ्र ही मगाकर स्टाक में रखना चाहिए।

मूल्य—१ डिब्बा १॥)

सुजाक नाशक कैपशूल

मूत्र के साथ पीव जाना, धोती में धब्बा, पेशाब में दर्द होना आदि सुजाक सम्बन्धी सभी शिकायते दूर होती हैं मू०—१ पैकिट (२१ कैपशूल) २)

दन्त रोग हर मञ्जन

यह दांतों के समस्त रोगों में लाभदायक है। पायरिया का शत्रु है। मसूड़े से पीप या खून निकलने में रामबाण है। एक बार परीक्षा कीजिये नित्य प्रति लगाते रहने से कोई भी दन्त रोग नहीं होता। मूल्य—एक शीशी ॥-)

यकृत रोग हर तैल

यकृत रोग रिपु के साथ ही मालिश के लिए यकृत रोग हर तैल का भी प्रयोग करें।

मू०—एक शीशी ४ औंस २)

प्रतिश्याय हर सुरमा

इसको प्रातः काल नेत्रों में लगाने से रुका हुआ जुकाम (नजला) नेत्र और नाक के द्वारा निकल जाता हैं। जिससे शिर दर्द नया या पुराना या जुकाम के कारण उत्पन्न हुआ अवश्य शांत हो जाता हैं। पुराने शिर दर्द में इसके लगाते रहने और शिरो वज्र रस को पथ्यादि काथ के साथ सेवन करते रहने से एक दो सप्ताह में ही दूर हो जाता है। नये शिर दर्द में या जुकाम के शिर दर्द में इसका लगाना ही यथेष्ट है।

मू०—एक माशा की शीशी ।≈)

स्फूर्ति दाता

क्षय रोग में शरीर की सप्तधातु निरन्तर क्षय होती रहती है। यह औषधि क्षय रोग की प्रथमावस्था में देने से एक सप्ताह में धातुओं का क्षय होना रोक देती है। दूसरे सप्ताह में एक पौंड वजन बढ़ा देती है। साधारण अवस्था में तो एक ही सप्ताह में एक पौंड वजन चढ़ा देती है। जो रोगी कृश हैं उनके लिये अमूल्य है।

मूल्य—एक पैकिट (३१ गोली) १)

शूलहर

यह सब प्रकार के शूल (दर्द) में लाभदायक है। शिर दर्द, पेट दर्द, स्नायु दर्द, कान दांत का दर्द हो अवश्य शांत हो रोगी सो जाता है।

मू०—एक शीशी (ग्यारह गोली) ॥)

यकृत रोग रिपु

यह बालकों के जिगर और सूखा रोग की औषधि है। इसके सेवन से यह रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं। मू०—एक पैकिट (साढ़े दश माशा) ४२ मात्रा १)

उपदंश नाशक कैपशूल

उपदन्श सम्बन्धी सभी विकारों को नष्ट कर रक्त शुद्ध कर देता है, और उपदंश का विष नष्ट होने से पुनः उपदंश संबन्धी कोई रोग नहीं होता। मूल्य—१ पैकिट २१ कैपशूल २)

दद्रु कुठार मरहम

दाद की सर्वोत्तम औषधि है। कपड़ा खराब नहीं होता खुजली में एक दो बार लगाने से ही नष्ट हो जाती है। कुछ दिन लगाने से दाद नष्ट हो जाता है। मूल्य—एक डिब्बी ॥)

एराटी पौक्सीन

यह औषधि बालकों की माता (चेचक) रोकने में अति उत्तम प्रमाणित हुई है। जिस स्थान में रोग फैला हो उस स्थान के बच्चों को यह औषधि यदा कदा खिला देनी चाहिए। चेचक यदि निकल भी आई हो तो भी इसका सेवन कराना चाहिए। इससे रोग बढ़ नहीं पाता परन्तु जल्दी शान्त हो जाता है।

मूल्य – एक शीशी (२० गोली) २)

प्राणाचार्य घुटी

यह बालकों के सामयिक रोग जैसे हरे पीले दस्त होना, ज्वर होना, खासी, उलटी आदि दांत निकलने के समय होने वाले रोग नष्ट कर बलवर्धक है। बाजारू घुटियों से सर्वोत्तम है।

मू०—एक शीशी (आध औंस) ।–)

कन्डू हर मलहम

खाज खुजली पकी या साधारण कैसी भी हो इसके लगाने से अवश्य दूर हो जाती है।

मूल्य—१ डिब्बी ॥)

कासान्तक

अनेक कास (खांसी) नाशक औषधियों के संयोग से बना हुआ मीठा शर्बत रूप औषधि है जिसके सेवन से खांसी, कुकर खांसी क्षय की खासी और कफ युक्त खांसी आदि सबके लिये ही सर्वोत्तम और घरेलु औषधि है। मू०—बड़ी शीशी (४ औंस) १।) और छोटी शीशी (एक औंस) ।=) आना।

क्लीवत्व हर मजूषा

इसमें चार औषधिया हैं। इन चारों के व्यवहार से कैसा ही नपुंसक हो अवश्य पुरुषत्व प्राप्त कर लेता है। एक नहीं हजारों रोगी निरोग्य हो चुके हैं। एक बार व्यवहार से ही आपको मालूम हो जायगा। २१ दिन के सेवन योग्य औषधियों का मूल्य—१ बक्स ६)

चन्द्रोदय गुटिका—मकरध्वज वटी, मकरध्वज गुटी कामिनी मद मर्दन एवं शास्त्रीय प्रयोग आदि सबके ज्ञाता प्राणाचार्य जी ने स्वर्ण, माणिक्य पुखराज आदि बहुमूल्य औषधियों का मिश्रण करके सबसे अधिक प्रभावशाली एव लाभप्रद बनाया हैं जिस के सेवन से प्रमेह, स्वप्न दोष, मधुमेह, बहुमूत्र, स्त्री रोग नष्ट हो जाते हैं। निर्बल स्नायु सबल हो जाती है। भोजन अच्छी प्रकार पचा कर रस वीर्य को बढ़ाती है। किसी भी रोग से हुई निर्बलता इससे नष्ट हो जाती है। स्तम्भन शक्ति बढ़ जाती है। नपुंसकता नष्ट हो शरीर सुन्दर कान्ति युक्त हो जाता है। मूल्य—१ पैकिट (४२ गोली) २॥)

फलासव—शक्ति वर्धक फलों द्वारा यह आसव तैयार किया जाता हैं, साथ ही ऐसी औषधियां भी मिश्रण की गई है जिन से वीर्य विकार नष्ट हो जाते हैं। भोजन के बाद या साथ सेवन योग्य है। मूल्य—१२ औंस २)

क्लीवत्व हर तिला—इसके व्यवहार से गुप्तेन्द्रिय की निर्बल हुई स्नायु बलवान हो जाती है। जिन्होंने हस्त मैथुन, बहु मैथुन आदि से अपना जीवन नष्ट कर लिया हैं, उनके लिये अमृत समान है। नपुंसक को पुंसत्व देना इस तिला का मुख्य कार्य है। मू०—१ शीशी (आध औंस) २॥)

क्लीवत्व हर पोटली—इसके सेवन से नंपुसकता नष्ट होती है। गुप्तेन्द्रिय के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। स्नायु बलवान हो जाती है एव ढीले रग पट्ठे मजबूत हो जाते है। मूल्य—११ पोटली २)

प्रदर रोग हर मंजूषा

स्त्रियों में प्रदर रोग की इतनी अधिकता हो गई है कि १०० में ६५ स्त्रिया कष्ट पा रही हैं। हमारे इस मंजूषा में तीन औषधियाँ हैं, जो बीस दिन के सेवन योग्य हैं। इनसे कैसा ही प्रदर हो और उसके साथ कितने ही उपद्रव हों सब नष्ट हो जाते है। मूल्य—एक बक्स १०)

कामिनी रक्षक पाक—यह पाक विशेष विधि से बनाया जाता है जो कसार की भांति खिला हुआ होता है। इसके सेवन से सब प्रकार का प्रदर, योनि विकार, कष्टार्तव, योनिशूल, कुक्षि शूल, आदि सब विकार नष्ट हो बल और कान्ति बढ़ती जाती है। मूल्य—एक पैकिट दस तोला ५)

कामनी सुधा—स्त्री रोग नाशक, बल वर्धक, काति वर्धक, प्रदर नाशक, पाचक, स्फूर्ति कारक

आसव है। जिससे स्त्रियों के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। मूल्य—बारह औंस एक रुपया।

कामिनी रोग रिपु—मूल्यवान औषधियों द्वारा बनाई हुई यह रसायन् स्त्रियों के लिये अमृत रूप है। इसके सेवन से सब प्रकार का प्रदर रोग नष्ट हो जाता है, कुक्षि शूल, योनिशूल आदि नष्ट हो जाते हैं। मूल्य—२ माशे (२० मात्रा) तीन रुपया

हिस्टेरिया हर मंजूषा

इसमें हिस्टेरिया नाशक चार औषधियां हैं। इन चारों के सेवन से कैसा ही कठिन हिस्टेरिया रोग हो अवश्य नष्ट हो जाता है। दौरा फिर कितने ही जल्दी जल्दी आते हों इससे अवश्य रुक जाते हैं। साथ ही हिस्टेरिया रोग के उपद्रव भी शान्ति हो जाते हैं। मूल्य—एक बक्स (२० दिन के सेवन योग्य) ११)

हिस्टेरिया हर रसायन—हिस्टेरिया के दौरा रोकने और बल बढ़ाने के लिये रामबाण। अपस्मार उन्माद में भी लाभदायक। मूल्य—(२० मात्रा) २॥) रुपया

हिस्टेरिया हर वटी—हिस्टेरिया और अपस्मार तथा वायु रोग नाशक गुल्म, वायुशूल के लिये उत्तम है। मूल्य—(४० गोली) २॥)

हिस्टेरिया हर आसव—हिस्टेरिया के साथ के पाचन विकार और मलावरोध के लिये सर्वोत्तम और बल वर्धक औषधि है। मूल्य—२० औंस चार रुपया

हिस्टेरिया हर क्वाथ—हिस्टेरिया (योषापस्मार) और अपस्मार नाशक तथा आर्तवविकार नाशक औषधि है। मूल्य—८१ तोला (४० मात्रा) २)

रक्तविकार हर मंजूषा

इसमें चार औषधियां हैं। इन चारों के सेवन से कैसा ही रक्त और चर्म विकार हो अवश्य नष्ट हो जाता है। उपदंश, सुजाक जन्य रक्त विकार, कुष्ठ, वात रक्त प्रभृति रोग सब नष्ट हो शरीर कांति मय और सुन्दर हो जाता है। मूल्य—१ बक्स का ८)

इन्द्रवारुणादि क्वाथ—इससे दस्त होते हैं आव निकलती है, किसी किसी को वमन भी हो जाती है ऐंठन भी होती है पर चिन्ता न करें। सेवन करते रहने से दस्त अवश्य शुद्ध हो जाता है। मूल्य—१० तोला (५ खुराक) ॥)

रक्तशोधक रसायन—इसके सेवन से वात रक्त, कुष्ठ, रक्त, चर्म विकार नष्ट हो जाते हैं। मूल्य—५ माशा (४० मात्रा) ३।=)

प्राणाचार्य सालसा—उपदंश, सुजाक जन्य रक्त व चर्म विकार एवं वातरक्त, कुष्ट प्रभृति रोग इसके सेवन से नष्ट हो जाते हैं। मूल्य—२० औंस ३=)

कण्डू हर तैल—पामा दाद, कण्डू, फोड़ा-फुन्सी और वात रक्त, कुष्ठ रोग में लगाने से बड़ा फायदा होता है। मूल्य-१ शीशी (४ औंस) १)

श्वेत कुष्ठ हर मंजूषा

रक्त विकार हर मंजूषा से सब प्रकार के रक्त और चर्म विकार, कुष्ठ वात रक्त अवश्य नष्ट होते हैं किंतु यह रोग बड़ा घृणास्पद और कठिन है तथा इसकी चिकित्सा भी प्रथक है, इस लिये हमने इसकी चार औषधियाँ प्रथक ही बनाकर २० वर्ष तक खूब परीक्षा की है। इस बक्स में २० दिन

की औषधियां हैं। बीस दिन में ही रोगी को लाभ मालूम हो जाता है और निरन्तर सेवन से कितना ही पुराना रोग हो अवश्य ही नष्ट हो जाता है।

मूल्य—६)

श्वेत कुष्ठ हर अवलेह एक पैकिट (१४ तोला) ३)
,, क्वाथ (८४ तोला) ३)
,, वटी मोदक (४१ गोली) २)
,, तैल १ शीशी (आध औंस) १)

अर्शान्तक मंजूषा

इसमें भी ४ औषधियां हैं। दो लगाने तथा दो खाने की हैं। इसके निरन्तर सेवन से भयङ्कर अर्श (बवासीर) रोग नष्ट हो जाता है। मस्से धीरे धीरे सूख कर गिर जाते हैं। मूल्य—३० दिन के सेवन योग्य औषधियों का—११)

अर्श हर वटी १ पैकिट (४० गोली) २)
अर्श हर मोदक ,, ,, ३)
अर्श हर मरहम १ पैकिट (एक औंस) ५)
अर्श हर तैल १ शीशी (दो औंस) १)

नेत्र रोग हर मंजूषा

इस एक ही बक्स से आप नेत्र चिकित्सक बन सकते हैं। छः औषधिया इस बक्स में हैं, जो नेत्र के प्राय. सभी रोग दूर कर देती है। यह सब हमारी परीक्षित और हजारों रोगियों को रोग मुक्त कर चुकने वाली है। मू०—७)

नयन चन्द्र बिन्दु—दुखती हुई आख में डालने से नेत्रों में ठण्डक पड़ जाती है। नेत्रो का किरकिराना, आंसुओं का आना, सुर्खी रहना आदि सब दो तीन दिन में नष्ट होकर नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं। मूल्य—पाव औंस की शीशी ॥)

नयनामृत सुरमा—प्रति दिन लगाते रहने से नेत्र विकार नहीं होते और नेत्र ज्योति बढ़ती है। जिन रोगियों की नेत्र ज्योति मन्द पड़ गई है उसको बढ़ाने के लिये इसको प्रति दिन लगाना चाहिए। मूल्य—१ पैकिट (६ माशे) १)

नेत्र पुष्प हर वर्ती—नेत्रों में जो फूली पड़ जाती है उसके लिए रामबाण है। मू०—एक पैकिट (ग्यारह वर्ती) २)

चन्द्रोदय वर्ती—धुन्ध और जाले तथा ढलका के लिये सर्वोत्तम है मू०—१ पैकिट (एक तोला) ॥≈)

परवाल हर सुरमा—इस सुरमा से परवाल रोग नष्ट होता है। नेत्रों में बारीक बाल ऐसी जगह उत्पन्न हो जाते हैं। जिनसे मनुष्य को नेत्रों में कष्ट मालूम होता है। पानी निकलता है और उसका इलाज एलोपैथी में पलकबन्दी ही है। पर यह औषधि बिना पलक बन्दी के ही परवाल नष्ट कर देती है। मूल्य—एक शीशी (३ माशा) १)

नेत्र सुधा—रोहे नेत्रों में आज कल बहुत हो रहे हैं इसके लिये हमने यह नेत्र सुधा तैयार किया हैं यह रोहे के लिये एक ही औषधि है। मूल्य—एक शीशी (६ माशा) २)

—हमारी प्रकाशित पुस्तकें—

इन्जैक्शन विज्ञान

लेखक—डा० प्यारेलाल जी गुप्त वैद्य विशारद, मुंगेली

पुस्तक अभी तक की प्रकाशित सभी पुस्तकों से अधिक उपादेय है। इसमें इन्जेक्शन के प्रकार, भेद, विधि, सावधानी, उपयोग आदि सभी आवश्यक बातें विस्तृत रूप से दी हैं। इसके साथ ही १०० के लगभग वनौषधियों के इन्जेक्शन बनाना बनाकर उनकी प्रयोग विधि, गुण, मात्रा आदि सभी दिया है। १५० के करीब एलोपैथिक इन्जेक्शनों का विवरण व उनके गुण व प्रयोग विधि दी है तथा वेक्सीन व सीरम चिकित्सा व बायोकेमिक इन्जेक्शनों का विस्तृत विवरण दिया है। १५० के लगभग आयुर्वेदीय व एलोपैथिक प्रयोग भी दिये हैं। परिशिष्ट में एनीमा, कर्ण प्रक्षालन, कैथेटर, थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप व नाड़ी विज्ञान पर भी सक्षेप में अपना अनुभव दिया है। इस प्रकार पुस्तक सभी तरह से उपयोगी एवं सदैव पास में रहने योग्य बनादी गई है। इस पुस्तक को लेने के उपरान्त अन्य किसी पुस्तकों में इन विषयों पर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। पृष्ठ संख्या ३२०। मूल्य केवल ४)

प्रयोग मणिमाला

इस पुस्तक में भारत के २५१ प्रसिद्ध विद्वान वैद्यों के जीवन चरित्र, चित्र एवं ५०१ परीक्षित शतशोनुभूत प्रयोग दिये गये हैं। इस पुस्तक के बीसियों प्रयोग तो अव्यर्थ हैं और वह हमारे यहा पेटेन्ट बनकर चल रहे हैं। एक प्रयोग कोकेन के समान शून्यता लाने वाली दवा का है। यह स्थानिक शून्यता के लिये अति उत्तम है। सभी प्रयोग हमारे यहाँ बनाकर परीक्षा कर लिए गये हैं जो प्रयोग उत्तम प्रमाणित नहीं हुये थे वह निकाल दिये गये थे। इस प्रकार इस पुस्तक में केवल गिने चुने प्रयोगों का ही संग्रह है व्यर्थ के अप्रामाणिक प्रयोगों से परिपूर्ण नहीं है। जिन प्रयोगों के निर्माण में कुछ कठिनता पड़ती है वह टिप्पणी देकर स्थान-स्थान पर स्पष्ट कर दी गई है। प्रत्येक वैद्य के संग्रह योग्य है। मूल्य—८) मात्र

थर्मामीटर विज्ञान

इस पुस्तक के पढ़ने से थर्मामीटर की उपादेयता का ज्ञान ही नहीं अपितु उसके क्या-क्या नियम हैं यह भी पता चल जाता है। थर्मामीटर के भेद, उसके लगाने का स्थान, विधि, सावधानी, चार्ट पर तापक्रम अङ्कित करना, विभिन्न रोगों में तापक्रम की अवस्थायें आदि सभी बातो का विस्तृत रूप में ब्यौरा दिया है। प्रत्येक वैद्य एवं गृहस्थ के लिये उपयोगी है। मूल्य—।) मात्र

परीक्षित प्रयोग (प्रथम भाग)

इस पुस्तक में लेखक ने अपने शिक्षण काल में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में निर्मित कुछ विशेष दवाओं के परीक्षित प्रयोग दिये हैं। सभी प्रयोग अपने विषय के अद्वितीय हैं। मूल्य—॥।)

परीक्षित प्रयोग (द्वितीय भाग)

इसमें लेखक ने धर्मार्थ औषधालयों में प्रतिदिन काम में आने वाले सहस्रों चुटकुलों और प्रयोगो का वर्णन किया है। कोई-कोई प्रयोग तो कौड़ियों की लागत से तैयार होता है और हजारों का काम करता है। पुस्तक वैद्यों और विशेषकर गृहस्थों को सग्रहणीय है।

मूल्य—१।)

आहार

भोजन क्यों करें, कैसा करें, कितना करें व क्या वस्तु खानी चाहिए, क्या न खानी चाहिए, कितनी खानी चाहिए और कब खानी चाहिए आदि प्रश्नों के उत्तर

आप जानना चाहें तो इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ें। पुस्तक में भोजन विषयक आजकल के समय के अनुसार सभी समस्याओं पर विचार किया गया है। पुस्तक अपने विषय की एक ही है। मूल्य—१॥)

वैज्ञानिक प्राणायाम रहस्य

इस पुस्तक में प्राणायाम क्यों करना चाहिए और कब कैसे करना चाहिए आदि सभी बातों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। चित्रों के द्वारा प्राणायाम विधि, रक्ताभिषरण, हृदय की कार्य प्रणाली पेशियों पर प्रभाव आदि सभी बातें स्पष्ट कर दी गई हैं। यदि आप अपने को स्वस्थ और सबल बनाना चाहते हैं तो इस पुस्तक को मंगा कर देखें। मूल्य—२।) सजिल्द

स्वप्न दोष और वीर्य सञ्जीवन

स्वप्न दोष क्या है और क्यों होता है तथा उसके दूर करने के क्या उपाय हैं इन सभी प्रश्नों का उत्तर आपको इस पुस्तक में मिलेगा। आजकल स्वप्न दोष का जिस भीषणता से प्रकोप है उसे नष्ट करने में यह पुस्तक अत्यन्त सहायक होगी ऐसी पूर्ण आशा है। इसकी भूमिका कविराज प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य, डायरैक्टर आफ आयुर्वेद, राजस्थान द्वारा लिखी गई है। मूल्य—२) सजिल्द

प्राणाचार्य के तीन अति उपयोगी विशेषाङ्क

वाजीकरणाङ्क

वाजीकरण क्या है? वाजीकरण द्रव्यों को क्यों कब और कैसे कौन-कौन को सेवन कराना चाहिए? वाजीकरण द्रव्यो को सेवन से लाभ हानि वाजीकरण की आवश्यकता तथा इसमें लाभ आदि आवश्यक विषयों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। सैकड़ों वाजीकरण प्रयोगों को भी स्पष्ट तथा निर्माण विधि व सेवन विधि सहित लिखा गया है। ऐसे भी कई प्रयोग हैं जिनके सेवन करने से अशक्त मनुष्य भी शक्तिवान एवं रतियोग्य बन सकता है। निर्बल एव वीर्य विकारों से ग्रस्त मनुष्य को यह अङ्क अत्यन्त उपयोगी होगा। काम शास्त्र में लिखे आज कल के ग्रंथों से यह अति उपयोगी है। मूल्य—४)

स्त्रीरोगाङ्क

यह विशेषाङ्क भी शिशुरोगाङ्क ही के समान उपयोगी है। इसमें भारत के विभिन्न आयुर्वेदीय चिकित्सकों द्वारा स्त्री रोगों का विस्तृत विवरण दिया गया है। स्त्री रोगो के होने का कारण, उनके लक्षण और चिकित्सा सभी स्पष्टतया समझा कर लिखी गई है। नारी जननेन्द्रिय की रचना एवं उनके रोगों पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। गर्भ धारण विधि, गर्भ रक्षा, प्रसव आदि के समय रखी जाने वाली सभी सावधानिया व आवश्यक उपकरण आदि सभी का विवरण है। प्रसव के समय आने वाली कठिनाइयों के सरल उपाय, प्रसवोपरान्त भोजन व्यवस्था, शिशु संरक्षण आदि भी बताया गया है। सैकड़ों अचूक प्रयोगों से युक्त यह विशेषाङ्क स्त्री रोगो का विस्तृत ज्ञान कराने वाला साहित्य है। केवल वैद्यों को ही नहीं अपितु गृहस्थों को भी अति उपयोगी है। मूल्य—४) मात्र

शिशुरोगाङ्क

प्राणाचार्य का यह विशेषाङ्क अपने विषय का एक मात्र है। इसमें भारत के विद्वानों के वैज्ञानिक एव गवेषणात्मक उच्च कोटि के लेख सग्रहीत है। शिशु व्याधियों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है और इस प्रकार यह अङ्क गृहस्थों एवं चिकित्सकों के लिये उपादेय बना दिया गया है। हरेक के संग्रह योग्य है।

इस पर भारत के प्रमुख पत्र "जैन मित्र" का मत निम्न है—

"...... ..... इस विशेषाङ्क में बाल बच्चों के रोग तथा उनके सहज अनुभूत उपाय बताये गये हैं शिशु रोग सम्बन्धी कुल ४७ लेख हैं जो आर्ष ग्रथों से, राज्यों से, विदेशों से तथा व्याधि प्रकरण में लिखे गये हैं, साथ ही अनेक रोग बताने वाले २६ शिशुओं के चित्र भी हैं।

.... सामान्य विवेचन में प्रथम लेख प्राकृत शिशु है। यह तो प्रत्येक स्त्री व पुरुष को पढ़ने योग्य है। ....शिशु रोग इलाज, शिशु रक्षा शिशु स्वस्थ, बलिष्ठ कैसे हो, बिना दवाई के शिशु कैसे अच्छा हो, दवाई करना पड़े तो कौन रोग पर क्या दवा देनी चाहिए यह सब इस शिशुरोगाङ्क में विद्वत्तापूर्वक बताया है। प्रत्येक शिशु रोग की उत्पत्ति कैसे होती है तथा उसका लक्षण क्या है यह भी बताया गया है।

(जैनमित्र वीर सम्वत २४४७ वैसाख सुदी ११)

इस ग्रन्थ की विशेषता उसे पढ़ने पर ही जानी जा सकती है। मूल्य – ४)

–अन्य प्रकाशकों की हमारे यहां से प्राप्त पुस्तकें–

अभिनव बूटीदर्पण सचित्र

स्वर्गीय रूप निघन्टुकार श्री रूपलाल जी वैद्य के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। इसमें चित्रों सहित वनौषधियों का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसके द्वारा गृहस्थ और वैद्य जान सकते हैं कि अमुक रोग में कौन कौन सी वनौषधियां किस प्रकार देने से रोग नष्ट हो सकते हैं। मूल्य—१०)

कौमार भृत्य

(नव्य बाल रोग सहित) लेखक—आयुर्वेदाचार्य रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी ए० एम० एस०। भूमिका लेखक माननीय वैद्य यादव जी विक्रम जी आचार्य बम्बई। प्राचीन और नवीन चिकित्सा पद्धति की तुलनात्मक विवेचन द्वारा बालकों के समस्त रोगों का विस्तृत निदान लक्षण चिकित्सा का वर्णन किया है। पुस्तक आयुर्वेदीय परीक्षा के कोर्स में नियुक्त हैं।

मू०—८)

चक्रदत्त

नवीन वैज्ञानिक भावार्थ सन्दीपनी विस्तृत भाषा-टीका टिप्पणी और परिशिष्ट सहित। इस पुस्तक के टीकाकार महोदय ने चिकित्सकों को उपयोगी पञ्चलक्षण निदान, विशद नाड़ी परीक्षा डाक्टरी मतानुसार मूत्र परीक्षा तथा मल, शब्द स्पर्श, रूप, नेत्र परीक्षा का भी वर्णन किया है। मू०—१०) रुपया

भाव प्रकाश

नवीन वैज्ञानिक विद्योतिनी भाषा टीका और पाश्चात्य मतों की समन्वयात्मक विशद टिप्पणी सहित।

मू०—७॥)

रसेन्द्रसारसंग्रह (सचित्र)

रसचन्द्रिका टीका आजकल की सभी प्रकाशित हिन्दी टीकाओं से सुविस्तृत और सरल होती हैं, उसी टीका सहित और कठिन कठिन स्थलों पर टिप्पणी सहित छापी गई है। मू०—६) गुटिका संस्करण बाल बोधनी और भागीरथी टिप्पणी सहित। मू०—१॥)

सरल व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञानीय

बोर्ड आफ इन्डियन मैडीशन द्वारा स्वीकृत आयुर्वेदीय विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्वीकृत है। पाश्चात्य मत का आयुर्वेदिक मतों का दिग्दर्शन तालिका रूप में दर्शा दिया गया है। मू०—४)

सौश्रुति (सचित्र)

प्राचीन शल्य तन्त्र (सर्जरी) का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। प्राचीन संहिताओं में बिखरी हुई समस्त सामिग्री का विस्तृत वर्णन किया गया है। आधुनिक सर्जरी का समन्वय करने का भी भरसक प्रयत्न किया गया है।

मू०—१०)

सुश्रुत संहिता-शरीर स्थान

सर्वत्र प्रभा व्याख्या से सूत्रों के वास्तविक अर्थों को दर्पण टीका से विशेष २ अर्थों को विस्तृत रूप से दर्शाया गया है। मू०—३)

शार्ङ्गधर संहिता

सुबोधिनी और लक्ष्मी नामक दोनों टीकाओं के होने से तथा प्रत्येक रोग के निदान लक्षण आदि आवश्यकीय चिकित्सोपयोगी विषयों सहित अति उपयोगी है। मू०--६)

सूचीवेध विज्ञान

आयुर्वेद में सूचिका भरण आदि कुछ ऐसे प्रयोगों का वर्णन है किन्तु आजकल आयुर्वेद में एलोपैथी की तरह इन्जैक्शनों का प्रचार देख यह पुस्तक लिखी गई है। मू०—१॥)

वैद्यक परिभाषा प्रदीप

प्रदीपिका नामक भाषा टीका सहित। विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है। मू०—१॥)

वैद्य जीवन

सुधा नामक विस्तृत सरल भाषा टीका सहित। टीकाकार महोदय ने स्थान २ पर टिप्पणी और रोगों के लक्षण लिख विशेष उपयोगी बनादी है। मू०--१।)

सिद्धयोग संग्रह

(राष्ट्रीय चिकित्सा) इसमें शतशोऽनुभूत सिद्ध प्रयोगों के गुण अनुपान और निर्माण विधि का पूरा वर्णन दिया है तथा डाक्टरी और यूनानी के भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्रयोग का भी वर्णन है। मू०—१॥)

रसार्णव-रसतन्त्रम्

प्राचीन रस शास्त्र का संस्कृत भाषा का ग्रन्थ है। इसमें रस प्रक्रिया का आवश्यक ज्ञान भरा हुआ है। कीमियां सम्बन्धी वर्णन खूब किया गया है। पारद के बन्धन प्रयोग भी विशेषता से हैं। सत्व पातन पारद का वर्णन भी उत्तम है। मू०—२)

चरक संहिता

श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार कृत सरल सुविस्तृत तथा विवेचनात्मक हिन्दी अनुवाद सहित चरक जैसे कठिन ग्रन्थ को सरल भाषा में समझाने में टीकाकार ने कमाल किया है। चौथा संस्करण ही इसकी उपयोगिता का प्रमाण है। दो जिल्दों में सम्पूर्ण पुस्तक का मू०--३२)

चरक संहिता

चक्रपाणि कृत आयुर्वेद दीपिका तथा उज्जट कृत निरन्तर पद संस्कृत की दो टीकाओं सहित श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री द्वारा संशोधित और टिप्पणी सहित। दो जिल्दों में सम्पूर्ण। मू०—१८)

भैषज्य रत्नावली

लाहौर के सुप्रसिद्ध कविराज नरेन्द्र नाथ जी मिश्र द्वारा संशोधित तथा आयुर्वेदाचार्य श्री जयदेव जी विद्यालङ्कार कृत सुविस्तृत सरल तथा विवेचनात्मक भाषा टीका सहित। मू०—६)

भावप्रकाश निघन्टु

श्री पं० विश्वनाथ जी द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य प्रिन्सीपल ललित हरि आयुर्वेद कालेज पीलीभीत कृत ललितार्थकरी अत्यन्त सरल तथा विस्तृत हिन्दी टीका सहित विद्यार्थियों के लिए परीक्षा में जिन २ बातों की आवश्यकता होती है उनका विशेष ध्यान टीका में रक्खा गया है। इन्डियन मैडीशन बोर्ड ने जो आलुबुखारा, हमल ओलिब आइल आदि अन्य चीजें भी परीक्षा में निर्धारित की हैं उन सबका वर्णन है। मूल्य—७)

रसतरङ्गिणी

लाहौर के सुप्रसिद्ध कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मिश्र

तथा प्राणाचार्य श्री पं० सदानन्द जी शास्त्री विरचित तथा पं० हरिदत्त जी आयुर्वेदाचार्य विरचित संस्कृत व्याख्या और पं० धर्मानन्द जी कृत सरल सुविस्तृत हिन्दी टीका सहित। मू०—१०)

एलोपैथिक गाइड

एलोपैथी (डाक्टरी) सिद्धान्तानुसार शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों का वर्णन, उनका कार्य, शरीर की सूक्ष्म रचना, दन्तोद्गम, टीका लगाना, रक्त सञ्चार, नाड़ी परीक्षा, रक्तभार, लसीका, हमारा भोजन, खाद्य पदार्थ आदि पाखाना, मूत्र परीक्षा अनेक रोगों की चिकित्सा इन्जेक्शन सम्बन्धी वर्णन, वैक्सीन थैरेपी, सीरम चिकित्सा अनुभूत प्रयोग, पेटेण्ट औषधियों का वर्णन आदि अनेक विषय दिये गये हैं। मूल्य—८)

गङ्गयति निदान

जैन यति श्री गङ्गाराम जी विरचित भाषा भाष्य आयुर्वेदाचार्य पं० श्री नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री विरचित। इस पुस्तक में निदान के जटिल विषयों को सरलता से समझाने का प्रयत्न किया गया है। पाश्चात्य मत का भी विवेचन तथा नवीन रोगों का भी वर्णन किया गया है। मूल्य— ६)

यूनानी चिकित्सा सागर

हकीम श्री मन्साराम जी शुक्ल वाइस प्रिन्सिपल तिब्बिया कालेज देहली ने हिन्दी में यूनानी पद्धति के अनुसार हकीमों के बड़े कीमती नुस्खे दिये हैं जो आजतक प्रगट नहीं किये गये हैं जिन्हें प्राप्त करने को हजारों रुपये तक खर्च करने को तैयार थे। मूल्य १०)

रसतन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह

इस ग्रंथ में कूपीपक्व, रसायन, पर्पटी, गुटिका, रस, चूर्ण, क्काथ, आसव, अरिष्ट पाक, अवलेह, घृत, तैल, मञ्जन, लेप, मरहम आदि सबके ही प्रयोग दिये गये हैं। प्रयोग सब ही अनुभूत परीक्षित हैं। औषधि बनाने की और उसके गुण धर्म की विवेचना की गई है। प्रथम भाग मूल्य—१॥) द्वितीय भाग—६)

चिकित्सा तत्वप्रदीप प्रथम भाग

इस ग्रन्थ में ५ प्रकरण हैं। निदान पञ्चम और चिकित्सा सम्बन्धी महत्व पूर्ण विचार, पञ्च कर्म चिकित्सा सम्बन्धी अनेक बातें, रोगों के निदान चिकित्सा का वर्णन आयुर्वेदीय और एलोपैथी सिद्धान्तानुसार किया गया है। मूल्य—प्रथम खण्ड अजिल्द ८)

रुग्ण परिचर्या

डाक्टर कु० श्रीम्हसकर द्वारा लिखित यह पुस्तक परिचारक और परिचारकाओं को परिचर्या की शिक्षा देने के लिये लिखी गई है। रोगियों की सेवा और देख रेख किस प्रकार करनी चाहिए? आधुनिक रोगों में तत्कालिक चिकित्सा किस प्रकार करनी चाहिए। मल मूत्र परीक्षा, पट्टी आदि बाधने की विधि आदि अनेक विषय दिये गये हैं। ५०० पृष्ट की पुस्तक का मूल्य ३॥)

नेत्र रोग विज्ञान

नेत्र रोग विशेषज्ञ स्वर्गीय डाक्टर यादव जी हंस-राज द्वारा लिखित, नेत्र रोग सम्बन्धी समस्त विषयों का एलोपैथी मत से विस्तार पूर्वक वर्णन है। पुस्तक में प्राय. २५० चित्र और १००० पृष्ठ हैं। मूल्य—१५)

गांवों में औषधि रत्न

गांवों की सुलभ औषधियों का वैज्ञानिक वर्णन और उनके द्वारा रोग नष्ट करने की विधि और अनु-भूत प्रयोग दिये हैं। मूल्य—२)

औषधि, गुण धर्म विवेचन

इस ग्रन्थ में औषधि गुण धर्म विवेचन चरक आदि आर्ष ग्रथों के अनुकूल है आर्ष सिद्धान्तों को अक्षुण्ण और प्रधान रखते हुए एलोपैथी मतानुसार भी वर्णन किया गया है कौन औषधि का शरीर के कौनसे अङ्ग पर क्या प्रभाव पड़ता है यह अन्य ग्रन्थ में मिलना कठिन है। मूल्य—३)

रसायन सार

स्वर्गीय रसायन शास्त्री पं० श्यामसुन्दराचार्य वैश्य द्वारा लिखित। इसमें पारद संस्कार, पारद बुभुक्षाविधि, चन्द्रोदय आदि रसायनों को बनाने की नवीन विधि धातु उपधातुओं का शोधन मारण आदि रस शास्त्र सम्बन्धी अनेक विषय परीक्षा कर करके लिखे गये हैं। यह चतुर्थ संस्करण है। मूल्य—८)

भोजन विधि

पथ्यापथ्य का सुन्दर वर्णन है। कौन रोग में कौन-कौन पदार्थ किस विधि से खाने चाहिए वह इस पुस्तक में दिखाया गया है। मूल्य—२)

अनुभूत योग चिन्तामणि

५ वर्ष के परिश्रम और ५४२४ रुपये व्यय करने और नई-नई यात्रा तथा सन्यासियों की कठिन सेवा कर प्राप्त किये हुए अलभ्य प्रयोग निष्कपट भाव से लिखे गये हैं जिनकी वैद्य डाक्टरों ने परीक्षा कर शत प्रतिशत लाभदायक होने के प्रमाण पत्र दिये हैं तथा आल इण्डिया आयुर्वेदिक एण्ड तिब्बी कान्फ्रेन्स ने स्वर्ण पदक और प्रमाण पत्र दिया है। मिनटों में ज्वर दूर करना नस्य देकर सर्प विष दूर करना ५ दिन में सुजाक समूल नष्ट करने वाले प्रयोग आदि इसी प्रकार के अव्यर्थ प्रयोग हैं।

मूल्य—प्रथम भाग ४) द्वितीय भाग ४)

अनुभूत योग प्रकाश

१५ वर्ष पहले जिसका विज्ञापन किया था वह अब १५ वर्ष के परिश्रम और हजारों रुपये व्यय करने पर प्रकाशित हुई है। इसमें वही प्रयोग प्रकाशित किये हैं जो अबतक प्रकाशित नहीं हुए हैं। आपने मोती, सीप, प्रवाल, शंख, कौड़ी की भस्में सुनी और की होंगी पर इसमें उनके तैल बनाने की विधि लिखी है जो भस्मों से बहुत ही अधिक लाभप्रद होते हैं। विशेष बात यह है कि इन तैलों से अग्नि पर उड़ने वाले पदार्थ जैसे पारद, हिंगुल आदि सब अग्नि स्थाई हो जाते हैं। अनेक रोगों के ऐसे प्रयोग लिखे गये हैं जिनसे भयङ्कर रोगियों को रोग मुक्त कर हजारों रुपये और यश पैदा कर सकते हैं। मू०—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दोनों का ६।)

यौवन के गुप्त रहस्य

लुटी हुई जवानी और बीता हुआ यौवन वापिस लाने के शर्तिया उपाय। नपुंसकता शीघ्र पतन, स्वप्न प्रमेह, धातुक्षीणता नाशक अव्यर्थ प्रयोग। रस ग्रन्थियों से आश्चर्य जनक औषधियों के प्रयोग आदि विषयों से पूर्ण है। मूल्य—३)

सन्यासियों की जड़ी बूटियां

इस पुस्तक में सैकड़ों ऐसी जड़ी बूटियों के गुप्त रहस्य प्रकट किये गये हैं जिनकी बदौलत सन्यासियों की धाक जमी हुई है। मूल्य—२॥)

एकौषधि गुण विधान

एक ही औषधि से रोग नष्ट करने की विधि। परीक्षित प्रयोग। पैसों में तैयार और सैकड़ों रुपये के प्रयोगों के समान लाभप्रद प्रयोग इसमें ही मिलेंगे।

मू०—१॥।=)

पेटेन्ट औषधियां और भारतवर्ष

भारतवर्ष, इंगलैंड, अमरीका की प्रसिद्ध २ पेटेन्ट औषधियों के नुसखे जो ५११ के करीब हैं इस पुस्तक में दिये गये हैं, जिनको बनाकर यशधन उपार्जित किया जा सकता है। दोनों भाग मू०—३)

शल्यतन्त्र

प्राच्य और पाश्चात्य दोनों दो भागों में छापे गये हैं। डाक्टरों से वैद्य सिर्फ चीड़ फाड़ में हारते हैं परन्तु इन दोनों को पढ़ने और मनन करने एवं व्यवहार में लाने से डाक्टरों का मुकाबिला कर सकते हैं। मू०—प्राच्यशल्यतन्त्र ४) पाश्चात्य शल्यतन्त्र २॥)। दोनों एक साथ लेने से ५) में ही मिलेंगे।

लहसन और प्याज

इसे पढ़कर आप तपेदिक, काली खांसी निमोनियां जैसे नामुराद रोगों, पेट और दूसरे रोगों का केवल लहसन से सफलता पूर्वक इलाज कर सकेंगे। दूसरा संस्करण। मू०—१॥)

तुलसी

हर भारतीय घर में पाये जाने वाले तुलसी के पौदे से छोटे मोटे सैकड़ों रोगों का इलाज करने की विधियां इस पुस्तक में पढ़ें। क्षय एवं असाध्य रोगों को दूर करने के गुप्त रहस्य देखें। मू०—२)

शहद

दैनिक भोजन में और विविध रोगों में शहद को प्रयोग करने के विस्तृत तरीके, असली व नकली की पहिचान, आदि के लिये इसे मंगाकर पढ़ें। सभी के काम की पुस्तक है। मू० —३)

तपैदिक

यह रोग प्रायः असाध्य समझा जाता है। जीवनी शक्ति बढ़ाने और शरीर का जहर निकाल देने से स्वास्थ्य लाभ होता था। प्राचीन काल में इसी विधि से इस रोग की चिकित्सा होती थी। आज भी योरोप के कई प्रदेशों में उसी विधि से चिकित्सा होती है। इस विधि का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक में दिया है।

मू०—४)

आंख का अचूक इलाज

इस पुस्तक में आंख से सम्बन्धी रखने वाली सभी बातों का वर्णन सरल भाषा में किया गया है। चश्मा छोड़ने की सरल तरकीबें बताई हैं। आंख की कठिन से कठिन बीमारियों के लिए भी इसमें उचित सुगम चिकित्सा वर्णन है। मू०—२)

हमारा भोजन

भोजन से रोग दूर होते हैं, गया हुआ स्वास्थ्य लौट आता है, रोग निवारक शक्ति बढ़ती है, स्वास्थ्य स्थिर एवं दृढ़ रहता है। भोजन ही जीवन और भोजन ही मृत्यु है। जीवन दायक भोजन क्या है, कैसे किया जाय, रोग निवारक शक्ति कैसे बढ़े आदि सभी प्रश्नों के उत्तर इस पुस्तक में पढ़िये। मू०—४)

दुग्ध चिकित्सा

दूध में क्या २ गुण हैं, दूध और इसके बने पदार्थों का शरीर पर क्या असर पड़ता है, इसमें जीवन दायक तत्व क्या है, किन किन रोगों की रामबाण दवा है, आदि सभी बातों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। दूध के गुणावगुण पर इससे अधिक प्रकाश डालने वाली पुस्तक हिन्दी में नहीं है। मू०—४)

दुग्ध कल्प व दुग्ध चिकित्सा

इस में दूध के महान गुणों का, उसकी अद्भुत रोग नाशक जीवनदायक शक्ति का पूरा हाल दिया गया है। दूध की सेवन विधि, मात्रा, विस्तृत विधियाँ लिखी हैं। हिन्दी संसार में दुग्ध कल्प व दुग्ध चिकित्सा पर आज तक ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई है।

मूल्य—२।)

शिरो रोग विज्ञान

मनुष्य शरीर में सिर जैसा महत्वपूर्ण और प्रधान अङ्ग है, उसी प्रकार उसकी बनावट और क्रिया कलाप भी विचित्र हैं। इस पुस्तक में बाह्य शिरो रोग, वात संस्थान और मस्तिष्क सम्बन्धी रोग तथा ब्लड प्रैसर आदि समस्त शिरो वेदना के रोगों का वर्णन है।

मूल्त—३)

मुख रोग विज्ञान

ऊर्ध्वांग चिकित्सा के अन्तर्गत मुख रोग पर यह सर्वोत्तम पुस्तक है। इसमें मुख, ओष्ठ, जिह्वा, दन्त आदि की बनावट उनके रोग निदान और चिकित्सा लिखी गई है। मूल्य —२)

कर्ण रोग विज्ञान

कानों की बाहरी भीतरी बनावट; उसके रोगों का विवरण निदान और चिकित्सा लिखी गई है। आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित २५-२७ रोगों के अतिरिक्त सब मिला कर ८० रोगों का वर्णन है। मू०—२)

नासा रोग विज्ञान

नाक की भीतरी बाहरी बनावट व १०० से अधिक रोग जैसे खाँसी, कुकर खाँसी, श्वास, क्षय, शोथ, नासा भेद, नासूर, ब्रोंकाइटिस आदि सभी रोगों पर विस्तृत प्रकाश डाला है। मू०—२)

जर्राही प्रकाश

प्राचीन काल में भारतवर्ष में चीरफाड़ की चिकित्सा सुगमता से होती थी। "जर्राह" सभी प्रकार की चिकित्सा करते थे। इस पुस्तक में विभिन्न जख्मों की चीर फाड़ की तरकीब यन्त्रों का बिवरण आदि सभी कुछ दिया है। मू०—३॥) सजिल्द

पशु चिकित्सा

भारत वर्ष कृषि प्रधान देश है यहाँ की मुख्य सम्पति गौ धन है। इस पुस्तक मे पशुओं के सभी रोग और उनकी चिकित्सा दी है। मू०—३॥) सजिल्द

अमृत सागर

इस पुस्तक मे मनुष्य के पैर से लेकर चोटी तक होने वाले समस्त रोगों का वर्णन एव उनका विस्तृत उपचार दिया है। प्रत्येक घर में रखने योग्य पुस्तक है। मू०—८) सजिल्द।

बूटी प्रचार

इस पुस्तक में हर प्रकार की जड़ी बूटियों की पहिचान चित्रों के द्वारा बता दी है। इनसे कौन २ सी दवायें तैयार की जा सकती हैं व उनका किन २ रोगो पर प्रयोग किया जाता है इन सभी बातों का वर्णन विस्तृत रूप में किया है। मू०—२॥) सजिल्द।

रसराज महोदधि

आयुर्वेद का रस शास्त्र पर अपने विषय का एक ही ग्रन्थ है। सभी प्रकार के रसों के निर्माण की विधि विस्तार पूर्वक लिखी है। मूल्य—पांचों भाग—१०)

मिक्श्चर

इस पुस्तक में एलोपैथिक दवाओं के मिक्श्चर बनाने की विधि हिन्दी भाषा में लिखी गई है। पुस्तक में दिन रात काम में आने वाले सभी प्रकार के एलोपैथिक प्रयोगों का सविस्तार वर्णन है। मूल्य—२।)

मैडीकल प्रैक्टीशनर

इसमें शारीरिक शास्त्र, न्याय वैदिक, आर्य औषधों की विविध कृतिया, ब्रिटिश फार्मोकोपिया की विविध औषधियों की बनावटें एव अनेक चित्रों द्वारा रोग का निदान बतलाया है। रोगों की आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक रीति से चिकित्सा विधि भी दी है। सचित्र प्रसूतिशास्त्र, इंजैक्शन थेरेपी, अनुभूत पेटेन्ट औषधियों की विविध बनावटें, शस्त्रक्रिया का ज्ञान भी चित्रों सहित दिया है। पृष्ट संख्या लगभग ४५० चित्र संख्या १५० है। मूल्य—५) सजिल्द।

सचित्र रसेन्द्रसार संग्रह

संस्कृत टीका हिन्दी भाषा।

टीका—नवीन प्रणाली की अपूर्व १४० विशेषतायुक्त

ले०—साहित्याचार्य वैद्य धनानन्द पन्त विद्यार्णव, आयुर्वेद बृहस्पति। नि० भा० आ० विद्यापीठ, यू० पी० मैडीसन बोर्ड में नियत। आद्यन्त में खनिज परीक्षा रसोत्पत्ति पर अन्वेषण पूर्वक निबन्ध। १०६ ग्रन्थों से उद्धरण, कुल गुरु परम्परा, ७० वर्ष की अवस्था का अनुभव होने से टीका मूल ग्रन्थ ही बन गई है। धातुओं की वैज्ञानिक परीक्षा, सन्दिग्ध द्रव्यों पर निघण्टु व

व्याकरणादि से सप्रमाण निर्णय दिया गया है। विद्वज्जन इस पर अवश्य दृष्टि डालें। पृष्ठ ११५० मू०—११)

प्रति संस्कृत निदान चिकित्सा

चरक के साथ विद्यापीठाचार्य में नियत। इसमें हाईब्लडप्रेसर, उन्माद, अनिद्रा, श्वास, की दिव्यौषधि सोम व सर्पगन्धा का वर्णन, रक्तविक्षेप, प्लूरिसी आदि १४ रोगों पर नवीन प्राचीन रीति से निबन्ध हैं।

मूल्य—पृष्ट २०० २)

आयुर्वेद प्रकाश

भारतीय रस शास्त्र के ज्ञाता उपाध्याय माधव द्वारा रचित 'आयुर्वेद प्रकाश' अथवा 'रस माधव' एक अद्वितीय एवं अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ है। यह रस शास्त्र का एक अद्वितीय ग्रन्थ है। इसकी टीका संस्कृत एवं हिन्दी में ललित हरि आयु० कालेज पीलीभीत के भू० पू० उप प्रधानाध्यापक एवं लखनऊ मैडीकल कालेज के रसायन शास्त्र के अध्यापक पं० सोमदेव शास्त्री साहित्यायुर्वेदाचार्य द्वारा की गई है।

यह नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। पारद के १८ संस्कारों की विस्तृत विधि, पारद शुद्धि की विधि, स्वर्ण चांदी बनाने की विधि, आदि सभी रस शास्त्र विषयक बातें लिखी हैं।

मू०—५) विद्यार्थियों को ४) मात्र

आयुर्वेद प्रश्नोत्तरी

इस प्रश्नोत्तरावली की सहायता से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ की भिषक, विशारद और आयुर्वेदाचार्य, जयपुर की शास्त्री, आचार्य आदि परीक्षाओं को सरलता से उत्तीर्ण किया जा सकता है।

मूल्य—प्रथम भाग २) द्वितीय भाग २) मात्र

शङ्कर निघन्टु

इसमें औषधियों के नाम, गुण, अवगुण आदि स्पष्ट तया लिखे हैं। अकारादि क्रम से सभी नाम दिये गये हैं। भारतवर्ष में प्रचलित सभी भाषाओं के नाम इसमें दिये हैं। मूल्य—७)

रोग विज्ञान

इसमें संस्कृत भाषा में विभिन्न रोगों का निदान एवं चिकित्सा क्रम स्पष्टतया वर्णित है। स्थान २ पर चित्रों द्वारा स्पष्टीकरण भी किया है। मू०—२॥)

वृ० आसवारिष्ट संग्रह पूर्वार्ध

श्री पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य द्वारा लिखित यह ग्रंथ अपने विषय का एक ही ग्रंथ है। इस पुस्तक में आसवों के बनाने की विधि दी है। सभी आसवों के निर्माण की विधि उनके निर्माण में आने वाली कठिनाइयां, उनके उपयोग, लाभ एवं हानियां विस्तृत रूप से दी गई हैं। हर एक वैद्य के लिए उपयोगी वस्तु है। मू०—अजिल्द १॥)

राजयक्ष्मा विज्ञान

श्री पं० पारसनाथ पाण्डेय द्वारा लिखित यक्ष्मा (तपैदिक) रोग की पूर्व कथा, इतिहास, कारण, लक्षण बचने के उपाय, चिन्ह, चिकित्सा आदि सभी विस्तृत रूप से लिखे हैं। मू०—२) मात्र

रसेन्द्र सार संग्रह

(सचित्र)

नवीन वैज्ञानिक गूढ़ार्थ संदीपिका संस्कृत व्याख्या सहित। ५)

रसरत्न समुच्चय

नवीन सुरलोज्ज्वला विस्तृत भाषा टीका परिशिष्ट सहित। मूल्य—१५)

मर्म विज्ञान सचित्र

श्री रामरक्ष पाठक आयुर्वेदाचार्य द्वारा लिखित यह ग्रन्थ पवित्र विज्ञान पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र को पद्दलित करने वालों के लिये एक खुली चिनौती है। आयुर्वेद

का शरीर शास्त्र कितना विषद है यह इस पुस्तक के पढ़ने से जाना जा सकता है। आयुर्वेद संहिताओं के १०७ मर्मों के स्वरूप, रचना तथा अभिघात जन्य परिणामों एवं प्रतिकार का वैज्ञानिक वर्णन विस्तृत व्याख्या सहित दिया है। मूल्य—३॥)

चरक संहिता-(गुटिका)

आयुर्वेदाचार्य श्री तारादत्त पन्त कृत भागीरथी वृहद टिप्पणी सहित। मू०—७)

अष्टाङ्ग हृदय (गुटिका)

आयुर्वेदाचार्य तारादत्त पन्त कृत भागीरथी वृहद् टिप्पणी सहित उत्तम पुस्तक है। मू०—५)

अष्टाङ्ग हृदय

विद्योतिनी भाषा टीका वक्तव्य परिशिष्ट सहित चिकित्सा के लिये उपलब्ध संग्रह ग्रन्थों में सर्वोत्तम आयुर्वेद के आठों अङ्गों का सारभूत यह ग्रन्थ है कार्य चिकित्सा के लिये परम साथी है। अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक है। पक्की जिल्द युक्त पुस्तक का मूल्य—१६)

प्रारम्भिक उद्भिद (वनस्पति) शास्त्र

यह पुस्तक काशी विश्व विद्यालय, इण्डियन मेडीशन बोर्ड आदि सभी आयुर्वेद परीक्षाओं में निहित है। मूल्य—४॥)

भाव प्रकाश

नवीन वैज्ञानिक विद्योतिनी भाषा टीका सहित शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक परिशिष्ट, निघण्टु भाव पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा प्रकरण पर प्रत्येक रोगों पर प्राच्य पाश्चात्य मतों की समन्वयात्मक विषद टिप्पणी सहित। द्वितीय संस्करण। पूर्वार्द्ध—१२) मध्योत्तर खण्ड—२०) सम्पूर्ण—३०)

भाव प्रकाश-ज्वराधिकार

नवीन वैज्ञानिक विद्योतिनी भाषा टीका परिशिष्ट सहित। आवश्यक टिप्पणियों सहित। द्वितीय संस्करण। मूल्य—४)

योग रत्नाकर

मूल गुटिका रूप में प्रत्येक श्लोकों को पृथक २ पन्ति में नवीन २ अवतरणों के साथ सभी संस्करण से उत्तम शुद्ध तथा सस्ता संस्करण है। मू०—७)

रस रत्न समुचय गुटिका

सुन्दर टिप्पणी नवीन २ अवतरणों से युक्त प्रत्येक श्लोकों की पृथक २ पन्ति, श्रेष्ठ सस्ता संस्करण है। मूल्य—२॥)

राजकीय औषधि योग संग्रह

इस पुस्तक में आसवारिष्ट, तैल, घृत, चूर्ण, पाक खरलीय रसायन, कूपीपक्व रसायन आदि का योग, निर्माण विधि, मात्रा, निर्माण की कठिनाइयां, अनुपान आदि सभी विस्तृत रूप से समझाया है। मू०—७)

सरल विष विज्ञान

इसमें मुख्य विषैली औषधियों का प्रतिकार सहित वर्णन है। मू०—१॥)

नव परिभाषा

आधुनिक काल में प्राच्य पाश्चात्य मानादि विषयक ज्ञान प्राप्त कराने को इसका निर्माण किया है। मू०—१॥)

सुश्रुत संहिता-शरीर स्थान

'आयुर्वेद रहस्य दीपका' हिन्दी टीका सहित टीकाकार—डा० भास्कर गोविन्द घाणेकर संसार भर में प्रथम बार में ही यह टीका हुई है। इसके आगे अन्य कोई भी टीका उपलब्ध नहीं है। सभी आवश्यक बातें इसमें आ गई हैं। मू०—८)

निरोग नारी

इस पुस्तक में स्त्रियों को होने वाले सभी रोगों का निदान, लक्षण और चिकित्सा बड़ी सरल भाषा में

लिखी गई है। स्त्रियाँ इस पुस्तक की सहायता से अपनी चिकित्सा स्वयं कर सकती हैं। इससे लिखे गये प्रयोग लेखक के स्वानभूत है। मू०—२)

बृ० पाक संग्रह

इसमें विभिन्न प्रकार के सैकड़ों प्रयोगों की निर्माण विधि, गुणावगुण एव मात्रा आदि दी है। मू०—४)

विष विज्ञान

इस पुस्तक के विषय में अधिक लिखना भी सूर्य को दीपक दिखाना है। विष, उपविष, गैसादि सबका ही विशाल वर्णन दे डाला है। कोई अश इससे प्रथक नहीं। पुस्तक प्रत्येक वैद्य व विद्यार्थी के लिये अतीव उपयोगी है। कैसे विष सेवन आदि से करने वाले को तत्काल ठीक किया जा सकता है इसमें देखिये।

मूल्य —४) मात्र

दैनिक प्रयोगावली (प्रथम भाग)

चिकित्सक बन्धुओं के लिए अतीव उपयोगी है। दैनिक प्रयोग में आने वाले चूर्ण, अवलेह, तैल, आसव आदि के सुन्दर प्रयोग दिये हैं। पुस्तक हाथों हाथ बिक रही है। मूल्य—३॥) मात्र

बृहदासवारिष्ट संग्रह (उत्तरार्द्ध)

भारत के सफल व प्रसिद्ध प्राप्त चिकित्सकों द्वारा आयुर्वेद प्रेमियों के लिये समर्पित व सरल आसवारिष्टों के प्रयोग इस पुस्तक में सग्रहीत है। आसवारिष्ट प्रेमियों के लिये पुस्तक उपादेय है। आसवारिष्ट निर्माण विधि, गुणावगुण, मात्रादि सभी दी हैं।

मूल्य—२॥।)

वनौषधि चन्द्रोदय

(दस भागों में)

यह पुस्तक दस भागों में है। पुस्तक अपने विषय की एक ही है। इसमें लगभग सभी भाषाओं से वनस्पति का नाम, उसका प्राप्ति स्थान, गुण धर्म, ग्राही भाग, रसायनिक विश्लेषण, पाश्चात्य मत से गुणावगुण आदि सभी दिया गया है। इसके होते हुए किसी अन्य पुस्तक को लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। दसों भागों का एक साथ लेने पर ४०) में मिलेंगे। ५) एडवांस आर्डर के साथ भेजें। कुल रुपये अग्रिम भेजने पर ३५) में दिया जायगा।

स्वरोदय प्रदीप

इसका मुख्य विषय नाक के नथनों में प्राणसंचार का ज्ञान है। इसके अनुसार चलकर स्वर साधक क्षण में भविष्य में होने वाली घटना, हारजीत, शुभ अशुभ का निर्णय कर सकता है। पुस्तक योग शास्त्र का एक अङ्ग है। प्रत्येक वैद्य के लिये उपयोगी है। मूल्य—२॥)

- गूलर गुण प्रकाश—मूल्य–१।)
- नाड़ी विज्ञानम्—मूल्य–।-)
- नाड़ी परीक्षा—मूल्य–।-)
- क्वाथ मणिमाला—मूल्य–१॥)
- काक चण्डीश्वर कल्प तन्त्रम्—मूल्य–॥।=)
- आयुर्वेदीय परिभाषा—मूल्य–१।)
- आयुर्वेद विज्ञानम्—मूल्य–१॥)
- अनुपान विधि—मूल्य–॥)
- अनुभूत योग (दो भाग)—मूल्य–दोनों भाग २)
- सिद्ध मृत्युञ्जय योग—मूल्य–१)
- आहार सूत्रावली—मूल्य–॥)
- नीम के उपयोग—मूल्य–१)
- मधु के उपयोग—मूल्य–१)
- ग्राम्य चिकित्सा—मूल्य–॥=)
- टोटका विज्ञान—मूल्य–।=)
- देहातियों की तन्दुरुस्ती—मूल्य–॥।)
- प्रारम्भिक स्वास्थ्य—मूल्य–।=)
- आरोग्य लेखाञ्जली—मूल्य–१)
- मोटापा कम करने के उपाय—मू०–१)
- मठा या छाछ के उपयोग—मू०–१)

दुग्ध गुण विधान—मू०-१)
घृत गुण विधान—मू०-॥)
अरिष्टक (रीठा) गुण विधान—मू०-॥)
फिटकरी गुण विधान—मू०-१॥)
पलाण्डु चिकित्सा—मू०-॥)
अर्क आक गुण विधान—मू०-१-)
पीपल गुण विधान—मू०-॥)
बबूल (कीकर) गुण विधान—मू०-॥)
सन्तरा गुण विधान—।=)
नीम गुण विधान—॥|≡)
स्वर्ण क्षीरी गुण विधान—॥|)
इन्द्रायन गुण विधान—॥≡)
शर्बत विज्ञान—१)
लवण गुण विधान—।)
सुगन्धित व्यापार—१)
रस रत्नाकर—१)
हल्दी—१)
नमक—॥=)
फिटकिरी—।=)
बबूल—।=)
राज यक्ष्मा—।=)
यकृत प्लीहा के रोग—।=)
मधु मेह—॥)
स्नान चिकित्सा—॥)
प्लीहा रोग चिकित्सा—।)
श्वास रोग चिकित्सा—।)
अर्श रोग चिकित्सा—॥)
स्त्री रोग चिकित्सा—१)
व्रणोपचार पद्धति—।=)
सिद्धौषधि प्रकाश—१॥)
वैद्यक शब्द कोष—।)
हरिधारित ग्रथ रत्न—।=)
भारतीय रसायन शास्त्र—॥)
औषधि विज्ञान दो भाग—१॥)
औषधि गुण धर्म विवेचन—प्रथम भाग ॥) द्वितीय ॥|)

चिकित्सक व्यवहार विज्ञान—मू०—।)
सफाउल अमराज—मूल्य—प्रथम भाग १) और द्वितीत भाग—१॥)
दीर्घ जीवन—मूल्य—॥)
लहसन और प्याज—मूल्य—१॥)
सौंठ—मूल्य—१॥)
देहाती इलाज—मूल्य—१)
स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियाँ—मूल्य—१॥)
मठा उसके गुण तथा प्रयोग—मूल्य—॥=)
जुकाम—मूल्य—१॥)
शहद के गुण और उपयोग—मूल्य—॥)
भिन्न भिन्न रोगों का इलाज—मूल्य—१)
जल चिकित्सा—मूल्य—१)
प्राकृतिक चिकित्सा पथ प्रदर्शक—मूल्य—।=)
मलेरिया मोतीझरा निमोनियां का इलाज—मूल्य—१)
बुखार का अचूक इलाज—मूल्य—।≡)
प्राकृतिक चिकित्सा सूर्योदय—मूल्य—१।)
बच्चों के रोगों का इलाज—मूल्य—॥|)
आपरेशन या चीड़ फाड़—मूल्य—॥-)
कब्ज का इलाज—१)
प्राकृतिक चिकित्सा सागर—मूल्य—१=)
धूप, हवा और सर्दी से इलाज—मू०—केवल १=)
नवीन चिकित्सा पद्धति—मू०—१।)
नैसर्गिक आरोग्य—मू०—१॥)
निघन्टु शिरोमणि—मू०—१।)
बुढ़ापा रोकने के उपाय—मू०—१)
चिकित्सकों के कर्त्तव्य—मू०—१॥)
नारी ज्ञान तरंगिणी—मू०—१॥)
सर्प विष विज्ञान—मू०—१।)
चिकित्सक हस्त पुस्तिका या अनुपान—मू०—१)
अनुभूत चिकित्सा—मू०—१)
दवा श्वास कफ खाँसी का इलाज—मू०-॥)
दवा का भूत—मू०-।=)
तम्बाखू जहर है—मू०-।=)
स्वाभाविक भोजन—मू०-॥)

उपवास और फलाहार—मू०–।।।)
कपड़े और तन्दुरुस्ती—मू०–॥–)
दूध से सब रोगों का इलाज—मू०–।।।)
प्राकृतिक स्त्री रोग चिकित्सा—मू०–॥)
मूत्र परीक्षा–मू०-१)
प्राणिज औषधि—मू०-=)
वेदना विहीन प्रसव–मू०–।।।)
घरेलू इलाज–मू०–॥)
एनीमा और कैथेटर–मू०–।=)
थर्मामीटर–मू०–।)
सुगन्धित तैल–मू०–।।।)
नपुंसक सजीवनी–मू०–॥)
पुरुषों के गुप्त रोग और उनका इलाज–मू०–।।।)
निघन्टु सार सग्रह–१॥)
फजल रक्षा विज्ञान–१)
भावप्रकाश--श्रीमद् भाव मिश्र कृत –ग्रन्थ कर्त्ता -रचित विषम स्थल टीका सहित–पूर्वार्द्ध–३) मध्यमोत्तर खण्ड ७) सम्पूर्ण १०)
भावप्रकाश निघन्टु–विस्तृत वर्णन सहित–३)
भावप्रकाश निघन्टु–मूलमात्र–१॥)
रसायन खण्ड (रसरत्नाकर का चतुर्थ खण्ड) ॥)
रसाध्याय (संस्कृत टीका सहित) ॥=)
मदन पाल निघन्टु--१)
माधव निदान–सुधालहरी संस्कृत टीका सहित–१॥)
माधव निदान–हिन्दी भाषा टीका सहित–४)
नोट--इन पुस्तकों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों पुस्तकें स्टाक में है। आप अपनी आवश्यकता लिखें। लेखक और प्रकाशक का नाम लिखने पर कोई भी पुस्तक लागत मात्र पर मगाई जा सकती है।

आयुर्वैदिक इन्जैक्शन

वर्तमान समय इन्जैक्शन का व्यवहार अधिक होने लगा है क्योंकि यह तत्काल लाभप्रद होने केसाथ२ वैद्यों को आर्थिक लाभ भी कराते हैं। आज अनेक वैद्य एलोपैथी इन्जैक्शन व्यवहार कर रहे हैं क्योंकि इस समय जो आयुर्वेदीय इन्जैक्शन बन रहे हैं वह यथार्थ न होने से आयुर्वेद को तथा उन्हें भी बदनाम करते हैं यही सब देख हमने इन्जैक्शन बनाना आरम्भ कर दिया है हमारे इन्जैक्शन तत्काल लाभप्रद हों इसका विशेष प्रबन्ध और ध्यान रखा है। एक बार परीक्षा करने का हम सानुरोध आग्रह करते हैं।

उच्च कोटि के आधुनिक विधि से निर्मित

इन्जैक्शनों की सूची

जडी बूटियों द्वारा निर्मित इन्जैक्शन—

मूल्य—१ c. c. २) २ c. c. ३)

इन्जैक्शन — रोगाधिकार

अर्जुन—हृदय दौर्बल्य एव धड़कन
अशोक—रजोविकार और प्रदर
अदरक—अजीर्ण, वमन, शूल
अग्नि मन्थ—अग्निमाद्य, शीत पित्त
अर्कमूल—श्वास, उपदंश, प्लीहा
अजवायन—सन्निपात, आंतों की ऐंठन
अपामार्ग—अपच, पथरी, दन्त शूल इत्यादि पर
इन्द्रायन (इन्द्रयव)—अण्डवृद्धि, मूढ गर्भ, उदर रोग, पीलिया, जलोदर
कुटज—वातज्वर, अतिसार, पेचिश, खूनी बवासीर
उशीर—मूत्रकृच्छ्, नकसीर, अम्लपित्त, विसर्प, मसूरिका
एरण्ड—आमवात, वातशूल, शोथ, (सूजन), गुर्दे की पीड़ा
कुकर भांगरा (भृङ्गराज)—मूर्छा, धनुषटङ्कार एवं बालों को हितकारी है
कुचला—ध्वजभङ्ग, पक्षाघात, निमोनिया
खदिर—कुष्ठ रोग, पाण्डु, प्रमेह, कास
गिलोय (अमृता)—अम्लपित्त, मस्तक पीड़ा
घृतकमारी (ग्वारपाठा)—हैजा, उदर विकार, मासिक धर्म और रक्त विकार
चिरायता—हर प्रकार के ज्वर पर
दशमूल—प्रसूति ज्वर, सर्व वात रोग
पुनर्नवा—शोथ, पाण्डु, विष विकार

पटोल पत्र—पित्तकफ ज्वर, रुधिर विकार
पलास—सब प्रकार का प्रमेह, मूत्रावरोध, शुक्र दोषों पर
बनगोभी—दर्द गुर्दा, रक्त विकार, अश्मरी
बासा—रक्तपित्त, कास, श्वास
बाह्मी—उन्माद, स्वर भेद, रसायन
बावची—रक्त विकार व कुष्ठ
भांग—कब्जनाशक, क्षुधावर्धक
सितावर—प्रमेह, रक्त पित्त, पित्त विकार एवं नेत्र शूल स्त्रियों के दूध की कमी पर
धतूरा—कास, श्वास, खांसी
कण्टकारी—वातज्वर, रक्तपित्त, श्वास, कास
नीबू—रक्त विकार
रास्ना—गठिया, वातव्याधि, वातशूल
लहसुन—धनुषटङ्कार, हरप्रकार की वातव्याधि पर रामबाण है
शरपुङ्खा—तिल्ली, यकृतविकार, गुल्म, रक्त दोष
शङ्खपुष्पी (शङ्खा होली)—बुद्धि वर्धक, अपस्मार, कृमि कण्ठरोग शोधक
स्वर्ण क्षीरी—गर्मी (आतशक), रक्त विकार, मूत्राविकार
सनाय—उदर विकार, मलावरोध
सोमलता—त्रिदोष नाशक
शिलाजीत—धातु क्षीणता, मधुमेह, पाण्डु आदि
नाय—मलेरिया, विषमज्वर नाशक
सर्पगन्धा—रक्तचाप, उन्माद में उत्तम निद्राकारक है
केशर—मानसिक शक्ति एवं पुंसत्व वृद्धिकर
कपूर कस्तूरी मिश्रित—सन्निपात, निमोनिया नाशक और हृदय की गति को बढ़ाने वाला १ C C ३)
अम्बर—हृदय, मानसिक दुर्बलता २ C C ४) २ C C ३)
कस्तूरी—निमोनिया तथा अन्तिम अवस्था पर २ C.C. ४) १ C.C ३)

रस भस्म आदि के इन्जेक्शन

	२C.C.	१C.C.
मकरध्वज--शारीरिक और वीर्य की निर्बलता हर	४)	३)
मल्लसिंदूर-वात नाशक, बलवर्धक, सन्निपात हर	४)	३)
तालसिंदूर-कुष्ठ, वातव्याधि, श्वास, खांसी	४)	२॥)
ताम्रसिंदूर-श्वास, खाँसी, विषमज्वर	४)	२॥)
रसमाणिक्य--कुष्ठ, वातव्याधि, वर्षा तथा गर्मी के फोड़ा फुन्सी नाशक	३)	२)
स्वर्ण-क्षय, उन्माद, हृद्दौर्बल्य	४)	३)
रजत (चाँदी)--हृदय, मानसिक दुर्बलता	४)	३)
वङ्गभस्म--प्रमेह नाशक, वीर्य वर्धक तथा पाण्डु, कृमिहर	४)	३)
जवाहर मोहरा--हार्ट फेल तथा बेहोशी हर	४)	३)
लोहभस्म-मेदा, तिल्ली, जिगर आदि पर	४)	३)
मुक्तापिष्टी-क्षय जन्य फेफड़ों की कमजोरी	४)	३)
मुक्ता भस्म-मोतीझरा, शारीरिक व दिमागी शक्ति वर्धक	४)	३)
शुक्ति भस्म-कमजोरी, हृदफूटन	३)	२)
शङ्खभस्म-पेट सम्बन्धी रोग, आँव या ग्रहणी हर	३)	२)
स्वर्ण माक्षिक भस्म-शारीरिक दुर्बलता, प्रमेह, हृदय की धड़कन	३)	२)
मृगशृङ्ग भस्म-छाती पसली के दर्द, निमोनियाँ, इन्फ्युएेञ्जा	३)	२)
मण्डूरभस्म--जिगर, प्लीहा, खून की कमी	३)	२)
प्रवाल पिष्टी-क्षय, कास, खांसी	३)	२)
प्रवाल भस्म- प्रमेह, प्रदर, पाण्डु, कफ सम्बन्धी रोगों में	३)	२)
नाग भस्म-हर तरह की कमजोरी, धातु क्षीणता पर	३)	२)
ताम्र भस्म--तिल्ली, जिगर शूल, श्वास खासी पर	४)	२॥)
कांस्य भस्म-यकृत प्लीहादि पर	३)	२)
अभ्रक--पांडु, रक्तपित्त, अम्लपित्त, प्रमेह, प्लीहा नाशक	३)	२)
मृगाङ्क रस-तपेदिक, ज्वर, खांसी	४)	३)

वसंत कुसमाकर–निर्बलता पर	४)	३)
स्वर्ण वसत मालती--जीर्ण ज्वर पर	५)	३)
स्वर्ण पर्पटी--श्वास, प्रमेह, अतिसार, मन्दाग्नि	५)	३)
प्रवाल पचामृत–अम्लपित्त, पेट फूलना, दर्द, गुल्म, दाह	४)	३)
जयमङ्गल रस–पुराना बुखार तथा विषम ज्वर पर	५)	३)
कनकसुन्दर रस--ज्वरातिसार, अतिसार, सग्रहणी आदि पर	३)	२)
गङ्गाधर रस--अतिसार, संग्रहणी पेचिश पर	३)	२)
गर्भपाल रस--गर्भपात गर्भश्राव को रोकने वाला	३)	२)
शङ्खद्राव--यकृत तथा तिल्ली के वास्ते	४)	३)

होम्योपैथिक इन्जेक्शन

एसिड फास -२००-	नामर्दी
आरसिनिक एल्ब--२००-	मोतीझरा
ब्रायोनिया एल्ब–५०-	हिक्का, अश्मरी पर
ब्रायोनिया- ३०	खांसी
कालकेनम्--२००-	पथरी
कारडयक्यू--	रजालोप
हाईड्रोकोटल–	प्रसव कष्ट पर
हाईवार्न प्रोम २००-	गर्भ रक्षा के लिये
मरक्युरियस २००--	सुजाक
नक्सवोमिका २००	श्वास (दमा)
पल्स २००-	फील पाव पर

इसके अतिरिक्त मांग आने पर स्पेशल रूप से तैयार किये जा सकते हैं। पर प्रति वस्तु के ६ बक्सों की मांग होनी चाहिये।

मूल्य २ C. C. ३) और १ C. C. २) सभी का मूल्य एक ही है।

प्रत्येक बक्स में ६ एम्पुल्स रहते हैं और मूल्य १ बक्स का ही लिखा गया है।

पेटेन्ट इन्जेक्शन

Bisham Jawarantak
विषम ज्वरांतक

योग—

कालमेघ, चिरायता, सप्तपर्ण, नाय आदि।

गुण—तिजारी, चौथैया और प्रतिदिन ठण्ड से आने वाले ज्वर के लिये रामबाण है।

सप्ताह में दो या तीन बार ज्वर आने से पहिले।

मूल्य—२ C. C. ३) प्रति बक्स

Swasantak
श्वासान्तक

योग—

भारङ्गी, धतूरा, मुलहठी, सोमकल्प, वासा इत्यादि

गुण—श्वास (दम) का दौरा तत्काल शांत करने में श्रेष्ठ है। मूल्य—२ C. C. ३) प्रति बक्स

Shulripu
शूलरिपु

योग—

स्वर्ण वल्ली, भूम्यामल, भूर्जपत्र, जलपीपल, गिरीबूटी

गुण—हर प्रकार के दर्द पर तत्काल लाभ करता है।

२ C C ३) प्रतिबक्स

Yakrit Rogantak
यकृत रोगांतक

योग—

शरपुंखा, कालमेघ, नवसार, लोह आदि

गुण—बच्चों के जिगर पर विशेष लाभप्रद है।

Pneumonia har
निमोनिया हर

योग—

लोबानसत्व, भृङ्गश्रङ्गभस्म, संजीवनी

गुण—न्यूमोनिया तथा पसली का दर्द तथा सर्दी लगने से आने वाले ज्वर पर लाभकारी है।

मूल्य—५) प्रतिबक्स